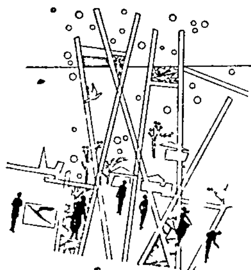
नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना







अपोलो पब्लिकेशन
सवाई मानसिंह हाईवे
जयपुर

नई कहानी

श्री सुरेन्द्र

दशा दिशा सम्भावना

० प्रकाशक
० अपोलो पब्लिकेशन,
० जयपुर

० मूल्य पन्द्रह रुपये मात्र
० प्रथम सस्करण १९६६

० मुद्रक
० मधु प्रिंटस जयपुर

अनुक्रम

जिनके साहित्यिक व्यक्तित्व ने
मुझे साहित्यिक रुझान दी उन्हीं
डा० राजेन्द्र शर्मा
के लिए
सादर



चाहे हुए के अनुसार अगर तैयार हुई होती तो
नई कहानी पर यह पहली आलोचनात्मक पुस्तक होती,
एक विशेष ग्रंथ में नई कहानी पर प्रकाशित पुस्तकों में
यह आज भी पहली पुस्तक है, और आखिरी तो हम
कैसे कह सकते हैं क्योंकि हम मानते हैं कि निश्चय ही
हमारे विशिष्ट साहित्यकार और प्रकाशक इस विधा पर
श्रेष्ठतम् साहित्य के प्रकाशन की ओर प्रयत्न करेंगे।

पुस्तक के प्रकाशन विलम्ब में जहाँ सम्मानित
लेखकों से धीरे-धीरे सामग्री प्राप्त हो सकने का
एक कारण रहा है वहाँ एक और कारण श्री
सुरेन्द्र का कार्य व्यस्त होना भी रहा है। फिर भी
उन्होंने जिस श्रम से यह पुस्तक-कार्य सम्पन्न किया है
उसका मूल्यांकन हम कुछेक औपचारिक शब्दों द्वारा नहीं
करना चाहते। हम तो चाहते हैं कि वे अपनी कार्य व्यस्त
चर्या से हम इतना कुछ समय ही देते रहें।

प्रकाशन के सौजन्य से हम हमारी ममता और सम-
वेदना का आभार ... हिन्दी की नवीन कथा सृष्टि' 'नयी
कहानी एक पर्यवेक्षण' निबन्ध प्राप्त हो सके हैं इसके
लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

और जो भी कुछ है अब यह पुस्तक आपके हाथों है।

—प्रकाशक



चाहे हुए क अनुसार अगर तयार हुई हानी तो
नई कहानी पर यह पहली आलोचनात्मक पुस्तक हाती
एक विशप ग्रथ म नई कहानी पर प्रकाशित पुस्तको म
यह आज भी पहली पुस्तक है और आखिरी तो हम
कैसे कह सकते हैं क्योकि हम मानते है कि निश्चय ही
हमार विशिष्ट साहित्यकार और प्रकाशक इस विधा पर
श्रेष्ठतम् साहित्य क प्रकाशन की ओर प्रयत्न करेंग।
पुस्तक के प्रकाशन विलम्ब म जहाँ सम्मानित
लखका से धीर-धीरे सामग्री प्राप्त हा सकने का
एक कारण रहा है वहा एक और कारण श्री
सुरन्द्र का काय व्यस्त होना भी रहा है। फिर भी
उन्हान जिस श्रम स यह पुस्तक-काय सम्पन्न किया है
उसका मूल्याकन हम कुछक औपचारिक शब्दो द्वारा नही
करना चाहत। हम ता चाहते है कि व अपनी काय व्यस्त
चर्या स हम इतना कुछ समय ही दते रहें।
प्रकाश जन क सौजन्य स हम हमारी ममता और मम श्री
वदना का आलोक' हिन्दी की नवोन कथा सृष्टि' नयी
कहानी एक पयवक्षण निबध प्राप्त हा सक हैं इसक
लिए हम उनक हृदय से आभारी हैं।
और जसी कुछ है अब यह पुस्तक आपक हाथ है।

—प्रकाशक

भूमिका

भूमिका लिखना मैं जरूरी नहीं समझ रहा था

इसलिए कि 'नई कहानी' पर मुझे जो कहना था वह यहाँ मेरे संकलित निबंधों में कहा जा चुका है। लेकिन इसीलिए भूमिका लिखने की जरूरत बनी भी हुई थी, क्योंकि वह सब जो निबंधों में नहीं कहा जा सका—निबंधों की अपनी सीमाओं के कारण, व वे सब बातें जो कहे जाने से छूट गईं या जिन्हें बूझकर छोड़ दिया गया था, जिन्हें सहज भूमिका में ही कहा जा सकता था, भूमिका लिखने की लगातार माँग कर रही थीं।

यहाँ भी हो सकता है कि बहुत कुछ लिखे जाने से रह जाय या रह जाने दिया जाय, लेकिन वह सब अब अप्रत्यक्ष या उसे जहाँ भी यह सबका महसूस कर सकूँ, वहाँ।

'नई कहानी' की चर्चा शायद मुहावरा पकड़ती जा रही है, लेकिन 'नई कहानी' अभी मुहावरा नहीं हो पाई है।

इसलिए यह सही समय यही है जब हम नई कहानी को उसकी खामियों और उपलब्धियों के साथ, इतिहास बोध के समानान्तर विश्लेषित कर सकें, क्योंकि जिस तरह नए कथाकारों की बाद की पीढ़ी में कथा के सृजन स्तर पर तब्दीलियाँ आए

उभर रहा है और उनके कथा रूप जिन आयामों मे आकार (शेप) ले रहे हैं, उससे एक बात स्पष्ट हो रही है, कि नई कहानी एक निश्चित काल खण्ड तक परम्परा से जुडी हुई थी या परम्परा म आगे लिखी जा रही थी, लेकिन अब वह परम्परा के विरोध म उसे विस्थापित करते हुए उसके प्रति विद्रोह म अपने इतिहास को सिरे से बनाने म उठ खडी हुई है, हालाकि यह बात अलग है कि परम्परा के विरोध म विरोध के कारण रूप परम्परा मे (क्योंकि विरोध के कारण रूप म परम्परा उसके लिखे जाने का वायस है) वह आज भी जुडी हुई है। अभी तो नही, लेकिन अभी म उस पर विचार म समीक्षा कोण बदलेगा ऋषि आचार्यों ने जिन जग खाए तत्व औजारो से कथा का आपरेशन किया था उससे कथा शरीर मे जहरबाद हो गया था इस जहरबाद के आपरेशन की जितनी सख्त जरूरत महसूस हो रही थी, उससे कही ज्यादा सख्त जरूरत इस बात की थी कि इन जग खाए तत्व औजारो वाली समीक्षाबुद्धि का आपरेशन किया जाय (शायद एक समय तक यह तत्व बोधक कथा समीक्षा प्रारम्भिक तौर पर कथा को समझने म कामयाब रही हो, लेकिन अब पूरे तौर पर वह अर्थहीन हो चुकी है), छ तत्वो म बधी हुई इस समीक्षा बुद्धि ने कहानी के साथ साथ उपन्यास नाटक आदि (यों हिन्दी का नाटक सृजन और समीक्षा आज भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक पिछडे हुए हैं) दूसरे गद्य रूपो म उतने ही असाध्य जहरबाद का पनपने छूटन दिया था, जिससे इन गद्य रूपों की 'एकान्विति' और प्रभावान्विति बराबर मायरी होती जा रही थी। जहरबाद के आपरेशन और मायरी पहनी हुई 'एकान्विति' को धार देने का काम बाकी था। जिसे नए कथाकारो और नए समीक्षको ने पूरा किया।

लेकिन इसस पहले भी, शुरू म आचार्य रामचन्द्रशुक्ल न छोटी कहानियो की बात चलाई थी और उनके सुधारवादी कोण को लेकर प्रशसा भी की थी। छोटी कहानियो म माड के नाम पर प० ज्वालादत्तशर्मा आदि कहानीकारो का स्मरण भी किया था लेकिन बस इतना भर ही, इसस अधिक कुछ नही। ऐसा नही था कि उस समय कहानी साहित्य समृद्ध न रहा हो इस लिहाज से प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानिया ही पर्याप्त हो सकती थी। इन्ही को लेकर सिरे स कहानी समीक्षा तन्त्र की रचना की जा सकती थी, लेकिन ऐसा हुआ नही। कथा को तब यह अगम्भीर भाव केवल साहित्य समीक्षा म ही नहा था पाठकों म भी था। सब कही कहानी को हल्के मनोरजन और समय काटने के लिए ही पढा जाता था। तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासो से हानी हुई कथा समझ प्रेमचद और प्रसाद तक स्वय का स्वतन्त्र जागरूक और कला त्मक होना तो अनुभव करने लगी थी लेकिन इस कलात्मक समझ का कहानी के मन्न म विश्लेषण नही होता था। शुक्ल जग समीक्षक का पूरा ध्यान काव्य समीक्षा

पर ही रहा। प्रगतिवादी समीक्षकों ने जरूर कथा साहित्य को समीक्षा का विषय बनाया। यहां कथा शोध विश्लेषण की पूरी सम्भावना थी, लेकिन ये समीक्षक भी उपन्यासों और दूसरे साहित्य रूपों पर ही अपनी समीक्षा बुद्धि की आजमाइश करते रहे और छोटी कहानी इनके लिए भी छोटी ही बनी रह गई।

शुक्ल के पश्चात् इस युग के समर्थ और बड़े आलोचक डा० नगेन्द्र ने साहित्य पर चौतरफा विचार किया, काव्य की अद्यतन प्रवृत्तियों पर लिखा, स्थापनाएं दीं लेकिन इसे आश्चर्य ही कहा जायगा कि कहानी समीक्षा की ओर उन्हें भी खास रुचि नहीं हुई।

इस बीच कहानी समीक्षा के नाम पर पाठ्य क्रमों में आयोजित कहानी संग्रहों में बीस-बीस पचीस पचीस पृष्ठों की भूमिकाएं ही लिखी जाती रहीं और उनमें भी सतही तौर पर कहानी सम्बन्धी इतिहास और तत्वों में बंटी हुई ऊपरी सूचनाएं ही निवेदित की जाती रहीं, कुछ प्रबंध भी 'कहानी' को लेकर लिखे गए लेकिन वे भी एकदम 'अकेडेमिक' रहे, कभी कभी कथा 'संवेदना की अभिव्यक्ति' की भी बात उठाई गई, लेकिन वह महज शब्द का अनुवाद होकर विश्लेषित होकर नहीं। इस बीच कहानी को उच्च कक्षाओं के लिए अध्ययन योग्य भी मान लिया गया— पूरी उपेक्षा के साथ और आज भी विश्व विद्यालयों में कहानी के पाठ्यक्रमों व पठन पाठन का हालत खासी मनोरंजक है। अध्यापकों ने अपनी सीमाओं में (गोकि ये सीमाएं उन्हीं के द्वारा निर्धारित की गई थीं) जो छिट-पुट कथा-समीक्षा यत्न किए व पूरे तौर पर निगहणीय नहीं हैं, उनका काल-खण्ड के समानान्तर कुछ तो महत्व है, अध्यापकों ने इतना तो किया (हालांकि यहां मेरा इरादा अध्यापकीय समीक्षा की विकालत करना जैसा बिल्कुल नहीं है, क्योंकि बने बनाए सांचों में होने वाली इस समीक्षा की स्तरहीनता रूढ़िग्रस्तता और सतहीपन से मैं परिचित हूं) जबकि इसी बीच जैनेन्द्र यशपाल, इलाचन्द्र जोशी अज्ञेय, अमृतलाल नागर नागार्जुन जैसे कथा लेखकों के होते हुए भी कहानी समीक्षा अध्यापकों तक ही सीमित क्यों रही? यह होते हुए भी कि इन में से कुछेक रामक अच्छे समीक्षक भी हैं और 'नई समीक्षा' में महत्वपूर्ण योग देने वाले भी। इसका मतलब साफ था कि ये लेखक भी कहानी को विवेच्य नहीं मानते थे। दरअसल समीक्षा बुद्धि के सतुलन अभाव में अतिवादी कोण के होते हुए भी हमारे यहां अध्यापकीय आलोचना की इतनी आलोचना नहीं हुई है जितना कि स्वयं अध्यापकों की और इस आलोचना का कारण निरमन कथा

समझ का होना उतना नहीं है, जितना कि उसका स्वप्न में एकदम निजी और सतही होना है जिसमें कहीं कहीं हीन भाव का भाव भी रहा है यानी इस दिशा (?) के आलोचक हैं विश्व विद्यालयों में आने के इच्छुक हताश लेखक या वे लेखक जो विश्व विद्यालयों से निकाले गए हैं या वे जिन्हें विश्व विद्यालयों में लिए जाने के योग्य नहीं समझा गया है या जो विश्व विद्यालयों में होते हुए भी वहां खप नहीं सके क्योंकि जहां लेखन एक कला है वहां अध्यापन भी, और जरूरी नहीं कि आप लेखक के साथ साथ सफल अध्यापक भी हो सकें। अध्यापकीय कथा समीक्षा की आलोचना जरूरी है, लेकिन आग्रह मुक्त होकर। अहम मसला यह नहीं है कि कौन लेखक कहां जाने को उत्सुक है और कि कौन लेखक कहाँ से निकाला गया है। मसला यह है कि अध्यापक की आलोचना या उसकी आलोचना की आलोचना जो कि फैशन परक गई है उसे हम व्यक्तिगत स्तरों और फैशन परक स्थितियों से उठकर सही और ठोस जमीन दे सकें।

नयी कविता के काफी बाद कहानी चर्चा शुरू हुई। १९५४-५५ के पास यह चर्चा तूल पकड़ने लगी। ५६ में इस 'नई कहानी' नाम देने की सिफारिश की गई। ५७ व ५८ तक यह सृजन स्तर पर अपना अस्तित्व प्रमाणित करने लगी। कहानी, कल्पना, विनोद, लहर, ज्ञानोदय, नई कहानियां आदि पत्रों ने 'नई कहानी' की चर्चा और उसके उत्थान में पर्याप्त भाग लिया। कथा-गोष्ठियां और कथा समारोहों ने भी अपनी तरह में इसे काफी प्रचार दिया (और शायद नई कहानी का जोरों की चर्चा का एक कारण विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कथाकार सम्पादकों का होना भी रहा है और कविता की प्रभूत चर्चा भी) इस तरह कुल दो दशक में कहानी आलोचना और प्रत्यालोचना का केन्द्र बन गई और यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो विधा साहित्य में अब से पहले तक एकदम उपेक्षित रही थी यकायक वही साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा कविता के समानान्तर मजबूती में अपने पैरों खड़ी हुई है। यह ६०, ६१ का समय था, जब कहानी का नई नाम स्वीकृत हो गया हुआ था, उसका रूप भी खुल आया था, यानी उसमें सम्प्रेषित कुछ खास आयाम सामने आने लगे थे।

अब से पहले कहानी में जहां आदमी की गहरी और गहरी आन्तरिक सत्ता का मनन नहीं हुआ था वहां कहानी के आन्तरिक रचाव का भार भी ध्यान नहीं गया था, इसलिए जब इसमें जुड़ा हुआ सत्य यथार्थ का प्रश्न सामने आया तो इसी के साथ अनुभव की प्रामाणिकता का सवाल भी उठाया गया और प्रामाणिकता अन्तत

पर ही रहा। प्रगतिवादी समीक्षकों ने जरूर कथा साहित्य को समीक्षा का विषय बनाया। यहां कथा शोध विश्लेषण की पूरी सम्भावना थी, लेकिन ये समीक्षक भी उपन्यासों और दूसरे साहित्य रूपों पर ही अपनी समीक्षा बुद्धि की आजमाइश करते रहे और छोटी कहानी इनके लिए भी छोटी ही बनी रह गई।

शुक्ल के पश्चात्, इस युग के समर्थ और बड़े आलोचक डा० नगेन्द्र ने साहित्य पर चौतरफा विचार किया, काव्य की अद्यतन प्रवृत्तियों पर लिखा, स्थापनाएं दीं लेकिन इसे आश्चर्य ही कहा जायगा कि कहानी समीक्षा की ओर उन्हें भी खास रुचि नहीं हुई।

इस बीच कहानी समीक्षा के नाम पर पाठ्य क्रमों में आयोजित कहानी संग्रहों में बीस-बीस पचीस-पचीस पृष्ठों की भूमिकाएं ही लिखी जाती रहीं और उनमें भी सतही तौर पर कहानी सम्बन्धी इतिहास और तत्वों में बंटी हुई ऊपरी सूचनाएं ही निवेदित की जाती रहीं, कुछ प्रबन्ध भी 'कहानी' को लेकर लिख गए, लेकिन वे भी एकदम 'एकेडेमिक' रहे कभी-कभी कथा संवेदना की अन्विति की भी बात उठाई गई लेकिन वह महज शब्द का अनुवाद होकर, विश्लेषित होकर नहीं। इस बीच कहानी को उच्च कक्षाओं के लिए अध्ययन योग्य भी मान लिया गया— पूरी उपेक्षा के साथ और आज भी विश्व विद्यालयों में कहानी के पाठ्यक्रमों व पठन पाठन की हालत खासी मनोरंजक है। अध्यापकों ने अपनी सीमाओं में (गोकि ये सीमाएं उन्हीं के द्वारा निर्धारित की गई थीं) जो छिट-पुट कथा-समीक्षा यत्न किए वे पूरे तौर पर विगर्हणीय नहीं हैं उनका काल-खण्ड के समानान्तर कुछ तो महत्व है, अध्यापकों ने इतना तो किया (हालांकि यहां मेरा इरादा अध्यापकीय समीक्षा की वकालत करना जैसा बिल्कुल नहीं है, क्योंकि बने बनाए सांचों में ढाले जाने वाली इस समीक्षा की स्तरहीनता रूढ़िवादिता और सतहीपन से मैं परिचित हूं) जबकि इस बीच जैनेन्द्र, यशपाल इलाचन्द्र जोशी अज्ञेय, अमृतलाल नागर नागार्जुन जैसे कथा लेखकों के होते हुए भी कहानी समीक्षा अध्यापकों तक ही सीमित क्यों रही? ये होते हुए भी कि इन में से कुछ लेखक अच्छे समीक्षक भी हैं और 'नई समीक्षा' में महत्वपूर्ण योग देने वाले भी। इसका मतलब साफ था कि ये लेखक भी कहानी को विवेच्य नहीं मानते थे। दरअसल समीक्षा बुद्धि के संतुलन अभाव में अतिवादी कोण के होने हुए भी हमारे यहां अध्यापकीय आलोचना की इतनी आलोचना नहीं हुई है जितनी कि स्वयं अध्यापकों की और इस आलोचना का कारण निरमम कथा

समझ का होना उतना नहीं है, जितना कि उसका स्वयं में एकदम निजी और सतही होना है जिसमें कहीं कहीं हीन बोध का भाव भी रहा है यानी इस दिशा (?) के आलोचक हैं विश्व विद्यालयों में आने के इच्छुक हताश लेखक या वे लेखक जो विश्व विद्यालयों से निकाले गए हैं या वे जिन्हें विश्व विद्यालयों में लिए जाने के योग्य नहीं समझा गया है या जो विश्व विद्यालयों में होते हुए भी वहां खप नहीं सके क्योंकि जहां लेखन एक कला है वहां अध्यापन भी, और जरूरी नहीं कि आप लेखक के साथ साथ सफल अध्यापक भी हो सकें। अध्यापकीय कथा समीक्षा की आलोचना जरूरी है, लेकिन आग्रह मुक्त होकर। अहम मसला यह नहीं है कि कौन लेखक कहां जाने का उत्सुक है और कि कौन लेखक कहां से निकाला गया है। मसला यह है कि अध्यापक की आलोचना या उसकी आलोचना की आलोचना जो कि फैशन पकड़ गई है उसे हम व्यक्तिगत स्तरों और फैशन परक स्थितियों से उठकर सही और ठोस जमीन दे सकें।

नयी कविता के काफी बाद कहानी चर्चा शुरू हुई। १९५४-५५ के पास यह चर्चा तूल पकड़ने लगी। ५६ में इस 'नई कहानी' नाम देने की सिफारिश की गई। ५७ व ५८ तक यह सृजन स्तर पर अपना अस्तित्व प्रमाणित करने लगी। कहानी, कल्पना, विनोद, लहर, कानोदय, नई कहानियां आदि पत्रों ने 'नई कहानी' की चर्चा और उसके उन्मेष में पर्याप्त भाग लिया। कथा गोष्ठियां और कथा समारोहों ने भी अपनी तरह से इसे काफी प्रचार दिया (और शायद 'नई कहानी' की जोरों की चर्चा का एक कारण विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कथाकार सम्पादकों का होना भी रहा है और कविता की प्रभूत चर्चा भी) इस तरह कुल एक दशक में कहानी आलोचना और प्रत्यालोचना का केन्द्र बन गई और यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो विधा साहित्य में अब से पहले तक एकदम उपेक्षित रही थी, एकाएक वही साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा कविता के समानान्तर मजबूती से अपने पैरों खड़ी हुई है। यह ६०, ६१ का समय था, जब कहानी का 'नई' नाम स्वीकृत हो नहीं हुआ था, उसका रूप भी शुरू आया था यानी उसके सारे [illegible] कुछ लोग आयाम सामने आने लगे थे।

अब से पहले कहानी में जहां आदमी की सही और गहरी आन्तरिक सत्ता का खनन नहीं हुआ था, वहां कहानी के आन्तरिक रचाव की ओर भी ध्यान नहीं गया था, इसलिए जब हमने जुड़ा हुआ सही यथार्थ का प्रश्न उठाया था इसी के साथ अनुभव की प्रामाणिकता का सवाल भी उठाया गया और प्रामाणिकता [illegible]

परिवेश (आदमी के अपने भीतर और बाहर के समाज का सामञ्जस्य) की प्रामाणिकता से जुड़ी हुई ही नही मानी गई, बल्कि उससे पूरे तौर पर पृक्त स्वीकारी गई। इस तरह परिवेश ही वह कुतुबनुमा का काटा ठहरा, जो अनुभव का प्रामाणिकता का सही दिशा सकलक हुआ। इसीलिए 'नई कहानी में चरित्र निमाण आशय नही रहा और न ही वस्तु पर सगतराशी करने का आग्रह रहा, क्योकि सगतराशी से अवयव और उसके कटाव तो उभारे जा सकते हैं लेकिन उनके भीतर के हिलते तार से उनका सम्बन्ध नही बनाया जा सकता।

यही अनुभव सत्य भी बदला

इसलिए कि आदमी खुद के घटित को ही महसूस करता है, दूसरो के का नही और जब वह दूसरो के घटित को झेलता होता है तब वहा वह खुद नहा होता दूसरे होते हैं या वे सब जिनको या जिनके लिए वह महसूस करता है। व्यतीत कथाकारो का अनुभव सत्य यही था वे अनुभव का माध्यम दूसरा को मानते थे, आचाय शुक्ल कथित पद्धति ही इन के लिए आदश वाक्य थी कि दूसरा की परिस्थिति मे स्वय को डालकर उन्ही के अनुरूप भावो का अनुभव करो इसी आरोपित पद्धति के कारण व्यतीत कथाकरो मे अनुभव की प्रामाणिकता चुकती थी। नया कथाकार महज अपने घटित को महसूस करता है व उन सबका भी जो उसके 'घटित' से अनायास जुडे हुए हैं या जुड जाते हैं यानी उन सबके लिए वह भोगता तो है, लेकिन स्वय होकर और वे उसके साथ होते हैं (बल्कि उसम स्वय होते हैं) लेकिन पहल और माध्यम उसका स्वय का अनुभव सत्य होता है। वह अब दूसरो के अनुभव के आधार पर कथा गढने की सुविधा छोड चुका है।

राजेन्द्र यादव ने एक दुनिया समानान्तर म खीज और नपु सक आक्रोश म (यह आक्रोश आज का समूची पीढी का भी है जो यथाथ का न बदल पाने की असमथता में उपजा है) कुछ उत्तेजित प्रश्न उठाए हैं, जिन मे चौतरफा सब मूल्य मानो को अथहीन मानकर उन्हे नकारा गया है और नकार ही को आज की नियति भी मान लिया गया है। प्रश्न म ये सारे प्रश्न एक ही प्रश्न 'सही यथाथ' के प्रश्नान्तर हैं। प्रश्न उठाने का आपको हक तो है (सविधान भी इस हक को जायज मानता है) लेकिन उनके उत्तर को या उत्तर सम्भावनाओं को आप नकार नही सकते, इसलिए कि प्रश्न केवल प्रश्न नही है यानी उसका अन्त प्रश्न होकर नहा होता उसका अन्त उत्तर म है और यही उसकी अन्तिम नियति भी है। इस तकनीक जमाने मे जब सब कुछ अथहीन हो रहा है तब प्रश्न की साथकता इसी में है (गोकि यह जुमा बासी है कि हर प्रश्न सार्थक नही होता) कि वह उत्तर की लगातार तलाश हो,

यह बात अलग है कि उत्तर आपके पास न हो (और हो सकता है कि समूची पीढ़ी के पास न हो) लेकिन इसीलिए यह मान लिए जाने का कोई कारण नहीं कि उसका उत्तर ही नहीं है। नई कहानी इसी उत्तर की लगातार तलाश है और यही उत्तर उसका सही वास्तव और अन्तिम नियति भी है।

नयी कहानी के मान स्थिर करते हुए एक कथा समीक्षक ने खण्डित बोध या खण्डित रुचि का सवाल उठाया था, हालांकि इस तरह वे दूसरों की खण्डित रुचि को बसबूत चाहे पेश न कर सके हों लेकिन अनजाने ही उन्होंने अपनी खण्डित रुचि का विज्ञापन जरूर कर दिया है। चूंकि यह कर्म 'अनजाने' ही हुआ है इसलिए वे दोषी नहीं ठहराए जा सकते ?? दोषी तो वे लोग हैं जो इस दोष को मद्देनजर रखते हुए उन पर दोषारोपण करते हैं ???

बिचली पीढ़ी के एक समीक्षक मित्र ने बड़ा दिलचस्प दावा किया है "घटना प्रसंग जितना वास्तविक होगा, कहानी उतनी ही जोरदार होगी गोया एकदम जोरदार कहानी के लिए एकदम वास्तविक घटना प्रसंग होना ही काफी है। वे सभी कहानियां 'जोरदार' ही हैं जिनके घटना प्रसंग वास्तविक हैं, वे न सिर्फ कहानी ही हैं, बल्कि 'नई कहानी' भी हैं ? इस दिलचस्प दावे से प्रबुद्ध पाठकों का खासा मनोरंजन हुआ है। घटना प्रसंग या भाषा में लच्छे बैठा देना या चरित्र की कैफियत दे देना आदि ही कहानी नहीं है यह रचना में किसी एक जगह भी नहीं होती कि आप उंगली रखकर बता दें, वह अनुस्यूत सृष्टि है जिसमें रचना में हर कोण पर प्रभाव करता है वह लेखक की चेतना या 'स्लाइवा' है वस्तु और रूप उसी के सवाहक हैं, वे उसे समझने में हल्की मदद भर कर सकते हैं।

असल में यह 'घटना प्रसंग' का सवाल कथानक का ही सवाल है, जबकि यह बात काफी साफ हो चुकी है कि कथानक वह और वहां ही नहीं है जहां उसे समझा जाता रहा है। यह कहना भी ज्यादा सही नहीं है कि कथानक को लेकर धारणा बदली है बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि कहानी की तमाम धारणाओं के सम्बन्ध में हमारी बदली हुई धारणाएं बदल कर एक धारणाहीन प्रक्रिया से गुजर रही हैं इसीलिए सतुलित कथासाता की मांग करना (वास्तविक घटना प्रसंग या कथानक की मांग ऐसी ही एक मांग है और यह मांग किसी कदर भी तत्वों में बंटी हुई मध्यापकीय कथा समीक्षा के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाई है ये स्वनाम धन्य समीक्षक लौट फिर कर इन्हीं तत्वों की बात करते हैं जबकि दावा इनका इनसे ऊपर उठ होने का है) कहानी और कहानी समीक्षा में विकासमान धाराओं, कल्पनाओं व प्रयोगों के प्रति उदासीन होना है और कहानी में कथा विरोधी रुख अपनाना है (इस कोण में

देखन पर स्पष्ट हो जाता है कि बिचली पीढ़ी ने पिताओं के खिलाफ जिहाद बोलते हुए भी उन्ही का अनुसरण किया है) साथ ही अपनी समीक्षा बुद्धि को जड़ चिंतन के मातहत भी करना है।

इस धारणा का गलत मानते हुए भी कि साहित्य के तमाम रूपो म एक ही बात कही जाती है' बिचली पीढ़ी के समीक्षक पश्चिमी उपन्यास और कविता के मतुलित माना से नई कहानी' की जोख लेते रहे हैं, गोया उनके लिए कहानी उपन्यास भी है और कविता भी। इसका मतलब हुआ कि साहित्य के तमाम रूपो म एक ही बात कही जाती है इसीलिए एक जैसे प्रतिमानो से कविता और कथा का नाप लेने म उन्हे कोई हुज महसूस नहीं हुआ (हालाकि उनके पास किसी विदेशी लेखक की इस क्रम के औचित्य के लिए दी गई दलील मो मौजूद है) य परस्पर विरोधी बातें और कथनी करनी का अतर इन लेखको की समीक्षा का ही अलकार नहीं है इनकी जिन्दगी को भी अलकृत करता है। गाकि देवीशकर अवस्थी ने इस खतरे की ओर अरसा पहले इशारा किया था, लेकिन लगता है कि इस बदले जमाने म समझदारो के लिए इशारा काफी ' वाला मुहावरा नाकाफी हो रहा है।

बिचली पीढ़ी के कथा समीक्षको न (आज का पीढ़ी म पहले के) नए कथाकारो को एक मुश्त रिटायर करने की सिफारिश की है, पुराने कथाकारो को उन्होने पहले ही रिटायर' करवा दिया था (नतृत्व बनाए रखने का यह नुस्खा काफी पुराना पड चुका है) लेकिन अभी अपनी रिटायरमेंट तिथि की घोषणा नहीं की है (और न व ऐसा करेंगे) जबकि मजे की बात यह है कि 'रिटायर' होने पर भी व स्वय को आन ड्यूटी समझने का मुगालता पाले हुए हैं।

जिन सस्थितियो से हम गुजर रहे हैं उनम लखकीय कम अतिरिक्त प्रसन्नता की बात नही रह गई है। सारे सृजन के घटित होने का स्वय (लखक) माध्यम होने के कारण, वह एक लगातार अभिशाप हो गया है। इस सन्दर्भ म व्यतीत रचना कर्मियो से उसकी नियति कही अधिक क्रूर है कारण—व्यतीत लेखक दूसरो के जिए हुए को माध्यम बनाते थे जबकि नए कथाकार के लेखक की पन्क्ती शत स्वय को जीकर लिखना है। जसे जसे कथा (या कोई भी रचना) महत्व पकड़ती जाती है वसे-वसे रचना पर उसके हाथों की पकड कमजोर पडती जाती है रचना एक झटके मे उससे टूट कर स्वय जितनी पूर्ण होती है लखक उतना ही टूटता और खाली होता जाता है हर महत्वपूर्ण रचना उसके साथ यही सलूक करती है और हर बार वह पहले स अधिक असहाय होता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति का उत्साह देश विभाजन के समय के कर अनुभव दो विश्व-युद्धो का प्रभाव, इन सब होते और अनहोने परिवतन

ने हमारे कथाकार को अपनी नियति से जूझने के लिए एकदम अकेला छोड दिया है और लेखकीय प्रक्रिया की यातना को सहता हुआ वह पूरे समुदाय म कट कर सब स अलग पड गया है। इसीलिए 'नई कहानी आदमी की विडम्बना नपुसकता, टूटने और अकेले पडकर सहते जाने की भी कहानी है।

यह सही है कि दोनों विश्वयुद्ध हमारी जमीन पर नही लडे गए लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि एक माइने में उनका घातक असर (उन देशो की निस्बतन भी जहा वे लडे गए थ) हम पर अधिक पडा है इस अथ म कि पश्चिमी देशो में युद्धों के मलबे को साफ कर निर्माण तेजी से हुआ है जब कि हमारे यहा एक खास किस्म की गिरावट ने जन्म लिया है और इसी गिरावट के तहत सैक्स पर अधिकाधिक अमेरिकन और पश्चिमी साहित्य के प्रभाव म लिखी जाने वाली कहानिया स्वतन्त्र यौन भोग की दुर्दान्त इच्छा (जो एक अश म चौतरफा अथहीनता के कारण भी उपजी है) के साथ लगातार नपुसक होते हुए दशा की स्थिति को भी सामने ला रही हैं आयोजित उत्तेजना इसका प्रमाण है। पुरुष की यौनेच्छा के स्वातन्त्र्य के लिए इस दिशा म नारी को उकसाया जा रहा है। मेरा इरादा यहा सक्स चित्रण पर अलग से कुछ कहने का नही है (इसके लिए देखिए नई कहानी एक बहुचित्रित सन्दभ) सिवाय इसके—

'हिन्द के शायरो सूरतगरो अफसाना निगार
आह बचारो के आसाब प औरत है सवार।

कुछ समीक्षको का ख्याल है कि पिछले दो दशक कहानी की नयी समीक्षा के दशक हैं और उनका यह ख्याल सही भी है लेकिन उतना ही सही यह भी है कि इन दो दशको म (और अब भी) तेजी स बदलते हुए जीवन को सृजन स्तर पर नई कहानी न स्फीति के साथ पकडने की कोशिश ही नही की है उसे कथा उपलब्धिया म पकड भी पाया है। य दशक कहानी के समीक्षा दशक तो हैं ही इस अथ मे कि कहानी समीक्षा की नई शुरुआत यहा हुई है, लेकिन इन स कोई खरी समीक्षा पद्धति निकल पाई हो ऐसा नही है, यह सही है कि वह विकास की प्रक्रिया म जरूर है उसकी शब्दावली भी अलग स निर्मित नही हो पाई है गोकि पिछली पीढी के मित्रवादी समीक्षक न नयी समीक्षा शब्दावली देने के दम्भ म अधिकाश कविता समीक्षा के शब्दो (एक हद तक यह उचित भी कहा जा सकता है) व पर्याप्त उन्ही बूढे शब्दो का प्रयोग किया है जिनका एक अरसा हुए कुन्दह निकल आया था और मुडत हुए चेहरा झुरियो स भर गया था। एक समीक्षक न तो अपना कथा समीक्षा म 'आकस्मिक' शब्द का इस बहुतायत म प्रयोग किया है कि तकचुन हुई

नई कहानी

शिवदानसिंह चौहान

'हम कहेंगे हाले दिल और वह फरमायगे, क्या?
अर्थात् खुदा बख्शे, इस आयामबाजी से !'

मैं नही जानता था कि मैं जितना सुस्त हू (व्यस्त कहना शायद आत्म श्लाघा सी लगे) आपकी जिद उसमे भी बढ़कर है। तीन महीनो से आपने नाक म दम कर रखा है। करीब हर हफ्ते एक काड सरका देते हैं, गोया अपने वक्त और पोस्टेज की कुछ कीमत ही नही लगाते। मानता हू कि मैंने लिखने का वायदा कर लिया था लेकिन क्या हर वायदे को पूरा करना आज के जमाने म जरूरी है? "प्रान जाए पर बचन न जाई' ? लेकिन भई, यह तो भक्त तुलसीदास ने अपने त्रेता युग के आराध्य के बारे म लिखा था। इस जमाने की व्यस्तताओं और परेशानियों को जानते तो शायद 'ऑस्कर वाइल्ड की ही ताकीद करते कि नेक इरादो की तरह वायदे भी तोडने के लिए ही किये जाते हैं। खैर लगता है कि आप भी नये जमाने की गर्दिश से दूर त्रेतायुग नही तो किसी एसे ही पुराने जमाने में रहते हैं—मेरा मतलब है जहनी तौर पर—इसलिए यह गवारा नही कर सकते कि कोई वायदा खिलाफी कर जाय, यानी जब तक आप वायदा पूरा नहीं करा लेंगे, तब तक चैन नही लेंगे। इसलिए आपकी इन कोशिशों का कुछ तो एहतराम करना ही पडेगा चाहे जून की इस लू म जब हीट स्ट्रोक का खतरा हर वक्त और हर गिर्द मडराता रहता है सिर पर गीला तौलिया लपट कर ही क्यों न सही आपके लिए दो-चार अक्षर लिखने ही पड़ेंगे। सो लिख रहा हू। लेकिन शुरू में ही तो क्या लिखू तीन महीने पहले आपने कहानी मच की योजना के बारे मे एक

ने हमारे कथाकार को अपनी नियति से जूझने के लिए एकदम अकेला छोड़ दिया है और लम्बी प्रक्रिया की यातना को सहता हुआ वह पूरे समुदाय से कट कर सब से अलग पड़ गया है। इसीलिए नई कहानी आदमी की विडम्बना नपुंसकता टूटने और अकेले पड़कर रहते जाने की भी कहानी है।

यह सही है कि दोनों विश्वयुद्ध हमारी जमीन पर नहीं लड़े गए, लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि एक मायने में उनका घातक असर (उन देशों की निस्बत भी जहां वे लड़े गए थे) हम पर अधिक पड़ा है इस अर्थ में कि पश्चिमी देशों में युद्धों के मलबे को साफ़ कर निर्माण तेज़ी से हुआ है जब कि हमारे यहां एक खास किस्म की गिरावट ने जन्म लिया है और इसी गिरावट के तहत सैक्स पर अधिकाधिक अमरिकन और पश्चिमी साहित्य के प्रभाव में लिखी जाने वाली कहानियां स्वतन्त्र यौन भोग की दुर्दान्त इच्छा (जो एक अंश में चौतरफा अर्थहीनता के कारण भी उपजी है) के साथ लगातार नपुंसक होते हुए देश की स्थिति को भी सामने ला रही हैं। आयोजित उत्तेजना इसका प्रमाण है। पुरुष की यौनेच्छा के इस्तेमाल के लिए इस दिशा में नारी को उकसाया जा रहा है। मेरा इरादा यहां सेक्स चित्रण पर अलग से कुछ कहने का नहीं है (इसके लिए देखिए नई कहानी एक बहुचर्चित सन्दर्भ) सिवाय इसके—

हिन्द के शायरो सूरतगरो अफसाना निगार
आह बेचारों के आसाब पे औरत है सवार।

कुछ समीक्षकों का ख्याल है कि पिछले दो दशक कहानी की नयी समीक्षा के दशक हैं और उनका यह ख्याल सही भी है लेकिन उतना ही सही यह भी है कि इन दो दशकों में (और अब भी) तेजी से बदलते हुए जीवन को सृजन स्तर पर 'नई कहानी' ने स्फीति के साथ पकड़ने की कोशिश ही नहीं की है उसे कथा उपलब्धियों में पकड़ भी पाया है। ये दशक कहानी के समीक्षा दशक तो हैं ही इस अर्थ में कि कहानी समीक्षा की नई शुरुआत यहां हुई है, लेकिन इनमें कोई खरी समीक्षा पद्धति निकल पाई हो ऐसा नहीं है, यह सही है कि वह विकास की प्रक्रिया में जरूर है उसकी शब्दावली भी अलग से निर्मित नहीं हो पाई है खासकर पिछली पीढ़ी के मित्रवादी समीक्षक ने नयी समीक्षा शब्दावली देने के दम्भ में अधिकांश कविता समीक्षा के शब्द (एक हद तक यह उचित भी कहा जा सकता है) व पर्याप्त उन्हीं बूढ़े शब्दों का प्रयोग किया है जिनका एक अरसा हुए कुबड़ निकल आया था और बूढ़े हुए चेहरा झुर्रियों से भर गया था। एक समीक्षक ने तो अपनी कथा समीक्षा में 'आकस्मिक' शब्द का इस बहुतायत से प्रयोग किया है कि वस्तुतः हुई

उनकी सारी कथा-समीक्षा महज आकस्मिक (और एक शुरुआत) होकर ही रह गई है। नई कथा समीक्षा मे न कुछ शब्दावली उपलब्धिया के अतिरिक्त लफ्फाजी लतीफे मसखरे पन से भरे चुटकुले और वाग्वदग्ध्य का काफी शोर शरावा रहा है।

'नई कहानी म व्यग्य पर्याप्त उभरा है जिस तरह व्यग्य जरा सी असाव धानी से वक्तव्य हो जाता है, इसी तरह केन्द्रस्थ वस्तु बोध 'विवरण' होकर रह जा सकता है। इस स्थिति मे हिन्दी का नया कथाकार पूरे तौर पर परिचित है।

नए के प्रति अतिरिक्त मोह या आग्रह हमारे कथा-सयम के लिए खतरनाक साबित हो सकता है साथ ही एक खास किस्म का रोमान हमारी दृष्टि म जगह बना सकता है और तब हम वहा बौद्धिक पहल और आधुनिक बोध म चुकते होते हैं, यह जानते हुए भी कि कथा-सृजन म निस्सगता की कितनी गहरी आवश्यकता है। नए के प्रति इस अतिरिक्त मोह ने कुछ लेखको के कथा-बोध को बचकाना बना दिया है, तो कुछेक ने इस खतरे को उठाते हुए सशक्त कृतियाँ भी दी है। दरअस्ल यह बात बहुत कुछ लेखकीय सामर्थ्य स जुडी हुई है।

आतक त्रास, तनाव, भयावह सत्रास नई कहानी म युग की सही तस्वीर उकेर रहे हैं, लेकिन यह बोध अपने सही अर्थ मे बहुत कम लेखको के यहा है।

पिछले दिनो कविता को लेकर तेजी से ताजी (बासी) नगी (अधनगी) (क्षमा करें ब्रेकिट वाले नाम मैंने जोड दिए हैं) भूखी और विद्रोही-कविता जसे नाम आए हैं और कुछ कम तेजी म य ता नही लेकिन इन्ही जसे नाम कहानी म भी, लेकिन यह बहुत साफ है कि इन नामो की नियति मरे हुए बच्चे की नियति म अधिक कुछ भी नही है।

'नई कविता और नई कहानी को लेकर जो अर्थहीन विवाद कथा-समीक्षा म चला है उस पर मुझे अलग से कुछ नहा कहना है, सिवाय इसके कि वह कथा समीक्षको के अतिरिक्त उत्साह का एक मनोरजक नमूना है और कभी-कभी बल्कि अक्सर यह देखन म आया है कि अतिरिक्त उत्साह मे लोग गलत रास्तो पर भी चले गए हैं।

अपने दिल्ली प्रवास म अनुवय म स्तम्भ शुरू करने के बारे म भाई देवी शकर अवस्थी (अब वे स्मृतिशेष ही रह गए हैं) से परस्पर विचार करने के दौरान यह बात सामने आई थी कि कहानी की चर्चा कथा साहित्य क सम्पूर्ण सदर्भ म होनी चाहिए क्योकि बावजूद सारी सगतियो के कहानी की अपनी सीमाए हैं और यह भी कि इसकी अधिकाधिक चर्चा से सशक्त गद्य रूप उपन्यास उपेक्षित होगया है जब

कि हिन्दी गद्य को आयाम गत अर्थ मजाव देने मे उसका खास स्थान है। तब यह बात तय पायी गई थी कि कथा-साहित्य के पूरे सदर्भ मे 'नई कहानी' पर विचार करने से इसके स्वरूप को स्पष्ट करने म मदद ही मिलेगी, जो जरूरी भी है।

इस पुस्तक के बारे मे मुझे कुछ नही कहना है (यह काम दूसरो का है और उन्ही के लिए) अगर कहना है तो इतना भर बल्कि कहने के नाम पर महज ये कुछ सूचनाएँ कि निबन्धों के क्रम मे जूनियर-सीनियर प्रतिष्ठित या प्रतिष्ठित होते हुए लेखको का ध्यान नही रखा गया है और अकारादि क्रम जैसी भी कोई औपचारिकता नही बरती गई है क्योकि 'निबन्ध बोलेंगे क्रम नही' (शमशेर से क्षमा चाहते हुए)

मेरा ऐसा आग्रह नही रहा कि केवल 'नई कहानी' के समर्थको से ही निबन्ध लिखाए जाय, बल्कि मैंने चाहा कि 'नई कहानी' पर चौतरफा विचार के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण और विरोधी मत रखने वाले लेखको से भी निबन्ध आमन्त्रित किए जायें, क्योकि इस तरह 'नई कहानी' को हमे अलग अलग कोणो और विरोधी दिशाओ के माध्यम से समझने मे कही ज्यादा मदद मिल सकती है।

आभार और आभार उन सभी लेखको के प्रति मैं आभार म कही कुछ अधिक ही अनुभव कर रहा हू, जिनका निबन्ध सहयोग मुझे इस पुस्तक म मिल सका है, क्योकि जिस उत्तरदायित्व और तत्परता के साथ उन्होने समय स सामग्री भेजी उसके लिए आभार जैसी बात महज औपचारिकता ही है और नाकाफी भी, फिर भी तो मुझे इन म स अनेक लेखको के प्रति—जिनमे 'नई कहानी प्रकृति और पाठ पुस्तक म सहयोग मिला है—प्रसग मे कृतज्ञता ज्ञापित करनी होगी। उन सभी पत्र पत्रिकाओ के प्रति आभार प्रदर्शित करना जरूरी समझता हू, जहा से मुझे सामग्री सुविधा मिल सकी है। बहरहाल।

२५ मई ६६

'अनुबन्ध' कार्यालय 'चन्द्रलोक' गणेश मार्ग

बापू नगर जयपुर

—सुरेन्द्र

नई कहानी

शिवदानसिंह चौहान

'हम कहेंगे हाले दिल और वह फ़रमायेंगे, क्या?
अर्थात् ख़ुदा बख्शे, इस आयामबाजी से !'

मैं नहीं जानता था कि मैं जितना सुस्त हू (व्यस्त कहना शायद आत्म श्लाघा सी लगे) आपकी जिद उससे भी बढ़कर है। तीन महीनों से आपने नाक में दम कर रखा है। करीब हर हफ्ते एक कार्ड सरका देते हैं गोया अपने वक्त और पोस्टेज की कुछ कीमत ही नहीं लगाते। मानता हूं कि मैंने लिखने का वायदा कर लिया था लेकिन क्या हर वायदे को पूरा करना आज के जमाने में जरूरी है? प्रान जायें पर वचन न जाई? लेकिन भई यह तो भक्त तुलसीदास ने अपने त्रेता युग के आराध्य के बारे में लिखा था। इस जमाने की व्यस्तताओं और परेशानियों का जानते तो शायद 'ऑस्कर वाइल्ड' की ही ताईद करते कि नव इरादों की तरह वायदे भी तोड़ने के लिये ही किये जाते हैं। खैर लगता है कि आप भी नये जमाने की गर्दिश से दूर त्रेतायुग नहीं तो किसी ऐसे ही पुराने जमाने में रहते हैं—मेरा मतलब है जहनी तौर पर—इसलिए यह गवारा नहीं कर सकते कि कोई वायदा खिलाफी कर जाये यानी जब तक आप वायदा पूरा नहीं करा लेंगे, तब तक चैन नहीं लेंगे। इसलिए आपकी इन कोशिशों का कुछ तो एहतराम करना ही पड़ेगा चाहे जून की इस लू में जब हीट स्ट्रोक का खतरा हर वक्त और हर गिर्द मंडराता रहता है सिर पर गीला तौलिया लपेट कर ही क्या न सही आपके लिए दो चार अक्षर तो लिखने ही पड़ेंगे। सो लिख रहा हूं। लेकिन "लिखूं" भी तो क्या लिखूं? तीन महीने पहले आपने कहानी अंक की योजना के बारे में एक छपा

हुआ परिपत्र' भेजा था जिसमें 'नई कहानी' की 'दशा दिशा और सम्भावना' का जायज़ा लेने के लिए एक 'परिसवाद' का ऐलान किया था। उसमें भाग लेने वाले अन्य महानुभावों के साथ न जाने कैसे मेरा नाम भी जोड़ दिया था। साथ में एक टाइप की हुई चिट्ठी थी, जिसमें लिखने के इसरार के साथ इस परिसवाद' (काश यह 'परी' सवाद होता तो एण्टरमन की एक दिलचस्प कहानी बन जाता!) की वज़ाहत भी की थी और मुझे किस दायरे में बंध कर लिखना चाहिये इसके लिए सवालों की शक्ल में कुछ नुक्ते भी उठाये थे—नई कहानी के मुतल्लिक। इन सवालों में नई कहानी के कुछ ऐसे जमालियाती मसलों की ओर इशारा था फनकारी की कुछ ऐसी नज़ाकतों का हवाला था और नई कहानी में वस्तु के बढ़ते हुए आयाम' की ओर संकेत था, कि यकीन कीजिए मेरा दिमाग़ ही 'व्यायाम' करने लग गया! आपने अपने आख़िरी सवाल में पूछा था कि 'क्या नई कहानी किसी असन्तुष्ट आत्मा की तरह भटकती हुई नहीं लगती जो अभिव्यक्ति की दिशा में चैन ही नहीं पा रही?' सच मानिए, नई कहानी अगर इन्सान होती (या हैवान ही होती तो भी) मैं उससे मिलकर उसकी आत्मा की कुछ जांच-परख करता, भांपने की कोशिश करता कि वह वाक़यी असन्तुष्ट है भी या नहीं और अगर है तो अपने इज़हार (अभिव्यक्ति) के लिए कैसी-कैसी बेहूदी हरकतें करती हुई गली-कूचों या वियाबानों की जानी अजानी राहों पर भटकती फिर रही है। नई कहानी बेचारी की आत्मा क्या भटकती फिर रही होगी, मेरी आत्मा ज़रूर भटक रही है कि कहां और कैसे पता करूँ कि नई कहानी भटक गयी है या शायद उसके खालिक (सृष्टा) ही भटक गये हैं। और अगर इनमें से भी कोई नहीं भटका हो, इत्मीनान रखिये कि 'नई कहानी' पर तब्सुरा करने वाले नक्काद (आलोचक) तो ज़रूर ही भटक गये हैं। और किसी का नाम क्या लूँ, जब मैं खुद इसकी मिसाल हूँ।

लेकिन मेरा सवाल बदस्तूर कायम है। आपने इस 'परिसवाद' में मेरा नाम क्यों रखा? डा० लक्ष्मीनारायण लाल और श्रीकान्त वर्मा तो स्वयं कहानी लेखक हैं—शायद आपकी शब्दावली में दुरुस्त करके लिखूँ तो 'नई-कहानी लेखक' हैं। (इसका क्या मतलब होता है, यह आप खुद समझें, या आपके 'नई-कहानी पाठक' समझते हों तो समझें, मेरे लिए समझना तो अब जैसे बूढ़े तोते का पढ़ना है।) डाक्टर नामवरसिंह का नाम तो ख़ैर रहना ही चाहिए था क्योंकि वे 'नई कहानी' 'नई-कहानी लेखक' और शायद 'नई-कहानी पाठक' (नई कहानी की पत्रिकाओं और गोष्ठियों को भी न भूलें)—इन सब के एक अर्से से चुस्त वकील (इशारा 'वकील चुस्त मुद्दई सुस्त' की ओर कतई नहीं है) और भावा, और सरपरस्त रहे हैं। भाई प्रकाशचन्द्र गुप्त मेरी पीढ़ी के हैं, चुनांचे 'पुराने' सयाने और पुराने अन्दाज़ के कहे जाने चाहिए, लेकिन इलाहाबाद में लगातार रहने के कारण, जहां में हिन्दी अदब की जदीद तरक्कीयात के लिए हर

पाँचवें साल किसी नये नाम की ईजाद की जाती है, वे शायद वक्त का साथ देते आये हैं। और फिर अगर एक पुराने उस्ताद की भी ताईद हासिल हो जाय तो इसमें फायदा ही फायदा है। लेकिन मेरा नाम इस फ़हरिस्त में बिल्कुल बेसूद और बेतुका लगता है। इस जमात में, न जाने किस कसूर की वजह से, आपने मुझे जबरन बिठा लिया है, वहाँ मेरी कैफियत कुछ वैसी ही हो जायगी, जैसी कैफियत अपनी वे नियाज़ महबूबा के सामने मियाँ ग़ालिब की हुई थी—यानी "हम कहेंगे हाले दिल और वह फरमायेंगे, क्या ?" बात यह है कि इन सब दोस्तों के साथ मेरा भी कुछ ऐसा ही रिश्ता है। इन सबके लिए मेरे दिल में इज्ज़त है। लेकिन फर्क इतना है कि इस बीच जब (मिसाल के लिए) नामवरसिंह 'नई-कहानी' का फ़लसफ़ा गढ़ने के लिए अल्बेयर कामू और सार्त्र और शायद ग्राहम ग्रीन के दरवाज़े पर सजदे कर रहे थे, और यह साबित करने के लिए कि 'नई कहानी' कथानक वस्तु, चरित्र चित्रण जैसे पुराने दकियानूसी अनासिर को पीछे छोड़कर अलिफ लैला (मेरे भाई, हीरोइन का नाम 'शहरज़ाद' है शहरज़ादी नहीं, जैसा कि आप हर महीने 'हाशिए पर' काढ़ते आये हैं। औरत होने के लिए उस देश में ईकारान्त की कैद नहीं है!) और पंचतंत्र की पुरानी दुनिया से परवाज़ करके चाँद और सितारों में पैवंद लगाने लगी है—यानी अफसाना निगार के ज़िम्मे की भीतरी कायनात के ओर-छोर नापने लगी है। वे ई० एम० फोर्स्टर की उपन्यास सम्बन्धी एक स्थापना को कहानी पर लागू करके गलत और बेतुकी साबित कर रहे थे। मैं उस वक्त भी तालस्ताय, चेखव, गोर्की, मोपासाँ और शरत और रवीन्द्र के अफसानों में ही रमा रहा। यह नहीं कि नई कहानियाँ (मुराद आजकल लिखी जाने वाली कहानियों से है) में से मुझे कोई पसन्द नहीं आयी या मैंने उनको पढ़ने की कोशिश नहीं की। लेकिन जो इक्की दुक्की, वतन-ब-वतन पसन्द आयीं, वे बदकिस्मती से 'कहानियाँ' थीं, नई-कहानी जैसी अधकचरी उचकानी और 'बोर' चीज़ कोई नहीं थी। मेरा मतलब है कि उनमें से ऐसी कोई नहीं थी, जिसका 'शिल्प सौष्ठव ही भिन्न' हो, जिसका सम्प्रेष्य भाव, प्रभाववादी स्वरूप, कथन-वैचित्र्य वस्तु के बढ़ते आयाम के कारण अभूतपूर्व लगा हो—जो कि शायद आपके लफ्ज़ों में 'नई-कहानी' की खुसूसियात है। जिनका 'शिल्प-सौष्ठव' कहानी से 'भिन्न' था, वे क्या चीज़ थीं—बच्चों की मश्क या पागल का प्रलाप या दिमागी उलझन और पिछड़े संस्कारों का नमूना—यह बताना मुश्किल है। क्योंकि किसी में कोई ताे किसी में कोई अनासिर बालातर था। बहरहाल, आप शायद इन्हें नई-कहानी का नाम देते हों। मुझे एतराज़ नहीं।

आप कहेंगे कि मैं सिर्फ लफ्ज़ों पर ज्यादती करता हूँ। लेकिन इसमें क्या कसूर मेरा है? एक खास तरह का कोई इस्तेमाल कर देता है, कुछ दोस्त बिना समझे बूझे, उसको ले उड़ते हैं, मानो अन्धों के हाथ तिलिस्म का धागा आ गया हो। अब अगर कोई दानिशमन्द दोस्त समझाये, आगाह करे कि यह फरेब है, झूठ है, तो वे उस पर ही पिल पड़ते हैं। ज़रा मुलाहिज़ा।

हम हिन्दी कहानी का जायजा लेने बैठे हैं, तो उसे 'कहानी' कह कर पुकारिये, यह 'नई' क्या बला है? 'नई' से अगर आपका मतलब, 'नये ढंग' की कहानी से हो, जो अपनी वस्तु और टेक्नीक की रू से प्रेमचन्द, सुदर्शन, कौशिक की कहानी से ज्यादा चुस्त, गठी हुई, कलात्मक और युग की नयी चेतना की अभिव्यक्ति करती है तो उन 'नई' कहने से काम नहीं चलता और न उसके लिए एक नया सौन्दर्य शास्त्र गढ़ने की जरूरत ही महसूस होगी। क्योंकि जो पुराने ढर्रे में लिखी हुई या पुराने वक्तों में लिखी हुई श्रेष्ठ कहानियां हैं, वे आज भी नई लगती हैं, आगे भी नई लगती जायेंगी। 'नई-कहानी' जैसे नाम का दुराग्रह लेकर चलने से आलोचकों के सामने मूल्यांकन में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जायगी, क्योंकि साहित्य में 'नई-कहानी' का पैमाना शायद ही उसके हर 'नयेपन' का, चाहे वह कल्पित हो या वास्तविक, औचित्य खोजना होगा। और तब मूल्यांकन करते समय 'नई-कविता' के व्याख्याकारों और वकीलों की तरह, 'नई-कहानी' के व्याख्याकार और वकील भी सिर्फ अपने को ही देखेंगे और अपने से पुराने वक्तों के सभी महान कथाकारों की दुनिया को तुच्छ और दकियानूसी करार देकर रद्दी की टोकरी में फेंक देंगे—यानी तॉलस्तॉय, चेखव और मोपासां से निर्मल वर्मा या विजय चौहान (माफ कीजिएगा, मेरा इशारा श्रीमती विजय चौहान की ओर नहीं है जो एक अलग शख्सियत हैं और जिनकी कहानियों में कुछ हो या न हो, कम से कम बचकानापन नहीं है) को बड़ा कहानीकार घोषित करने लगेंगे, क्योंकि वे 'नये कहानीकार' हैं और उनकी 'नई-कहानियां' में 'वस्तु के बढ़ते आयाम' (?) कुछ ऐसे हैं, जिनकी 'तॉलस्तॉय चेखव-गार्की-मोपासां' कल्पना भी नहीं कर सके थे! क्या मजाक है? और तकलीफ होती है यह देखकर कि हमारे कुछ दोस्त की 'नई-आलोचना' कुछ ऐसे ही मनगढ़न्त, हवाई सूत्रों को पकड़कर जमीन और आसमान के कुलावे मिलाने पर तुल गई है। इसके अलावा 'नई-कहानी' का यह नया 'शिल्प-सौन्दर्य' नई 'भावधारा' 'प्रभाववादी स्वरूप' 'कथन-वैचित्र्य' वगैरह ऐसी कौन-सी नई अनामतें हैं, जो पिछले दस सालों में ही (जब से 'नई-नई' का शोर मचाया जाने लगा है) कहीं आसमान से टपक कर नमूदार हो गई हैं? क्या 'कहानी' में से साफ-सुथरा (चमत्कार-हीन नहीं) वस्तु विन्यास, चरित्र चित्रण, कथानक वगैरह यानी 'कहानीपन' निकाल देने से ही कहानी अपना चोला बदलकर 'नई-कहानी' बन जाती है? और अगर ऐसा है तो ऐसी पंगु, अपाहिज और लंगड़ी कहानी को, जिसमें और बहुत से चमत्कार हैं सिर्फ 'कहानीपन' नहीं है, क्या समझा जाय? कहानी-कला का विकास या ह्रास? इस सवाल से ही आप अन्दाज लगा सकते हैं कि विकास या ह्रास के बारे में मेरा विश्वास है—कोई अक्लमन्द आदमी उसमें इन्कार कर ही कैसे सकता है? इसलिए 'कहानी' का रूप और शिल्प कोई हमेशा के लिये तै-शुदा और मसमूस चीज हो, यह नहीं है। आदमी को ही लीजिए। हर आदमी की शक्ल एक-दूसरे से मुख्तलिफ है, और आदमी

या खूबसूरती का भी आज तक कोई आखिरी मयार कायम नहीं हो सका। यों हर जमाने में इसकी कोशिश हुई हैं। और मिसाल के तौर पर हमारे सामने यूनान की मूर्तियाँ हैं, माइकल एंजिलो, रफेल और दूसरे चित्रकारों की तस्वीरें हैं, अजन्ता के चित्र हैं। लेकिन हर जमाने के कलाकारों की दृष्टि आदमी के व्यक्तित्व और शरीर में उस सौन्दर्य की झलक पा लेती है, जिस पर किसी की निगाह नहीं गई और वे उसे चित्रित या मूर्तित करने की कोशिश करते हैं। कोई जरूरी नहीं कि वे जो तस्वीर बनायें वह किसी खास आदमी से हू ब हू मिलती ही हो। मुमकिन है कि वे किसी खास इन्सानी जज्बे, रिश्ते, मूड या पर्सनलिटी के पहलू को उभारने के लिये, ऊपरी नजर से देखने में खंडित और विकृत भी लगें लेकिन उनसे इन्सानी जिन्दगी के सत्य का ऐहसास बढ़ता ही है कमतर नहीं होता। अगर ऐसा हो तो कैनवेस पर चाहे जितना रंग बिखेरा जाय, चाहे जिस 'अभूतपूर्व' अन्दाज में रेखाएं खींची जाय, बात नहीं बनेगी और वह चित्र खूबसूरत नहीं कहा जा सकेगा। मतलब यह कि जिस तरह चित्र में चाहे वह पुरानी शैली का हो, या नई शैली का—हकीकत का कोई ऐसा पहलू नजर नहीं आता था। उसी तरह कहानी में भी (और कहानी ही क्या, हर प्रकार की कलाकृति में भी) जिन्दगी (या हकीकत) का कोई नया पहलू नजर आना चाहिए। उसमें हमारी नजर को कुछ विस्तार और गहराई मिलनी चाहिए। इसलिये कथन वचित्र्य, अभिव्यक्ति की नवीनता और शिल्पगत चमत्कार अपने आप में विशेष मूल्य नहीं रखते। 'नयापन' अपने आप में पूजा की चीज नहीं है, इन्सानी इतने की कई लम्बी मंजिलें पार करके हम इस दौर में पहुँचे हैं, जहाँ सभ्य और असभ्य का इम्तियाज करने लगे हैं। सभ्य आचरण के लिए हमारी कोशिश हैं। लेकिन अगर कोई कहे कि सभ्यता मनुष्य को पुंसत्वहीन बना रही है (पश्चिमी देशों में आज ऐसी आवाज उठाने वाले बुद्धिजीवियों की कमी नहीं है) और वह जान बूझ कर असभ्य आचरण करने लगे और दावा करें कि नये मानव का यह नया आचरण' है, 'तो क्या यह 'नयापन' एक 'विकास' माना जायगा? साहित्य में भी अक्सर ह्रास की प्रक्रिया, जिसे डिकेडेन्स' पुकारते हैं, शिल्पगत नवीनता का बाना पहिन कर उभरती है। मेरी गुजारिश सिर्फ इतनी है कि इस बारे में हम आगाह रहना चाहिए। हिन्दी की तथाकथित नई-कहानी, कहानी-कला के ह्रास' या 'विकास की सूचित करती है, इसका निर्णय तो अलग अलग कहानीकारों की अलग अलग कहानियों की जाँच करके ही सामान्य रूप से किया जा सकेगा। पहले से कोई निर्णय देना व्यर्थ है, क्योंकि 'नई-कहानी' नाम की कोई ठोस इकाई जैसी चीज नहीं है। सबको एक लाठी से हाँकना कहाँ की दानिशमन्दी होगी?

और अगर 'नई कहानी' से मंशा को यह गुमान हो कि वह कहानी जो नये (उम्र के लिहाज से) कहानीकारों की लिखी कहानी है, तो नई उम्र या नई पीढ़ी की भी व्याप्ति कहाँ तक मानी जाय? कितनी उम्र तक के लेखक को 'नया' मानना चाहिए?

क्या 'रेणु' और 'राकेश' नये कहानीकार कहे जायेंगे या अब पुराने पड़ गये हैं?
यह सवाल मैंने इसलिए उठाया है कि हमारे कुछ नये आलोचक और उनकी देखा
देखी विचारहीन अव्यापक नई और पुरानी पीढ़ी की चर्चा करने लगे हैं। कुछ इस
सनसनीखेज अन्दाज में, मानो पुरानी पीढ़ी के लेखक सारे के सारे दकियानूसी नजरिये
के हों और नये लेखक सारे के सारे युग की नवीनतम चेतना के वाहक हों। मानो दोनों
पीढ़ियों में भयंकर शीत-युद्ध चल रहा हो, जो कभी भी गरम युद्ध का रूप ले सकता
है मानो पुरानी पीढ़ी वाले इतने तंग-नजर खुद-परस्त और तंग दिल हों कि नई
पीढ़ी के लेखकों को साहित्य में बढ़ने ही न देना चाहते हों—वगैरह। मुझसे पूछिये
तो मैं साहित्य में नई या पुरानी किसी भी पीढ़ी का न कायल हूँ न हमदर्द और न
मुरीद। मैं सिर्फ प्रतिभा का कायल हूँ चाहे लेखक नई पीढ़ी का हो या पुरानी।
और जीवन के प्रति व्यापक मानववादी प्रगतिशील दृष्टिकोण का हामी हूँ इसलिए
ऐसा दृष्टिकोण अगर पुरानी पीढ़ी के लेखक में मिले तो, और नई पीढ़ी के लेखकों
में मिले तो, मैं उसका दोस्त, हमदर्द और हमनवा हूँ। इसलिए अगर शीत या गरम
युद्ध किसी के बीच है तो दो दृष्टिकोणों के बीच है दो पीढ़ियों के बीच नहीं है।
नई और पुरानी दोनों पीढ़ियों में कुछ प्रतिभावान हैं तो अधिकतर प्रतिभाहीन
लेखक हैं जैसा कि हर जमाने में रहा है, और दोनों पीढ़ियों में कुछ उदार और
व्यापक मानवीय दृष्टि वाले हैं तो कुछ संकीर्ण-हृदय और मानवद्रोही दृष्टि वाले
लेखक हैं। नये 'शिल्प-सौन्दर्य' कथन-वैचित्र्य आदि का इजारा न नई पीढ़ी के
लेखकों के पास है और न पुरानी पीढ़ी के लेखकों के पास न मानववादी दृष्टिकोण
वालों के पास है, और न मानवद्रोही दृष्टिकोण वालों के पास। इसलिए आप
खुद देख सकते हैं कि ऐसे समष्टि-सूचक शब्दों (नई कहानी या नई पीढ़ी आदि)
के प्रयोग, जिनका कोई तात्त्विक आधार नहीं है कितना बड़ा घपला पैदा कर देते
हैं। कोई समझदार आदमी उनकी टोटल हिमायत या मुखालफत कैसे कर सकता
है जब कि उनकी समष्टि सूचक शाब्दिक इकाई दरअसल एक ठोस इकाई है ही नहीं?
तर इन हवाई बातों में क्या फायदा? आप नई कहानी (जिसका मतलब मैं
आजकल लिखी जाने वाली कहानी ही जानता हूँ) की दशा दिशा और सम्भावना
पर मेरी राय जानना चाहते हैं। उम्मीद है कि नये आलोचक भी कथन-वैचित्र्य'
आदि क्षणिक स्फुरणाओं से ही नई कहानी की दशा का अन्दाज नहीं लगाते होंगे,
नहीं तो उन पर 'मार' का शेर चरितार्थ होगा कि—'उनके आने से जो आ जाती
है मुँह पर रौनक वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।' इसका अन्दाजा
लगना काफी है, क्योंकि अक्सर दोस्त आलोचकों ने ऐसी कहानियों को सराहा है,
जो बुनियादी तौर पर निहायत बीमार' है। बीमार दिमाग की उपज हैं और कहानी
रहा सिर्फ मन या क्रिया की कुण्ठाओं पर कहानी के से अन्दाज में लिखे गये

ऊटपटाग निबन्ध हैं—कारण उनमें कहीं-कहीं चुस्त फिकरे जोड दिये हैं, यानी 'कथन-वचित्र्य' का विधान कर दिया गया है जो कि नये रीतिवादी आलोचकों के लिए काफी है।

मेरे ख्याल में हिन्दी कहानी का विकास तेजी से हो रहा है यानी साल में चार पाँच कहानियाँ तो ऐसी लिखी ही जाती हैं जो इस 'नई कहानी' का सक्स खत्म हो जाने के बाद भी जिन्दा रहेंगी। यह बहुत बडी उपलब्धि है। बीस साल पहले शायद ऐसी जानदार कहानियों की तादाद साल में तीन-चार या कह दो तीन से ज्यादा नहीं होती थी। इस तरह हिसाब जोडकर देखें तो पिछले पचास साल में अगर सौ अच्छी स्मरणीय कहानियाँ हिन्दी में लिखी गई हैं तो इनमें आजादी के बाद की कहानियों की तादाद आधे के करीब है। इनके लिखने वाले दोनों पीढियों के हैं, और नये और पुराने दोनों ढर्रों के हैं। इसलिए 'नई कहानी' अगर खुद मियाँ मिट्ठू बनना चाहती है तो उस पर कौन एतबार करेगा? दरअसल गौर से देखा जाय तो पिछले इस बारह साल की पचास जानदार कहानियों की रचना में दोनों पीढियों का करीब करीब बराबर का योगदान है। इनकी फेहरिस्त तो मैं इस वक्त नहीं पेश कर सकता लेकिन 'नये आलोचक' अगर खामख्वा मायूस न हों तो इतना जरूर कहूँगा कि इन पचास कहानियों में से 'मानवद्रोही' कहानी एक भी नहीं है यानी 'नवीनता' की चादर में लपेटकर *कहानियों में इन्सानी जज़्बात की खिल्ली उडायी है* वक्त की छलनी में वे कूडे कचरे की तरह छन कर निकल गई हैं। 'गदल' 'पान की बेगम', 'मारे गये गुलफाम' 'मलबे का मालिक' या ऐसी ही कहानियाँ जीयेंगी, न कि जाने दीजिये किसी का दिल दुखाने से क्या फायदा। खैर किस्सा कोताह यह कि और जो सैकडों कहानियाँ हर महीने साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं—(इस बीच खालिस कहानी की दर्जनों पत्रिकाएँ शाया होने लगी हैं, जिससे यह गलतफहमी हो गई है कि हिन्दी की कहानी लोकप्रिय है तो अपनी खूबियों के कारण ही) वे सब साधारण स्तर की होती हैं। उनकी संख्या और लोकप्रियता हिन्दी कहानी की सेहत (दशा) और अजमत की आईनादार नहीं हैं। यदि ऐसी बात हो तो विचारशील लोग हिन्दुस्तानी फिल्मों की संख्या और लोकप्रियता को ही उनकी श्रेष्ठता का प्रतिमान मान लें और यह रोज का रोना बन्द हो जाय।

मिसाल के लिए नई कहानियों का ताजा अंक (जून ६१) उठाकर देख लें—मेरे सामने यही है। इसलिए भाई भैरवप्रसाद इत्मीनान रखें कि मेरी मंशा सिर्फ उनकी पत्रिका की मजम्मत करना नहीं है। मेरे ख्याल में 'नई कहानियाँ' अपनी हमजोलियों में सबसे बढ चढ कर है। नामी-गरामी लेखकों का सहयोग इसे प्राप्त है। खैर तो इसके नये अंक के पन्ने पलटते जाइये। यहाँ दोनों पीढियाँ इसमें गले मिल रही हैं। राजेन्द्रसिंह बेदी धर्मयुग विद्यानवार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और बलभद्र पुरानी

पीढ़ी के हैं तो रामकुमार जहूरराय, (मिस्टर) विजय चौहान वगैरह नई पीढ़ी के हैं (या आप जहूरराय को नई पीढ़ी में नहीं शामिल करना चाहेंगे?) अब इनकी कहानियों को देखिए। राजेन्द्रसिंह बेदी कहानी के अखाड़े के मजे खिलाड़ी हैं कोई-कोई उन्हें कृष्णचन्द्र से ऊंचा दरजा देते हैं। मेरे पुराने दोस्त हैं और जानता हूँ कि उनकी बातचीत का अन्दाज़ कितना दिलचस्प है। लेकिन मेरे यार ने इलाहाबाद के हज्जामों के बयान में नई कहानियों के बारह सफे रंग डाले हैं, लेकिन बात कतई नहीं बनी। शुरू से आखीर तक बोरियत का समां तारी रहता है गो कि चुस्त फिकरों और लतीफों की भरमार है और दुनिया-जहान के मसायल पर तब्सिरा किया गया है। इसके मुकाबले में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानी 'जिन्दगी की कीमत' अपने आप में एक मुकम्मल कहानी है उसमें कहानीपन है—पुराने ढंग का लेकिन पढ़कर सन्तोष तो देती है। मैं कभी उनकी कहानियों का प्रशंसक नहीं रहा, और उनका व्यक्तित्व तो यूं भी दिलचस्प नहीं है फिर भी 'जिन्दगी की कीमत' साधारणतया अच्छी कहानी है यह कहने में मैं गुरेज़ नहीं करूंगा। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की तवील कहानी 'भाग और मुस्कान' एक अच्छी कहानी बन जाती अगर उन्होंने मनोवैज्ञानिक सत्य के साथ व्यर्थ ही खींचतान न की होती। अगर सच में इतना कतराना था तो कहानी ही क्या लिखी? प्रो० मल्होत्रा मेहतरानी लल्लन से भला इश्क क्या नहीं फरमा सकते? क्या इसलिए कि वह मेहतरानी है। और अगर मान लीजिए कि वे ऊंचे वर्ग के आदमी हैं तो कम से कम लल्लन के रूमानी जज़्बात को एहतराम करके वे उस जिन्दगी के नरक में से निकलने में मदद तो कर ही सकते थे। क्या अपनी हमदर्दी के बावजूद वे उसे नरक में धकेल देते हैं? इसका कोई माकूल जवाब कहानी में नहीं मिलता इसलिए यह सवाल मन में विक्षेप पैदा करता है। लगता है हमारे लेखकों की मानववादी भावनाएं छूआछूत, खान-पान के पुराने संस्कारों में कहीं कुण्ठित हो जाती हैं। हम अभी तक मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं करते। उसे हिन्दू मुसलमान ईसाई के रूप में ही देखते हैं। और अगर हिन्दू हुआ तो उसे ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र के रूप में। इसलिए पुरानी जहालत और भेदभाव के खिलाफ लिखने का दम तो सबने भरा लेकिन हमारे परिवार में भी जात-पांत का भेद बना रहा। जब कभी अन्तर्जातीय इश्क-मुहब्बत की दास्तान पेश की जाती है, तो लड़का अमूमन ऊंची जात और ऊंचे खानदान का होता है और लड़की एक नीची जात और नीचे खानदान की। चूंकि समाज इनके प्रणय-बन्धन का विरोध करता है इसलिए हमारे लेखक सोचते हैं कि हम यथा-वस्तु में वर्णन करेंगे जो कि पूरी सामग्री मौजूद है। लेकिन वे यह नहीं समझते कि अगर ... का सवाल न उठाया जाय तो हमारा समाज ऊंची जात और वर्ग के लड़के का नीची जात की लड़की से नाजायज ताल्लुक बखूबी जायज समझता है या कम

से कम इस दुराचरण को नजरन्दाज कर जाने को तयार रहना है। इसलिये शानी के हक की माग, दरअसल, एक तथ्य को मान्यता देने की सुधारवादी माग है। हमारे लेखक इस तथ्य का ही मनवाने पर लगे रहे हैं सत्य को मनवाने के लिए उन्होने कोशिश नही की। सत्य क्या है? सत्य यह है कि यह जातिभेद ही गलत है और इसानी और बबर रद्दोअमल का आइनाघर है। आखिर हमारे किसी लेखक ने एक भगी के लडके से ब्राह्मण की लडकी की मोहब्बत का किस्सा क्या नही लिखा? किसी मुसलमान या ईसाई से भी किसी ब्राह्मण की लडकी का इश्क क्या नही दिखाया जाता? जब कि ये सभी हिन्दुस्तानी है और इस देश के ही नागरिक हैं? क्या इसलिए कि हमारा (हिन्दू) समाज इस 'कुविचार' को बर्दाश्त नही करेगा?—(जबलपुर हत्याकाण्ड इसका सबूत है) या डर है कि ऐसे लेखक को समाज मे बहिष्कृत कर दिया जायगा? लेकिन दोस्तो सत्य के लिए कुछ तो कुर्बानी देनी पडेगी ही। नही तो हिन्दी कहानी वस्तु' की दृष्टि से बैकवर्ड' बनी रहेगी। हमारे लेखक शिल्प का चाहे जितना आडम्बर रचें और नयेपन के ढोल पीटें विश्व साहित्य म उसका स्थान नही बनेगा। वह लोकल' ही बनी रहेगी। जात-पाँत और ऊँच नीच का भेद किसी समाज विशेष का सत्य भले ही हो लेकिन मानवता' का सत्य नही है। इसलिए कला का भी सत्य नही है। कला म आप इस भेद भाव को जहाँ प्रच्छन्न स्वीकृति भी देगे तो वहाँ कला का सत्य खण्डित हो जायगा। इस बात को आम तौर पर हमारे कहानीकार हृदयगम नही कर पाते क्योकि दकियानूसी समाज की मान्यताए बचपन स ही अचेतन मन का सस्कार बन जाती हैं। तो यह बेचारे अश्क' की ही समस्या नही है। रवीन्द्र, शरत और प्रेमचन्द भी इन सस्कारो से सर्वथा मुक्त नही हो पाये थे यद्यपि जीवन और समाज के प्रति उनका सचेतन दृष्टिकोण मानववादी था। फिर भी अब जमाना आ गया है कि सत्य की खातिर बजाय कला को खण्डित करने के बेहतर है कि लेखक समाज की अमानवीय मान्यताओ को चुनौती दे। प्रतिवाद का स्वर सचमुच क्रान्तिकारी बने महज सुधारवादी ही बनकर न रह जाय। आखिर इस शमनाक स्थिति का बोझ हम लोग कब तक ढोते जायेंगे? लेकिन यह एक लम्बी बहस है यहाँ पर इशारा कर देना ही काफी है।

अब रामकुमार की कहानी को लीजिये— एक चेहरा'। पूरी पढ़ जाइए सिर-पैर का कुछ पता नही चलेगा। कोई प्लाट नही है विचार-वस्तु भी नही है किरदार तो मर रहे ही नहीं गाया यह मुकम्मल नई कहानी है। एक चेहरा—किसका? क्या उस स्त्री का चेहरा जिसका पति मर गया है या जिन्दा है'। यह नही मालूम या नीबू का चेहरा जो हमेशा सामान रहता है और कम्बख्त आखिर तक नही खोलता? जनाब गुजारिश है कि अगर यह नई कहानी न होकर सिर्फ कहानी होती तो या तो उस स्त्री का इसम जिक्र ही न होता जो सिर्फ एक भरती किरदार मालूम होती है

और कथा-वस्तु में जिसका और कोई रोल या असर नहीं है। या फिर उसको कोई मामूल रोल देना पड़ता। इसके अलावा वह नीमू जो हमेशा गुम-सुम और चुप रहता है, कहानी के स्टेज पर किसी न किसी वक्त तो मुँह खोलता ही। किसी ऐसे क्लाइमैक्स के मौक़े पर कुछ ऐसे ग़ैर मामूली तरीक़े से कि पर्लैट कहानी एकदम उठकर खड़ी हो जाती—ख़ुद उसका करेक्टर भी उठता और पढ़ने वाले को भी मसरत हासिल होती। लेकिन हालत यह है कि पढ़कर दिल की घुटन और बढ़ जाती है। यह जो किरदार और कथानक को तर्क करके नई कहानी गढ़ने का स्लोगन दिया जाता है, इसमें कहानी का क्या हासिल हुआ? मेरी समझ में नहीं आता। 'नये आयामों' की बात जाने दीजिए, लगता है कि जितने भी आयाम थे, वे सब गिराकर ज़मीन हमवार कर दी गई है, जिसमें ये केंचुए निकल कर चौरस ज़मीन पर नज़र डालते हैं और फिर अपनी वर्तुल गति से चलना शुरू करते हैं। राह में जो नन्हीं कंकरियाँ मिलती हैं उनके गिर्द से टेढ़े होकर या ऊपर से रगकर निकल जाते हैं और सोचते हैं कि अभिव्यक्ति के नये आयाम उन्होंने खोज निकाले हैं, क्योंकि ज़िन्दगी में तो सिर्फ लम्बाई चौड़ाई, ये दो आयाम ही होते हैं। ख़ुदा बन्दे इस आयामबाज़ों से। इस फ़्लैटनेस को आप अभिव्यक्ति के नये आयाम कहते हैं?

ख़ैर इस सपाट रेगिस्तान के बाद एक छोटा-सा नख़लिस्तान नज़र आ रहा है,—ज़हराराय की कहानी है 'आरसी मुसहफ़'। गो कि कहने का अन्दाज़ पुराना है और कथा-वस्तु भी पुरानी है और कहानी भी महान नहीं है, लेकिन उसमें एक सरसता है, जो सिर्फ वही पैदा कर सकता है, जिसे ज़बान भी आती है और बयान भी। और पुराने इस्लामी कल्चर के अंदर इंसानी रिश्ता में जो कुछ भी रंगीन और मर्म है, उसमें प्रेम करना भी आता है। लेकिन इस छोटे-से नख़लिस्तान में थोड़ी-सी मसरत हासिल करके हम अब कहाँ पागलों और अल्हड़ों की दुनिया में आ फँसे? जी नहीं, यह मिस्टर विजय चौहान की कठपुतलियों का तमाशा है, जो 'एक प्रेम-कहानी' का अपने बचकाना फ़िल्मी अन्दाज़ में अभिनय कर रही है। लाहौल विला कूवत! जिन लड़कों को अभी प्रेम का कोई अक्षर तो दूर, उच्चारण तक नहीं आता, वे ही सबसे आगे बढ़कर प्रेम की कहानी लिखा करते हैं! ख़ैर, 'नई कहानी' के लिए सूझ-बूझ, समझ, तजुर्बा और नज़रिया ग़ैर-ज़रूरी बातें हैं। इन बातों का कोई तक़ाज़ा उन पर शायद *नहीं होता। फिर जिन्स किरदार तो होते नहीं, कि इन बातों के लिए इसरार करें।* कठपुतलियों को आप जैसा चाहें नाच नचवा सकते हैं। माना कि हिन्दी क्या, हिन्दुस्तान के लेखक आम तौर पर प्रेम या मोहब्बत का मतलब नहीं समझते और जिनमें प्रेम की बात करते हैं, वह सामन्ती तसव्वुर से ऊँचे दर्जे की चीज़ नहीं होता। जिसमें औरत सिर्फ जिन्स मानी जाती थी। फिर भी वे इस सर्वोच्च मानवीय भावना का मज़ाक कब तक उड़ाते जायेंगे? यानी हमारे लेखक—ख़ास तौर पर नये कहानीकार,

जिसका नमूना ये हजरत हैं, कब तक इसान बनने से इन्कार करते रहेगे ? कब तक उनकी समझ म यह नही आयगा, कि मोहब्बत का जज्बा बच्चो का खेल नही है, कि एक लडकी को देखा और सौ जान से फिदा हागय। लेकिन उसकी ओर से जरा सी भी लापरवाही पाकर फिल्मी अन्दाज म कुछ रोय धोय, कुछ गीत गाये, कुछ शराब पी, कुछ पागलपन का ढाग रचा और जब वह लडकी मिलने आयी तो उसस कैफियत तलब किय बगैर ही उसे बेवफा समझ कर चलते बने। यह प्रेम-कहानी नहीं, प्रेम-कहानी की परोडी है—कौन जाने विजय चौहान ने पैरोडी ही लिखी हो ? खैर, जो भी हो, इतनी लचर और बचकानी चीज है कि मजा किरकिरा होगया। एक बात पढकर तो मुझे लेखक की दिमागी कमसिनी और अधकचरेपन पर गुस्सा और तरस भी आया। कहानी में प्रेमी महाशय अविनाशचन्द्र अपने राजदा गोपाल से फरमाते हैं, 'सुनो, एक प्रेमी होता है और उसकी एक प्रेमिका। बस आदमी के पास धन और समय अधिक हो तो एक से अधिक भी प्रेमिकाएँ हो सकती हैं।" याद रहे कि यह अल्फाज उस वक्त कहे गये हैं, जब अविनाशचन्द्र के दिल म गीता के प्रति प्रेम का समन्दर हिलोरें मार रहा है! ये अल्फाज अगर हँसी-मजाक म कहे जाय तो भी निम्न स्तर की सामन्ती जहनियत का ही सबूत समझा जाना चाहिए। धन और समय वाले विलासी एक से अधिक 'प्रेमिकाएँ' नही, रखेलें रखते हैं। एक विलासी औरत के पास भी धन और समय हो तो एक से अधिक पुरुषों को रखेल रख सकती है। लेकिन यह व्यभिचार है। प्रेम नही! प्रेम एक Exclusive चीज है। प्रेमी अपनी प्रेमिका म ही जीवन की सर्वोच्च सार्थकता और प्राप्ति महसूस करता है। यही स्थिति एक प्रेमिका के मन की भी होती है। जिनकी आत्मा इस उच्च मानवीय स्तर तक नहा उठ सकी, उन्हें अविकसित और अर्ध-सस्कृत मानव ही कहना चाहिये। प्रेम के प्रश्न पर यह अविकसित और अर्ध-सस्कृत दृष्टिकोण अक्सर हमारी कहानियो म व्यक्त होता रहता है, नई कहानियो म तो खास तौर पर। यह निन्दनीय है। क्या करू मेरी दृष्टि इन बातो पर जाती है कोरे शब्द-चमत्कार पर नही।

लेकिन साल म चार-पाँच कहानियाँ श्रेष्ठ निकल आती हैं, यह हमारे साहित्य की सबसे बडी उपलब्धि है। यह हिन्दी-कहानी के विकास की गारन्टी है। यह मजमून काफी तवील होगया है। मैने जानबूझकर हिन्दी उर्दू मिली जबान म लिखा है ताकि इसे भी अभिव्यक्ति के बढ़ते आयाम का नमूना समझ लिया जाय। हालाकि बिना सोचे समझे जो बातें लिखता गया हू वे बिलकुल बेमानी नही बन सकी, इसका मुझे अफसोस है। नही तो शायद 'नये आलोचको' की पक्ति म मुझे भी खड़ा होने की जगह मिल जाती!

● ● ●

हमारी ममता और समवेदना का आलोक

•

लक्ष्मीनारायण लाल

नयी कहानी को मैं आदि से अन्त तक कहानी मानता हूँ। ऐसी कहानी, जिसका रक्त मांस, श्वास, प्राण और आत्मा हमारे जीवन जगत और अपनी मानव प्रकृति से आते हैं। आप कहेंगे यही तत्व तो प्रेमचन्द की कहानियों में था, जिसके ऊपर उन्होंने क्रमशः आदर्शवाद फिर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और अन्त में यथार्थवाद की प्रतिष्ठा की थी। ठीक ही है।

फिर यह नयी कहानी 'नयी' किस दशा और दिशा में है? 'नयी' का अर्थ फिर क्या है इस प्रसंग में?

मैं स्पष्ट स्वीकार कर लूँ—इस 'नयी' का आशय आजकल के प्रसंग में मैं नहीं जानता। यूँ मैं अपने आलोचक के स्तर से इस 'नयी' की व्याख्या और इस पर परिसंवाद के सिलसिले में खूब इधर की हाँक सकता हूँ। पर ईमानदारी की बात यह है कि मैं इस 'नयी' को आज के संदर्भ में साफ साफ नहीं जानता।

मैंने विशेषकर इस नयी कहानियों के ही दौर में अपनी कहानियाँ लिखना शुरू की हैं। पर मैं अपनी सारी कहानियों को मूलतः 'कहानी' ही मानना चाहूँगा और मानता हूँ। आप लोग उन्हें 'नयी कहानियाँ' कहें—आपका शौक सर सिर माथे। पर मैं आपको यह याद दिला दूँ कि हर अच्छी कहानी सदा नयी कहानी है।

तो अच्छी कहानी क्या है?

वही सनातन की परिभाषा—जो हृदय को अपने एकान्त प्रभाव से स्पर्श करे। जो आपकी सहज संवेदना जगाये। अपने आप में जो आपको आत्मसात कर ले जाय—ऐसा आत्मसात कि चेतना प्रबुद्ध हो जाय, प्राण जग जाँय। जीवन की करुणा में कर्म और उत्साह का नया बीज अंकुरित हो उठे।

स्पष्ट कहानी के इस सच को चाहे वह प्रेमचन्द-टैगोर काल की हो चाहे जैनेन्द्र और यशपाल के काल की, चाहे आज की (नयी) या भविष्य की—इस यथार्थ धारा

को सहस। 'नयी' म बाँधन का प्रयत्न कहानी की सनातनता की अवना करना है, और अपन को इस महती धारा से अलग हटाना है।

नयी की स्वाभाविक स्थिति है पुरानी। यह पुरानी अथवा पुराना क्या है? इसम दो मगनियाँ निकलती हैं। प्रथम, आज से आठ दस साल पूर्व लिखने वाले हमारे प्रतिष्ठित कहानी कार जम अनेय जनेंद्र और यशपाल आदि हमस इतन पुरान हो गय। और दूसरी सगति यह कि यह जो आजकल का 'नया' है यह केवल अभी प्रयोग मात्र है, असल कहानियाँ तो इस नय दौर के बाद आएँगी।

व्यक्तिगत रूप स मैं इन दोना सगतिया और स्थितिया से पूणत असहमत हू। इनक जन्म अपने आप पर से अविश्वास की दशा म होता है—एसा मैं सोचता हू।

जो सुदर महत् अभी बीता है यदि हमारे लिए वह इस कदर पुराना पडता है त हम खूब नय हैं। और उस दूसरी सगति के प्रति मैं स्पष्ट कहूँ—मैं कहानी लिखत हूँ प्रयोग नही करता। मैं जो आज कहानियाँ लिख रहा हूँ, वे सब मेरे लिय उतन ही असली मूल्यवान कहानियाँ हैं जितनी कि भविष्य म लिखूँगा या लिखना चाहूँगा।

अब आपके परिसवाद के सिलसिले म कुछ प्रश्नो के मेरे उत्तर। आपने पूछा है कि नयी कहानी का स्वरूप क्या है? उसका शिल्प-सौन्दर्य ही क्या उसे पुरानी कहान स भिन्न रूप दिये है।

वतमान का स्वरूप हमारे महत्वपूर्ण गत का विकसित रूप है। मैं इस विकास क श्रेय केवल शिल्प-सौन्दय को न देकर भाव सौन्दय को देता हू जो हमारे जीवन क सही प्रतिनिधित्व करता है। इसम शिल्प का श्रेय केवल शिल्प के ही स्तर का है शेष उसम हमारा पल पल विकसित जीवन है, भाव है अनुभूति और सहानुभूति है शायद तभी आज की कहानी (मैं इसम नयी नहीं जोड़ता—नयी के नाम पर इतनी अयहीन निष्प्राण कहानियाँ आजकल लिखी जा रही हैं कि उनसे इस स्थापना क दूर दूर तक कोई सरोकार नही है।) स्वरा साहित्यिक विधाओ म (जहाँ तक अनन्त पाठको द्वारा रस ग्रहण का उदाहरण है) सवप्रिय हो रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हिन्दी म विशुद्ध कहानी पत्रिका के क्षेत्र म करीब आधे दजन अच्छ कहानी पत्रिका का अभूतपूर्व प्रकाशन।

आपका अन्तिम प्रश्न मुझ अत्यन्त आकर्षित कर रहा है कि मैं झट इसका उत्तर द आप का प्रश्न है कि—'क्या नयी कहानी किसी असन्तुष्ट आत्मा की तरह भटकती हुई नही लगती, जो अभिव्यक्ति की दिशा म पार हो न पा रही हो?'

बेहद रोमांटिक प्रश्न है। इस प्रश्न को पढ़ने ही सहसा कृष्णा सोबती की कहान 'बादलो क घेरे' और निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी याद आती है।

और जब इस प्रश्न का उत्तर खोजने लगता हूँ तो गत पाँच छः वर्षों से अब तक करीब बीसियों अच्छी श्रेष्ठ कहानियाँ मेरे सामने आ खड़ी हुई हैं। ये कहानियाँ मुझसे कहती हैं कि हम असन्तुष्ट आत्मा की तरह नहीं, दुखी आत्मा की तरह हैं। हममें भटकन नहीं है, हममें करुणा और गहरी सहानुभूति है, उस सारे जीवन के लिए जो आज तक वर्जित है, अछूता है, जिसको आज तक कोई न्याय ही नहीं। हममें स्वयं के लिए भटकन नहीं है, दृढ़ निश्चय है कि हमारी ममता और समवेदना की दीपशिखा का आलोक अन्धकार के हर द्वार तक पहुँचेगा। क्योंकि प्रकाश के भागी सब हैं—एक समान। रही अभिव्यक्ति की दिशा में चल पाने की बात! तो यह सच है कि कलाकार में जब तक सृजन शक्ति रहती है उसे कहाँ चैन! पर मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि कृतिकार की हर अभिव्यक्ति प्रक्रिया उसे चैन देती है। अभिव्यक्ति के बाद वह फिर छिन जाय यह दूसरी बात है। शायद यह चैन अन्वेषण और उसका यह आत्मक्षय पथ ही (सृजन के कारण) हर कृति कलाकार का व्यक्तित्व ही है। यह उसका सौभाग्य है अथवा दुर्भाग्य, यह उसकी भटकन है अथवा निश्चय, यह उसका आत्मालाप है या प्रकृति—यह सारा प्रश्न कलाकार की अपनी अपनी आन्तरिकता से सम्बन्धित है जैसा जिसका सृजन स्तर हो। ● ●

एकरसता टूटे और बेकली और बढ़े

●

देवीशंकर अवस्थी

आप लोग कहानी पर गोष्ठी में विचार करना चाहते हैं। बात अच्छी ही नहीं लगती, बल्कि हिन्दी के क्षेत्र में प्रतिफलित जागरूकता का प्रमाण देती है। हिन्दी में 'कहानी' पत्रिका ने 'कहानी विचार' की परम्परा चलायी, तब से भिन्न भिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं अन्य माध्यमों द्वारा 'नयी कहानी' या कहानी मात्र का लेखा-जोखा लेने का प्रयास किया गया है। इस सन्दर्भ में स्मरणीय यह है कि अत्यन्त समृद्ध एवं जागरूक समझे जाने वाले साहित्यों में भी कहानी पर चर्चा बहुत कम होती है, अतः हिन्दी में चर्चा का यह आधिक्य, जहाँ एक ओर प्रबुद्ध होते हुए लेखक-पाठक-वर्ग की सम्भावना स्पष्ट करता है, वहीं इससे यह भी साबित होता है कि समसामयिक कहानी में कुछ ऐसा अवश्य है, जो नया है, पढ़ने वाले की चेतना को मोहता है और उसे विवश करता है कि इस नये का उन्मीलन या तात्पर्य का अन्वेषण करे। यहीं पर इन विविध चर्चाओं में उभरने वाले दोनों पक्ष मुझे याद आते—

हैं। एक ओर तो कहानी को अत्यन्त आधुनिक, समृद्ध, हिन्दी के अन्य साहित्य रूपों में सबसे ज्यादा सशक्त एवं विविधी कहा जाता है, एवं दूसरी ओर आलोचकों के ऐसे भी फतवे हैं जो बताते हैं कि हिन्दी कहानी में आधुनिकता का बोध नहीं है या वैसे प्रयोग बहुत कम हुए हैं (वे कहानी की विधा को भी कभी कभी इस 'बोध' के लिये अक्षम मानते हैं।) या कि उसका केवल 'स्वभाव' बदला मानते हैं 'चरित्र' नहीं। एक ओर आप अपने पहले ही सवाल में पूछते हैं, 'उसका शिल्प-सौंदर्य ही क्या उसे पुरानी कहानी से भिन्न रूप दिये है?' दूसरी ओर अक्सर यह कहा गया है कि नयी कहानी में शिल्प सम्बन्धी प्रयोग कम हुए हैं। कुछ लोगों ने शिल्प-सम्बन्धी इन प्रयोगों की कमी को 'कहानी' का परम्परा-सम्बन्धी दायित्व माना है। एक कहानीकार आलोचक (डा० लाल) ने एक बार बताया कि 'नई कविता' के समान 'नयी कहानी' कोई परम्परा भ्रष्ट आंदोलन नहीं है, कि हाल में दूसरे कथाकार आलोचक (राजेन्द्र यादव) का कहना है कि 'इस दशक की कहानी के सामने तिरस्कार या विकास के लिए कोई परम्परा नहीं थी।' फिर ग्राम कथा, नगर-कथा, कस्बा-कथा, आंचलिक-कथा अथवा शिल्पवादी कहानी, विषय वस्तु प्रधान कहानी आदि नाना प्रकार के परस्पर विरोधी मान लिये जाने वाले स्तर खोज निकाले गये हैं। परस्पर विरोधी मन्तव्यों की सूची को और आगे बढ़ाया जा सकता है। पर यहां पर उद्दिष्ट इतना ही है कि समस्या की जटिलता की ओर संकेत किया जाय। समस्या यही कि 'नयी कहानी का स्वरूप क्या है?' कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये जो परस्पर विरोधी सी दिखने वाली बातें हैं, ये विरोधी न होकर विभिन्न पहलू हैं, जो बहुत नजदीक से देखे जाने के कारण या तो स्पष्ट नहीं हैं या आँखों में ओझल हैं—फलतः विरोधी भी हैं। बात और अधिक साफ करके कही जाय तो ठीक रहे। विभिन्न क्षेत्रों से सामग्री चुनने के आधार पर अलग अलग बाड़े बना देने के स्थान पर यह कहना क्या ठीक न होगा कि गांव, शहर, कस्बा, ईसाई, मुसलमान या आदिवासी, रंगतरा, पहाड़ या धर्मशाला आदि में जो आज जिन्दगी की तल्खी (या गुस्तो) नीरसता, या सरसता बदली हुई चित्तवृत्ति, भिन्न प्रकारों के दबावों में पल बदलते हुए संघर्ष करते हुए प्राणी या परिस्थितियाँ, जो भी हैं वे सभी नयी कहानी के अन्तर्गत हैं। शायद नयी कहानी में यह पहचाना गया है कि एक क्षण भी कहानी है और एक समूचा वातावरण भी। अथवा यह कि एक समूचे वातावरण के भीतर एक व्यक्ति घटना, परिस्थिति या क्षण एक विशेष दीप्ति से कौंध सकता है, जैसे कि कमलेश्वर की 'नीली झील'। कभी कभी कोई एक नगण्य सी वस्तु मन में कितनी प्रतिक्रियाएँ अनायास जगा जाती हैं और वे एक कहानी बना जाती हैं—उदाहरणार्थ अजितकुमार की 'भूरा गरदन वाला ऊँट।' प्रेम पर अगणित कहानियाँ लिखी गई[3]। पर प्रेम अब भी समाज के जटिल सम्बन्धों के कारण ऐसे कोणों में ढला या उभरता है जो नया लगता है, अननुभूत प्रतीत होता है। प्रेम

और परिवार पर उषा प्रियंवदा या मन्नू भण्डारी अथवा राजेन्द्र यादव की कितनी ही कहानियाँ मिल जायेंगी। कभी-कभी यह भी आरोप लगाया जाता है कि कोई कोई लेखक एकाध पात्रों का माडल (चित्रकार की भांति) बनाकर उन्हें ही दुहराया करते हैं। पर मुझे यह बात अनुचित नहीं लगती। मानव की अनन्त सम्भावनाएँ हो सकती हैं एवं निपुण कलाकारों ने उनको उजागर किया है। राजेन्द्र यादव में मुझे अक्सर लगा है कि एक माडल को वे विभिन्न परिस्थितियों (कहानी और उपन्यास दोनों में ही) में रखकर उस पात्र को 'चरित्रता' प्रदान कर रहे हैं। नये-नये क्षेत्र खोजने के बजाय एक क्षेत्र को नये कोण से स्थापित करना अधिक कलात्मक सामर्थ्य की मांग करता है।

हिन्दी समीक्षा का एक विचित्र दुराग्रहवादी द्वैत वर्तमान कहानी चर्चा में भी चल रहा है और वह आपके प्रथम प्रश्न में भी व्यंजित है। यह द्वैत है विषय वस्तु और शिल्प कुछ अलग-अलग चीजें हैं। 'रामकुमार' द्वारा आधुनिक जीवन की गहरी उदासी (या बोरडम) का चित्रण जाहिर है कि 'रेणु' के उस शिल्प से भिन्न होगा जिसमें कि गाँव के बदलते हुए सम्बन्धों का चित्रण किया होगा या कि अमरनाथ श्रीवास्तव की 'बाल सुन्दरी' के उस वातावरण का शिल्प भिन्न होगा, जिसमें कस्बे का एक उपेक्षित गली को जीवित करने का प्रयास किया गया है। कहानी ने अपने शिल्प में इस बीच में विभिन्न साहित्य रूपों एवं कलाओं से भी तत्व ग्रहण किये हैं, पर इतना अवश्य है कि 'कथा तत्त्व' तथा 'रंजकता' एवं अपेक्षाकृत बहुजनग्राह्यता का जो आन्तरिक गुण या तत्त्व कहानी में होता है, वह उस शिल्पगत प्रयोगों की वैसी छूट नहीं देता, जैसा कि कविता के क्षेत्र में सम्भव है।

इसी प्रसंग में एक और रोचक तथ्य मुझको महसूस होता है। इधर पिछले दो वर्षों में हिन्दी-कहानी के क्षेत्र में बासीपन लगने लगा है। लगता है कि पुराने फार्मूले दुहराए जाने लगे हैं। उदाहरण लें, नयी प्रकाशित अमरकान्त की कहानी 'मूस'। यह कहानी बड़ी अत्यन्त रोचक और मार्मिक है तथा अपने करुण उद्रेक में भी पर कहानी की परम्परा में यह उसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत है, जिसमें कि उपेक्षित या विचित्र चरित्रों को नाप-जोख कर लाया गया है। बिन्दा महाराज, इसा जाई अकेला, बाल सुन्दरी (नागर जी के 'बूंद और समुद्र' की ताई) जैसी कहानियाँ इससे पहले ऐसे ही उपेक्षितों की लाई हैं। मैं यह नहीं कहता कि ऐसे प्रयास न हों, पर यह अवश्य है कि इनमें प्रवृत्तिगत नयापन नहीं है। ऐसे ही कहानी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली दर्जनों कहानियाँ पतिता और गणिका किस्से पहले कहे जा चुके हैं। मुझे लगता है कि नयी कहानी असन्तुष्ट आत्मा की तरह चाहे न भटक रही हो पर आधुनिक जीवन के गहरे दबाव में पाठक अवश्य कभी कभी असन्तुष्ट हो उठता है और वह एकरसता का अनुभव करने लगता है। जागरूकता की कमी से हिन्दी कहानी

में पूरी तरह सभी माना जायगा जब इस एकरसता को तोड़ने का प्रयास भी साथ-साथ होता चले। आपके अन्य प्रश्नों के उत्तर में अत्यन्त संक्षेप में देना चाहूँगा। सम्भावनाओं के बारे में भविष्यवाणियाँ साहित्य के क्षेत्र में न की जानी चाहिए और वह भी किसी एक विधा को लेकर। हम केवल इतना कह सकते हैं कि आज की प्रबुद्ध स्थिति में कहानी अधिक सन्तुलित ढंग से हमारे यथार्थ को तेजी से बदलती स्थितियों एवं संवेदनाओं को एवं उगते हुए मनुष्य को अपने माध्यम से व्यंजित करेगी या कि अपने माध्यम से समझने का मौका देगी। यही इसकी सार्थकता होगी।

आपके तीसरे प्रश्न का उत्तर है कि अभूतपूर्व मुझे नहीं लगती। क्यों? इसलिए कि जो नये जीवन का अभूतपूर्व के आश्चर्य में स्तंभित होकर लेने के बजाय स्वाभाविक रूप से स्वीकारना चाहता है, उसके लिये 'नयी कहानी' या 'नयी कविता' अभूतपूर्व न होकर जीवन की सहज धर्मी व्यंजनाएँ हैं और वे नयी होकर भी हमारी परिचित हैं, बदली हुई होने पर भी हमारे अंतस के निकट हैं।

जहाँ तक सर्वप्रियता का प्रश्न है—कहानी सदैव सर्वाधिक प्रिय रही है। अतः नयी कहानी सर्वप्रिय बनी रह कर कोई नया लम्प्रवेश न करके पुराने उत्तरदायित्व का ही निर्वाह कर रही है।

आपका अंतिम प्रश्न भी मुझे कहानी की अतिरिक्त स्फीति देता लगता है। पहली बात तो यह कि स्वयं मनुष्य सदैव से असंतुष्ट रहा है। उसने अपने को अभिव्यक्त करने के लिये क्या-क्या नहीं किया या सहा? फिर आधुनिकता के बोध को ग्रहण करने वाला मनुष्य, भयंकर वेग वाली परिवर्तनता की छाया में पलने वाला व्यक्तित्व, तो अपने प्रत्येक क्षण को अभिव्यक्त करने के लिए लालायित हो उठा है। कहानी की अभिव्यंजन-आतुरता मनुष्य की उसी स्वभाव की ही प्रकाशिका है। मैं तो यह कहूँगा कि ज्यों-ज्यों कहानी हमारे यथार्थ के निकट आएगी त्यों-त्यों वह आतुरता, यह बेकसी और बढ़ेगी। उसका बढ़ना ही शुभ लक्षण है।

• • •

हिन्दी कहानी की दिशा

•

नित्यानन्द तिवारी

आज की हिन्दी कहानी की चर्चा करते समय साधारणतः दो प्रकार की बातें की जाती हैं यह कि हिन्दी-कहानी प्रेमचन्द-जैनेन्द्र से आगे नहीं बढी है (दृष्टि की गहराई के रूप में), यह कि हिन्दी कहानी पहले जो कुछ लिखा गया है उसका पुनः प्रस्तुती करण है, डिस्टार्टेड है विदेशी लेखकों का अनुसरण है शिल्प-चमत्कार है, या फिर यह कि हिन्दी कहानी 'नयी कविता' की भाँति ही नयी नहीं है। वरन् 'कविता में अभी वैसी स्थिति नहीं आई है।' इन दो अतियों से बचकर भी बातें हुई हैं, किन्तु एक पारम्परिक शृंखला में रखकर इसे जाँचने समझने और मूल्यांकन करने की बात एक तटस्थ द्रष्टा के रूप में कम हुई है और यदि हुई भी है तो उस ऐतिहासिक नवीनता का कंक्रीट रूप क्या है ? कहानी में वह किस रूप में प्रतिफलित हुई है ? इन बातों पर स्पष्ट विचार नहीं हुआ है। रुचि संस्कार सापेक्ष होता और संस्कार की जड़ें परम्परा में बडी गहरी होती हैं। लेखकों की अपनी रुचि (निस्सन्देह परिष्कृत) ही विभिन्न अनुभूतियों में विविधता और पृथक्ता लाती है। और यह विविधता ही बाद में एक व्यापक इकाई में प्रवृत्ति का रूप धारण करती है, जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सप्रवृत्त नवीनता का वाहक होती है। वस्तुतः ऐतिहासिक शृंखला में अच्छे-बुरे, श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का प्रश्न प्रायः नहीं उठा करता, वह अपनी अविच्छिन्नता में विकसित होती रहती है। उस शृंखला में साहित्य का कितना भाग जीवित रहता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके द्वारा चित्रित वर्तमान कितने रूप में भविष्य में जी सकता है। अतएव वर्तमान यथार्थ की भीड़ में उस, अविच्छिन्न जीवन्तता को ढूँढ निकालना साहित्यकार के लिए सबसे बडी बात है। यह 'अविच्छिन्न जीवन्तता' परिवर्तित सन्दर्भों में विकसित होती चलती है।

प्रेमचन्द से लेकर आज के नवीनतम कहानीकारों तक इस दृष्टि से विचार करने पर कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। प्रेमचन्द की व्यापक सहानुभूति समाज के हर व्यक्ति के लिए थी। यदि जमींदार द्वारा पीड़ित उस किसान को वे अपनी सहानुभूति दे रहे हैं तो वहीं उस जमींदार की भी पीड़ा समझ रहे हैं उसकी भी विवशता से उनकी सहानुभूति है इन सबके प्रति एक अभिभूत करुणा उपजाना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य था। या यदि इससे आगे भी बढ़ते हैं तो एक शार्टकट रास्ते से सुधार की बात करते हैं। कारण यह है कि प्रेमचन्द या उस समय अन्य साहित्यकारों की दृष्टि में

परिवर्तन नहीं हुआ था। वे समाज के असामंजस्य को अनुभव कर, अपनी सहानुभूति देकर चित्रित कर देते थे। उनकी दृष्टि का संस्कार पुराना ही था भले ही उनमे बाह्य परिवर्तन हुए हो। किन्तु उस अभिभूत करुणा मे धीरे धीरे एक दृष्टि विकसित हो रही थी। इसे भी ऐतिहासिक प्रक्रिया मे ही समझा जा सकता है। बाद मे स्पष्ट रूप उभर कर सामने आया। साधारणतया जब हम दृष्टि का बात की जाती है तो इस बात पर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि दृष्टि एक ऐतिहासिक मार्ग है जो काल सापेक्ष है और वह मात्र ऐतिहासिक प्रक्रिया (Historical process) मे विकसित होता चलता है। किन्तु होना ऐसा है कि वह ऐतिहासिक प्रक्रिया जारी रहती है, लेकिन कभी-कभी इधर-उधर भटकाव भी आ जाता है। यह इसलिए कि आदमी के पास जब नये ठोस आधार नही रहते तो वह ऊब जाता है और कहीं रास्ता न पाकर स्थिति विशेष पर टिक जाता है अथवा किसी तात्कालिक मतवाद विशेष का आग्रह लेकर उस स्थिति मे अपने सम्बन्ध व्यवस्थित करना चाहता है। प्रेमचन्द के बाद के लेखकों को शायद कुछ ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा। यह ठीक है कि जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, प्रेमचन्द से आगे बढ़कर सूक्ष्म और गहनतर भावों की ओर गये, लेकिन इन सबके पास अपने अपने चौखटे थे, शायद इसलिए कि यदि वे इनका सहारा न लेते तो अपने को दिशा विहीन पाते। यह उनके आत्मविश्वास की कमी थी, दृष्टि का धुंधलापन था और लगता है, प्रत्यक्ष जीवन पर उनकी आस्था कम थी। फलतः किसी ने तथाकथित विचारकता से अपनी गम्भीरता स्थापित की और किसी ने दर्शन विशेष से अपने को जोड़ कर वास्तविक जीवन की अनुभूतियों के साथ धोखा किया, किसी ने मनोविज्ञान का आश्रय लेकर आत्मव्याख्या की गुम्म और जटिल इमारत खड़ी की। लेकिन मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि इनमे अनुभूति की सच्चाई थी ही नही। थी लेकिन अपनी सम्पूर्णता मे नही दिखा मे बदन के बजाय ये कहीं न कहीं अपने को छिपाये रहे। 'अज्ञेय' ने अपने को किसी मतवाद-विशेष से मुक्त न कर, जो जैसा लगा, वैसे सीधे जीवन की अनुभूति प्राप्त की। उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति मे बहुत सच्चाई है। यहाँ 'रोज' कहानी की चर्चा की जा सकती है। रोज' मे अभिभूत कर देने वाली गहरी उदासी है जो निःसन्देह जीवन की गहरी यथार्थता है और उसका वर्णन बहुत ही पाटाप्रविक है। किन्तु वह एक स्थिति विशेष का स्वीकार मात्र है, इससे अधिक कुछ नहीं। यद्यपि उसका वर्णन बहुत ही पाटोप्रविक स्थिति को पकड़ लेना और उसका स्वीकार बड़ी चीज है लेकिन साहित्यकार के लिए उसमे भी बड़ी चीज है उस वर्तमान यथार्थ का पीड़ित मर्म जो अविच्छिन्न जीवसत्ता से उग जोड़ता है और प्राय वही उसका साध्य कथ्य भी हुआ करता है, जिसके अभाव मे पच्चीकारी और नये शिल्प प्रयोग की प्रधानता स्वाभाविक है।

इसके बाद का कुछ काल दिशा निर्धारण की तैयारी का है। इसलिए कि इस बीच जो कहानियाँ लिखी गई—सस्ती, सामाजिक और रोमांटिक—वे विकृत रुचि को सन्तुष्ट कर रही थीं, और उसकी प्रतिक्रिया आवश्यक थी। उस प्रतिक्रिया की वह भूमिका थी। फिर आज एक अर्से बाद कहानी में नयी सम्भावनाएँ और नयी संवेदनाएँ जीवन के नाना स्तर नए सन्दर्भ नयी कलात्मकता के साथ व्यक्त हुए। उसमें एक ताजगी और एक जीवन्तता का आभास हुआ। बात यह हुई कि पहली बार यहाँ आदमी अपनी बदली दृष्टि और सन्दर्भ के प्रति सचेत हुआ। पहले के लेखक भी असामञ्जस्य का अनुभव करते थे, किन्तु न तो वे दृष्टि के ही प्रति सचेत थे और न सन्दर्भ के ही प्रति। 'गैंग्रीन' के बारे में कहा गया है कि वह एक स्थिति विशेष का स्वीकार मात्र थी। पहली बार असंगति और असामञ्जस्यपूर्ण जीवन की एक विशेष घटना की अनुभूति इस ढंग से चित्रित की गई। यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि जीवन की समग्र इकाई, दृश्यों और कार्यों को देखने समझने और व्याख्या करने का हमारा दृष्टिकोण सामान्य से विशेष की ओर आने की अपेक्षा, विशेष से सामान्य की ओर होगया था। इसके मूल में सीधा वैज्ञानिक प्रभाव है। विज्ञान एक-एक चीज का निरीक्षण करता है, वर्गीकरण करता है और उनकी विशेषताएँ बतलाकर एक सामान्य नियम पर पहुँचता है। ठीक इसी प्रकार आज का कहानीकार, छोटी से छोटी मानवीय क्रियाओं को पूरी शक्ति से अपनी रचनात्मक प्रक्रिया में अनुभव करता है और उस छोटी से छोटी छवि या दृश्य में वह सामान्य अविच्छिन्न जीवन्तता का मर्म पकड़ कर अभिव्यक्ति देता है, जो वर्तमान को भूत और भविष्य की इकाई में जोड़ता है। वही सामान्य मर्म यदि कहानीकार से छूट जाय, तो वर्तमान का खंडित चित्र होकर रह जायगा। इसी सन्दर्भ में श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा उठाए गए कुछ प्रश्न (राष्ट्रवाणी में) विचारणीय हैं। उनका कहना है कि "अनुभूति की नवीनता के होते हुए भी वह कौनसे तत्त्व हैं जो नई कहानी के सम्भाव्य रूप को पूर्णतः विकसित होने के मार्ग में बाधक सिद्ध होते हैं, और जिनके कारण आज का कथा साहित्य समग्र सम्भावनाओं के बावजूद उन्हें ग्रहण करने में असफल सिद्ध हो रहा है।" उनके और भी प्रश्न हैं जो मूलतः इसी प्रश्न से सम्बद्ध हैं। आज की सब कहानियों को देखते हुए इसमें औचित्य है। इसलिए कि बहुत सी कहानियाँ केवल स्थिति विशेष के प्रति एक गहरी उदासी और एक करुणा उत्पन्न करके रह जाती हैं। उसमें क्रियात्मकता नहीं रहती। मनुष्य इतना बेबस तो नहीं है कि वह विवश ही बना रहेगा। इस गहरी उदासी और करुणा के चित्रण में निश्चय ही अनुभूतियाँ नयी और विविध हैं, उनका शिल्प भी बहुत नया और मादक है किन्तु यदि वह अविच्छिन्न जीवन्तता का तत्त्व छूट गया, तो सब कुछ खंडित चित्र है, सब कुछ वर्तमान यथार्थ का जड़ स्थैतिक अंकन है। वस्तुतः इस युग में अधिक कहानियाँ 'रोज' से आगे नहीं बढ़ी हैं और यदि

इसी कारण उन पर शिल्प के आरोप लगाए जाते हो, तो वह सही नहीं है यह कैसे सम्भव है। फिर "क्या विकृत रुचि के कारण मानव-गाथा का प्रवाह रुक सकता है?" वस्तुत ऐतिहासिक प्रक्रिया मे प्रवाह रुकना नहीं है, कुछ देर अवरोधित हो कर धीमा हो जाता है और इतिहास की शक्ति इकट्ठी होने लगती है और एकाएक वह धक्का देकर अवरोध से आगे बढ जाती है। फलत इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य म कहानिया पर विचार करने से स्पष्ट होगा कि कहानी म विविध अनुभूतियाँ विविध सवेदनाएं और विविध मानवीय सुख-दुख एक ही स्तर के नहीं हैं। उनकी पुष्टि म गहराई भी आई है और विस्तार भी। यह बात उन कहानिया के आधार पर कही जा सकती है जो इस परिवर्तित सदर्भ म उस जीवन्तता को, मम को, जो केवल उस वतमान का ही नहीं है, पकड कर व्यक्त कर सकी है।

आज की कहानिया मे परिवतन-बोध की अनुपातता की विकसित चेतना बहुत महत्व की वस्तु है। इसकी सही पकड न होने म भ्रातियाँ हो जाया करती हैं। इस जिलगाव, इस भटकन और इन असतुलित मानवीय सम्बन्धो से हटकर आज के कहानीकार को न तो दृष्टि ही मिल सकती है और न हृदय ही। इसलिए कहानीकार अपने चारो ओर फले वातावरण को अभिव्यक्ति देता है। लेकिन अगर कही उस वातावरण की अभिव्यक्ति म केवल वातावरण ही रह गया तो कहानीकार असफल हो जाता है। इसलिए कि जीवन के अविच्छिन्न प्रवाह को काट कर वह अलग एक टुकडे के रूप म रख देता है। उसकी जगमगाहट कुछ देर तक रह पाती है और फिर बाद म वह निर्जीव शिल्प ही केवल बच रहता है जो अपेक्षाकृत गौण है। इस ह्रासोन्मुख (Decayed Civilization) सभ्यता की यथार्थ कटुता को स्वीकार कर नवीन संतुलन स्थापन का तीखा दद आज की कहानिया म चित्रित हुआ है, जिसे भुलाना सत्य की ओर स आँख मूँदना है। युग के कसर को पहचान कर आज की कहानी उसके लिए आत्म-चेतना (सामाजिक घेरे म) की औषधि देती है। आत्म-चेतना इस अर्थ म उस सक्रियता से सम्बद्ध है, जो अपनी यथार्थ तिक्त स्थिति को पहचान कर उससे उबरने का प्रयत्न करती है। कई कहानियाँ उदाहृत की जा सकती हैं जिनम यह सक्रियता, यह दद बडे व्यापक रूप म व्यक्त हुआ है। यह अवश्य है कि वैसी कहानिया की सख्या थोडी है।

आज आदमी के सामने सबसे बडा व्यग्य यह है कि न तो वह किसी का बन सका है और न किसी को अपना बना सका है। व्यक्ति सम्बन्धो का विघटन बहुत बडे पैमाने पर हुआ है। साथ ही उसके मन म एक विचित्र प्रकार का भय समाया हुआ है। उसके भीतर से सृजनशीलता सूख गई है जिसके बिना वह यत्रवत लगता है। उसे यह भी लगता है कि हम जीवित ही क्या हैं? यह सृजनशीलता अथवा मनुष्य

म रहती है। वह उसी के लिए जीता है। उसी से उसके अस्तित्व को सार्थकता मिलती है। उस सृजनशील प्रवृत्ति द्वारा वह बाह्य वातावरण से विभिन्न छवियों, दृश्यों, और वस्तुओं से अपना सम्बन्ध जोड़ता है, और सृजनशीलता स्वयं सामाजिक प्रक्रिया है। व्यक्ति-व्यक्ति एवं व्यक्ति तथा समुदाय के सम्बन्ध एक सतुलित स्थिति प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्षरत हैं। और इस संघर्ष को आज की कहानियों ने बखूबी पकड़ा है।

जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों से विराट संवेदनाओं की ओर साहित्य की दृष्टि बढ़ रही है। कहानी में भी संवेदनाएँ अभिव्यक्त हैं। अनुभूतियों और संवेदनाओं का क्षेत्र बहुत गहरा और व्यापक हुआ है, लेखकों ने बहुत से अपरिचित स्तरों को उभारा है, इससे कौन इन्कार कर सकता है? दुनिया की संस्कृतियाँ समीपतर आती जा रही हैं और उनका प्रभाव संस्कार के रूप में हमारे मन पर पड़ता जा रहा है। हमारी स्वयं की समस्याएँ भी कुछ दूसरों से पृथक रहने का दावा कर सकती हैं, कब सम्भव है फिर जातीय साहित्य की बात उठाना बहुत ठीक नहीं लगता। मंविता और अनीता चटर्जी (?) का चपद करना किसी को बुरा लगता है, तो हम देखना यह है कि उस बुरे लगने का आधार क्या है? यदि लेखक इन पात्रों को अपनी और पाठकों की पूरी सहानुभूति नहीं दिला पाता है तो निश्चय ही वह उन्हें चपद कर रहा है, अपनी हविस पूरी कर रहा है। लेकिन यदि उसे सबकी सहानुभूति मिल रही है तो फिर वह उस पीड़ा, उस मर्म को व्यक्त कर रहा है जो उसमें अन्तर्निहित है। और वह पीड़ा और वह मर्म उसकी उस कठिन सृजनशीलता से सम्बद्ध है, जिससे वे इन अव्यवस्थित स्तरों के बीच अपना सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे। फिर क्या वह जातीय सम्मान बनाये रखने का पुराना मोह नहीं है, जिससे हमारी रुचि अब तक चिपकी हुई है।

आज की कहानियों में मन जो नवीनता दीख पड़ती है, वह आज की दृष्टि और सन्दर्भ की नवीनता है। आज की समस्याओं और उनमें उलझन तथा सहन की नवीनता है। इस प्रकार जीवन की समस्याओं और दृष्टि का वास्तविक नवीनता ने अभिव्यक्ति के नये आयाम भी उभारे हैं। चित्रण के नये शिल्प ने अधिक सघनता और अधिक व्यापकता ली है। सूक्ष्म से सूक्ष्म सकेत द्वारा बड़ी बात 'सजेस्ट' करना आज की संवेदनीयता के नये क्षितिज खोलकर उसे विस्तार देता है। जब स्थिति कही दबाया जाता है और प्रकाश कहीं हो जाता है और बाद का पूरी प्रक्रिया दिखाई नहीं पड़ती। इसी प्रकार एक बात कहाँ कही जाती है और वह आघात कहीं जाकर करती है। बीच की स्थिति टूटी लगती है लेकिन स्थिति टूटी नहीं है वह और भी ज्यादा संवेदनीय बन जाती है। इसीलिए कभी कभी कथावस्तु में पाठकों को लगता है कि

बात तो कुछ कही नही गइ लेकिन उनके पास उस प्रकाशित संवेदना को पकड पाने का सस्कार ही नही है। लेखको और सामान्य पाठको के बीच की यह खाई चिन्त्य है यह प्रश्न भी प्राय उठाया गया है कि आज के पाठकों द्वारा कहानी पूरी पढ़ ली जायेगी इसमे खतरा है। लेकिन यह स्थिति अब सरलतर होती जा रही है। पाठक वग प्रबुद्ध होने लगा है। आधुनिक नये शिल्प की बारीकी, जिसम आज का वास्तविक जीवन अपने सही रूप म सवेदित है उस पाठक केवल समझने ही नही लगा है बल्कि उसकी व्याख्या सराहना भी करने लगा है।

आज की कहानियो म अनुभूतियो का विस्तार तो हुआ ही है साथ ही वह दृष्टि की नवीनता म ऐतिहासिक प्रक्ष्य म गहरी भी हुई है। रोज' की सवेदना एक स्थिति का स्वीकार थी। आगे चलकर उस स्थिति के प्रति सचेतनता (Consciousness) बनी और साथ ही सक्रियता भी। कोई स्थिति वास्तव मे तब उतनी उत्कट नही लगती जब तक वह स्थिति मात्र रहती है लेकिन जब मनुष्य उसके प्रति सचेत और सक्रिय हो जाता है तब उत्कट मनोवैज्ञानिक समस्या आ जाती है। आज की कहानियो म उससे उबरने की सक्रियता और अकुलाहट तो है ही, साथ ही बदली परिस्थितियो म नयी सम्भावनाएँ भी विकासमान और मूर्तमान हो रही हैं। अतएव सचेतनता, सक्रियता और सम्भावना के रूप म कहानी की नयी दिशा ने अपना क्षितिज अवश्य बनाया है जिसे सम्पूर्ण मानव प्रगती के साथ सयुक्त कर तटस्थ दृष्टि से पहचाना जा सकता है। ● ● ●

नयी जीवन दृष्टि और नये जीवनानुभव का अभाव

●

श्रीकान्त वर्मा

कला के नवीनतम आन्दोलन का नेतृत्व चित्रकला करती है मनुष्य के सौन्दर्य-बोध के नय से नय स्फार उद्घाटित करने का उत्तरदायित्व प्रकृति ने चित्रकला को सौंप दिया है। चित्रकला की नियति हो कुछ ऐसी है। जब नही थी तब चित्र थे अब जब भाषा है, तब भी चित्र हैं। चित्र भाषा स कुछ पहले की चीज हैं और भाषा से कुछ बाद की। ऐसा क्यो है ?

वस्तुएँ कलाकार के लिए बिम्ब का सीधा सम्बन्ध चित्रकला से है। कला की अन्य विधाएँ महज बिम्ब नहीं। कविता केवल बिम्ब नहीं, संगीत भी है और यह संगीत उसकी ध्वनि और लय में सन्निहित है। नवीनता की अन्धा धुंध दौड़ दौड़ने वाली इस दुनिया में, यह अन्य कलाओं के लिए दुर्भाग्य की भी बात है। कारण कि वस्तुओं के सम्बन्ध बदलते हैं और फलस्वरूप चीजों का अर्थ बदलता है और इस परिवर्तन का सूक्ष्मतम संकेत सर्वप्रथम चित्रकला में ही नज़र आता है। नेत्र, मनुष्य की सबसे संवेदनशील इन्द्रिय है।

नेत्रवान कवि और कलाकार, चाहकर और देखकर भी, इतनी तेज़ी से इस परिवर्तन को अपनी रचना में प्रतिष्ठित नहीं कर पाते, ध्वनि और शब्द में नहीं बाँध पाते क्योंकि जितनी तेज़ी से दुनिया बदलती है उतनी तेज़ी से भाषा नहीं बदलती भाषा कुछ अधिक अनुदार वस्तु है समाज को बदल देने का नारा लगाने का साहस सभी को होता है भाषा बदल देने का नारा लगाने का दुस्साहस, समाजसेवी तो क्या, कवि भी नहीं कर पाते।

मगर यह सही है कि चित्रकला के बाद संवेदनशीलता में दूसरा नम्बर कविता का ही है क्योंकि भाषा का चरम सौंदर्य बिंदु कविता ही है। वह अपने ढंग से तीव्रतर और सूक्ष्मतर परिवर्तन को ग्रहण और प्रतिष्ठित करती है। बिम्ब उसकी भी एक आवश्यकता होने के कारण वह चित्रकला के अपेक्षाकृत, कुछ नजदीक पड़ती है। इसीलिए बहुधा चित्रकला और कविता के आन्दोलन बहुत निकटवर्ती होते हैं। क्यूबिस्टिक चित्रकला, चाहे केवल पिकासो और ब्राक के कारण स्मरण की जाए, सुररियलिज्म का आंदोलन भास के चित्रकारों से अधिक, कवियों के कारण, याद किया जाएगा। यहाँ तक कि उसके शास्त्रकार भी मुख्यतः कवि ही थे।

भाषा और बिम्ब के वरदान से वंचित कहानी का यह दुर्भाग्य भी है और सौभाग्य भी कि वह इस सांसारिक और आन्तरिक परिवर्तन को एक मंदतर गति से पकड़ती है। कहानी सुनने वाले और पढ़ने वाले की एक आवश्यकता है कविता लिखने वाले की एक आवश्यकता है। यही कारण है कि कहानी का पूरा पूरा लाभ, लिखने और पढ़ने वाले से अधिक बेचने वाले उठा लेते हैं। (कविता, लाभ और हानि से परे है) अब से एक सौ वर्ष पहले ईजाद हुई है कहानियाँ धड़ल्ले से बची जा रही हैं। हिन्दी का मुद्रित साहित्य बहुत पुरानी अलमारियों में गायघाट बनारस से छपा किस्सों की पीले पन्ना वाली पुस्तकें अब भी मिल सकती हैं। तब से लेकर अब तक कहानी का व्यापार ही हो रहा है। पाठक की आवश्यकता के नाम पर बिकने वाली कहानी कभी 'चटपटी' कभी 'रंगीन' कभी 'मनोहर' और कभी 'नई' के नाम पर बिकती रही है। तथाकथित नवीनता भी, व्यापारी कम्पनियों का एक एजेंट ही हो सकती है।

इसके पहले कि हम नवीनता की परख की जाय, यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यह कहना सवथा भ्रामक है कि पिछले पचास वर्षों म हिंदी कहानी न कोई प्रगति नही की है। एक से एक अच्छी कहानियाँ लिखी गयी हैं जिन्ह अन्य भाषाओं की अच्छी कहानियों के समकक्ष रखा जा सकता है। जो लोग कविता और कहानी के क्षेत्र म, समय समय पर, नीद स जागकर, तुलसी और प्रेमचन्द की परम्परा की बाग दे दिया करते है उनकी रात कभी नही कटन वाली है। उन बेचारो का यह भी नही मालूम कि सुबह हो चुकी है। दोष उनका नही है। तुलसी और प्रेमचन्द उनके अन्दर की उस पुरानी दुनिया के प्रतीक हैं, जिससे बाहर निकलने का साहस और प्रतिभा उनम नही है। बाहर निकलने का अर्थ है, नयी समस्याओं से उलझना और नय प्रश्नो की चुनौती स्वीकार करना।

मुझे यह कहने म कोई सकोच नही कि हिन्दी की कविता और कहानी दोनों ही इस पुरानी दुनिया स बाहर निकल चुकी हैं। संदेह, शंका और अविश्वास से भरी इस दुनिया के असख्य प्रश्न उनके समक्ष उपस्थित हैं। जरूरी नही है कि जिस अर्थ म और जिस दूरी तक दुनिया नयी हो कविता और कहानी भी उसी अर्थ म और उसी दूरी तक नयी हो। कलाकार कोई टेलर-मास्टर नही है, जो अपने समय की आवश्यकता के अनुसार माप-जोख कर कपडे काट ले। कला का परिवर्तन अन्तरात्मा का परिवर्तन है।

कहानी की भी एक आत्मा होती है जो समय समय पर बदलती है। हर अनुभव आदमी को बदल देता है प्रत्येक अनुभव स गुजरता हुआ आदमी निरन्तर अभिनव होता रहता है। लेकिन एक कहानी के सम्पूर्ण कायाकल्प के लिए, एक वृहत अनुभव की आवश्यकता होती है। मोपासा और सार्त्र, ओ० हेनरी और सरोयान की कहानी म कोई तारतम्य ही नहीं, तो इसका कारण है बीच के दो महायुद्ध। युद्ध, समाज का सबसे बड़ा अनुभव है, कला का तो सभवत महानतम अनुभव। युद्ध ही नही समूचे सामाजिक ढाँचे का क्रान्तिकारी परिवर्तन भी कहानी को पूरी तरह बदल देता है। हिन्दी कहानी जरूर बदली है, मगर उस अर्थ म नही, जिस अर्थ म यूरोप की कहानी बदली है। इसका मुख्य कारण है, किसी प्रमुख अनुभव का अभाव। ऐसा नही है कि हमारे देश में, इस दबाव की घटनाएँ नही घटी हैं। किसी देश की स्वाधीनता ही, उस देश के इतिहास की सबसे बड़ी घटना हो सकती है। मगर ऐसा प्रतीत होता है, स्वाधीनता, हमारे अनुभव का विषय नही हो सकी है,—यह बात कला ही नही, इस देश के सामाजिक जीवन के विषय म भी कही जा सकती है। कविता, जैसा कि मैंने पहले कहा, कुछ प्राइवेट सी वस्तु है, अत उसकी संवेदना भी हमेशा स निजी रही है। मगर कहानी का कायाकल्प भी बहुत कुछ एक अपने स बडी किसी सवेदना

पर निभर करता है। मगर निभरता का अथ दासता नही है, यह बात कम से कम, समाज की जरूरत के नाम पर व्यापार करने वाले कहानीकारो और सेल्समनो को अवश्य याद रखनी चाहिए।

एक दूसरा कारण भी है क्या सात्र की कहानियाँ, केवल इसलिए नयी हैं कि उनका गठन नया है? गठन, सात्र से अधिक, वस्तुन से टटपुजिये कहानीकारो का नया होगा। फिर क्या कारण है कि सात्र की कहानियाँ एक अधिक मौलिक और स्थायी ढग मे नयी प्रतीत होती हैं। कारण है, नया जीवनानुभव और नयी जीवन-दृष्टि ही वह चीज़ है, जो चीज़ो का अथ बदल देती है। जब तक लेखक की जीवन-दृष्टि म परिवतन नही होगा उनकी दुनिया म भी परिवतन नही होगा। सब कुछ बदलता नज़र आना और इस बदलन का अथ समझ पाना दो अलग चीजें हैं।

गम्भीर पाठक ही नही, जिम्मेदार कहानीकार भी यह मानेंगे कि हमारी कहानी एक सवथा नयी कहानी नही है, मगर कहानी का सवथा नया न होना, इतनी बडी बाधा नहीं कि अच्छी कहानिया न लिखी जा सकें। मने पहले ही कहा है कि इसी भाषा म एक स एक अच्छी कहानियाँ लिखी गयी हैं। जिस अथ में चित्रकला या अय कलाएँ नयी होती हैं उस अथ मे, किसी भी देश मे, कहानी नयी नही होती। नयी कविता के सकलन, हिन्दी म ही नही, हर सभ्य भाषा मे प्रकाशित होते हैं मगर 'नयी कहानी' हिन्दी की ही देन है। किसी अन्य भाषा मे 'न्यू स्टोरीज' का कोई सकलन या पत्रिका नही देखी। नवीनता के प्रति ऐसी आसक्ति अपने पिछडेपन का प्रतीक है। अन्दर की रिक्तता को बाहर के लेबल से नही छिपाया जा सकता। हिन्दी की 'नई' कहानिया की प्रतिनिधि पत्रिका मे सबसे पिछडे हुए सम्पादकीय छपते हैं।

नवीनता के प्रति आसक्ति का एक और भी दयनीय रूप है फाम की नवीनता। मैं फामवाद का उपासक नही हूँ, मगर मैं यह मानता हूँ कि कविता म फामवाद अपने आप म कोई बुरी चीज़ नही है। कभी-कभी कविता का फाम ही, कविता का कथ्य हो जाता है। ऐसी अनेक कविताएँ रची गई हैं, जिनका फाम ही उनका कथ्य है, और य साधारण कविताएँ नहीं हैं। अनुभव की संगीतमय एकता, चित्रकार और कवि को कभी कभी फाम के आग इस सीमा तक ले जाती है कि प्रदित्त वस्तु जैसी कोई चीज़ नही रह जाती, केवल ध्वनित भ्रम रह जाता है। यह कला की असफलता नहीं है, एक उपलब्धि है।

मगर कहानी का फाम कहानी का कथ्य कभी भी नहीं हो सकता, क्योंकि कहानी की मौलिक अनिवायता, चरित्र है। और चरित्र की आवश्यकता के अनुकूल ही, कहानी का फाम बनता है। फाम सम्बन्धी दाव-पेच के प्रयोग कर कहानी में भ्रान्ति उत्पन्न कर

देन की कल्पना दृष्टि-हीनता की परिचायक है। अक्सर दृष्टि-हीन कलाकार इस प्रकार के प्रयोग करते रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि हर भाषा में ये प्रयोग नितान्त असफल हुए हैं। हिन्दी कहानी की मुख्य धारा काम-सम्बन्धी इस कुंठा से मुक्त है, यह किंचित संतोष का विषय है।

संक्षेप में हिन्दी की समकालीन कहानी, जिसे कहानीकार और उनके विज्ञेता 'नयी कहानी' कहना पसंद करते हैं की स्थिति यह है। कहानी ठेठ शास्त्रीय अर्थ में नयी न होकर भी अच्छी हो सकती है। अगर ऐसा न होता तो हिन्दी में 'पूस' जैसी कहानी न लिखी जाती जो किसी भी भाषा की अच्छी से अच्छी कहानियों के समकक्ष रखी जा सकती है। मगर मुझे अच्छी नहीं 'नयी' कहानियों पर आमन्त्रित किया गया है। अतः परिन्दे' 'जिन्दगी और जोंक' 'आर्द्रा' तीसरी कसम 'रेखा' 'भोले बादशाह' 'जहां लक्ष्मी क़ैद है' 'बन्बू' 'एक कोई दूसरा' सी-सा' 'दृष्टिकाण' जसी अनेक अच्छी कहानियों से केवल क्षमा-याचना ही की जा सकती है। ●●●

हमारी दृष्टि
हिन्दी की नवीन कथा-सृष्टि

प्रश्नोत्तर

● जैनेन्द्रकुमार ● चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार ● यशपाल

संयोजन-सूत्र 'नई कहानी' पर विशेषांक निकालने की बात सोचने हिन्दी कथा-साहित्य को स्वरूप देने वाले सुप्रसिद्ध कथाकारों का सहज स्मरण स्वाभाविक ही था। उनके विचार दिशा-सहयोगी होंगे इसीलिए प्रस्तुत परिचर्चा आयोजित की गई। हमारे ये प्रश्न उन तक गये

- हिन्दी की नई कहानी का जो स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है उससे आपका मन उसके भविष्य के प्रति आश्वस्त होता है या नहीं ?
- आपने हिन्दी कथा-साहित्य में वर्षों का प्रवाह देखा है क्या वर्तमान की कहानियाँ विगत की तुलना में आपको अधिक सामर्थ्यवाली लगती हैं ?
- हिन्दी की नई कहानी में प्रयोगों का जो एक क्रम या नये ढंग से बात कहने का जो प्रयत्न दृष्टिगत है वह आपको नये पौधे के फलने-फूलने का सन्तोष दे पाता है ?
- कहानी के बारे में आपका निजी मत क्या है ? आप कौनसी दिशा को नये रचनाकारों के लिए श्रेयस्कर मानेंगे ?

हमारे ये प्रश्न जिज्ञासा और अध्ययन के आधार पर हैं। दम्भ से सिर-उठाये नही नम्रता से श्रद्धावनत। यह वाक्य हमें कुछ प्राप्त पत्रों के उत्तर में लिखना पड़ा है। अग्रजों ने कुछ बढ़िया सवाल स्वयं ही उठाये हैं नई कहानी क्या है? क्या नई कहानी नाम की चीज पुराने लेखकों के यहां भी है? क्या लेखक भी पुरानी कहानी लिखते हैं? नई कहानी का विकास संक्षिप्त रूप से कैसा है? मैं किन लेखकों या कहानियों को नये या नयी मानता हूं? इनके उत्तर उनके पर्यवेक्षण में सन्निहित हैं।

● जैनेन्द्रकुमार

प्रश्न हिन्दी की नई कहानी का जो स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है उससे आपका मन उसके भविष्य के प्रति आश्वस्त होता है या नही।

उत्तर नई कहानी वही न, जो पत्र-पत्रिकाओं के नये अंकों में छपी देखी जाती है? तो क्या यह कहानी एक ढंग की है? अखबार बहुत से हैं और रोज रोज सबके नये अंक आ रहे हैं। इस बहुतायत और बहाव में ठीक कौन नमूना नई कहानी का है यह मैं जानता नही हूं। लिखने वाले के साथ कहानी का रूप जुड़ा है। और सभी तरह के लिखने वाले हैं। हल्के हैं, भारी हैं, धोती वाले हैं, टाई वाले हैं। एक सांचे में देखना मुझसे हो नही पाता है।

'नया' शब्द सदा फैशन का है। फैशन का भविष्य नही होता, केवल वर्तमान होता है।

प्रश्न आपने हिन्दी कथा-साहित्य में वर्षों का प्रवाह देखा है। क्या वर्तमान की कहानियाँ, विगत की तुलना में आपको अधिक सामर्थ्य वाली लगती हैं?

उत्तर नही। न कम न अधिक। सामार्थ्य समय में से नही व्यक्तित्व में से आता है। नया १९६१ का साल पुराना से समर्थ हो तो असमर्थों के लिए बने हुए याजनालय भोजनालय और औषधालय सब खतम हो जायें और लोग कुछ न करें सिर्फ समय का आसरा देखा करें।

सामर्थ्य श्रद्धा में से आता है। श्रद्धा का जमाना यह नही समझा जाता। इसलिए सामर्थ्य का वो जमाना शायद यह नही है। कुछ बिखरा बिसरा है। मानस का गठाव और जुगाव उतना उपयोगी नही समझा जाता, जितना बिखराव। सामर्थ्य से उल्टी चीज है त्रिज्म में से बिखरी यह रंगीनी और नुक्ताचीनी। कहानियों में ऐसा मसाला मैं आज ज्यादा देखता हूं।

प्रश्न हिंदी की नई कहानी मे प्रयोगा का जो एक क्रम या नय ढग से बात कहने का जो प्रयत्न दृष्टिगत है, वह आपको नयी पौध के फलने-फूलने का सन्तोष दे पाता है।

उत्तर प्रयोग का प्रयत्न मेरी समझ मे नही आता। हर सृष्टि प्रयोग है। हर नई कहानी प्रयोग म से आती है। क्या पहले क्या अब। यह प्रयोगशीलता गर्भित है जीवन म और पुरुषार्थ का नाम है। लेकिन प्रयत्नपूर्वक होने वाला प्रयोग जीवनमय नही होता है। इसलिए रूप शिल्प के साथ हुआ करता है, जो व्यर्थता है।

प्रश्न कहानी के बारे म आपका निजी मत क्या है। आप कौनसी दिशा को नये लेखको के लिए श्रेयस्कर मानेंगे।

उत्तर निजी मत कुछ नही है। कारण, मैं कहानी लेखक रहा हू अब भी हो सकता हूँ। मत अ-लेखक के लिए जरूरी होता है।

दिशा मुझे वह चाहिए जो किसी भी दूसरी दिशा स अलग या उल्टी होने की मजबूरी से बची रहे। दिशाएँ सब स्पेस म चलती हैं। मैं टाइम की शिक्षा पसन्द करूगा जो स्पेस की किसी दिशा को नही काटती और सबको भरपूर बनाती है।

टाइम की दिशा को आत्मिक कहना चाहिए। आब्जेक्टिव से स्वतत्र सब्जेक्टिव।

● चन्द्रगुप्त विद्यालकार

आपके प्रश्नो का उत्तर देने स पूर्व मैं स्वय आप स यह पूछना चाहता हूँ कि 'हिन्दी की नवीन कथा-सृष्टि' म आपका अभिप्राय क्या है ? नई यानी ताजा लिखी हुई कहानी या किसी नय तर्ज की कहानी ? या आपके 'हमारी दृष्टि हिन्दी की नवीन कथा-सृष्टि' शीर्षक का सीधा अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि आज हिन्दी म जो कहानियाँ लिखी जा रही हैं उनके सम्बन्ध म आप विभिन्न व्यक्तियो की राय जानना चाहते हैं। पर पहले प्रश्न म आपने कहा है 'हिन्दी की नई कहानी का जो स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है'—इस वाक्यांश म यदि 'हिन्दी की नई कहानी' की जगह आप 'हिन्दी कहानी का आज जो स्वरूप'—लिखते तो कोई दूसरा अर्थ निकलने की गुजाइश नही थी। पर जब आप 'हिन्दी की नई कहानी' की बात करते हैं तो स्पष्टत वह हिन्दी कहानी की एक नयी शैली की बात प्रतीत होती है। मैं आपसे पूछना चाहता हू कि आपका वास्तविक अभिप्राय क्या है ?

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है आज की हिन्दी कहानी को भी मैं हिंदी कहानी की एक शानदार परम्परा का अंग मानता हूँ उससे पृथक और विच्छिन्न कोई नयी धारा नहीं मानता।

अगर मैं गलती नहीं करता तो, समकालीन कहानी को परम्परागत धारा से विच्छिन्न करने का प्रयास आज से लगभग १८ या १६ वर्ष पूर्व श्री शिवदानसिंह चौहान ने शायद सबसे पूर्व किया था। उन्होंने अपने से पूर्व के बहुत से कहानी लेखकों के पास एक प्रश्नावली भेजी थी जिसका कुछ लोगों ने पूरी ईमानदारी से उत्तर दिया था। स्वभावतः वे उत्तर श्री शिवदानसिंह की धारणाओं से भिन्न थे। उन उत्तरों के आधार पर श्री चौहान ने अपने से पूर्व के कहानी लेखकों की भर्त्सना में लगभग वैसी ही बातें कही थीं, जैसी बातें आज के कुछ नये कहानी लेखक अपने से पूर्व के लेखकों जिनमें संभवतः श्री शिवदानसिंह भी सम्मिलित हैं, की उनकी कहानी-सम्बन्धी धारणाओं के बारे में कह रहे हैं। कठिनाई यह है कि हिन्दी में प्रति वर्ष नये आने वाले कितने ही कहानी-लेखक अपने से पूर्व के अधिकांश लेखकों को पुराना और 'आउट-आफ-डेट' मानने लगते हैं।

कहानी के सम्बन्ध में मुझे गहरी दिलचस्पी है। मैंने इस बात को जानने का पूरी ईमानदारी से प्रयत्न किया है कि हिंदी के ये नये लेखक कहानी नामक साहित्यिक माध्यम में क्या आधारभूत परिवर्तन ले आये हैं, जिसके आधार पर वे उसे 'नई कहानी' (नयी लिखी हुई कहानी के अर्थ में नहीं, अपितु नयी टैक्नीक की कहानी के अर्थ में) कह रहे हैं। इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाता है वह मैं पढ़ने का प्रयत्न करता हूँ। प्रयत्न इसलिए कह रहा हूँ कि जहाँ मुझे उलझाव और निरर्थक शब्दाडम्बर के अम्बार दिखाई देते हैं उस सब को पूरा तरह पढ़ पाना शक्य नहीं रहता।

सच बात तो यह है कि कहानी नामक यह साहित्यिक माध्यम यों भी एकदम नया है जिसका विकास गत एक सदी ही की कहानी है। यह माध्यम सिर्फ नया ही नहीं है, अपितु सच्चे अर्थों में विश्वजनीन और मूल्यों की दृष्टि से पूरी तरह सार्वभौम है। संसार के सभी देशों में कहानी की टैक्नीक और कहानी सम्बन्धी धारणाएँ एक समान हैं। लगभग मैंने इसलिए कहा कि 'विषय' और 'ट्रीटमेंट' में स्वभावतः कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है। यों कहानी नामक इस माध्यम का निरन्तर विकास भी हो रहा है। उसमें नये-नये प्रयोग भी किये जा रहे हैं। पर यह सब एक अविच्छिन्न धारा के विकासमान निरंतर प्रवाह के समान हैं। हिन्दी के कुछ नये कहानी लेखक विश्व कहानी की धारा से पृथक कोई नयी उपलब्धि प्राप्त कर गये हैं यह स्थापना मुझे हास्यास्पद प्रतीत होती है।

मैं आज की नयी हिंदी कहानी के पार्थक्य को समझने की चेष्टा की बात कर रहा था। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि टकनीक की दृष्टि म कहानी नामक यह साहित्यिक माध्यम क्रमश इतना नपा-तुला और एग्ज़ क्ट बन गया है कि अच्छी कहानी लिखना एक अत्यत कठिन काय बन गया है। (विश्व के कुछ विचारको की राय है कि ससार भर मे वास्तविक अर्थों म श्रेष्ठ कहानियाँ बहुत कम लिखी जाती हैं।) आज की कहानी म एक वाक्य तो क्या एक शब्द भी ऐसा नही होना चाहिए, जो कहानी के केन्द्रीय भाव के चित्रण म सीधे तौर स सहायक न हो फिर कथानक केन्द्रीय भाव क चित्रण का माध्यम और उपकरण मात्र है यह उद्देश्य नही है साथ ही यदि कहानी खूब दिलचस्प और कौतूहलोत्पादक न हुई तो कमज़ोर मानी जाएगी, इस पर केन्द्रीय भाव तो चमत्कारपूर्ण होना ही चाहिए। इन तथा एसी ही कुछ बाता के कारण अच्छी कहानी लिख सकना एक अत्यन्त कठिन काय बन गया है और हमारे यहाँ अथवा बाहर नई कहानी' नाम स जो आन्दोलन खड़ा किया गया है वह वास्तव म उक्त परिस्थिति क खिलाफ विद्रोह है। लोग, जिनम नये-पुराने सभी तरह क व्यक्ति हैं खूब लिखना चाहते हैं जो जी मे आय कहानी म लिखना चाहते है और इस पर वे यह भी चाहते हैं कि उनकी रचनाएँ टकनीक की दृष्टि स भी श्रेष्ठतम मानी जाएँ। नई कहानी नामक नारा इन्ही परिस्थितियो का परिणाम है।

अब बहुत सक्षप म आपके प्रश्नो के उत्तर द रहा हू

१ आज की हिंदी कहानी का एक ही स्वरूप नही है। उसम खूब विविधता है और इसी विविधता क कारण उसके भविष्य के प्रति मेरा मन पूरी तरह आश्वस्त है। क्रमश कचरा बह जाएगा और निर्मल तत्त्व निखर आएगा।

२ आज की कहानियाँ विगत की तुलना म कम या अधिक सामर्थ्य वाली हैं इस तरह की स्थापना न सिर्फ व्यर्थ है अपितु भ्रामक भी है। अच्छी, बुरी तथा शक्तिशाली और सामर्थ्य रहित—सभी तरह की कहानियाँ पहले भी लिखी जाती थी और आज भी लिखी जा रही हैं। या प्रवृत्ति का अध्ययन करना हो, तो मैं यही कहूगा कि टकनीक की दृष्टि से हिंदी कहानी क्रमश निखरी है। यद्यपि प्रेमचन्द की कफन' (जो सन् १९३३ म लिखी गयी थी) की कोटि की शायद ही कोई दूसरी हिन्दी कहानी आज भी उपलब्ध हो।

३ प्रत्येक साहित्यिक माध्यम क विकास क लिए प्रयोगो का क्रम उपयोगी होता है। पर प्रयोग करत हुए यदि प्रयोगता पहले स ही निश्चित धारणाएँ बना कर चले, तो वह सफल प्रयोग कहाँ कर पाएगा।

४ कहानी के बारे म मेरा निजी मत क्या है ? इस सम्बन्ध मे कुछ न कह कर (या ऊपर मैं कुछ न कुछ कह ही आया हू) मैं नय कहानी लेखको को य तीन सलाह देना चाहूगा (क) वे ससार के श्रेष्ठ कहानी साहित्य का अध्ययन कर यह बात जानने की कोशिश करें कि कौन से तत्व कहानी को श्रेष्ठ और प्रभावशाली बनाते हैं (ख) अपने आस-पास की दुनिया का सूक्ष्म दृष्टि से देखकर वे उसे समझने तथा उसके सम्बन्ध मे अपनी स्वतन्त्र धारणाएँ बनाने का प्रयत्न करें और (ग) अपने पर्यवेक्षण तथा धारणाओं को पूरी ईमानदारी और परिश्रम से अपनी कहानियों द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयास करें। जिस कहानी म जितना अधिक तत्व होगा वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली होगी।

• • •

● यशपाल

आपके प्रश्नों के उत्तर सक्षेप मे देने का यत्न कर रहा हू। अपनी सुविधा के लिए अन्तिम प्रश्न से आरम्भ करूँगा

प्रश्न १—कहानी के सम्बन्ध म मैं अपना मत अपनी कहानियो के संग्रह 'ओ भैरवी' की भूमिका म व्यक्त कर चुका हू, वही बात सक्षेप म दोहरा रहा हू

मेरे विचार म कहानी द्वारा मनुष्य, मानव-समाज के रूप म, अपनी समस्याओं पर चिन्तन करता है। उस चिंतन को रोचक और सुबोध बनाने के लिए काल्पनिक उदाहरणों से कहानी के रूप मे उस चिन्तन की अभिव्यक्ति की जाती है। कुछ लोगो का मत है कि कहानी का मुख्य लक्ष्य मनुष्य का बौद्धिक या मानसिक विनोद होना है। सन्तोष और विनोद, सौन्दर्य और रुचि की तृप्ति से होता है। सौन्दर्य और रुचि अन्योन्याश्रित है परन्तु व्यवहार म रुचि हेतु जान पड़ती है, और सौन्दर्य उसका उपादान और फल जान पड़ता है। रुचि के बिना सौन्दर्य के अस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती। मनुष्य की रुचि उसके जीवन के विकास और सहायता देने वाले तत्वो से ही हो सकती है। *ऐसे विचारो और तत्वो म ही सौन्दर्य मिल सकता है।* इन *विचारो* और तत्वो को काल्पनिक उदाहरणो से समाज के चिन्तन के लिए अभिव्यक्त करने म ही कहानी बनती है। जब कई विचार और तत्व, समाज के उत्तरोत्तर विकास के कारण समाज के लिए निरर्थक अथवा बाधा स्वरूप हो जाते हैं तो वह कहानी के तत्वो के योग नही रहते। उदाहरणार्थ आज चक्रवर्ती सम्राट बनाने की महत्वाकांक्षा करने वाले योद्धाओं की कहानी अथवा स्वामी और सेवक के सम्बन्ध को पिता-पुत्र का

सम्बन्ध बताने वाली कहानी न रोचक होगी न सार्थक। समाज, विकास, गति और परिवर्तन के मार्ग पर चलता है, इसलिये कहानी में भी विकास, गति और परिवर्तन नितान्त आवश्यक है।

ज्यों-ज्यों समाज, जीवन की रक्षा और विकास के नये उपादानों और उपकरणों को अपनाता है, उसकी समस्याएँ भी नयी हो जाती हैं। ऐसी नयी समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए नये माध्यमों और प्रतीकों की खोज स्वाभाविक है। ऐसी प्रवृत्ति, विकास और उन्नति की परिचायक है किसी भी भाषा और साहित्य के लिए वह कल्याणकारी होनी चाहिए।

पिछले वर्षों में हिन्दी कहानी के विकास की गति बहुत अच्छी रही है। मेरे विचार में नयी पीढ़ी के अनेक लेखक हिन्दी साहित्य के आरम्भिक लेखकों से बहुत आगे बढ़ते जा रहे हैं। और मुझे भरोसा है कि हिन्दी कहानी का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल होगा। ●●●

नयी कहानी . एक पर्यवेक्षण

आखिर यह नई कहानी है क्या?

●

उपेन्द्रनाथ अश्क

●

'नयी कहानी में वस्तु और प्रकार की कोई सार्थक उपलब्धि है?' इस प्रश्न को लेकर पिछले दिनों इलाहाबाद रेडियो से एक परिसंवाद ब्राडकास्ट हुआ। जिन 'नये' कलाकारों ने उसमें भाग लिया उनके नाम हैं—इलाचन्द्र जोशी भगवती चरण वर्मा यशपाल अमृतराय विजयदेव नारायण साही और अन्य । इन नामों का उल्लेख मैंने इसलिए किया है कि जब मुझसे परिचर्चा में भाग लेने के लिए कहा गया था और मुझे नामों का पता चला था तो मैंने आपत्ति की थी कि इनमें नये कथाकारों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई नहीं पुराने कथाकार नयी कहानी' का अस्तित्व या उपलब्धि कुछ मानेंगे नहीं और यह सेमिनार नयी कहानी' के सम्बन्ध में पुराने कथाकारों के विपरीत फतवों पर खत्म होगा।

और यदि सेमिनार वाले दिन स्थानीय नये कथाकारों ने आदरणीय जोशी जी को काफी-हाउस में न घेरा होता तो बात वही होती, जिसका मैंने उल्लेख किया। सेमिनार

से ग्राध-एक घण्टा पहले जब मैं पहुँचा तो रेडियो के लॉन म बिछे कोचों पर सेमिनार म भाग लेन वाले आदरणीय कथाकार बैठे थे। यशपाल अभी पहुँचे न थ और शेष इस बात पर आश्चर्य प्रकट कर रह थ कि आखिर यह 'नयी कहानी' है क्या ? उन्हें उसके अस्तित्व तक से इन्कार था पर जब सेमिनार के लिए सब अन्दर स्टूडियो म गये और जोशी जी ने एनाउन्समेंट देखा— नयी कहानी म वस्तु और प्रकार की ' ता वाले इसम तो नयी कहानी है यह मान कर ही चला गया है हम केवल यह देखना है कि उसकी वस्तु और प्रकार की कोई सार्थक उपलब्धि है या नहीं ? अपने उद्घाटन भाषण म उन्होंने यही बात दोहरायी और बायीं ओर बैठे सज्जन से कहा कि आप शुरू कीजिए।

उन सज्जन न कहा कि नयी कहानी प्रेमचन्द के 'कफन' ही से शुरू हो गयी थी। और तब से लेकर आज तक 'नयी' कहानियाँ सदा लिखी जाती रही हैं। उन्होंने नयी वस्तु और शिल्प का उल्लेख कर राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या' के नितान्त प्रयोगात्मक प्रयास तक बात को पहुँचा दी बायीं ओर बैठे दूसरे सज्जन की ओर विषय को ठेल दिया। उन दूसरे सज्जन न 'अभिमन्यु की आत्महत्या' या किसी दूसरे प्रयोग पर राय देने के बदले अपने सामने बैठे लखनऊ-वासी तीसरे कथाकार मित्र से अपनी पुरानी बहस का उल्लेख किया कि व नयी कहानी के अस्तित्व को नहीं मानते जबकि मैं मानता हूँ। बिना किसी नयी कहानी या प्रयोग का उल्लेख किये उन्होंने कहा कि वे नयी कहानी की उपलब्धि से आश्वस्त हैं। तीसरे महानुभाव ने उसी बहस का उल्लेख किया जो व लखनऊ म उन दूसरे सज्जन से किया करते थे (और चूँकि उन्होंने एक भी नयी कहानी न पढ़ी थी) इसलिए कुछ कहानी के आधारभूत तत्वों और कुछ भूले बिसरे जमाने म लिखी अपनी कहानियों का उल्लेख कर इधर-उधर की बातों म दो के बदले आठ मिनट लगा दिये (तय यह था पहले दौर म सब लोग दो-दो मिनट बोलेंगे फिर दूसरे दौर म सब को दो-दो मिनट दिये जायेंगे) और बड़े जोर स कहा कि नयी कहानी की कोई सार्थक उपलब्धि व नहीं मानते। चौथे न उनका समर्थन किया कि उनकी समझ म नहीं आता, नयी कहानी म नया क्या है ? उन्होंने प्रेमचन्द की कुछ कहानियाँ गिनाईं और पूछा कि व कम नयी नहीं हैं ? और नये कथाकारों की आठ-दस कहानियों के नाम लिए और पूछा कि वे कम नयी हैं ? पाँचवें साहब ने उनका उत्तर दिया के बदले नयी कहानी के मानवीय पक्ष का उल्लेख कर यह दर्शाया कि उन्होंने कम-से-कम दो 'नया' कहानियाँ—कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' और शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' ध्यान से पढ़ी हैं। इसी सब म सारा समय समाप्त हो गया। तब आदरणीय जोशी जी ने जो बहस सुनने के बदले पढ़ने और तालबन्दी की ओर संलग्न रहे थे, उनका समापन करने का यत्न किया और परम उल्लास से घोषणा की कि आज के परिसंवाद म ये दस परिणाम

पर पहुँचे हैं कि नयी कहानी की उपलब्धि खूब धनी और साथक और सभी उपस्थित जन उससे परम सतुष्ट है। और जब रेडियो की लालबत्ती चली गयी तो रेडियो से सलग्न श्रोताओं ने ऐसे सफल और मनोरजक परिसवाद पर उन्हें ढेरों बधाइयाँ दी।

मन की बात कहूँ तो ऐसा हास्यास्पद और निरथक परिसवाद मैंने कभी नही सुना, तो भी जिन महानुभाव ने नये कहानीकारों की आठ दस कहानियो का उल्लेख कर पूछा था कि वे कैसे नयी हैं, और कैसे प्रेमचन्द से आगे हैं उन्होंने एक आधारभूत प्रश्न उठाया था और मेरे खयाल में उस पर पूरी तरह विचार करके उस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए था।

जहाँ तक हिन्दी की नई कहानी के आरम्भ और विकास का सम्बन्ध है 'नयी' के नाम को लेकर वही एक प्रश्न नही, प्रश्नो की एक श्रृंखला सामने आ खडी होती है।

- *नयी कहानी का आरम्भ कहाँ से माना जाय ? क्या प्रेमचन्द के यहाँ नयी कहानी* नाम की कोई चीज़ है ?

- यदि प्रेमचन्द को पुरानी कहानी का प्रतिनिधि माना जाय और उनसे भिन्न—मनोवैज्ञानिक यथाथ—विशेषकर सेक्स को लेकर जो कहानियाँ उन्ही के समय मे लिखी जाने लगी थीं उन्हे 'नयी' की सज्ञा दी जाय तो क्या इस दृष्टि से जैनेन्द्र और अज्ञेय नये कहानीकार नही है ? क्योंकि प्रेमचन्द की तुलना में इन दोनो की कहानियाँ वस्तु और शिल्प के लिहाज से एकदम भिन्न हैं।

- यदि इन दोनो को भी पुराने कहानीकार माना जाय तो क्या यशपाल से नयी कहानी का आविर्भाव हुआ ? क्योंकि यशपाल के यहाँ वस्तु और उसे देखने वाली जो दृष्टि है, वह पहले तीनो के यहाँ नही है।

- और फिर अमृतराय ? (जिन्होंने 'आह्वान' को छोड कर शायद कोई भी कहानी पुराने शिल्प में नही लिखी और सभी तरह के प्रयोग किये।

- यदि इन सबको ही पुराने कथाकार' मान लिया जाय तो नयी कहानी 'किससे' या 'किनसे' शुरू हुई ? नयी कविता के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहा जा सकता है (सप्रमाण) कि उसे शमशेर और प्रभाकर माचवे ने शुरू किया मुक्तिबोध और नेमीचन्द जैन ने उसके समारम्भ में योग दिया और अज्ञेय ने उसको समन्वित रूप प्रस्तुत किया (नामों के आगे पीछे के बारे में विवाद हो सकता है पर मूल बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता।) क्या 'नयी कहानी' के सम्बन्ध में भी कोई ऐसी बात कही जा सकती है ?

घूम फिर वर वही दो प्रश्न फिर सामन आते हैं

१ क्या प्रमचन्द के यहाँ भी कुछ ऐसी कहानियाँ नही, जो उनके सतत प्रगतिशील और जागरूक कथाकार न अपने अन्तिम दिनो म लिखी, जो हर लिहाज से उनकी पुरानी आदर्शोन्मुख कहानियो से भिन्न हैं और जिन्हें 'नयी' की सना वस्तु और शिल्प दोनो क लिहाज से दी जा सकती है ! मिसाल के लिए 'नशा' 'बडे भाईसाहब' 'मनोवृत्तिया' और कफन'।

२ इसक विपरीत क्या आज के नये कथाकारो के यहाँ कुछ एसी कहानियाँ नही हैं, जिनम चाहे कुछ खूब उच्च कोटि की हैं, लेकिन शिल्प और शली के लिहाज से पुरानी कहानी से भिन्न नही ? उदाहरण क लिए मोहन राकेश की मलवे का मालिक' राजेन्द्र यादव की जहाँ लक्ष्मी कद है' शिवप्रसादसिंह की नन्हों' मार्कण्डेय की गुलरा के बाबा' भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टरी', कृष्णा सोवती की सिक्का बदल गया', कमलेश्वर की देवी की माँ' आदि आदि ।

रेडियो के उपरोक्त सेमिनार म उठाय गय प्रश्न ही का नहीं, इन सभी प्रश्नो का कोई न कोइ उत्तर दिये बिना हम आगे नही बढ सकते ।

जहाँ तक शिल्प और वस्तुगत प्रयोगो का सम्बन्ध है इसमे कोई सन्देह नही कि ये प्रयोग निश्चित रूप से (बदलते हुए राजनीतिक और सामाजिक माहौल के कारण) प्रेमचन्द के यहाँ आरम्भ हो गय थे और प्रेमचन्द की उपरोक्त चारों कहानियाँ मेरे इस कथन का प्रमाण हैं । 'कफन' और 'बडे भाई साहब' म पात्रो का चरित्र चित्रण कथा की कथानकहीनता और यथाथ की पकड आज की किसी भी नयी कहानी की उपलब्धि मानी जा सकती है ।

लेकिन इस पर भी नया' सब कुछ प्रेमचन्द के यहाँ ही समाप्त नहीं हो गया । जैनेन्द्र न बडे भाईसाहब' की मनोवैज्ञानिकता को दूसरे धरातल पर (और भी गहरे पैठ कर उठाया । जनेन्द्र की 'अपना पराया', 'फाँसी' अथवा 'पाजेब' आदि पुरानी तरह की कहानियाँ हैं लेकिन राजीव और उसकी भाभी', *दिल्ली बच्चा', 'एक रात', नीलम देश की राज कन्या'* और रत्न प्रभा' उस नयेपन को और भी आगे बढाती है ।

इस कडी म अज्ञेय की 'जीवनी शक्ति', 'रोज', सटर बक्स' और 'हीलीबोन की बत्तखें' आती हैं और यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'हीलीबोन की बत्तखें में यह अभी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा ।

यशपाल ने पुराने वस्तु सत्य का मार्क्सवादी दृष्टि से देखा और परखा। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने जहां तन और उसकी सहज आवश्यकताओं की गहराई में डुबकी लगाकर, खुर्दबीन से देखी जाने वाली मन की स्थितियों को अपनी गहरी अन्तर्दृष्टि से उजागर किया वहां यशपाल ने शरीर और मन के साथ अर्थ को जोड़कर सामाजिक अथवा वैयक्तिक सम्बन्धों को परखा और उस परख के परिणाम रखे। उनकी कहानी 'पराया सुख' उनकी कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है और यशपाल की सूझ-बूझ, अकाट्य तर्क और गहरी अन्तर्दृष्टि की परिचायक है।

और यों प्रेमचन्द के जमाने ही से नयी कहानी पुरानी के साथ साथ अपने नये शिल्प, शैली और दृष्टि को लिए हुए चलने लगी और यदि मैं कहूं कि यह विकास अभी जारी है, नयी कहानी दो-चार दिशाओं में ही नहीं दसों दिशाओं में विकास कर रही है तो गलत न होगा। बेशुमार लेखक जिनका नाम, चाहे उतना सामने न आये, इस विधा में प्रयोग कर रहे हैं। लेखकों का नाम (बार बार सामने न आने के कारण) याद नहीं रहता पर कहानी याद रह जाती है। यह प्रगति इतनी बहुमुखी है कि इसे शब्दों अथवा शब्दगत रूढ़ियों में बांध पाना कठिन लगता है और किसी नयी दिशा में बढ़ने वाला हर कथाकार समझता है कि दिशा वास्तव में नयी है—पिछले दिनों *नयी कहानी के देहाती और शहरी पक्ष को लेकर जो शोर मचा* वह इसी धारणा का परिणाम था।

वास्तव में दो महायुद्धों ने संसार भर को जैसे झकझोर कर रख दिया। आज के लेखक ने पूरे के-पूरे राष्ट्रों को दूसरी जातियों अथवा राष्ट्रों से एक अंधी, क्रूर पाशविकता का व्यवहार करते हुए एक अमानवीय कठोरता से उन्हें पददलित करते हुए उनका अस्तित्व तक मिटते हुए देखा और अनजाने ही उसकी पुरानी मान्यताएं बदल गयीं। ऐसी पाशविकता ऐसी क्रूरता तो पहले कहानियों में कहीं नहीं थी। साहित्य में तो क्रूर-से-क्रूर व्यक्ति के मन में भी ममता की खोज दिखाया जाता था। इस सामूहिक पाशविकता का कारण जानने के लिए समूह की इकाई-व्यक्ति उसकी उत्पत्ति विकास उसके मनोभावों और उद्वेगों की ओर लेखक की दृष्टि गयी। डार्विन, मार्क्स और फ्रायड ने इस काम में उसका पथ निर्देश किया। एक ने मानव की उत्पत्ति दूसरे ने उसके क्रिया-कलाप और तीसरे ने उसके मनोविज्ञान के सम्बन्ध में पुरानी धारणाओं को बदल दिया और मानव के कृत्यों का कारण पशु से उसके विकास मानव समाज की ऐतिहासिक और आर्थिक यथार्थताओं अथवा उसके विकसित या अविकसित मन की गहराइयों में खोजा जाने लगा।

इस तहरी दृष्टि से देखने पर पुराने माने हुए सत्य झूठ दिखाई देने लगे।—भाई अपनी बहनों से उतना प्यार नहीं करते, जितना बहनें अपने भाइयों से—हमारे यहां

यह एक माना हुआ सत्य था। पर युद्ध की विभीषिका दिन दिन बढ़ती कीमता और देश के विभाजन के बाद जब लड़कियाँ नौकरी करने लगी व न केवल आर्थिक रूप से स्वावलम्बिनी हुई, वरन माता पिता और छोटे भाई बहनों की पालन-कर्त्री बनी तो घर में उनकी स्थिति अनायास बदल गयी। और बेरोजगार भाइयों के लिए कहीं-कहीं उनका व्यवहार वैसा ही उपेक्षापूर्ण हो गया, जैसा कभी पहले भाइयों का बहनों के प्रति होता था। न केवल यह बल्कि माता पिता को भी उस व्यवहार में कोई असंगति दिखाई नहीं दी। उषा प्रियम्वदा ने अपनी कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में इसी वस्तु सत्य को नयी दृष्टि से परखा है।

ऐसिया पुराने राजनीतिक सामाजिक अथवा वैयक्तिक मूल्य इस नहरी दृष्टि के प्रकाश में झूठ दिखायी देने लगे। मानव की सद्वृत्तियों ही को देखते रहने के बदले, लेखक का ध्यान उसकी ग्रंथियों, कुप्रवृत्तियों और स्वभाव की विशेषताओं की ओर भी गया। जब पुरानी कहानियों के आदर्श पात्र और उनकी स्थितियाँ जीवन में कहीं दृष्टिगोचर न हुई तो वैसी कहानियों से वितृष्णा होने लगी। लेखक के साथ साथ पाठक भी कहानी से मनोरंजन की अपेक्षा कुछ अधिक की मांग करने लगे। तब गढ़े गढ़ाए काल्पनिक कथानकों का जादू टूटा कथाकार ने वास्तव जीवन के जगत का सा, पहले निर्वैयक्तिक यथार्थवादी दृष्टि से मानव और समाज का दशा और ऐसी कहानियाँ लिखी जो जीवन का एक जीता-जागता, उसकी गति से स्पन्दित खण्ड मात्र दिखाई देती थी। ऐसी कहानियाँ प्रेमचन्द के वक्त ही से लिखी जाने लगी थी। प्रेमचन्द की 'बड़े भाई साहब' अज्ञेय की 'रोज', अमृतराय की 'बस्ते का एक दिन' ऐसी ही कहानियाँ हैं। नये कथाधारा में अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' इस धारा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। फिर कथाधारा ने वैयक्तिक दृष्टि से अपने पात्रों के अन्तर में भावों और अवचेतन, उपचेतन और अवचेतन तक में गोते लगाकर मानव की ग्रंथियों, विकृतियों और कुप्रवृत्तियों से पर्दा उठाया। जैनेन्द्र की 'रत्न प्रभा' और अज्ञेय का 'हीलीबोन की बत्तखें' से लेकर मोहन राकेश का 'मिस पाल', मार्कण्डेय की 'उत्तराधिकार,' राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' और राजकमल चौधरी की 'बस स्टॉप' तक इन कहानियों की लम्बी शृंखला है। यहाँ नहीं नये कथाकार ने उस वैयक्तिकता में भी निःसंग दृष्टि अपनायी और अपने ही मन के भावों का एक निरपेक्ष द्रष्टा की तरह विश्लेषण करने का प्रयास किया। जितेन्द्र की 'य घर य लोग' और राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या' इसके उदाहरण हैं।

दृष्टि बदली मानव और जीवन को देखने के ढंग बदले, तो कहानी का शिल्प भी बदला। पहले की-सी कथानक प्रधान भटका देने और मधुर टीस उत्पन्न करने वाली गढ़ी-गढ़ाई कहानियों के बदले जीवन की गहमागहमी, रंगारंगी, बहु-रूपात्मकता जटिलता,

संश्लिष्टता का प्रतिबिम्ब लिए हुए[१] सीधे सादे स्केच की सी[२] निबन्ध की-सी[३] संस्मरण[४] या यात्रा विवरण की सी[५], कुछ प्रभावों अथवा स्मृतियों का गुम्फन मात्र[६] वर्णनात्मक[७] चित्रात्मक[८] डायरी के पन्ने[९], अथवा पत्रों का रूप लिए हुए[१०], एक ओर लोक-कथा और दूसरी ओर उपन्यासों की हदों को छूती हुई[११]—तरह तरह की कहानियाँ लिखी जाने लगी। पहले कहानियों का प्रयोग होता था, जिससे उनकी सरलता और सुगमता द्विगुणित हो जाती थी। अब उनमें स्पष्ट अथवा अस्पष्ट बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग होने लगा, जिनसे उनकी जटिलता और संश्लिष्टता बढ़ी। निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', मार्कण्डेय की 'घुन', राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या', अमृतराय की 'मंगला-चरण' ऐसी ही कहानियाँ हैं। लेकिन कहानी के नये शिल्प में प्रतीकों की आवश्यकता थी। उपमाएं प्रायः बाहर की स्थितियों को समझने में सहायता देती हैं बिम्ब और प्रतीक मन की स्थितियों को समझने में सहायक होते हैं। कई बार जिस मानसिक स्थिति को समझने के लिए परे और पृष्ठ रंगने की आवश्यकता होती है वह एक बिम्ब अथवा प्रतीक के माध्यम से समझा दी जाती है।

लेकिन वस्तु शिल्प के ये प्रयोग जैसा कि इन तथा दूसरे उदाहरणों से पता चलता है पुराने कथाकारों में भी मिलते हैं और गठी-गठाई झटका देकर खत्म होने या मन में एक टीस सी छोड़ देने वाली कहानियाँ नये कथाकारों ने भी लिखी हैं। राकेश के यहाँ 'मलबे का मालिक' और नये बादल', राजेन्द्र यादव के यहाँ 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' और खुशबू' रेणु के यहाँ तीर्थोदक' और मारे गये गुलफाम', कृष्णा सोबती के यहाँ मिक्का बदल गया' और गुलाब जल गडेरियाँ, मन्नू भण्डारी के यहाँ

---

१ जिन्दगी और जोंक (अमरकान्त), जानवर और जानवर (मोहन राकेश), प्लाट का मोर्चा (शमशेर बहादुर सिंह)
२ खेल (रघुवीर सहाय) नंगा आदमी नंगा जख्म (अमृतराय)
३ समाप्ति (जैनेन्द्र)
४ अकेले (रामकुमार) घरौंदा (नरेशप्रसाद गुप्त), द्रौपदी (लक्ष्मीनारायण लाल)
५ पहाड़ की स्मृति (यशपाल)
६ खुलाव (राजेन्द्र यादव)
७ शिमल के क्लब की कहानी (रामकुमार)
८ निशा जी (नरेश मेहता)
९ निष्परगिता की डायरी (नरेश मेहता)
१० सहेली के खत (अमृतराय)
११ नीलम देश की राज कन्या (जैनेन्द्र) तथा नीली झील (कमलेश्वर)

सियानी बुआ' और 'यह भी सच है', मार्कण्डेय के यहाँ 'गुलरा के बाबा' और 'माही' अमरकान्त के यहाँ 'डिप्टी कलक्टरी' और 'दोपहर का भोजन', भीष्म साहनी के यहाँ 'चीफ की दावत' और 'इमला'—पुरानी और नया कहानियाँ साथ-साथ मिलती हैं।

नय कथाकारा का मैं तीन श्रेणिया म बाटना चाहूँगा।

१ वे कथाकार, जिन्होंने चाहे दो-एक नये प्रयोग किये हों, लेकिन साधारणत उनकी कहानियाँ नख से शिख तक चुस्त और दुरुस्त, पुरानी शैली के पूरे मिजाज के साथ लिखी जाती हैं। इन में राकेश, शिवप्रसाद सिंह, रेणु मन्नू भडारी, उषा प्रियम्वदा और शानी प्रमुख हैं।

२ वे कथाकार जिन्होंने चाहे चार-छ कहानियाँ पुरानी शैली की लिखी हों पर जिनका रुझान नये शिल्प और नयी वस्तु की ओर है, इनमें राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय राजकमल चौधरी, रामनारायण शुक्ल और प्रयाग शुक्ल के नाम उल्लेखनीय हैं।

३ वे कथाकार जिन्होंने एकदम नया शिल्प और नयी वस्तु अपनायी है। इनमें राम कुमार, निर्मल वर्मा, रघुवीर सहाय नरेश महता राजेन्द्र किशोर मुद्राराक्षस, रणधीर सिन्हा वीरेन्द्र मेहता रस्तो, नरेन्द्र जोशी आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

एसे अगिनित नये कथाकार, जिनकी दो एक कहानियाँ ही मैंने पढ़ी हैं और जिनकी कहानियाँ का तो याद है पर लेखकों का नहीं इन्हीं तीन श्रेणियों के अन्तर्गत आते हैं। दयानन्द अनन्त या ऐसा ही कुछ नाम याद आता है जिनकी बड़ी ही सुन्दर नख से शिख तक दुरुस्त कहानी 'गुडियाँ गले' । न गत मैंने पढ़ी थी और रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की कहानी 'क्या नहीं बनूंगा' अभी पढ़ा है जिसमें शिल्पगत नया प्रयोग है। इन सभी कथाकारों के सम्मिलित प्रयत्नों से नयी कहानी का जो रूप सामने आता है, वह उज्ज्वल दीखता है। पुराना परम्परा से हट कर लिखने वालों ने भी कुछ बड़ी सुन्दर कहानियाँ दी हैं—मार्कण्डेय की माही' रामकुमार की हुस्ना बीबी', राजकमल निर्मल वर्मा की परिन्दे, नरेश मेहता की तथापि', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', राजकमल चौधरी की 'बस स्टाप'—इस कथन की सबल प्रमाण हैं। एक खतरा अवश्य है कि नयी कहानी नयी कविता की तरह पश्चिम की वस्तु स्थितियों और मनोभावनाओं का अपने ऊपर लादकर दुर्बोध दुर्गम और अवास्तविक न हो जाय। विशिष्टता के चक्कर में कुछ नये कथाकार इसका भी प्रयास कर रहे हैं। श्रीकान्त वर्मा की कहानी टोसा' इसका उदाहरण है। उसका पुरुष न यहाँ का पुरुष लगता है न युवती यहाँ की युवती। मार्कण्डेय के धुन' और अमृतराय के 'मगला चरण' का प्रतीक इतना दुर्बोध है कि लेखक के समझाए ही समझ में आता है

और इस पर भी वह कथा स स्वत नि सृत नही ऊपर स लादा हुआ प्रतीत होता है। फिर पद्य तो आत्मरत होकर जी सकता है (यद्यपि इसम मुझे सन्देह है) लेकिन गद्य के लिए दुर्बोध होकर जीना मुश्किल है। अच्छी बात यही है कि कथाकारा म राकेश, शिवप्रसाद सिंह भीष्म साहनी कृष्णा सोवती मार्कण्डेय कमलेश्वर, ज्ञानी, मन्नू भण्डारी उषा प्रियम्वदा आदि क रूप मे ऐसे सूक्ष्म कथाकार हैं, जो परम्परा से कटे नही, वरन पुराना परम्परा के गुणा को अपनी शली म समो कर नयी वस्तु को अत्यन्त मनोरजक और हृदयग्राही ढग से दे रहे हैं।

जहाँ तक विगत की तुलना म वतमान कहानिया के सामर्थ्य का प्रश्न है, पुराने कथाकार के नाते मेरे लिए उस पर कोई राय देना सगत नही है। नय कथाकारा और आलोचका को कफन मनोवृत्तिया बडे भाई साहब नशा एक रात, रत्न प्रभा, पाजेब राजीव और उसकी भाभी, जीवन शक्ति, राज लटर बक्स, ट्रीलीबोन की बतखें पराया सुख राज पहाड की स्मृति अपना अपनी जिम्मेदारी धमयुद्ध, आह्वान और समय जसी उच्च कोटि की पुरान लखका की नई कहानियाँ पढ कर अपनी राय बनानी चाहिए। बडी झिझक के साथ म केवल इतना ही कह सकता हू कि नय लखका की कुछ कहानियाँ इनके बराबर चाहे पड जायें पर इन पर भारी कम ही पडेंगी। लेकिन साहित्य म तुलना कुछ अच्छी चीज नही है। एक सुदर रचना की तुलना दूसरी सुन्दर रचना स की ही नही जा सकती। केवल दोना का रस लिया जा सकता है। नये कथाकारा म नय ढग स बात कहने की जो लालसा है नये रूपाकार को ढूँढने या अपनाने की जो छटपटाहट है पुराने के प्रति जो खिजलाहट अथवा आक्रोश है वह उनकी युवावस्था ही का प्रतीक है और इसीलिए आश्वस्त भी करता है। क्योकि पुरान क प्रति आक्रोश और नय की खोज जिन्दगी का परिचय देती है। नये लेखका म जो लोग प्रयोग का महज प्रयोग के लिए अपनी विशिष्टता सिद्ध करने या दूसरा को चौंकाने के लिए लेंगे व शायद दूर तक नही जा सकेंगे। जो विभिन्न प्रयोग करके ऐसा शली अपना लगे जिसम वे अपनी अनुभूतिया को अपन विशिष्ट ढग से व्यक्त कर सकेंगे और जिन्दगी भर टामकटाय न मारेंगे वे जरूर साहित्य पर अपनी शली की अमिट छाप छाड जाएँगे।

इसके अतिरिक्त नय लखक के लिए इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि वह कैसा भी नया प्रयोग क्या न करे उसकी दृष्टि साफ रहे और जो वह कहना चाहता है वह जरूर कह दे। यह नही कि वह कहना कुछ चाहे और उसकी कहानी कुछ कहे। 'अभिमन्यु की आत्म हत्या' मे ऐसी ही बात हुई है। कथ्य यहाँ सामजस्य नहीं रहा और लेखक जो कहना चाहता है वह नहीं कह पाया। कहानी की अन्तिम पक्ति— 'वह मेरा आत्म की लाश था' सारे कथ्य का झुठला देता है। मेरे खयाल म आत्म

की हत्या करके जो आदमी लौटता, वह यह कहानी न कहता। हुआ वास्तव में यह कि कथा का नायक आत्म की हत्या करने गया था पर आत्म की लाश नहीं, सजीव आत्म को अपने कंधे पर लादे लौट आया। सुभद्रा—उसके अन्तर की मां, यानी सृजन शक्ति यानी आत्म और भी गहरे में जाये—आत्मा ही का प्रतीक है। उसने उसे छोड़ा कहा ? खत्म कहां किया ? डुबाया कहां ? उसे तो वह लेकर चला आया है अपने शिशुओं के लिए यानी अपनी रचनाओं के पालन-पोषण के लिए। ऐसा हो किंचित् धुंधलापन मार्कण्डेय की 'धुन' में भी है, लेकिन राजेन्द्र यादव ने अपनी 'खुल पंख टूटे डैने' में थीम का बड़ी कुशलता से निभाया है और मार्कण्डेय की 'माहीं' तो छोटी होने पर भी प्रयोग के नयेपन और संकेत के (सजेशन) अति सूक्ष्म होने के बावजूद मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। क्योंकि जो बात मार्कण्डेय उस कहानी में कहना चाहता है, वह उसने बड़ी बारीकी, लेकिन पूरी सफाई से कह दी है।

जहां तक मेरे मत का प्रश्न है, मैं समझता हूं कि सब से महत्व की चीज वस्तु और देखने वाली दृष्टि है। उसके बाद शिल्प का स्थान है। १६ ८ से ४८ तक उर्दू कहानी में लगभग वे सभी प्रयोग किये जा रहे थे, जोकि आज हिन्दी में किये जा रहे हैं(कोई अन्वेषी बड़े शौक से उर्दू की पत्रिकाओं को देख कर मेरे कथन की सच्चाई का जान सकता है) और उस वक्त आज की हिन्दी कहानी की तरह उर्दू कहानी की गति में बाढ़ पर आयी नदी का वेग था और कथाकारों की तीन पीढ़ियां एक साथ प्रति स्पर्धा के साथ सृजनरत थी। नये-नये प्रयोग आये दिन हो रहे थे। ऐसे उस वक्त मोपासां और माम के शिल्प से प्रभावित होकर मंटो ने कहानियां लिखनी शुरू कीं और उसी पुराने शिल्प को पूरी तरह अपना कर अपनी वस्तु के नयेपन दृष्टि की गहराई और गहन मानवीयता के साथ, उर्दू कहानी पर छा गया।

नये कथाकारों के सामने मैं मंटो की मिसाल रखना चाहूंगा। शिल्प वे कोई भी अपनाएं, यदि उनकी दृष्टि साफ और गहरी है, कहने के लिए उनके पास कुछ नया है अपना है, अनुभूत है, चुराया या सपने अपने ऊपर लादा नहीं और उनके हृदय में गहरी मानवीयता है, तो जो वे लिखेंगे, सीधा दिल पर असर करेगा। और हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी के माध्यम से विश्व-साहित्य पर अपना नक्शा छोड़ जायगा।

और इस पर भी वह कथा मे स्वत नि सृत नही उपर मे लादा हुआ प्रतीत होता है फिर पद्य तो आत्मरत होकर जी सकता है (यद्यपि इसम मुझे सन्देह है) लेकिन ग के लिए दुर्बोध होकर जीना मुश्किल है। अच्छी बात यही है कि कथाकारो म राकेर शिवप्रसाद सिंह भीष्म साहनी कृष्णा सोवती मार्कण्डेय कमलेश्वर, नानी, म भण्डारी उषा प्रियम्वदा आदि क रूप म ऐसे सूक्ष्म कथाकार हैं जो परम्परा से क नहीं वरन पुरानी परम्परा के गुणो को अपनी शैली मे समो कर नयी वस्तु अत्यन्त मनोरजक और हृदयग्राही ढग स दे रहे हैं।

जहा तक विगत की तुलना म वर्तमान कहानियो के सामर्थ्य का प्रश्न है, पुर कथाकार के नाते मेरे लिए उस पर कोई राय देना सगत नही है। नये कथाकारो भ्र आलोचको को कफन मनोवृत्तियां बड़े भाई साहब नशा, पूस रात, रत्न प्रभ पाजेब राजीव और उसकी भाभी, जीवन शक्ति रोज नटर बकस, हीलीबोन वतर्गे पराया सुख राज पहाड़ की स्मृति अपनी अपनी जिम्मेदारी धमयुद्ध, आह्वान और समय जसी उच्च कोटि की पुरान लखको का नई कहानियाँ पढ कर अपनी राय बनानी चाहिए। बडी झिझक के साथ म केवल इतना ही कह सकता हू कि नये लखको की कुछ कहानिया इनके बराबर चाहे पड जायें पर इन पर भारी कम ही पड़ेंगी। लेकिन साहित्य म तुलना कुछ अच्छी चीज नही है। एक सुदर रचना की तुलना दूसरी सुन्दर रचना से की ही नही जा सकती। केवल दोनो का रस लिया जा सकता है। नये कथाकारो म नये ढग से बात कहने की जो लालसा है नये रूपाकार को ढूढने या अपनाने की जो छटपटाहट है, पुराने के प्रति जो खिजलाहट अथवा आक्रोश है वह उनकी युवावस्था ही का प्रतीक है और इसीलिए आश्वस्त भी करता है। क्योकि पुराने क प्रति आक्रोश और नये की खोज जिदगी का परिचय देती है। नये लेखको म जो लोग प्रयोग को महज प्रयोग के लिए अपनी विशिष्टता सिद्ध करने या दूसरो को चौंकाने के लिए लेंगे वे शायद दूर तक नही जा सकेंगे। जो विभिन्न प्रयोग करके ऐसी शैली अपना लेंगे जिसम वे अपनी अनुभूतियो को अपने विशिष्ट ढग से व्यक्त कर सकेंगे और जिन्दगी भर टामकटोय न मारेंगे वे जरूर साहित्य पर अपनी शैली की अमिट छाप छोड जायेंगे।

इसके अतिरिक्त नये लेखक के लिए इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि वह कैसा भी नया प्रयोग क्यो न कर उसकी दृष्टि साफ रहे और जो वह कहना चाहता है वह जरूर कह दे। यह नहीं कि वह कहना कुछ चाहे और उसकी कहानी कुछ कहे। 'अभिमन्यु की आत्म हत्या' म ऐसी ही बात हुई है। कथ्य वहाँ बोधगम्य नहीं रहा और लेखक जो कहना चाहता है वह नहीं कह पाया। कहानी की अन्तिम पंक्ति— 'वह मेरी शाम की नाव था' सारे कथ्य को धुधला देती है। मरे खयाल म शाम

की हत्या करके जो आदमी लौटता, वह यह कहानी न कहता। हुआ वास्तव म यह कि कथा का नायक आत्म की हत्या करन गया था, हर आत्म की लाश नहीं सजीव आत्म को अपने कंधे पर लादे लौट आया। सुभद्रा—उसके अन्तर की मा, यानी सृजन शक्ति यानी आत्म और भी गहर मे जायें—आत्मा ही का प्रतीक है। उसने उसे छोडा कहा ? खत्म कहा किया ? डुबाया कहा ? उसे तो वह लेकर चला आया है अपने शिशुओ के लिए, यानी अपनी रचनाओ के पालन-पोषण के लिए। ऐसा ही किंचित् धु धलापन मार्कण्डेय की 'धुन' में भी है, लेकिन राजेंद्र यादव ने अपनी खुले पंख, टूट डैन म थीम को बडी कुशलता से निभाया है और मार्कण्डेय की 'माही' ता छोटी हान पर भी प्रयोग के नयपन और सकेत के (सजेशन) अति सूक्ष्म होने के बावजूद मन पर अमिट प्रभाव छोड जाती है। क्योकि जो बात मार्कण्डेय उस कहानी म कहना चाहता है, वह उसन बडी बारीकी, लेकिन पूरी सफाई स कह दी है।

जहा तक मेर मत का प्रश्न है, मैं समझता हू कि सब से महत्व की चीज वस्तु और देखने वाली दृष्टि है। उसके बाद शिल्प का स्थान है। १६ ८ से ४८ तक उदू कहानी म लगभग व सभी प्रयोग किय जा रहे थे, जाकि आज हिन्दी म किये जा रहे हैं (कोई अन्वपी बडे शौक स उदू की पत्रिकाओ को देख कर मेरे कथन की सच्चाई को जान सकता है) और उस वक्त आज की हिन्दी कहानी की तरह उदू कहानी की गति म बाढ पर आयी नदी का वेग था और कथाकारा की तीन पीढिया एक साथ, प्रति स्पर्धा क साथ सृजनरत थी। नये-नय प्रयाग आय दिन हा रह थे। ऐन उस वक्त मापासा और माम के शिल्प स प्रभावित हाकर मटो ने कहानिया लिखनी शुरू की और उसी पुरान शिल्प का पूरी तरह अपना कर अपनी वस्तु के नयपन दृष्टि की गहराई और गहन मानवीयता क साथ, उदू कहानी पर छा गया।

नये कथाकारा के सामने मैं मटो की मिसाल रखना चाहूगा। शिल्प व कोई भी अपनाए, यदि उनकी दृष्टि साफ और गहरी है, कहने के लिए उनके पास कुछ नया है अपना है, अनुभूत है, चुराया या सयत्न अपने ऊपर लादा नहीं और उनके हृदय म गहरी मानवीयता है, तो जो व लिखेंगे, सीधा दिल पर असर करेगा। और हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी के माध्यम से विश्व-साहित्य पर अपना नक्शा छोड जायगा।

और इस पर भी वह कथा में स्वतः निःसृत नहीं ऊपर से लादा हुआ प्रतीत होता है। फिर पद्य तो आत्मरत होकर जी सकता है (यद्यपि इसमें मुझे सन्देह है) लेकिन गद्य के लिए दुर्बोध होकर जीना मुश्किल है। अच्छी बात यही है कि कथाकारों में रावेश, शिवप्रसाद सिंह, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, शानी, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा आदि के रूप में ऐसे सूक्ष्म कथाकार हैं, जो परम्परा से कटे नहीं, वरन पुरानी परम्परा के गुणों को अपनी शैली में समो कर, नयी वस्तु को अत्यन्त मनोरंजक और हृदयग्राही ढंग से दे रहे हैं।

जहाँ तक विगत की तुलना में वर्तमान कहानियों के सामर्थ्य का प्रश्न है, पुराने कथाकार के नाते मेरे लिए उस पर कोई राय देना संगत नहीं है। नये कथाकारों और आलोचकों की कफन, मनोवृत्तियाँ, बड़े भाई साहब, ताशा, एक रात, रत्न प्रभा, पाजेब, राजीव और उसकी भाभी, जीवन शक्ति, राज लटर बक्स, हीलीबोन की बत्तखें, पराया सुख, राजा, पहाड़ की स्मृति, अपनी अपनी जिम्मेदारी, धर्मयुद्ध, आह्वान और समय जैसी उच्च कोटि की पुराने लेखकों की नई कहानियाँ पढ़ कर अपनी राय बनानी चाहिए। बड़ी झिझक के साथ मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि नये लेखकों की कुछ कहानियाँ इनके बराबर चाहे पड़ जायँ, पर इन पर भारी कम ही पड़ेंगी। लेकिन साहित्य में तुलना कुछ अच्छी चीज नहीं है। एक सुन्दर रचना की तुलना दूसरी सुन्दर रचना से की ही नहीं जा सकती। केवल दोनों का रस लिया जा सकता है। नये कथाकारों में नये ढंग से बात कहने की जो लालसा है, नये रूपाकार को ढूँढने या अपनाने की जो छटपटाहट है, पुराने के प्रति जो खिजलाहट अथवा आक्रोश है, वह उनकी युवावस्था ही का प्रतीक है और इसीलिए आश्वस्त भी करता है। क्योंकि पुराने के प्रति आक्रोश और नये की खोज जिन्दगी का परिचय देती है। नये लेखकों में जो लोग प्रयोग का, महज प्रयोग के लिए अपनी विशिष्टता सिद्ध करने या दूसरों को चौंकाने के लिए लेंगे, वे शायद दूर तक नहीं जा सकेंगे। जो विभिन्न प्रयोग करके ऐसी शैली अपना लेंगे, जिसमें वे अपनी अनुभूतियों को अपने विशिष्ट ढंग से व्यक्त कर सकेंगे और जिन्दगी भर टाइपराइटर न मारेंगे, वे जरूर साहित्य पर अपनी शैली की अमिट छाप छोड़ जायेंगे।

इसके अतिरिक्त नये लेखक के लिए इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि वह कैसा भी नया प्रयोग क्यों न करे, उसकी दृष्टि साफ रहे और जो वह कहना चाहता है वह जरूर कहे। यह नहीं कि वह कहना कुछ चाहे और उसकी कहानी कुछ कहे। 'अभिमन्यु की आत्म-हत्या' में ऐसी ही बात हुई है। कथ्य वहाँ बोधगम्य नहीं रहा और लेखक जो कहना चाहता है, वह नहीं कह पाया। कहानी की अन्तिम पंक्ति— 'वह मेरी आत्मा की लाश थी' सारे कथ्य को भुठला देती है। मेरे खयाल में आत्म

का हत्या करके जो आदमी लौटता, वह यह कहानी न कहता । दूसरा वास्तव मे यह कि कथा का नायक आत्म की हत्या करने गया था, हर आत्म की लाश नहीं सजीव आत्म को अपने कधे पर लादे लौट आया । सुभद्रा—उसके अतर की मा यानी सृजन शक्ति यानी आत्म और भी गहर म जाये—आत्मा ही का प्रतीक है । उसने उसे छोडा कहा ? खत्म कहा किया ? डुबाया कहा ? उस तो वह लेकर चला आया है अपने शिशुओ के लिए, यानी अपनी रचनाओ के पालन-पोषण के लिए । ऐसा ही किंचित् धुधलापन मार्कण्डेय की 'धुन' में भी है, लेकिन राजेन्द्र यादव ने अपनी 'खुले पख, टूटे डैने' मे थीम को बडी कुशलता से निभाया है और मार्कण्डेय की 'माही' का छोटी होने पर भी प्रयोग के नयेपन और सकेत के (सजेशन) अति सूक्ष्म होने के बावजूद मन पर अमिट प्रभाव छोड जाती है । क्योकि जो बात मार्कण्डेय उस कहानी में कहना चाहता है, वह उसने बडी बारीकी, लेकिन पूरी सफाई से कह दी है ।

जहा तक मेरे मत का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि सब से महत्व की चीज वस्तु और देखने वाली दृष्टि है । उसके बाद शिल्प का स्थान है । १६ ३८ से ४८ तक उर्दू कहानी मे लगभग वे सभी प्रयोग किये जा रहे थे, जोकि आज हिन्दी मे किये जा रहे हैं (कोई अन्वेषी बडे शौक से उर्दू की पत्रिकाओ को देख कर मेरे कथन की सच्चाई को जान सकता है) और उस वक्त आज की हिन्दी कहानी की तरह उर्दू कहानी की गति मे बाढ पर आयी नदी का वेग था और कथाकारो की तीन पीढिया एक साथ, प्रतिस्पर्धा के साथ, सृजनरत थी । नये-नये प्रयोग आये दिन हो रहे थे । ऐन उस वक्त मोपासा और माम के शिल्प से प्रभावित होकर मटो ने कहानिया लिखनी शुरू कीं और उसी पुराने शिल्प को पूरी तरह अपना कर अपनी वस्तु के नयेपन दृष्टि की गहराई और गहन मानवीयता के साथ उर्दू कहानी पर छा गया ।

नये कथाकारो के सामने मैं मटो की मिसाल रखना चाहूगा । शिल्प वे कोई भी अपनाए, यदि उनकी दृष्टि साफ और गहरी है, कहने के लिए उनके पास कुछ नया है अपना है, अनुभूत है, चुराया या सपने अपने ऊपर लादा नहा और उनके हृदय म गहरी मानवीयता है, तो जो वे लिखेंगे, सीधा दिल पर असर करेगा । और हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी के माध्यम से विश्व-सहित्य पर अपना नक्श छोड जायगा ।

नई कहानी एक बहु चित्रित संदर्भ

सुरेन्द्र

'नई कहानी' एक तरह से नारी-पुरुष के आपस के बदलते रिश्तों की भी कहानी है। (बल्कि यही पक्ष 'नई कहानी' में अधिक सार्थकता और अधिक विकृति के साथ उभर कर आया है) इन रिश्तों में चाहे तो सामाजिक सन्दर्भों की धरती रही हो चाहे निरी वैयक्तिक स्थिति या प्रेम करते हुए न कर पाने की विवशता हो या फिर बायालॉजिकल दृष्टि से कोई सवाल आड़े आया हो। हां यह भी सच है कि ये रिश्ते केवल शारीरिक सतह पर ही बने और मिटे हों या उनमें ईमानदार अनुभूति हो और ओढ़ी हुई अनुभूति भी हो सकती है।

'नई कहानी' में प्रेम सम्बन्धों की जो अभिव्यक्ति हुई है, वह सामाजिक सदर्भों से होकर कम गुजरी है जितनी कि निरे वैयक्तिक सदर्भों से होकर। इन सबधों को परिवेश ने बहुत कम सदर्भित किया है। (कम-ज-कम प्रत्यक्ष रूप से) और वह भी काफी अलग से। युग तनाव ने ज्यादा से अधिक जिन रिश्तों पर असर डाला है या जिन्हें झकझोरा है, वे नारी पुरुष के प्रेम सम्बन्ध ही हैं। सस्ती और गीली भावुकता से धीरे धीरे छुटकारा पाता हुआ आज का आदमी इन सम्बन्धों के बौद्धिक धरातल पर स्पर्श करता है कहीं उसे ये सम्बन्ध निरे शारीरिक लगते हैं और इन्हें लेकर वह वहशियाना व्यवहार करने लगता है और कहीं उसे इनमें जीवन की कोमलता और अनुभूति की सार्थकता नजर आती है। प्रेम सम्बन्धों को लेकर वह द्वन्द्व की स्थिति में रहता है। जीवन की व्यस्तता और प्राथमिकता से हल मांगने वाले प्रश्न उसे अन्तरंग क्षणों को पूरी तरह जीने नहीं देते, और वह स्वयं को देते हुए भी न दे पाने की स्थिति में बना रहता है, इस सब से उसमें कुंठाएं पनप उठती हैं, इस तरह वह इन सम्बन्धों को लेकर असहज हो उठता है। यहां तक तो ठीक है और इस अनुपात से भी।

लेकिन पिछले दिनों होता कुछ ऐसा भी रहा है कि नारी पुरुष के अन्तर में गहरे झांकने और वहां से नए-नए मसौदे निकाल पाने की फिराक में पेशेवर कहानीकारों ने (क्योंकि कहानी उनके लिए रचनात्मक विधा ही नहीं है जीविका अर्जित करने का साधन भी है, इसलिए उसे बाजार में खपाना था और उसके लिए बाजार की

ज्ज देखते हुए यह जरूरी था) और उनकी देखा-देखी फशन जीवी दूसर तथाकथित
थाकारा न 'नई कहानी' को नगी औरत ही बना दिया और उस पर हमले कराने
ही नएपन की साथकता मानी और सही दिशा भी। काम प्रसग नई कहानी म
नुभूति की सचाई के कारण उतने अभिव्यक्त नहीं हुए जितन कि फैशन के कारण।
ान अनजान सक्स चित्रण नई कहानी का एक मूल्य (?) ही बन गया। सही माइने
यह मूल्य भी माना जा सकता था यदि, इसे बाजार को देखकर और बतौर फशन
अभिव्यक्ति न दी जाती, इसके माध्यम से नारी-पुरुष के आपस के 'एडजस्टमेंट'
ौर जीवन व्यापी रिश्त तथा उन पर पडने वाल प्रभावा को कलात्मक ढग स प्रस्तुत
िया जाता यानी उन्हें दूसरे जीवन के अहम मूल्यों की भी पृष्ठ भूमि दी जाती लेकिन
ैसा हुआ नही हुआ ऐसा कि युगनद्ध स्थितिया और सम्भोग ब्योरा की 'नई कहानी'
ी बाजार म कुछ ऐसी आमददरफ्त हुई कि काम शास्त्र और उसके सीमित आसनों
ी सख्या, उनका वविध्य और उनकी मौलिकता रखी की रखी रह गई। काम
ी एक एक सलवट और उसके एक एक 'वद' की अभिधापरक शव परीक्षा की गई।
'करवस साडी ऊपर उठान' (किस्से ऊपर किस्सा रमेश बक्षी) से लकर पौंद फरने
(विनाय सुदशन चोपडा) तक का चटखारे ले लेकर वणन किया गया सपटी
नॉवस का आविष्कार किया गया और रचना प्रक्रियागत लेखकीय निस्सगता का उठा
कर ताक पर रख दिया गया। नतीजा यह हुआ कि य तथा इस जैसी कहानिया कथ्य
और शिल्प की दृष्टि से कमजार और निम्न स्तर की बाजारू कहानियाँ होकर ही रह
गई। लेकिन इस तरह की कहानिया से लेखकों ने पाठकों का (प्रबुद्ध पाठका का
नहा) चौंकाया जरूर और अपनी ओर आकर्षित भी किया कि हम भी लेखक हैं
आपको हमारी भी (हमारी ही) चीजें पढ़नी चाहिए नहीं तो

कहानी लेखिकाओं में नव्यतम और आधुनिकतम उन्हें माना गया जिन्होंने
सक्स को खुलकर अभिधापरक चित्रण दिया और खुलकर चित्रण देने रहने की प्रतिज्ञा
की और आलोचकों को आश्वासन दिया कि उनकी ओर से इस सदभ में वे निश्चिन्त
रहें। इस सदभ म लेखिकाओं न विषय की सहजता और असहजता को नकार दिया,
उनकी दृष्टि म भी कोई कलात्मक रुचि उभरकर नहीं आई। जिन महिला लेखिकाओं
ने सक्स सम्बन्धी बँधे-बँधाए मुहावरे का तोता (शिल्प और कथ्य के प्रति बरती हुई
महत्वपूर्ण दृष्टि की वजह स नहीं) व तुरन्त नई कहानी' के खेमे में दाखिल कर ली
गई, इस बात का भुलाकर कि नए की दृष्टि से उनकी कितनी उपलब्धि है। इतना
ही नहीं, इतना और भी कि उनकी कमजोर और लचर कहानिया का 'नई कहानी'
के नमूने के बतौर पश किया गया। जबकि उनकी 'अप्रोच और ट्रीटमेन्ट' में कहीं भी
चिन्हित किए जाने योग्य नयापन नहीं था, खास तौर से इन कहानियों में जिनको

कि प्रतिनिधि नई कहानियो के तौर पर पश किया गया था ।

दरअसल काम श्रोरा के चित्रण की शुरूग्रात जा द्र, यशपाल, अश्क और अज्ञेय से ही प्रारम्भ हो गई थी । जनेन्द्र ने औरतो का नगा कराना प्रारम्भ कर दिया था और आज भी 'विज्ञान' आदि के नाम पर उन्हे उससे कुछ ज्यादा ही करना पड रहा है । यशपाल ने कथा म 'दही जमवाना' महत्वपूर्ण मान लिया था । और हर कहानी और उपयास म उसे बनाए रखने के लिए सारे कथा गत हथकण्डो का उपयोग किया था । अज्ञेय का सैक्स चित्रण सवथा भिन्न स्तर का था, उसमे बौद्धिकता तो थी ही, रचना प्रक्रियागत तटस्थता भी थी । लेकिन ज्यादा नए कहानीकारों म अज्ञेय की सैक्स के प्रति ट्रीटमेन्ट की विशेषता नही आ पाई । कहानी को मनोरजन मानने और उससे मनोरजन करने वाले भगवती चरण वर्मा बूढी इन्द्रिया के लिए आज भी 'रेखा' जसे टानिको का निर्माण कर रहे हैं, यह कितनी विचित्र और तरस खाने लायक बात है ।

कुछ मित्रो को भ्रम हो सकता है कि मैंने यहा श्लील अश्लील, नतिकता और अनतिकता वाले मूल्यो के आधार पर नई कहानी मे वर्णित प्रेम और सक्स सम्बन्धी स्थितियो की जाच-पडताल करनी चाही है । तो, ये मान मैं साहित्येतर मानता हू । इनके लिए समाज सुधारक और नीति पडित को बधाई दी जा सकती है । नई कहानी म सक्स चित्रण को लेकर जो सवाल उठाया गया है, वह अश्लीलता को लेकर नही है अश्लीलता के कारण भी नही है, क्योकि अश्लीलता जसी चीज साहित्य म होती ही नही । कोई भी विषय (साहित्य के सदभ मे) स्वय म श्लील अश्लील नही है । साहित्य म तो सवाल अभिव्यक्ति का होता है, परिष्कृत और भोडी अभिव्यक्ति का, विषयो के प्रति पहल का (शक्तिशाली और कमजोर चित्रण का) मैंने यह सवाल नई कहानी म आई हुई सक्स सम्बन्धी मोनोटनी' के कारण उठाया है और सक्स का लक्ष्य बनाकर लिखने के कारण । क्योकि सक्स स्वय म कोई स्वतत्र स्थिति लिए हुए नही होता ऐसा वह हो भी नही सकता कमजकम प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए । वह तो नारी-पुरुष के परस्पर सम्बन्धो की एक खास स्थिति की अभिव्यक्ति है इसलिए महत्वपूर्ण है और इसलिए महत्वपूर्ण नही भी है क्योकि महत्वपूर्ण तो नारी-पुरुष के सम्बन्ध हैं और उनके लिए सक्स । इसलिए हम आन्तरिक सत्य और नारी-पुरुष के परस्पर सम्बन्धों के नाम पर सैक्स को चित्रण-लक्ष्य नही मान सकते और खास तौर से पिष्टपेषित सक्स ब्योरो और युगनद्ध स्थितियो को तो और भी नही, लेकिन हुआ ऐसा ही है कि हमने अभिधात्मक रूप से सक्स ब्योरो और स्थितियो का चित्रण ही अधिक किया है नारी-पुरुष के इस कारण बनते बिगडते सम्बन्धो को कम अभि[illegible] दी है ।

इस चित्रण से हम प्रबुद्ध पाठक मे कोई असर पैदा नही कर पाए हैं और यदि कर भी पाए हैं तो न कुछ के बराबर बल्कि हमारे इस चित्रण से उसे ऊब हुई है क्योकि कहानीकारो न यह फॉमूला ही बना लिया है कि इतने प्रतिशत सेक्स का चित्रण अधिक से अधिक कहानियो म होना ही चाहिए। सैक्स के कारण नारी पुरुष के बनते बिगडते रिश्ते, सैक्स जीवन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया, उससे उत्पन्न जीवन गत दिलचस्पिया और ऊब, जीवन म उसके कारण बनती बिगडती व्यक्ति दृष्टि और उस सदर्भ म खुलते हुए सामाजिक सम्बन्धो का चित्रण तो किया जा सकता है लेकिन कामशास्त्रीय नए विकृत आसनो को नई कहानी का नुस्खा मानकर प्रस्तुत करना न तो मानवीय सवेदना और मानव मूल्यो की दृष्टि से समझने लायक बात है और न ही कहानी के शिल्पगत आयामो की दृष्टि से और खास तौर से तब तो और भी नही जब यह चित्रण भेजा हुआ न हो मात्र अयथार्थ हो और सवेदना या कला गत कोई सम्भावना न दे पाता हो।

जिन कहानियो म सैक्स की अभिव्यक्ति मिली है, व भिन्न भिन्न स्तर की कहानियाँ हैं और उनके हिसाब से पाठको के अलग अलग वर्ग हैं। पाठ्यक्रम सबधी पुस्तकें लिखने वाले अध्यापको की हेय दृष्टि से देखने वाले पेशेवर कहानीकारो ने यह भी किया है कि इस तरह की कहानिया उन्होंने भीड के लिए लिखी हैं, एक ऐसे सस्ती रुचि वाले पाठक के लिए लिखी हैं जो उनसे ऐसी ही कहानियो की माग करता है, जिसका परिष्कृत बोध इतना ही है, कि कहानिया का मनोरजन के लिए, समय काटने के लिए तथा वासना के सस्ते उभार के लिए पढा जाय। कुछ कहानीकार तो केवल सक्स सबधी कहानिया लिखने के लिए ही प्रतिश्रुत हैं। रोटी, कपडे मकान और सम्मान की उनके लिए कोई समस्या ही नहीं है यानी कहानिया मे वे इन प्रश्नो को नहा उठाते। सामाजिक दायित्व उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता, यह भी सहन किया जा सकता था यदि उनकी सक्स परक कहानियाँ ही महत्वपूर्ण बन पडी होती।

सही बात तो यह है कि नए कहानीकारो की एक बडी तादाद उन प्रश्नों को अहम मान रही है जो या तो उनके जीवन म हैं ही नही या फिर हैं तो बहुत कम इस तरह अनुभूति की ईमानदारी के नाम पर ओढी हुई अनुभूति का चित्रण किया जा रहा है इसलिए कि कहानियों मे अतिरिक्त चित्रित सक्स उनमें घटित नहीं होता। उन्होंने ऐसा भेजा नहीं है, चूकि उन्हें जीविका अर्जित करनी है और बाजार म ऐसी कहानियो की माग है इसलिए ऐसी कहानियाँ लिखते हैं। साफ बात है कि ऐसी कहानियो का कलात्मक मूल्य न कुछ होगा और मानवीय मूल्य तो और भी कम। इसलिए कि वे इन कोणो से लिखी ही नहीं गई हैं।

कमलेश्वर ने जनेन्द्र, यशपाल और अज्ञेय आदि की कहानियो पर यह आरोप लगाया था कि उनमे ऐसे आदमी का चित्रण हुआ है जिसने नारी को वासना पूर्ति का क्षेत्र समझा है और हर ड्राइङ्ग रूम में उसे अपने लिए खडा कर लेना चाहा है। इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन सत्य यह भी है कि बडी तादाद म नए कहानीकारो ने भी इसी आदमी का चित्रण किया है। बल्कि यथार्थ और आन्तरिक सत्य के चित्रण के नाम पर इससे भी गहरे उतरे हैं। चुट चुट की आवाज के साथ जब तक ब्लाउज के बटन दो चार बार न खुल जायें, साडी पिंडलियों से ऊपर तब न पहुँच जाय हिप्स के कब और वक्ष के उभार बिम्बो म बाँधकर प्रस्तुत न किए जायें, तब तक कहानी अधूरी समझी जाती है। यह चित्रण घटिया नही लेकिन जब एक जसा ही चित्रण सारे कहानीकारों न यहाँ होने लग और वह भी बहुत अधिक मात्रा में और उससे ऊब होने लगे साथ ही कहानी अपनी नियति को लेकर बिखर जाय तब ? सही बात यह है कि यथाथ के नाम पर उन्होने सबस विकृतियोंका चित्रण ज्यादा किया है और ये विकृतियाँ ऐसी नहीं है जसी कि होती हैं बल्कि ऐसी हैं जसी कि होती नही और होती भी है तो बहुत कम। यानी ये विकृतियाँ उनकी कल्पना की उपज हैं और सबसके नाम पर उन्हें कुछ देना था इसलिए चित्रित की गई हैं। मानवीय मूल्यो की टूटने बनने की प्रक्रिया की अभिव्यक्ति म कहानी मे सक्स चित्रण एक समझने लायक बात हो सकती है या इस तरह भी बात को समझा जा सकता है कि बनते और टूटते मूल्यो की सक्स चित्रण के माध्यम से हम कहानी में किसी स्तर पर अभिव्यक्ति देख सकें। लेकिन सुखहीन कुत्तो पर कहानी मे प्रसन्नता जाहिर करना औरउस चित्रण म रम जाना कहानी कला का कौन सा विकसित आयाम है और सक्स चित्रण की कौन सी नवीन दिशा है, इस बात को चितेरे नए कहानीकार ही बता सकते हैं।

व्यतीत कहानियों के समय की अपेक्षा नारी-पुरुष के परस्पर के व्यवहार आज कहीं अधिक सहज हैं, कहे कि अब से पूर्व पुरुष नारी और नारी-पुरुष का सहज होकर नही ले पाते थे। हाट-बाट, बाग-बगीचे और सार्वजनिक स्थानो म पुरुष नारी को साथी या मित्र की हैसियत से नही देख पाता था, वह उसकी उपस्थिति म किसी स्तर पर असहज हो उठता था और वह उसे मात्र नारी ही समझता था, नारी यानी वासना क्षेत्र मे उसे तृप्ति देने वाली महज एक वस्तु, एक चीज। नारी का सौन्दर्य भी उसे आकर्षित करता था मांसलता की बढी हुई उत्तेजना के रूप म, वह किसी न किसी रूप में वासना के गिर्द ही चक्कर काटता रहता था। परिणाम यह होता था कि उनके सम्बन्धों म एक खिचाव, एक दुराव या अस्वाभाविक सी एक औपचारिकता आजाती थी, वे जो चाहते थे उस पर बहस करने और उसे प्रकट करने से कतराते थे और

पूरे साथ में वही बात छूट जाती थी जिसे वे कहना चाहते थे, क्योंकि वे नारी-पुरुष इकाई के रूप में सहज नहीं थे। य असहज होना उनमें प्रक्रिया और यौन वजनाओं को जन्म देता था।

उनका (जैनेन्द्र अज्ञेय यशपाल इलाचन्द्र जोशी से पूर्व) दृष्टिकोण सैक्स को लेकर दमनकारी था, वे परस्पर इस विषय पर इससे हटकर सोचते थे और इससे हटकर बात करते थे। उनकी दृष्टि म नारी-पुरुष के काम सम्बन्ध एक आवश्यक बुराई थे जिनका मानव मूल्यों से किसी भी स्तर पर समझौता नहीं हो सकता था। इसलिए सैक्स चित्रण को न अश्लीलता के स्तर का मानते थे। साहित्य म इसलिए भी (इससे बचने के लिए) नारी पुरुष के सम्बन्धों को आदर्शवादी कोणों से देखा गया। पुरुष सकम सम्बन्धों को लेकर बहुत खुले मस्तिष्क वाला नहीं था। (एक हद तक वह ऐसा अब भी नहीं है) उसकी दृष्टि नारी को लेकर सामन्तवादी थी, यौन पवित्रता उसके लिए सर्वाधिक विकसित जीवन मूल्य था। उसका मानवीय स्तर पर इस सदभ में कोई 'एडजस्टमेंट' नहीं हो सकता था। विभाजन के समय लौटी हुई अपहृत नारियों को उनके सस्कारग्रस्त पतियों और परिवारों द्वारा न स्वीकार किया जाना इस सदभ में देखी हुई अमानवीय घटना है। पत्नी और 'रोज' कहानियों की नायिकाओं म पाठक कहीं पर भारतीय संस्कृति को सुरक्षित अनुभव कर अपने परम्परागत सस्कार को सतोष तो द पाता था, लेकिन उनके जीवन म जड़ पकड़ती हुई घुटन और ऊब को वह नहीं देख पा रहा था, या क्रमशः उसे सही महत्व नहीं दे पा रहा था। यद्यपि इसका नारी-पुरुष के सैक्स जीवन से उतना सम्बन्ध भी नहीं था। लेकिन सम्बन्ध नहीं था, यह मैं नहीं कहता।

बदलती हुई परिस्थितियों शिक्षा और विषम आर्थिक स्थितियों न नारी को खुले सामाजिक जीवन में आने का अधिक अवसर दिया। इसके कारण नारी-पुरुष की परस्पर की दूरी और दूरी के कारण पलती हुई हद एक हद तक टूटी है। नारी-पुरुष सैक्स जीवन को परस्पर मिल बैठकर बौद्धिक स्तर पर समझ पा रहे हैं वे सक्स जीवन और उसके जीवन गत प्रभाव तथा परिवार नियोजन आदि जैसी समस्याओं पर खुले मस्तिष्क म विचार करते हुए किसी जड़ सस्कार से पीड़ित नहीं होते। आज नारी-पुरुष यात्राओं, आफिसों या सार्वजनिक स्थानों में एक-दूसरे से मित्रों की हैसियत से मिल पा रहे हैं या कम-से-कम इस दिशा म वे प्रगतिशील हैं। नारी पुरुष के लिए अब पहले जैसी रहस्यमयी नहीं है। हम नारी के प्रति पिछली कहानियों जैसी किशोर भावनाओं से आक्रान्त नहीं हैं। अब हम नारी के बारे में आदर्शवादी होकर नहीं सोचते। हम एसे ही विचार करते हैं जैसे आदमी-आदमी के बारे

में सोचता है। अब दोनों के बीच अधिक सही यथार्थ है एक दूसरे का समभने के लिए। स्थितियाँ बदल जाने के कारण स्त्री पुरुष का एक दूसरे को देख लेना, बेतकल्लुफी से बात कर लेना या उँगली हाथ का छू जाना अब उतनी ध्यान आक र्षित करने वाली बातें नहीं रह गई हैं।

दरअसल कहानियों में नारी-पुरुष की इन सारी स्थितियों का चित्रण होना चाहिए और उनकी आतरिक स्थितियों का भी इतने ही दायित्व के साथ (भिन्न भिन्न कोणों से) चित्रण होना जरूरी है। कहानियों में इस सबका चित्रण हो रहा है लेकिन बहुत कम। मनोविश्लेषण की दृष्टि से नारी-पुरुष की मन स्थितियों का निश्चय ही नई कहानी में अधिक दायित्व के साथ चित्रण दिया जा रहा है। नारी पुरुष के सक्स सम्बन्धों को नकारा नहीं जा सकता, वे जीवन में हैं और एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में उनका स्थान है, वे स्त्री पुरुष के सामाजिक सम्बन्धों से लेकर वैयक्तिक सम्बन्धों और चिंतन पर दूर तक प्रभाव डालते हैं एक अर्थ में उन्हें जीवन गत स्त्री पुरुष के सम्बन्धों का आधार भी माना जा सकता है लेकिन वे सब विकृतियाँ ही तो नहीं हैं? और फिर उनका अभिधापरक चित्रण तो कहानी शिल्प के किसी भी स्तर से मेल नहीं खाता। यह चित्रण अत्यन्त सांकेतिक ढग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए और विशेष परिस्थितियों में—अत्यन्त आवश्यक होने पर—और बार भी किया जा सकता है लेकिन लेखक ने दूसरे ढग को ही अधिक अपनाया है और वह भी विशेष परिस्थितियों के न होने पर।

जब यह तय है कि सक्स नारी पुरुष के जीवन में है और खूब है और उनके जीवन गत रिश्तों में कहीं महत्वपूर्ण भी है, इसलिए वह कहानी में अभिव्यक्ति पा सकता है और उसे अभिव्यक्ति मिलनी भी चाहिए। लेकिन नारी-पुरुष के रिश्तों को लेकर यही तो एक विषय नहीं है विषय और भी हैं फिर विषय अधिक महत्वपूर्ण भी नहीं हैं, महत्वपूर्ण है कथाकार की दृष्टि और विषय के प्रति उसका अपना ट्रीट मेन्ट। कोई भी विषय अनाड़ी कथाकार के हाथों पड़कर एक भ्रष्ट कहानी के रूप में प्रस्तुति पा सकता है और वही विषय समर्थ कथाकार से हैसियत पाकर एक दुरुस्त कहानी बन सकता है। जो कथाकार जितने सांकेतिक और प्रतीकात्मक ढग से (और परिवेश के अनुकूल अभिधात्मक ढग से भी) सेक्स को लेकर कहानी लिखेगा यह कहानी उतनी ही सविधापूर्ण होगी। सामाजिक दृष्टि से जो विषय गोपन भरे (खासतौर पर सैक्स) और खुले तौर पर असामाजिक हैं वे नये कहानीकार के सम्मुख उतनी ही बड़ी मारक चिनौती भी फेंकते हैं। उसकी सामर्थ्य के प्रति फेंकी हुई इसी चिनौती को स्वीकार करना लेखकीय प्रतिबद्धता भी है—क्योंकि यह प्रति बद्धता उसकी अपनी रचना के प्रति है—और लेखक की रचनात्मक शक्ति भी।

कहानी म एसा भी हो सकता है कि हम सक्स (मोटे तौर पर जिस अर्थ मे लिया जाता है) का कही चित्रण ही न करें, लेकिन सर्वत्र उसके होने की या उसके हो सकने की सम्भावना की ऊष्मा बनी रहे और इसी स्थिति मे या इससे कोई दूसरा मोड लेकर अन्त पाती हुई कहानी हमारे सम्मुख मानव के अनुभूत और मानव मूल्यो के कुछ नए पृष्ठ खोल जाय। राजेन्द्र यादव की 'एक खुली हुई साँझ' एक ऐसे ही नए अनुभूत और नारी पुरुष के बदलते रिश्ते की कहानी है जिसमे सक्स की ऊष्मा (स्थूल रूप मे नही) और सम्भावना जन्य आतक (जोखिम उठाने के कारण) की उत्तेजना कहानी को एक खास शक्ल दे जाती है 'मिस पाल' म मोहन राकेश ने सक्स की सम्भावना चित्रित की है। कुल्लू और मनाली के बीच रायसन गाव म अकेली मिस पाल के साथ रणजीत ठहरता है। ठहरता वह बाद म है पहले वह जोगिन्दर नगर के लिए चला जाता है लेकिन रास्ते मे से ही कुछ सोच कर लौट आता है यहीं से पाठक सम्भावित सक्स के घटित होने के लिए प्रतीक्षित है। यह सम्भावना गहरा अर्थ तब और लेने लगती है, जब मिस पाल रणजीत से उसके सोने की व्यवस्था के लिए पूछती है बरामदे म या ...'। बरामदे म सर्दी का भय दिखाकर वह एक अस्पष्ट सा सकेत भी देती है। रात म वह करवट बदलती रहती है और रणजीत से 'सर्दी तो नही लग रही' प्यास तो नहीं लगी और फिर बार बार 'अच्छा सो जाओ' कहती रहती है। यह सम्भावना यत्रणा का रूप भी ले लेती है, जब वह सुराही मे चुल्लू भर कर पानी पीती है और सुबह उसका व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है। इन सारी स्थितियों से गुजरती हुई और अन्त पाती हुई कहानी पाठक की चेतना को झकझोर देती है। हमारी सवेदना को कचोटती हुई मानवीय स्तर पर कुछ सवाल छोड जाती है। लेखक न सवेदना और प्रतीक्षा के माध्यम स सैक्स को लेकर सर्वथा मानवीय प्रश्न उठाए है। 'मिस पाल' सैक्स की उतनी नहीं जितनी सक्स-यत्रणा की कहानी है और मनो विश्लेषण स्थितियों मे गुजरती हुई यह कहानी हमे सर्वथा कुछ मानवीय दे जाती है और कुछ मानवीय प्रश्नों पर सोचने के लिए विवश कर जाती है।

मन्नू भंडारी की 'ऊँचाई' कहानी मे सक्स अपने स्थूल रूप में घटित होता है लेकिन वह कहानी की नियति नहीं है बल्कि उसके आधार पर कुछ सवाल उठाए गए हैं। मसलन पति-पत्नी के सम्बन्ध यदि शरीर दूसरे को दे देने पर ही टूट सकते हैं तब वे सही मायने में सम्बन्ध हैं ही नहीं, उनका आधार कच्चा है और शायद वे शारीरिक सम्बन्धों के आधार पर ही बने हैं, इससे इतर कुछ नहीं, तब वे किसी स भी हो सकते हैं—बनाए जा सकते हैं, फिर पति पत्नी का ही सम्बन्ध क्यों

हा। पति पत्नी क शारीरिक सम्बन्ध तो होते ही हैं, लेकिन सारे सम्बन्ध यही नही है और इसके कारण भी नहा, सम्स के अलावा उनक आधार बहुत कुछ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं। लेखिका ने बौद्धिक पहल के साथ काफी साफ तौर पर यह बात रखी है कि प्रेम के क्षेत्र म शरीर का देना और लेना बहुत महत्वपूर्ण नही है प्रेम उसस ऊचा है वह शारीरिक सम्बन्ध मात्र नही है—वह यौन पवित्रता न होने पर भी बना रह सकता है फिर नारी का शरीर देना ही महत्वपूर्ण नही है महत्वपूर्ण है व सन्दभ और वह परिवेश जिनम और जिसमे वह दिया गया है या उस देना पडा है और हो सकता है कि उसके कारण सवथा मानवीय हा।

दाम्पत्य' म राजकमल चौधरी न भी उन सदर्भों को खास तौर स उभारा है, जिनम शरीर को देना पडा है लकिन यह शारीरिक अपवित्रता (यदि उस आप अपवित्रता कहना ही चाहते है तो) मानवीय मूल्यो का ही दृष्टि म रखकर वाजिब की गई है। मांस का दरिया म कमलेश्वर न पिट पिटाए कथ्य को लेकर सक्स और उसके डिटेल्स दिए है। लेकिन चित्रण प्रक्रिया मे लेखक के तटस्थ रहन के कारण कहानी हमस वेश्या समस्या को बदल हुए कोण म दती है जिसम ठास बौद्धिक करुणा की व्याप्ति है और है इस जीवन क प्रति सोचती हुई वितृष्णा।

निमल वर्मा की कहानियो म सक्स चित्रण म ही रोमान नही दिया जाता बल्कि उन्हे परिवेश भी रोमाटिक दिया जाता है। अन्तर म निमल न सक्स न परिणाम को खुली हुई और बदली हुई दृष्टि स लिया है।

श्रीकान्त की कहानी शव यात्रा म सक्स अपन स्थूलरूप म कही घटित नही हुआ है (स्थूल रूप म भी घटित होकर सक्स हम अनुभूति क ऐस स्तरा पर छा सकता है जहां हम कुछ अभिनव पा सकें लेकिन यह काफी कुछ बल्कि पूरा तरह लेखक की सवेदनशीलता और शिल्प सामर्थ्य पर निभर करता है) फिर भी कहानी म सब कही उसकी ऊष्मा है और हम रिश्ता का उसम बदला हुआ भी पाते हैं। एक आतक पूर्ण परिवेश म सक्स का न हान वाली होनी हुई अभिव्यक्त इस कहानी की खास उपलब्धि है। नारी पुरुष के बदलते हुए रिश्ता के लिहाज म रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी' दूधनाथ सिंह की 'इन्तजार' महेन्द्र भल्ला की 'एक पति क नोटस' व भीष्म साहनी रमश बक्षी प्रयाग प्रकाश निमल उषा प्रियम्वदा शिव प्रसाद सिंह अमरकान्त ज्ञानरंजन आदि की कुछ कहानियां देखी जा सकती हैं।

ऐसी कुछ ही कहानियाँ हैं जिनम सक्स को मूल्या क लिए चित्रण मिला है नही तो ज्यादा कहानियाँ सैक्स के ब्योरे यौन विकृतिया और यौन सम्बन्धा को नियति मानकर ही लिखी गई हैं। यौन विकृतिया को चित्रित करना—यदि व हम उनसे उबारने की स्थिति म सम्बद्ध हैं तो सही हो सकता। अनुस्मल।

नई कहानी
नाम की सार्थकता | सुरेन्द्र

कुछ मित्रों का कहना है कि 'नई कहानी' का नाम 'नई कविता' के वजन पर आया है, और इस बात को लेकर उन्हें खासा एतराज भी है। दरअसल बहस की बात यह नहीं है कि 'नई कविता' के वजन पर यह नाम क्यों लिया गया? बहस की बात यह हो सकती है और यह है भी कि यह दिया हुआ नाम वजनदार है या नहीं? यदि इस नाम को वजनदार मान लिया जाय तो नाम को लेकर चलने वाली बहस यहीं समाप्त भी की जा सकती है। लेकिन इस तरह बहस को यों समाप्त कर पाना उतना आसान नहीं। बहरहाल

पिछले दिनों कहानी-हलकों में नाम को लेकर बड़ी दिलचस्प और मनोरंजक वारदातें हुई हैं। हर तीसरा कथाकार (गो कि वह कथाकार है?) 'नई कहानी' नाम से प्रतिक्रियायित होकर एक नए आन्दोलन का पिता बनना चाहता है (परिवार नियोजन के जमाने में पिता बनने की आकांक्षा आखिर दिलचस्प तो है ही चाहे फिर वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो?) कुछ कथाकारों और उनके पिछलग्गू दो एक विद्यार्थी आलोचकों को 'नई कहानी' नाम से उतनी शिकायत नहीं है, जितनी इस बात से कि 'नई कहानी' के नामकरण संस्कार में उन्हें निमन्त्रित नहीं किया गया और न ही इस अवसर पर हुए यज्ञ में उनसे आहुतियाँ डलवाई गईं। इसलिए वे प्रतिक्रियावश उसे कोई भी और नाम देना पसंद करते हैं—मसलन 'आज की कहानी'। उनका यह तर्क है और पुराने कथाकारों और कुछ शिकायत पसन्द समीक्षकों का भी यही तर्क है कि जो आज कहानी लिखी जा रही है वह कल की कहानी के सन्दर्भ में पुरानी हो जायगी।

पुराने कथाकारों और इन कथाकारों के वकीलों की यह तर्क दिया जाता रहा है कि 'नई कहानी' नाम आगामी या पुरानी कहानी के सन्दर्भ में शब्दगत सापेक्षता को लेकर नहीं दिया गया है और न ही इस अर्थ में वह अपनी सार्थकता का दावा करता है। दर असल यह भ्रम 'नई' शब्द को विशेषण मानकर उठ खड़ा हुआ है जबकि यह शब्द विशेषण नहीं विशेष्य है नाम के कारण सापेक्ष तौर पर गया है और पुरानी कहानी में अपनी स्थिति को अलग कर सिद्ध करता है ऐसा इसलिए जरूरी हो गया था कि यह कहानी अपने स्वरूप, वस्तु और प्रयोग को लेकर समकालीन कहानी में अलग है और साफ तौर पर उससे कटी हुई है। फिर

किसी नाम के शब्द को लेकर आगे पीछे के सम्बन्ध के साथ उसके अर्थ पर विचार करना, एक दूसरे सन्दर्भ में किया जाने वाला विचार है, क्योंकि नाम गत शब्द अपने अभिधेयार्थ को इष्ट नहीं मानता, वह जिस विचार को लेकर दिया गया है उसका स्वयं को प्रतीक भर मानता है। यदि अभिधेयार्थ उसके प्रतीकार्थ में सहायक होता है तो अतिरिक्त प्रसन्नता की बात है।

नाम एक स्थिति का, एक व्यक्ति का एक युग का या कहें कि उन सन्दर्भों का जिनके लिए वह दिया जाता है बोध भर कराता है और वह भी अपने अभिधेयार्थ में नहीं, दाता द्वारा चाहे हुए अर्थ में ही। चूँकि वह दिया जाता है, इसलिए उसकी कोई स्वतन्त्र अर्थवत्ता नहीं होती। यदि शब्दार्थ को लेकर ही विचार किया जाय तो छायावाद प्रगतिवाद आधुनिक काल आदि शब्द उन अर्थों में सार्थक नहीं होंगे जिन अर्थों के लिए वे दिये गये थे। साफ़ बात है कि अपने अभिधेयार्थ से हटकर नाम (कभी-कभी उसमें अभिधेयार्थ का भी सहयोग होता है—हो सकता है) स्थिति सूचक है व्यक्ति सूचक है या इष्ट अर्थ का सूचित करता है न इससे कम और न इससे अधिक, बस इतना भर।

जो मित्र नई कहानी के शब्दार्थ के भय से इसे आज की कहानी नाम देना चाहते हैं वे भी इस शब्दार्थ संकट से मुक्त नहीं हो पाएँगे, क्योंकि उनकी आज की कहानी कल वालों के लिए व्यतीत कल की कहानी हो जायगी, फिर मित्रों की आज की कहानी नाम का क्या हश्र होगा वे अपने आज' को कितना फैला पाएँगे, आखिर उसकी कोई सीमा होगी कि नहीं? और फिर यह क्या जरूरी है कि उनके फैलाए गए आज की इयत्ता को 'कल के लोग उसी बिंदु तक मानें या उतना भर ही मानें? या फिर यह मित्र अपने पटल से 'आज की, कल की' 'परसों की या इसी क्रम में कहानी का नाम दिए जायें, लेकिन ये नाम भी उन्हीं के द्वारा शब्दार्थ के कारण उठाए गए प्रश्न से अनुत्तरित भी हो जायगे। कुछ मित्रों का आग्रह 'नयी कहानी को समकालीन या 'सामयिक कहानी मान लेने का भी है, लेकिन शब्दार्थ वाले संकट के सामने उनकी यह बात भी अशक्त ही ठहरती है। साथ ही सामयिक' और 'समकालीन शब्द उस अर्थ के बोधक भी नहीं हैं, जिस अर्थ का बोध नया शब्द कराता है।

पिछले दिनों मैंने अनुराग की ओर से 'नयी कहानी, पर एक गोष्ठी आयोजित की थी, प्रस्तावित विषय पर बोलते हुए डॉ० नामवर सिंह ने कहा था कि 'नयी कहानी नाम देने के लिए वे गुनहगार हैं लेकिन इस वाक्य में अनुतप्त होने जैसा कोई भाव नहीं था बल्कि यह तो ठीक उस तरह का रोमेंटिक वाक्य था

जसे कोई कहे कि वह बड़ा सकोचशील है और भीतर ही भीतर इस बात पर खुश भी हो कि आखिर वह संकोचशील तो है। जो भी हो, यदि नामवर यह नाम न भी देते तब भी कोई यही नाम देता, क्योंकि लोग नाम के लिए इसी पटन पर सोच ही नहीं रहे थे, ऐसा कोई नाम दिए जाने की आवश्यकता भी अनुभव कर रहे थे इतिहास-काल की यह माग थी, नाम इस जैसा नहीं, बल्कि यही दिया जाना था, क्योंकि नयी कविता के चलते कहानी में सृजन के बदले सदर्भों को देखते हुए इस नाम की सम्भावनाओं पर विश्वास किया जाने लगा था। क्या यह आकस्मिक ही था कि 'नया' शब्द ने अपनी सकेत क्षमता नयी कविता के क्षेत्र में प्रमाणित करदी थी और जब कहानी में उसके शिल्प, सस्कार और कोण को लेकर होने वाले आसक्त व्यसक्त बदलावों ने यह तय कर दिया कि नई कहानी को पुरानी कहानी से हर स्तर पर अलग करके ही सही तौर पर समझा जा सकता है, तब सजक समीक्षकों के सम्मुख इस कहानी के लिए पहला सवाल नाम की तलाश का सवाल था और इस दिशा में नयी कविता' के नाम पैटन ने नाम तलाश की मुश्किल को आसान ही नहीं किया, बल्कि अपने पूर्वार्द्ध पार्श्व को देकर सवाल को उसका सही उत्तर भी दे दिया। अब तक कहानी की उपलब्धियों ने यह साबित कर दिया था, कि उसको नाप व्यतीत कहानी के तत्व बाधक पैमाने से अब नहीं लिया जा सकता उसे नाम और मान दोनो ही में नयी स्थिति मिलनी चाहिए। 'कहानी' शब्द से जिस सृजनात्मक गद्य विधा का बोध होता था, वह किस्सागोई मनोरजकता आलकारिक यानी कृत्रिमता लिए हुए थी। कहानी शब्द अब कथा के नाम पर होने वाली सम्पूर्ण उपलब्धि के उसके पार्थक्य के साथ सही सकेत वहन नहीं कर पा रहा था। व्यतीत और अब की कहानियों में मूल्यों और सार्थक स्थितियों को लेकर खुली खाई साफ तौर पर नजर आने लग गई थी। यह सही है कि इलाचन्द्र जोशी जैनेन्द्र यशपाल और अज्ञेय की कहानियाँ दोनों के मध्य टूटने-छूटने को होते हुए सेतु की तरह एक आधार दे पाई थी लेकिन व्यतीत और नई कहानी के बीच की परिखा को किसी भी तरह पाट न सकी। इस तरह नए पुराने मूल्यों और कथा-मानों को लेकर स्पष्ट ही निर्णायक सघर्ष सामने आ गया था। इस सघर्ष ने इधर की कहानी को ऐसी स्थिति में ठेल दिया था, कि उसके लिए एक पृथक तन्त्र होने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा था और उस पृथक तन्त्र के लिए एक पृथक नाम की जरूरत थी। 'नए' 'पुराने' मूल्यों के सघर्ष मे जिस स्वाभाविकता से 'नए' 'पुराने' शब्द का प्रयोग हुआ उसी स्वाभाविकता से नया शब्द इधर की कहानी के साथ जुड़ गया और आश्चर्यजनक रूप से ऐसा लगा कि यह नाम सही है कि इधर की कहानी उपलब्धियों

का सही अर्थ में संकेत वहन करता है कि इस नाम के अतिरिक्त उसे कोई और नाम दिया ही नहीं जा सकता कि इसका पर्याय भी नहीं खोजा जा सकता। एक स्थिति ऐसी होती है (यह स्थिति वही थी) जब किसी आन्दोलन को आप नाम न भी दें, तब भी वह आपको एक खास अर्थ का बोध कराता है और इस अर्थ के लिए विवश होकर आपको कोई एक ऐसा बोधक शब्द देना पड़ जाता है, जो शब्द नहीं होता महज नाम होता है और इधर की कहानी के साथ 'नया' शब्द इसी प्रक्रिया से नाम में बदल गया या वह कि इधर की कहानी के साथ इसी हैसियत से जुड़ गया। इस नाम धरन धराने के संघर्ष ने कुछ ऐसा माहौल पैदा किया कि प्राए दिन नए नामों की घोषणाएं की जाने लगीं लेकिन जो भी नाम 'नई कहानी' के समानान्तर दिया गया वह कमजोर साबित हुआ और प्रकारान्तर से उसने नई कहानी को सम्बल ही दिया। इस तरह नई कहानी की जड़ें अधिक गहरी और स्थिति अधिक मजबूत होती चली गई।

कुछ विद्यार्थी आलोचक कविता के लिए नई कहानी को खतरा बताते हैं या उसका प्रचार करने में रुचि रखते हैं या ऐसा प्रचार करते हैं कि 'नई कविता वाले नई कहानी' से खतरा महसूस कर रहे हैं। ऐसे विद्यार्थी आलोचक अपनी मायरी दृष्टि (?) को नोकदार समझने की गलत फहमी में बेबुनियाद फतवे तक दे उठते हैं कि कविता का क्षेत्र लगभग समाप्त हो चुका है (आखिर यह लगभग भी क्या?) कहानी की निरंतर बढ़ती हुई लोक प्रियता को देख कर नई कविता के अधिकांश कवि कहानी की तरफ आए उन्होंने आज की कहानी को नई कविता की भांति ही एक आन्दोलन समझा और उसी की भांति शब्दों का तोड़ने मरोड़ने संस्कृत निष्ठ बनाने अथवा कृत्रिमता के परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। बिना समझे के मसीहाई लहजा में गलत बात कहना साहित्य के बाहर की बात तो हो सकती है लेकिन साहित्यिक बिल्कुल नहीं। जिस अर्थ में विद्यार्थी आलोचक उसे बढ़ती हुई लोक प्रिय विधा मानते हैं उस अर्थ में वह लोक प्रिय विधा आज भी नहीं है क्योंकि कोई भी स्तरीय कलात्मक विधा तब तक लोक प्रिय नहीं होती जब तक कि वह एक निहायत घिसा पिटा मुहावरा न हो जाय और यह माना जा सकता है कि नई कहानी' अभी वैसा पिटा हुआ मुहावरा नहीं है? साहित्य में जिस तरह के आन्दोलन होते रहे हैं 'नयी कविता आन्दोलन' के अर्थ में क्या नई आन्दोलन है और 'नई कहानी' भी उस अर्थ में एक आन्दोलन है। इस तथ्य में थोड़ा पर भी हम इन्कार नहीं कर सकते और इन्कार करने की कोई वजह भी नहीं है। नयी कविता' का शब्दों को तोड़ने मरोड़ने, संस्कृत निष्ठ बनाने अथवा

कृत्रिमता के परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयत्न कहना नयी कविता को समझ पाने की समझदारी का खासा मनोरंजक उदाहरण है। नए कवि कहानी लेखन के प्रति इसलिए आकर्षित नहीं हुए कि 'नई कहानी नयी कविता' की अपेक्षा लोकप्रिय विधा थी बल्कि कवियों के कहानी क्षेत्र में आने के कारण ऐतिहासिक और प्रतिमा परक थे। यथार्थ के अनेक ऐसे सन्दर्भ जो 'कविता के इलावा किसी और माध्यम की माँग करते हैं नये कवि को नया कहानी' के क्षेत्र में लाए, कहानी लिखना नए कवि की बहुमुखी रचना शक्ति का ही परिचायक है किसी सतही कारण के सबब उसने कहानी क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया।

एकाधिक विधा में लिखना प्रतिभा और आत्माभिव्यक्ति की तीव्र आन्तरिक विवशता है। यही वजह है कि प्रतिभावान साहित्यकार एकाधिक विधाओं में लिखते आए हैं। भारतेन्दु प्रसाद, निराला अज्ञेय आदि इस संदर्भ में जाने हुए नाम हैं। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप किस विधा में लिखते हैं बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि आप लिखते कैसा हैं? जाहिर है कि यह कैसा लिखना आपकी प्रतिभा पर निर्भर करता है।

एक नेकदिन बुजुर्ग मित्र ने मुझे नेक सलाह दी थी कि कोई ऐसा नारा या नाम उछालो, जिससे लोगों का ध्यान आकर्षित हो, कुछ प्रयत्नों में वह नारा या नाम इतिहास में आ जायगा, यानी उसके माध्यम से मैं इतिहास पुरुष हो जाऊंगा। पिछले दिनों से लगातार यही हो रहा है खेमे बने हुए हैं जब रचनाकार पहले खेमे में नहीं लिया जाता तो दूसरे खेमे में भर्ती होने की कोशिश करता है, वहां भी जब काटेदार तारों की हद मिलती है तो अपना अलग शिविर बना लेता है, हर चौराहे से जुलूस चलना है। और हर गली के नुक्कड़ पर इन तथाकथित क्रयानारों के कार्यालय हैं। हर किसी के पास अपना पोस्टर है जिसके नीचे दो चार लोग इकट्ठे हैं। हर नाम के साथ दो चार युवक हो ही जाते हैं। वीरेन्द्र कुमार जैन ने सूर्योन्मुखी कविता का घोषणा पत्र शुरू किया था तो दो चार युवक उनके साथ हो ही गए थे। ये अवसरवादी युवक (और बुजुर्गों में भी अवसरवादियों की कमी नहीं है) जब शिवदान सिंह चौहान की 'आलोचना' में लिखते हैं तो दूसरी भंगिमा होती है और बदरी विशाल जी की कल्पना में लिखते हैं तो दूसरी ही अन्दाज़ में। यह सारा व्यापार दूर से देखने पर बड़ा दिलचस्प और मनोरंजक लगता है लेकिन साहित्य के लिए यह एक बड़ा खतरा है।

ये नारे और नाम दो स्तरों पर शुरू होते हैं कृतिकार जब अपने कृतित्व के बल पर सामने नहीं आ पाता तब या फिर नाम उछालने का एक दूसरा स्तर है इतिहास पुरुष बनने का मोह तथा नेतृत्व हाथ से छीने जाने के भय से नए नाम ईजाद करने

का मतव्य । जब तक लोगो का यह मुगालता दूर नही किया जाता (और आप किस किस का मुगालता दूर कीजिएगा ?) कि नाम उछालने से व इतिहास पुरुष नहीं हो सकते, इसके लिए उन्हें शक्तिशाली सृजन करना पडेगा, तब-तक इस तरह के नाम उछाले जाते रहेंगे और यह चिन्ता जनक स्थिति होगी । नाम और नारे आज राजनीति से अधिक जुडे हुए हैं । वहाँ कोई नेता या तो नया नारा लाता है या नए नारे की वजह से नेता बन जाता है । इसे विडम्बना ही कहा जायगा कि राजनीति में असफल लोग साहित्य में इस फामूला' से सफल होना चाहते हैं ।

यदि इन नाम आन्दोलनों के पीछे प्रतिष्ठित होने की प्यास और अगुआ बनने का फशन और इतिहास पुरुष बनने का मोह न हो तो इनकी कुछ सार्थकता हो सकती है लेकिन ऐसा अवसर होता नहीं ।

पहले-पहल बाघ को तोडकर बदलाव चित्रकला और कविता में आता है यह बात ऐतिहासिक प्रक्रिया में भी सत्य है । नई कविता' इस बात का सबूत है और बाद में आया हुआ नई कहानी नाम इसे और भी प्रमाणित कर देता है । प्रयोगवादी कविता के नाम पटन पर प्रयोगवादी कहानी' भी सुनाई पडी थी । यह नाम कविता में नहीं चला तो कहानी में भी नहीं चला । यह शायद आकस्मिक नहीं है, कि इधर नई कविता' प्रतिष्ठित हुई, तो गद्य रूप 'नई कहानी' भी प्रतिष्ठित हुई । चूँकि कविता में सामयिक समकालीन सचेतन अचेतन नाम नहीं आए तो कहानी में भी नहीं चले । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जो नाम-आंदोलन कविता में आए गए, व कहानी में आए गए ही और यह अर्थ भी नहीं कि जो भी नाम आन्दोलन कविता में आएँगे व प्रतिष्ठित ही हो जायंगे ।

इधर कुछ उत्साही युवकों के मचों में अकविता' और 'अकहानी जैसे नाम सुनाई पड रहे हैं । ये नाम पश्चिम की 'एंटी पोइट्री' और एंटी स्टोरी' के अर्थ में प्रयोग किए जा रहे हैं, जबकि ये इन शब्दों के अविकल अनुवाद नहीं हैं और इन शब्दों की अपील भी विपरीत है—जैसी 'लघु मानव' की थी । इसलिए ये शब्द किसी आन्दोलन के नाम होकर चल पाएंगे ? अनुकरण करना जरूरी समझ कर यदि विरोधी कविता' और 'विरोधी कहानी नाम दिए भी जाय, तो उनके पीछे जो पश्चिमी परिवेश और बोध है, उसका हमें इन्तजार करना होगा और हो सकता है कि इस इंतजार-अन्तराल में हमारी विधाएं दूसरा मोड लेलें ।

सही बात तो यह है कि फिलहाल 'नई कविता' और नई कहानी में ऐसे कोई मूल्यगत और बोध गत दूर तक रेखांकित करने योग्य बदलाव नहीं आये हैं जिन्हें अलगाने के लिए किसी नए नाम की आवश्यकता महसूस की जाय । हमें उनकी प्रतीक्षा हो सकती है बहरहाल ।

नई कहानी : सवाल

माध्यम की खोज

मोहन राकेश

तीन चार महीने पहले मैंने एक जगह लिखा था कि ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कहानी का आंदोलन नयी कविता का सहवर्ती न होकर उससे आगे का आंदोलन है। इस पर कुछ लोगों की रोष भरी टिप्पणियां पढ़ने को मिलीं। उन्हें शायद लगा कि इस तरह नयी कविता पर आक्षेप करने का प्रयत्न किया गया है। जैसा कि ऐसे अवसरों पर अक्सर होता है, टिप्पणीकारों ने अधिकतर व्यक्तिगत आक्षेपों का आश्रय लिया। व्यक्तिगत आक्षेपों से एक ऐतिहासिक स्थिति को बदला नहीं जा सकता, यह सोचने का उन्होंने कष्ट नहीं किया।

शब्द 'ऐतिहासिक' की ओर शायद उनका ध्यान ही नहीं गया। गया होता तो इस कथन में उन्हें अवास्तविकता नजर न आती। नयी कहानी के आंदोलन की शुरुआत सन पचास के लगभग हुई—'नयी कहानी' यह नाम तो उसे सन् पचपन छप्पन के बाद से दिया जाने लगा। जिन अनिवार्य परिस्थितियों ने इस आंदोलन को जन्म दिया उनका नयी कविता के आन्दोलन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। नयी कविता आंदोलन तब तक अपने चरम पर पहुंच कर एक निश्चित रूप और अर्थ ग्रहण कर चुका था। जिस क्राइसिस के अंतर्गत नयी पीढ़ी की सचेतना 'नयी कहानी' के प्रयोगों की ओर उन्मुख हुई उसके प्रभाव तथा प्रतिक्रियाएं नयी कविता पर अलग से नजर आने लगी थीं। शमशेर और मुक्तिबोध जैसे कवियों ने इन प्रभावों के अंतर्गत नयी कविता को भी एक नयी दिशा दे दी थी। परन्तु इस पीढ़ी की सामूहिक चेतना अपने लिए अभिव्यक्ति का जो विस्तार चाहती थी उसके लिए कहानी का माध्यम अधिक अनुकूल पड़ता था। इसलिए छप्पन सत्तावन के बाद से बहुत-से प्रतिष्ठित और उदीयमान नये कवि भी धीरे धीरे इस माध्यम की ओर आकृष्ट हो आये, क्योंकि दृष्टि और शिल्प का जो अनुशासन नयी कविता के लिए रूढ़ि बन चुका था, उससे हटकर नयी भूमि से प्रयोग करने के लिए यह माध्यम उन्हें अधिक उपयुक्त जान पड़ा। इसका एक कारण शायद यह भी था कि नयी कविता का विकास जहां एक सामूहिक शिल्प शैली को लेकर हुआ, नयी कहानी में आरम्भ से ही लेखक ने, वस्तु की आवश्यकता के अनुसार अपनी अलग शिल्प शैली का विकास किया। नयी कविता में कवि का अपना व्यक्तित्व जहां एक सामूहिक व्यक्तित्व में डूब-सा जाता था, वहां नयी कहानी में वह स्थिति कभी नहीं आयी। यह

कहानीकार आरम्भ से ही अपने अलग व्यक्तित्व को लेकर चला और किसी दूसरे या किन्ही दूसरा के व्यक्तित्व मे उसने अपने को खो जाने नही दिया। एक जगह रहकर और लगभग एक साथ लिखना शुरू करने पर भी अमरकान्त और कमलेश्वर की शिल्प शैली का अपना अपना व्यक्तित्व बना रहा— किसी एक का व्यक्तित्व दूसरे के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गौण नहीं हुआ। आन्दोलन के आरम्भिक दिनों म एक अरसे तक कमलेश्वर और मार्कण्डय के नाम साथ साथ लिये जाते थे। परन्तु दानों की अपनी अपनी विशिष्टता इससे समाप्त नही हो गयी जिससे आज सन ६१ में आकर वे दानों एक ही सचेतना क दो अलग अलग छोरा पर नजर आते हैं।

कुछ लोगों का यह तक कि आज की व्यावसायिक परिस्थितियो न ही नयी कहानी के आन्दोलन का बढावा दिया है और कहा है कि कहानी की उपाजन शक्ति ही बहुत-स लागाक कविता क क्षत्र स कहानी क क्षत्र मे ल आयी है बहुत हास्यास्पद है। अनुकूल माध्यम का चुनाव यदि ऐसे ही कारणो पर आश्रित हो तो लखन को छाडकर व्यक्ति काई और ही रास्ता अपनाना चाहिए क्योंकि कहानी क व्यावसायिक पक्ष स कहीं बहतर व्यवसायिक पक्ष सरकारी तावदारी और कई दूसर एसे कामो का है जो कि कुछ स्वनामधन्य साहित्यकार वर्षों से करते चल आ रहे हैं। और व्यवसायिकता की बात करने वाल लोग प्राय वही हैं जो स्वय एसी ही दृष्टि से साहित्य रचना करते हैं और बीस पच राज क हिसाब स कहानी उपन्यास मनोविज्ञान, कामसूत्र (जब जिसकी बिक्री और माग ज्यादा हो) लिखत लिखात रहत हैं। नयी पीढ़ी क तो किसी भी कहानीकार की चाहने पर भी साल मे चार छ से ज्यादा रचनाए पढ़न को नहीं मिलती। पिछल पूरे साल म निमल वर्मा की चार स ज्यादा कहानिया प्रकाशित नहीं हुई और राजेन्द्र यादव जस लिक्खाडन तो सिफ एक ही कहानी लिखी है– 'टूटना'। उसके बाद, उसकी दूसरी कहानी की अब प्रतीक्षा है। नयी कविता से नयी कहानी के क्षत्र में आये श्री कान्त वर्मा न भी इस अरसे म जो कहानिया लिखी हैं, उनकी सख्या मुश्किल स चार या पाच होगी।

परन्तु किसी भी और साहित्य मे नयी पीढ़ी के बुनियादी सघर्ष का आछी दृष्टि स दखने वाला की कमी नहीं रहती। हमारे यहाँ यह आछापन कुछ अधिक मात्रा मे है, बस इतना ही फक है। हमारे देहात में एक बहुत बडी जनसख्या ऐसे लोगों की है जो अभी तक सामन्तवादी सस्कारों स मुक्ति नहीं पा सके शहरों म एक बहुत बडी जनसख्या है जिसे उन्नीसवी शताब्दी के मध्यवर्तीय सस्कार अभी नये सस्कार जान पडत हैं। इन दोनों वर्गों म जिन साहित्यिक रचनाओं का मान्यता प्राप्त रही है वे रचनाए स्वत उन्हीं सस्कारो की उपज हैं। किसी भी बदलते हुए समाज में ह्रासोन्मुख मूल्यों मे आस्था रखने वाला वर्ग साहित्य और कला के क्षेत्र म होने वाले मूल्यात्मक परिवतनो

को न केवल आशंका की दृष्टि से देखता है बल्कि जहा तक बन पड़े उनकी स्वीकृति के माग मे बाधाऐ खडी करने का भी प्रयत्न करता है। इसका सबसे सहज उपाय है, उस साहित्य और कला का पोषण करना जो कि उसके अपने मूल्यो की उपज हो। इसलिए आज यदि सामन्तवादी और मध्यवर्तीय संस्कारों के साहित्य को और नये साहित्य मे चिढनेवाले लोगों का अधिकाश कृतित्व इस घेरे मे आ जाता है—एक खासा बडा वग उन्हीं सस्कारो के पाठको का मिल जाता है, तो यह तथाकथित 'लोकप्रियता' उस साहित्य की श्रेष्ठता, समकालीनता या जीवनापन्नता का प्रमाण नहीं। हीनतर स्तर पर आज भी हमे अपने आस पास एक बहुत बडा वग बैताल पच्चीसी के पाठकों का मिल जायेगा। वह वग भी सस्कारहीन नहीं एक विशेष सस्कार से परिचालित है। जब हम लेखक और पाठक के बीच के सम्बन्ध और आदान प्रदान की बात करते हैं तो उसके लिए दोनो म एक से सस्कार का होना तथा दोनों के जीवन म एक सी सहभागिता का होना आवश्यक है। ऐसा होने पर ही प्राय इस तरह की बाते कही जाती हैं कि अमुक नयी रचना म कुछ श्रेष्ठता है, तो वह हमे क्यों नजर नही आती? हम अपने को काफी प्रबुद्ध पाठक समझते हैं। यूनिवर्सिटी के दिनो म हमारी गिनती चोटी के विद्यार्थियों म थी।

उत्तर इसका दिया जा चुका है। जहा समसंस्कारिता और जीवन की सहभागिता नहीं है, वहाँ केवल विश्वविद्यालयीय प्रतिभा और समझ बूझ साहित्य के आस्वादन के लिए प्रयाप्त नहीं—विशेष रूप से उस साहित्य के आस्वादन के लिए जिसकी रचना परम्परा की लकीर से हटकर हुई हो।

नये साहित्य की 'पठनीयता' और 'लोकप्रियता' को लेकर परम्परागत सस्कारों के समर्थकों, पाठकों और आलोचकों द्वारा कई बार जो आशकाए प्रकट की जाती हैं उनका कारण इस वस्तुस्थिति को न पहचानना ही है। बाहरी तौर पर आधुनिक होते हुए भी (क्योंकि विदेश भ्रमण को ही कुछ लोग आधुनिकता का प्रमाण समझने लगे हैं और इधर किसी-न किसी प्रसग म पिछली पीढी के अधिकाश लेखक-आलोचक अफ्रीका और पूरब-पश्चिमी यूरोप से लेकर अमरीका तक हाथ लगा आये हैं) एक व्यक्ति अपने सस्कारो स एक सदी पुरानी बना रह सकता है। यही दिक्कत लगभग और प्रानाधिक भी इस वग क साथ है। इसलिए ये लोग नये साहित्य की आधुनिकता और नये भावबोध की चर्चा मात्र से मडक उठते हैं। अपने को और दूसरों को विश्वास दिला देना चाहते हैं कि उनकी आधुनिकता की समझ बूझ किसी भी तरह किसी और से कम नहीं—यदि कुछ लोग आधुनिकता के नाम पर ऐसा कुछ लिखते हैं जो कि उनके सस्कारों से मेल नहीं खाता, तो जरूर वह आधुनिकता झूठी और दिखावटी है। वरना यह कैसे सम्भव है कि साहित्य की विशिष्ट स्तर का और उनकी नयी

आधुनिक समझ में न आये? कुछ लोगों ने तो आधुनिकता के दावेदार होने के लिए इधर अपने लेखन और चिन्तन का पूरी तरह रेनोवेट किया है—मगर इस मजबूरी का क्या करें कि बोलते लिखते वक्त फिर वही पुराना व्यक्तित्व बात पपर के पीछे से झलक जाता है?

माध्यम के रूप में कहानी की ओर नयी पीढ़ी का विशेष झुकाव एक आन्तरिक अनिवार्यता के कारण ही है। जो लोग कहानी को पुरानी कथायी परिभाषा की एक रचनाशैली के रूप में देखते हैं, उन्हें इस स्थिति को समझने में कठिनाई हो सकती है—क्योंकि उस अर्थ में नये लोगों ने इस माध्यम को नहीं चुना। जिस दृष्टि से उन्होंने इसे चुना है वह स्वतः ही उस तरह की परिभाषा के लिए स्थान नहीं रहने देता। उनके लिए कहानी घटना या चरित्र विधान की एक विशिष्ट शैली नहीं—उस तरह की कहानी की सम्भावनाएं बहुत पहले समाप्त हो चुकी थीं। पुराने चित्रों का दम देख कर यथा तर कलाकार की तरह आज भी कुछ लोग उस तरह के प्रयोग करते रहें यह बात दूसरी है। नये लोगों ने कहानी को एक तटस्थ और उदासीन स्थिति-पर्यवेक्षण के रूप में भी नहीं लिया—उस दृष्टि से किये गये प्रयोगों की निरर्थकता भी बहुत पहले स्पष्ट हो चुकी थी। माध्यम के रूप में कहानी को अपनाने में कहानी का कोई परम्परागत रूप उनके लिए आकर्षण नहीं था। आकर्षण था वह सब जो कि इस माध्यम के अन्तर्गत सम्भव नहीं हुआ था और वह सब जो कि किसी अन्य माध्यम के अन्तर्गत उन्हें सम्भव नहीं लगता था। यदि इस माध्यम में सर्वथा नयी सम्भावनाएं इस पीढ़ी के लोगों ने न देखी होतीं तो इस ओर उनके आकृष्ट होने का कोई कारण नहीं था क्योंकि मान्यता की दृष्टि से तब तक कहानी का स्थान कविता, नाटक और उपन्यास सबके बाद आता था। पुराने संस्कार के आलोचकों की दृष्टि से यह स्थिति आज भी बदली नहीं है। उनमें से कुछ एक तो यह बात ईमानदारी के साथ स्वीकार भी करते रहे हैं कि कहानी नाम की चीज को कभी उन्होंने गम्भीरतापूर्वक नहीं पढ़ा। हां इधर की चर्चा परिचर्चाओं के बाद शायद उन्हें लगने लगा है कि कहानी में भी ऐसा कुछ है और हो सकता है जिसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखना परखना चाहिए। (परन्तु देखने परखने की कोशिश का भी इससे ज्यादा नतीजा नहीं निकला कि नयी कहानी के अन्तर्गत उन्होंने पुरानी कहानी की खोज की और उस अर्थ में उसे 'कहानी' न पाकर निराश हुए।)

एक व्यापक माध्यम के रूप में कहानी की सम्भावनाओं को हिन्दी के कहानीकारों ने ही नहीं देखा—विश्व की कई भाषाओं में इस माध्यम को एक नयी प्रयोगात्मक दृष्टि से ग्रहण किया गया है किया जा रहा है। कहानी उस अर्थ में आज कहानी रह

हो नहीं गयी जिस अर्थ में पुराने संस्कार के लोग उसे ग्रहण करते आए हैं। कहानी के प्रति दृष्टिकोण इस बीच इस तरह से बदला है कि हर नयी कहानी अपने में एक नया सीमा चिह्न हो सकती है। जो सामान्य धरातल उसे पुरानी कहानी से अलग करता है वह नयी नयी सम्भावनाओं की खोज का ही है। हिन्दी में आज यदि इस अन्वेषणात्मक कहानी को नयी कहानी का नाम दे दिया गया है तो वह इस अर्थ में ही कि उसके प्रयोग तथा अन्वेषण का अर्थ सर्वथा अपना है और कि अलग अलग कहानीकारों के विशिष्ट व्यक्तित्व और विशिष्ट अन्वेषण क्षेत्र के रहते हुए भी इस माध्यम में एक नयी सार्थकता ला पाने का उनका प्रयत्न एक-सा है। इसकी सम्भावनाओं को और और विस्तृत करते जाने में उनका विश्वास एक सा है। इसलिए नयी कहानी जड़ परिभाषाओं से छूटी हुई, बल्कि उनकी असमर्थता को प्रमाणित करती हुई एक प्रयोग परम्परा है—इन प्रयोगों को फिर से परिभाषा में कसने का आग्रह आलोचना का पुराना संस्कार ही है। परिभाषाएं आज की जिन्दगी के सामने जो हम चित्रित करते हैं साहित्य के सामने ही असमर्थ पड़ती हों ऐसा नहीं है हमेशा से असमर्थ पड़ती रही हैं। हां उनकी असमर्थता का ठीक अहसास अब आकर होने लगा है जब कि हमारी चेतना किसी भी तरह के झूठ के साथ अपने को बांधकर रखने से इन्कार करती है। परिभाषाएं उस व्यक्ति की सीमाओं को ही व्यक्त करती हैं जोकि उन्हें बनाता, तराशता है क्योंकि वह व्यक्ति अपनी सूझ बूझ और आस्वादन शक्ति को ही कसौटी मानकर उस पर सब तरह के प्रयोगों को परखने लगता है। हर प्रयोग की अपनी एक मानसिकता रहती है और कई कई सूक्ष्म स्तरों पर रहती है। यह जान लेने पर एक सी यान्त्रिक परीक्षा करने का आग्रह शायद नहीं रह जायेगा। मगर आदमी से रहा भी तो नहीं जाता—खासतौर से जब कि बड़ी मेहनत से उसने हथियार तैयार किया हो। (खाली हथियार लिये फिरना किसे अच्छा लगता है?) परिणाम हर साल नयी-नयी परिभाषाएं। पिछले दस साल में दस तरह की परिभाषाएं तो अकेले डा. नामवरसिंह ने दी हैं। उम्मीद करनी चाहिए कि आनेवाले दस साल में कम से कम इतनी ही परिभाषाएं व और देंगे। (जरूरत भी शायद कम की नहीं पड़ेगी क्योंकि दस सालों में कहानी का रूप न जाने आज से कितना बदलेगा बिल्कुल अब लोगों की प्रयोगात्मकता उसकी सामर्थ्य और सम्भावनाओं को जाने क्या विस्तार देगी। सन चौहत्तर के आते आते तक तो शायद हम पिछली परिभाषाएं क्यूरियो शाप में जाकर ढूंढनी पड़ेंगी।)

आलोचनादृष्टि के अनपढ़पन के बावजूद नयी रचनात्मक प्रतिभा उत्तरोत्तर इस माध्यम को और निखारती आयी है—अपनी आन्तरिक प्रेरणाओं के कारण। उन्हीं प्रेरणाओं के कारण इस माध्यम की पहले की निश्चित और परम्परा से मानित सीमाओं को उसने तोड़ा है। कहानी को जिस अर्थ में कविता से अलग किया जाता था

रस ग्रथ म नय प्रयोगकारो ने उसे अलग रहने नहीं दिया— अपने का यात्मक सवेदों को ग्रभि यक्ति के लिए एक वहत्तर कनवस के रूप मे भी इसे अपना लिया ह। कइ जगह य सवेद काव्यात्मक रूपो मे ही ग्रभि यक्त हुए है, पर तु अपने स दभ के साथ। कई जगह वे सन्दर्भ मे ही इस तरह घुल मिल गये हैं कि उनकी तीव्रता य क्तियो और उनकी परिस्थितियो मे परिणत हो गई है। रेणुका कहानी तीसरी कसम' सवेदो की इस परिणति का एक अच्छा उदाहरण है, एक और उदाहरण है अमरका त की कहानी "दोपहर का भोजन'। इन दोनो कहानियो की रचना उसी मनाभूमि मे हुई है जिससे कोई भी कविता उपजती। पर तु कविता रूप दन पर इन दोना ही स्थितियो में शायद वचारिकता के स्पश से न बचा जा सकता। सवेदों की कम्पलेक्सिटी का जो सहजता कविता म प्राप्त होनी चाहिये वही इन कहानियो में सम्भवत और भी कोमल रेशो स लायी जा सकी है। दानो स्थितियों म कहानी का माध्यम के रूप मे चुना जाना आकस्मिक नही है और न ही इसलिए है कि उनके रचयता कवि न होकर कहानीकार हैं। इन काम्प्लक्स सवेदा की इतनी सहज अभिव्य क्ति और किसी माध्यम से शायद हो ही न पाती। प्रयत्न किया जाता तो वचारि कता स बचा लने पर भी एक अधूरापन जरूर बना रहता। माध्यम के रूप म कहा नी के स्वीकार किय जाने का एक कारण अधिक सम्पूर्णता म सवेदा की अभिव्यक्ति चाहना भी है।

यह कहना गलत होगा कि कहानी ही एक माध्यम है जिसमे आज की जि दगी की सकुलता को सहजता क साथ व्यक्त किया जा सकता है। हा इतना कहा जा सकता है कि जिन्दगी की आ तरिक और बाह्य परिस्थितिया के चित्रण के लिए यह अधिक अनुकूल माध्यम है— अनुकूल आसान नही। क्योंकि यदि एक लखक अपन अन्दर के अभिव्यक्ति के चैलेंज को स्वीकार करके इस माध्यम स प्रयोग करना चाहता है तो कई बार एक ही प्रयोग म उसे दिन सप्ताह और महीने निकल जा सकत है। इस पर भी कई बार उसे अपन म हारना पड जाता क्योंकि सवेदा को उनकी समग्रता म अभिव्यक्त करने और एक रचनात्मक अभिव्यक्ति दने क लिए ठीक उपकरण ही कई बार नहीं मिल पाते। तब बार बार अपने अन्दर की चुनौती को स्वीकार करने और बार-बार उस बिन्दु पर प्रयोग करने का क्रम लगातार चलता रहता है। ऐसी स्थिति म कुछ कहानिया तो दिनो महिनो म पूरी हो जाती ह पर कुछ ऐसी भी होती हैं जो पूरी हो ही नही पाती— कई कई प्रयोगो के बाद भी अधलिखी या अनलिखी रह जाती है।

पर तु यह माध्यम के रूप म कहानी का ववालत नहीं है। मैंने पहले ही कहा है कि एक निश्चित और पारिभाषिक माध्यम के रूप म कहानी का रूप बदका

समाप्त हो चुका है। आलोचना पुस्तका में गिनायी जाने वाली पाच विधाओं म कहानी नाम की जो एक विधा थी, उसका पहचान क आधार पर आज की कहानी का समझना असम्भव है। नयी कहानी पुरानी कहानी का नया रूप नहीं कथात्मक गद्य का एक नया क्षत्र है जिसम युग की सभी वस्तु परक और काव्यात्मक अनुभूतियों का लकर रचना क प्रयोग किय जा सकते हैं, किय जा रहे है। किसी व्यक्ति विशेष की उत्तजिया उसमें आन्त नहीं हैं, इसलिए तुलनाओं का सवाल भी पदा नहीं होता। माध्यम की उपयोगिता एक माध्यम क रूप म ही है—जहा तक कि किसी भी लख क के तीव्रतर सवगो का ठीक स वह अपने म समेट सके, ठीक से उनका वहन कर सक। जहा सवग न ही नहीं, वहा किसी भी अ य माध्यम की तरह वह बकार ह। माध्यम का परिष्कार अपन म कुछ भी अर्थ नही रखता। हमार अन्तर की व्याकुल ता हमारी आत्मा की चीख, वह चीख जिसे दबाय रखने का सस्कार सदियो स हम दिया गया था यदि इस माध्यम से भी ठीक स ध्वनित नहीं हो पाती, तो अपनी पीढ़ी को इससे चिपके रहन का भी कोई आग्रह नहीं होगा। परन्तु जिस व्यापक अर्थ म आज इसे लिया जा रहा है, उसे देखत हुए और नयी पीढ़ी की प्रयाग शि ला का दखत हुए, लगता यही है कि आनवाल साला म इसकी सम्भावनाए अभी और विकसित होगी।



आज की कहानी : परिभाषा के नये सूत्र

राजेन्द्र यादव

चूँकि हर युग की कहानी 'नई' होती है इसलिए पिछले दशक की कहानी को 'नई कहानी' नाम देना आगे जाकर अध्ययनाओं के लिए गलतफहमी पैदा कर सकता है। नई मगर कहानी की इस धारा को कोई न कोई नाम तो देना ही होगा, क्योंकि चाहे हम 'नई कहानी' नाम की कोई चीज मानें या न मानें यह स्वीकार करने के लिए तो विवश हैं ही कि इन दस वर्षों मे कहानी का एक ऐसा व्यक्तित्व जरूर सवरा और निखरा है जो उसकी पिछली परम्परा से एकदम भिन्न है। वस्तु और रूप यानी सब मिलाकर कहानी की परिकल्पना मे मौलिक अन्तर जरूर आए हैं—और ये अन्तर काफी ताकतवर भी रहे ही होंगे, तभी तो सारी साहित्यिक चेतना आज धीरे-धीरे कविता से हटकर कहानी पर केन्द्रित हो रही है। कहा जाता है कि 'नई कविता परम्परा का तिरस्कार है और नई कहानी परम्परा का विस्तार। मुझे इस बात मे भी विशेष दम नही दिखाई देता। विस्तार प्रगति जरूर बताता है, लेकिन कहानी के इस नये रूप ने परम्परा को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया हो—ऐसा नही है हो कुछ सूत्र सामान्य होते हों। सच पूछा जाय तो तिरस्कार करने के लिए कविता के सामने एक गलत या सही परम्परा थी। उधर इस दशक की कहानी के सामने ऐसी कोई तात्कालिक परम्परा नही दिखाई देती जिसका तिरस्कार या विकास किया जाता। अतः उसे या तो नई परम्पराओं की नीव डालनी पड़ी या परम्परा और प्रभाव के लिए बहुत दूर देखना पड़ा।

तात्कालिक शब्द को स्पष्ट करना जरूरी है। सन् ५० से ६० के बीच विकसित हुई आज की कहानी को अगली पीढ़ी किस निगाह से देखेगी यह तो समय बताएगा लेकिन वर्तमान पीढ़ी यह मानने को बाध्य है कि विधा की परम्परा की दृष्टि से सन् ४० से ५० का पिछला दशक आज की कहानी को कुछ नहीं दे पाया—उसने जो कुछ दिया वह सारे साहित्य को दिया। दोष उस दशक का नहीं है इतनी विरोधी परिस्थितियों की अस्थिरता में चतुर्दिक परिवर्तन और व्यापक उद्वेलन की गति इतनी तीव्र और तूफानी थी कि समाज की बनावट का कोई एक रूप निश्चित नहीं हो पाया

था। तत्कालीन कथाकार इस चकाचौंध मे कही भी आँख टिकाने मे अपने को असमर्थ पाता था। छ वर्षों तक चलता युद्ध, बयालीस का विप्लव, बगाल का अकाल नाविक विद्रोह, स्वतंत्रता, दंगे, शरणार्थियों के काफिले, सरकारी भ्रष्टाचार और राजनीतिक पार्टियों की आपाधापी—सभी कुछ एक के बाद एक इस तरह आता चला गया कि व्यक्ति मन के धरातल पर उस सबका समाहार कथाकार के लिए असभव हो गया। उसकी निगाह तेजी स बदलती सतह पर ही टिकी रही और वह कहानी के नाम पर शब्दचित्र 'स्कैच' या 'रिपोर्ताज' स आगे नहीं बढ पाया। मूलत वह युग नारो और भाषणा का था। परिणामत साहित्य की हर विधा म आवेश, उत्साह और आग की लपटों के साथ साथ अधाधुध शब्दो का लावा फूटता था। हर वस्तु को देखने का कोण व्यक्ति न होकर भीड क आशावाद यानी मॅरल—को बनाए रखने के लिए हर दूसर वाक्य म नया सूरज निकाल दिया जाता था।

पुरानी नैतिक सामाजिक राजनीतिक या भौगोलिक सभी भूमियों स विस्थापित शरणार्थियों के दल जब कहीं भी पाव टिकान को दिशाहारा की तरह भटक और बौखला रह हो—तब अकेल व्यक्ति की कुठाओ और दर्दों को गान या सुनने की फुरसत किस होती? एसे दिशाव्यापी विघटन और विशृखलन म व्यक्ति का जीवन और आस्था दता है केवल सामूहिक आशावाद

इस प्रकार इस दशक की कहानी (जिसे हम आज की कहानी कहेंगे) ने इस समूहगत सामाजिकता क वातावरण म आखें खोलीं। चाहें तो इस ही पिछली पीढी की विरासत मान सकते हैं लेकिन वस्तुत यह सामाजिकता तो एक ऐसी चेतना थी जो साहित्य की सभी विधाओं को समान रूप से मिली थी। अभी तो इस चेतना का अपना रूप भी स्थिर होना था और यह गौरवपूर्ण काय आज की कहानी ने किया—अर्थात आज की कहानी ने समूहगत सामाजिकता को व्यक्तिगत सामाजिकता के रूप में देखने पाने की कोशिश की। विराट् युग बोध को व्यक्ति या व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों की चेतना यानी मन के अनेक स्तरों पर आकलन और प्रतिफलन नाटक का आज की कहानी ने ही सबसे पहल देखा।

सतही दृष्टि स देखनेवालो ने अक्सर ही इस दशक की कुछ कहानियों पर जैनेन्द्र और अज्ञेय की कुठा पराजय और घुटन के पुनर्प्रस्तुतीकरण का आरोप लगाया है। हो सकता है इनम से कुछ ने उन्हीं स्थितियों और चरित्रों को दुहराया हो, लेकिन जरा गहराई से देखने पर साफ हो जाएगा कि जिस कुठा, पराजय और घुटन को स्वयंसिद्ध सत्य मानकर जनेन्द्र और अज्ञेय ने अपनी कहानियों का ताना-बाना बुना था, उसी सबको आज के कहानीकार ने अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य म अधिक तटस्थ और निर्वैयक्तिक दृष्टि के साथ चित्रित किया है। आधारभूत अन्तर

यह है कि विकृति पहली बार 'दृष्टि' मे थी—इस बार दृष्टि स्वस्थ है—'दृश्य' चाहे विकृत हो। क्योंकि आज की कहानी मे आनेवाला व्यक्ति निश्चित रूप से अधिक स्वस्थ सामाजिक चेतना की उपज है। और यही कहानी को उस परम्परा से अपने सम्बन्ध जोडने थे जिसके बीज उसे प्रेमचद और यशपाल से मिले थे।

पिछली पीढी के कुछ कहानीकारो ने एकाधिक बार झुझलाकर कहा है–"आज की कहानी ने आखिर ऐसा क्या कर दिखाया है जो पहले नहीं था ? ऐसे कथा प्रयोग तो प्रेमचद यशपाल या समकालीन उर्दू कथाकारो—मटो बेदी, अश्क कृष्णचन्द्र इत्यादि–में कई मिल जाए गे। बात आरोप के रूप मे कही जाती है लेकिन अनजाने ही यह भी सिद्ध करती है कि आज के कथाकार ने उन्हीं की टूटी फूटी विस्मृत और दूर पडी परम्परा को ही तो विकास देने की कोशिश की है। अगर प्रेमचन्द या अन्य कहानीकारो मे कही ऐसा कुछ मिलता है जो आज की कहानी के बहुत अधिक निकट है तो उसे अनुकरण ही क्यो माना जाए ? क्यों न यह मान जाए कि आज की कहानी ने अपना प्रारम्भ वहीं से किया है। अपनी दृष्टि से उस सबको देखा है।

निस्सदेह उन यत्किंचित समानताओं में भी दृष्टि का अन्तर बहुत स्पष्ट है—और वही दृष्टि है जो पिछली सारी कहानी को आज की कहानी से अलग करती है। उस युग के कहानीकार के पास अपने कुतुबनुमा या प्रेरक-शक्ति के रूप में सिर्फ एक चीज थी और वह थी सहज मानवीय सवेदनशीलता। उसीसे प्रेरित कोई भी विचार सत्य या आइडिया' उसके सामने कौंधता था और वह कुछ पात्रों कुछ स्थितियो कुछ घटनाओं के सयोग सयोजन से उसे घटित या उदघाटित कर देता था। अर्थात कहानी की सर्वमान्य परिभाषा के अनुसार किसी भी मूड घटना या प्रभाव और विचार को लेकर कहानी लिख दी जाती थी और कहानी के इस केन्द्रीय तत्व को उभारकर पाठक पर एक सवेदनात्मक प्रभाव डालना ही तत्कालीन कहानी का उद्देश्य था। चरित्र देश-काल कथोपकथन चरित्र चित्रण इत्यादि कहानी के सारे तत्व उस केन्द्रीय आइडिया या सत्य की सिर्फ उदघाटित या घटित करने के लिए आलबन और उद्दीपन के रूप मे ही निमित्त बनाकर लाए जाते थे। अत उनके आधिकारिक या बहुत प्रामाणिक और अधिक आत्मीय होने की लेखक को विशेष चिन्ता नहीं होती थी। केन्द्रीय तत्व उस 'सत्य या आइडिया के आलबन उद्दीपन के लिए वह देश विदेश भूत-वर्तमान किसी भी स्थान किसी भी वर्ग को आसानी से अपनी विषय वस्तु या घटनास्थल के रूप में चुन सकता था। इस प्रकार पात्र देश काल सम्बन्धी अनेक प्रकार की विविधता का आभास देकर—नाटकीय प्रारम्भ, क्लाइमैक्स और अप्रत्याशित अन्त द्वारा उस समय का कथाकार अपनी कहानी को काफी रोचक और मनोरजक बना लेता था।

बहुत अस्वाभाविक नहीं है कि उस युग के कहानीकार और उस मानसिकता में विकसित पाठक को आज की कहानी में वह सब नहीं मिलता। न उसे साम-रोक क्लाइमेक्स मिलता है, न एक के बाद दूसरी घटनाओं में छलांगें भरता कथानक। सब मिलाकर उसे आज की कहानी विषय-वस्तु के लिहाज से उलझी, अस्पष्ट, अपूर्ण, लगती है और रूप के लिहाज से ढीली अनगढ़ और भोंडी, और तब वह श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दों में शिकायत करता है कि "कहानी अभी उस ऊंचाई तक नहीं पहुँची, जिस पर चौथे दशक के उत्तरार्ध में पहुँच गई थी।"

उस 'ऊंचाई' पर पहुँची है या नहीं, यह कहना तो मुश्किल है लेकिन कहानी की धारणा में आधारभूत अंतर जरूर आया है। एक ओर तो आज के कहानीकार का 'सत्य' या 'आइडिया' इतना कटा-छटा और स्वयं-सम्पूर्ण नहीं है, दूसरे शेष सभी कुछ आइडिया को घटित करने के लिए निमित्त-भर हो—यह उसे स्वीकार्य नहीं है। कोई भी आइडिया विचार या सत्य—व्यक्ति या पात्र के जीवन की धारा में रहते हुए ही उसकी उपलब्धि बन—उसका प्रयत्न यह है। उसकी यथार्थ दृष्टि बताती है कि बिना देश-काल अर्थात् परिवेश के व्यक्ति की कल्पना अधूरी और आनुषंगिक है। व्यक्ति के अंतर्बाह्य निर्माण में उसके संस्कार शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक स्थिति, सम्पर्क और पेशा—सभी का हाथ होता है। इस सबकी पृष्ठभूमि के साथ ही, अपनी सीमाओं के भीतर ही कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध या उद्घाटित कर सकता है। बिना इस परिवेश को संगति को आत्मसात् किए, हर किसी 'सत्य' या आइडिया को घटित और उद्घाटित करना—उनका आरोप करना है—प्राप्त करना नहीं।

अतः आज की कहानी अधिक यथार्थ दृष्टि, प्रामाणिकता और अधिक ईमानदारी से अपने आसपास के परिचित परिवेश में ही किसी ऐसे सत्य को पाने का प्रयत्न करती है जो टूटा हुआ, कटा-छटा या आरोपित नहीं—बल्कि व्यापक सामाजिक सत्य का एक अंग है। मेरे कहने का कदापि यह अर्थ न लिया जाए कि आज की कहानी का कोई केन्द्रीय भाव या आइडिया और विचार नहीं होते—नहीं आज की कहानी का ताना बाना भी आइडिया, विचार या केन्द्रीय भाव के आसपास या उसके लिए ही बुना जाता है—लेकिन कहानी उसे उसकी जन्म भूमि से काटकर अलग नहीं करती। वह तो सिर्फ उसकी स्थिति ज्यों की त्यों बनाए रखते हुए सिर्फ उस केन्द्रीय भाव या आइडिया का रेखांकित या फोकस कर देती है। यही नहीं, आज की कहानी अतिरिक्त सावधानी बरतती है कि कहीं वह केन्द्रीय भाव या आइडिया अपनी शेष धारा से कट न जाए। इसके लिए उसे अधिक संवेदनशील दृष्टि और अधिक नाजुक शिल्प का सहारा लेना पड़ता है।

बात को स्पष्ट करने के लिए फिर सूत्र को 'व्यक्तिगत सामाजिकता' से पकड़ना होगा। आज का कहानीकार यह मानता है कि युग के सारे विराट् को, गतिशील मूल्यों के संस्कारों और संक्रमण को कहानी के माध्यम से हम व्यक्ति या व्यक्ति समूह की चेतना धारा में कभी-कभी चेतना के अनेक स्तरों पर एक साथ पकड़ने की कोशिश करते हैं। काल के प्रवाह में, व्यक्ति को सामाजिकता का बोध और स्थिति ही आज की कहानी की विषय-वस्तु है। कथाकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है। व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अन्तर्द्वंद्वों तथा व्यावहारिक जीवन के तकाज़ों तथा और आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप में पाना चाहता है। इसलिए कहानी का कोई भी तत्व निमित्त या आलंबन बनकर नहीं स्वयं आश्रय या विषय वस्तु बनकर आता है। परिणामतः इन दस वर्षों की कोई भी अच्छी कहानी उठा लीजिए— उसका प्रभाव या परिणति झटके के साथ देखा या पाया हुआ सत्य नहीं होता। न वह हथौड़े की चोट की तरह सारे अस्तित्व को झनझनाती है न चुभे तीर की तरह टीसती है। वह तो कुहासे या अगरुगंध की तरह समस्त चेतना पर छा जाती है— स्वयं उसका अंग बन जाती है। इस प्रकार अनजाने ही आत्मा को संस्कार और दृष्टि देती है। यही यह कहना बहुत बड़ी गर्वोक्ति न होगी कि मानव आत्मा का शिल्पी आज की कहानी में ही पहली बार अपनी भूमिका का सही निर्वाह करने का प्रयत्न करता है।

कहानी की इस एकान्वित और संश्लिष्टता को देखकर ही नामवरसिंह ने सबसे पहले आवाज उठाई थी कि रूढ़ शास्त्रीय तत्वों के अनुसार कहानी को अलग अलग खंडों में देखना गलत है। कहानी अब अपनी पुरानी हदें तोड़ आई है और नई परिभाषा चाहती है।

व्यक्ति को समग्रता में देखने का आग्रह—या व्यक्तिगत सामाजिकता का बोध कथाकार के लिए दुहरा दायित्व देता है। सबसे पहली जिम्मेदारी तो यह कि व्यक्ति अपना व्यक्तित्व न खो दे—उसे अधिक से अधिक इमानदारी आत्मीयता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया जाय—दूसरा यह कि इस आत्मीयता और संवेदनशीलता को अधिक से अधिक व्यापक, कन्विंसिंग और कम्प्रिहैंसिव बनाने के लिए व्यक्ति को उसके परिवेश से न तोड़ा जाय। व्यक्ति का उसके सामाजिक ऐतिहासिक पारवारिक परिवेश से अलग न करने की यथार्थ दृष्टि अर्थात् समग्रता में देखने का आग्रह तभी सफल हो सकता है जब कथाकार व्यक्ति और परिवेश दोनों से तादात्म्य स्थापित कर सके, या ऐसे परिचित परिवेश से व्यक्ति को उठाय फिर तत्काल उसका तादात्म्य प्राप्त कर ले। शायद यही कारण है कि पहले के कथाकार।

की तरह आज का कथाकार न तो हर किसी व्यक्ति को ले पाता है न हर किसी परिवेश में उसे रखना पसंद करता है। स्वानुभूति का मतलब ही है कि कहानी का व्यक्ति और परिवेश इतने आत्मपरक—सब्जेक्टिव—और वैयक्तिक—पर्सनल—हैं कि अक्सर हर व्यक्ति के रूप में लेखक और परिवेश के रूप में उसके अपने वातावरण का भ्रम होने लगता है। स्वानुभूति की सीमाएं उसे व्यक्ति के रूप में 'मैं' से और परिवेश के रूप में इस 'मैं' के 'अपने ही वातावरण' से बांधे रखती हैं। तब हम कहते हैं अमुक लेखक अपने को दुहरा रहा है। लेकिन जब वह अपनी कहानी के विविध व्यक्तियों का 'मैं' की आत्मीयता और संवेदनशीलता तथा विविध परिवेशों को 'मेरा अपना वातावरण' जैसी महत्ता और यथार्थता दे देता है तो यह उसकी कला-दृष्टि की ईमानदारी और सफलता है। व्यक्ति और परिवेश की यह उल्लिखित विविधता पहले कहानी की पात्र देश-काल, कथानक इत्यादि की विविधता से एकदम अलग है। मगर यह भी सही है कि स्वानुभूति के आग्रह या यथार्थ-दृष्टि ने यथा आज का लेखक विविधता की दृष्टि से निर्धन हो है। हां अपनी समग्रता में आज की कहानी जितनी विविध है—उतनी शायद ही पिछले किसी युग की रही हो।

अब विविधता न दे पाने के कारण पर एक और कोण से विचार करें। विविध व्यक्तियों को 'मैं' की सब्जेक्टिव आत्मीयता और संवेदना तथा विविध परिवेशों का 'मेरा अपना वातावरण' जैसी दृष्टि और यथार्थता देने का आग्रह लेखक की सारी रचना-प्रक्रिया को बदल देता है। 'मैं' को पूरी तरह जानने और उससे तादात्म्य स्थापित करने के लिए साथ ही उसके परिवेश को आत्मसात करने के लिए—व्यक्ति और परिवेश के सम्बन्धों और सन्दर्भों को दूरी और गहराई तक जानने की जरूरत पड़ती है। तब कहानी के कलेवर में एक केन्द्रीय भाव को फोकस करते समय उसके लिए यह छांटना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि क्या रखे और क्या छोड़े? सभी तत्त्व तो एक-दूसरे में गुंथे हैं एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। निश्चय ही यह मन-संकट उसके आवश्यक-अनावश्यक को छांटने के विवेक की कमी नहीं संश्लिष्टता का आग्रह है। पिछली पीढ़ी या कहिए परम्पराबद्ध कथाकार की तरह अपनी निर्वैयक्तिक (ओब्जेक्टिव) दृष्टि और प्रतिभा के तेज चाकू से बनाई उसी तटस्थता के साथ एक साफ-सुथरे कटे-छंटे चारदिवारीवाली कसी-कसाई (कम्पैक्ट) कहानी काट निकाल लेना आज के कहानीकार के लिए भी कठिन नहीं है। लेकिन क्या सचमुच कोई भी भाव या भावना ऐसी अलग-थलग, स्वयं-सम्पूर्ण और सीधी-सपाट होती है? मुझे तो हर भाव या भावना के सूत्र और रेशे, व्यक्ति तथा परिवेश के भीतर बहुत दूरी और गहराई में समाए एक-दूसरे से बहुत अधिक गुंथे और उलझे हुए लगते हैं। और मेरे सामने तो इस बुनावट (टैक्सचर) की जटिलता का अहसास तथा उसको ज्यों का त्यों

क आग्रह 'क्या छोड़ू क्या न छोड़ू' का धर्म-संकट बन जाता है। शायद यही कारण है कि आज की कहानी अपने परम्परागत आकार से ही दुगनी नहीं हो गई है वरन् व्यक्ति और परिवेश को दूरी और गहराई के अनेक कोणों और आयामों में देखने के कारण भी उपन्यास के अधिक निकट पड़ती है। आज की अधिकाश कहानिया ऐसी हैं जिन्हे पुराना लेखक उपन्यास के रूप म लिखना ज्यादा पसद करता।

मगर अनजाने ही कहानी उपन्यास की सीमाओं म अतिक्रमण भले ही करे, कहानी को उपन्यास बनने की छूट न पुराना लेखक देगा—न नया लेखक चाहेगा। चाहे जितनी सश्लिष्ट और समग्र हो—उसे अपनी बात बहुत सक्षेप मे और सकेत से कहनी है। खड मे अखड को देखने की मजबूरी ही है कि वह समाज से एक व्यक्ति को और जीवन से एक केन्द्रीय क्षण को काटकर उससे दूरी और गहराई एकसाथ पाने की कोशिश करता है। यह व्यक्ति और क्षण, काल और परिवेश की लम्बाई और चौड़ाई के गवाक्ष बनकर आते हैं। इस प्रकार युग की समग्रता को सकेत में पाने का प्रयत्न—अर्थात् व्यक्ति और परिवश के बहुमुखी आपसी सम्बन्ध और दूरी-गहराई के व्यापक सदर्भों के सक्रमण परिवर्तनों की नानास्तरीय सश्लिष्ट प्रक्रिया—और इस सब कुछ का सकेतो तथा जीवन की प्रासगिक—रिलेवण्ट—रूपकृतियो—इमजो द्वारा व्यक्त करने का कौशल आज के कहानीकार को कविता की ओर मोड़ता है। प्रतीक रूपक, बिम्ब लाक्षणिकता या सगीतात्मक ध्वनियों के सहारे वह प्रभाव को चेतना के अनेक स्तरों पर सम्प्रेषित और सस्पर्शित करने का प्रयत्न करता है, क्योंकि आज का व्यक्ति-मन उतना सीधा और स्पष्ट रह भी नही गया है। नये-पुराने मूल्यो के सघर्ष और सक्रमणों ने उसे सकुल और जटिल बना दिया है।

व्यक्तिगत सामाजिकता हो या निर्वैयक्तिक वयक्तिकता—उपन्यास की व्यापकता हो या कविता की अनेकार्थी सुकुमार सूक्ष्मता—कहानी ने जहाँ उन सबका निर्व्याज-भाव स समाहार किया है वहीं वह सफल है—और जहां घोषित और आरोपित है वहा असफल। प्रयोग-काल की सफलता और असफलताओं को छूट तो देनी ही होगी।

आवश्यक आज के कथाकार के लिए यह है कि वह व्यक्ति और उसके परिवेश को सही सदर्भों में सतुलन देता चले। परिवेश को छोड़कर व्यक्ति पर अपने को केन्द्रित कर लेने म वह पुन उन्हीं कथाकारो को दुहराएगा, जिन्हें कुठित और रुद्ध घोषित करता रहा है—और व्यक्ति को छोड़कर परिवेश का आग्रह उसे उसी तरह भटका देगा जैसा आज के कुछ प्रतिभाशाली कथाकारों को उसने भटका दिया है। शहरी और ग्रामीण कहानी का आग्रह परिवश और वातावरण के विभाजन के

सिवा क्या है ? बदलता हुआ परिवेश—तथा उसे बदलने के साथ-साथ स्वय नित-नित नया होता व्यक्ति अपनी हार-जीत, घुटन और अकाक्षाओं मे क्या कुछ कम नाटकीय है ? विवाद और विमर्श इस थीम को लेकर होना चाहिए—व्यक्ति और परिवेश को अलग-अलग उठाकर नहीं । जहा तक कहानी इन दोनों के सश्लिष्ट सम्बन्ध को स्वस्थ और सतुलित दृष्टि स पाठक के मन पर उतार सकती है, उसके सारे व्यक्तित्व एव भाव-बोध को उदात्त सस्पर्श दे सकती है, वहा तक उसकी सफलता असदिग्ध और सार्थक है ।

—राजेन्द्र यादव

— —

नयी कहानी कुछ आक्षेप. कुछ निराकरण कुछ समाधान

डा विजयेन्द्र स्नातक

साहित्य की प्रत्येक विधा म ज्ञान विज्ञान की उन्नति या युगीन चिंता धारा की प्रगति के साथ परिवर्तन आते हैं । हिन्दी कहानी म ही नहीं कविता नाटक उपन्यास एकांकी, निबंध और समीक्षा सभी क्षेत्रों म पिछले दशक म क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं । इन परिवर्तनों का हम सर्वथा अस्वस्थ या असमीचीन ठहरा कर उपेक्षा नहीं कर सकते । हमने हिंदी कहानी को प्रेमचन्द और प्रसाद की शैली म पढ़ा था, उसके बाद जैनेन्द्र और यशपाल की शैली म भी हमने उसे स्वीकार किया । अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के मनोविश्लेषण म हमने अरुचि या असामयिक की बात नहीं की । परिवर्तन तो इन तीनों स्थितियों म हुआ ही था ।

यदि पिछले चालीस वर्ष के कहानी-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो उसमें प्रत्येक दशक म थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य उपलब्ध होगा। हिंदी कहानी प्रसाद और प्रेमचन्द से कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव तक अनेकानेक उच्चावच शिखरों से होकर ही नए धरातल पर उतरी है । जो परिवर्तन नई कहानी में आए हैं वे स्वाभाविक हैं और साहित्यिक दृष्टि से उनमें अशालीनता की बात उठाना मैं सर्वथा अप्रासंगिक समझता हूँ। साहित्यिक शालीनता से हमारा क्या अभिप्राय है ? क्या यौन-सम्बन्धी वर्णनों को हम अश्लील समझकर अशालीन मानते हैं अथवा सुरुचि का अभाव देख नई कहानी को शालीनता रहित समझ बैठे हैं । यदि ऐसा है तो यह हमारी दृष्टि का ही एकांगित्व है । ऐसा स्मृति में कहानी के बहिरंग तक ही शायद हमने अपने आकलन को सीमित रखा है । यदि हम नई कहानी के अन्तरंग में प्रवेश करें तो विचार और विश्लेषण की दृष्टि से निराश होने का कोई कारण नहीं मिलता ।

आज की कहानी को जब हम नए विश्लेषण से संयुक्त कर के देखते हैं तो उसमें परिवर्तन और विकास की सम्भावनाएं भी स्पष्ट लक्षित होने लगती

है। कहानी की एक पुरानी परम्परा थी——ऐसी परम्परा जो नवीन चेतना से दूर जा पड़ी थी और जिससे चिपके रहने से कहानी केवल माध्यम मात्र रह सकती थी, किसी भाव, वस्तु या सौन्दर्य बोध को उद्बुद्ध करने में समर्थ नहीं रह गई थी। फलतः चेतना के विकास को कहानी में ध्वनित करने के लिए आवश्यक था कि उसकी पुरानी मोहक परम्परा को समाप्त कर दिया जाय। द्रुत गति से दौड़ती और आगे बढ़ती दुनिया को कहानी में प्रतिबिम्बित करने के लिए पुराने उपकरणों से काम चलाना सम्भव नहीं रह गया था। नए पन के मोह से कहानी में नयापन नहीं आया है वरन आवश्यकता और कलाकार की प्रेरणा ने उसे नूतन बनाया है।

आज यह आरोप है कि नई कहानी, नई कविता के पदचिह्नों पर चलकर भावात्मक होती जा रही है। उसमें कथानक न्यून हो गया है। वह ऐसी अव्यक्त शैली में ग्रथित होती है कि साधारण पाठक को न तो उससे मनोरंजन होता है और न ज्ञानवर्द्धन। आपके इस आरोप को मैं सर्वथा मिथ्या नहीं मानता। कुछ कहानियाँ मेरी दृष्टि में भी ऐसी आती रहती हैं जिन्हें पढ़कर लगता है कि यदि कहानी का विकास इसी सीमित क्षेत्र में हुआ तो नयापन छोड़कर कहानी का स्थायी तत्व नहीं जुटा सकेगी। जीवन के किसी एक क्षण चित्र का वर्णन या किसी विशेष मन स्थिति का चित्रण ही यदि कहानी का प्राण बनकर बन गया तो कहानी की मर्यादा के विषय में प्रबुद्ध पाठक के मन में प्रश्नचिह्न खड़ा हो सकता है। यह ठीक है कि नई कविता ने जीवन के क्षणों में से वर्ण्य विषय के नए सूत्र एकत्र किए हैं किन्तु कहानी कविता नहीं है। कहानी का भावात्मक होकर मन स्थितियों के चित्रण तक सिमट कर रह जाना, उसके प्रभाव और रूप को समाप्त करने वाला होगा। जिन व्यापक सम्भावनाओं की हम नई कहानी से आशा लगा रहे हैं उनमें इस एकांगी भावात्मकता से हानि की सम्भावना है। अतः इस कथन में मैं सहमत हूँ कि कहानी को प्रगति एवं विकास-पथ पर बढ़ते हुए सीमित नहीं होना चाहिए। वही कहानी सशक्त सफल है जो कहानी की जीवन्त शक्ति को अक्षुण्ण रखता हुआ उसका विकास करता है। कथानक की न्यूनता को मैं बहुत बड़ी हानि या त्रुटि के रूप में नहीं देखता। अत्यल्प कथानक में भी वर्णन, वातावरण और परिवेश द्वारा कहानी फैल सकती है और अपनी मर्यादा के भीतर किसी जीवन स्पन्दन, भाव, विचार या सौन्दर्य बोध से पाठक को उल्लसित कर सकती है। जैनेन्द्र जी तो नए कहानीकार नहीं हैं। तीस-पैंतीस वर्ष से कहानी लिख रहे हैं किन्तु उनकी बहुत सी कहानियों में कथानक नाम मात्र को होता है फिर भी वह सफल कहानीकार हैं। कथा को केन्द्र बिन्दु बनाकर अथवा कथानक की नाना शाखाओं को फैलाकर कहानी को पल्लवित करने की अनिवार्यता नयी कहानी में स्वीकार नहीं की जाती। किसी क्षणिक मन स्थिति से प्रेरित होकर

जब कहानी का गठन होगा, तब उसम कथानक के लिए मवकाश ही कम रह जाएगा। म्राप कहेंगे कि कथानक को घटाने या मिटाने से हम कहानी को ही कभी न मिटा बैठे। लेकिन इस म्राशका से म्राज की नई कहानी परिचित है म्रौर मुझे विश्वास है निकट भविष्य म तो कहानी मिटनेवाली नहीं है। जिस भावबोध से नई कहानी पूर्ण होती है वह कहानी को जीवित रखने के लिए पर्याप्त है। कहानी की प्रभवत्ता केवल मोहक कथानक के फलाव या स्थूल चरित्र चित्रण म नही है किसी विशिष्ट जीवन दशन या भावबोध को म्र कित करन मे है। यह दृष्टि नई कहानी म पुरानी या परम्परानुमोदित कहानी से म्रधिक व्यापक हुई है म्रत नई कहानी की सम्भावनाए भी बढी हैं।

म्राज की कहानी म मनाविश्लेषण के म्राधिक्य को कुछ पुराने पाठक ऊपर स लादा हुम्रा व्यथ का भार समझते हैं। यदि हम हि दी कहानी का इतिहास देखें तो विदित हागा कि कहानी म मनोवैनानिक तत्वो का समावश तो प्रेमचन्द के युग से हो हो गया था। जैने द्र म्रनेय जोशी, म्रश्क म्रादि सभी लेखका ने मनोविश्लषण को म्रपनी कहानियो म स्थान दिया है। हा म्राज क कहानी लेखक मन क गहन गह्वर म घुमकर ममस्पर्शी भावनाम्रा के उद्घाटन का प्रयास पहले के लेखको की म्रपेक्षा म्रधिक गहराई के साथ करते हैं। मुझे इम मनो वश्लेषण स कोई घबराहट नहो होती। ऐसा मनाविश्लेषण जो पात्र के चरित्र को उसके क्रिया कलाप को म्रौर कहानी के समग्र घटनाचक्र को विवृत्त करता है कहानी क लिए म्रावश्यक है। कुछ कहानिया केवल मनोविश्लेषण तक ही म्रपने को सीमित रखती ह उनको पढकर न तो कथा का पता चलता है म्रौर न पात्र या घटना का रूप मालूम होता है। निस्सदेह उनके विषय में शका ठीक हो सकती है। शायद एसो कहानियो का प्रयोग सामान्य कहानी स भि न होता है म्रौर उनके लगन तथा रचना प्रक्रिया को भी हम भि न रूप से देखते हैं। मैं यह तो नहो मानता कि कहानी म मनाविश्लेषण को स्थान नहीं होना चाहिए कितु पाठक को शून्य म भटकाने वाला निरथक मनोविश्लेषण कहानी कला को दूषित म्रवश्य बना देता है। सफल कहानीकार का उस साथक म्रौर सोद्देश्य स्थान देना चाहिए। यदि कोई कहानी मन की गहराइयो म पठ कर भी कथानक को विस्मृत नहीं करती तो उसे स्वीकार करने म म्रापको सकोच क्यो होता है? यदि कहानी को केवल मनोरजन का स्थूल साधना मान लिया जाय तब तो मनोविश्लेषण का भार नहीं सहा सकेंगे। म्राज की कहानी की सबस बडी सामथ्य यह है उसने सामाजिक तथा वयक्तिक चेतना के विभि न धरातलो का म्रवगाहन किया है इन क तिरो की मनोविश्लेषण पद्धति म्रौर सकेतो तथा प्रतीको को प्रयोगवादी विशिष्ट चेतना का परिणाम है। जिस मनाविश्लेषण को व्यथ का भार समझा जाता है वही इन कहानियों का मरुदण्ड है। म्राज की कहानी मन सामाजिक परिवेश क विविध स्तरों म्रौर म्रावरण के विभि न पहलुम्रो को म्रभिव्यक्ति देने का सशक्त माध्यम बन रहा है।

आज के कहानी लेखक सदर्भों की खोज में व्यस्त है और कहानी के माध्यम से यह खोज जारी है। जो कहानी अपने भीतर व्यक्तिगत सामाजिकता के बोध को समाहित कर आगे बढ रही है उसे मन की अतल गहराइयों में घुमना ही होगा।

नई कहानी पर आज सेक्स प्रधान होने का आरोप भी लगाया जाता है। इस सम्बन्ध में समाधान करने से पहले यह कहना चाहूँगा कि कुछ कहानी प्रधान पत्रिकाओं का उद्देश्य ही रेलवे बुक स्टाल की बिक्री है। उनके लेखक भी उसी कोटि के होते हैं। नई कहानी की भावभूमियाँ इतनी विविध और व्यापक हैं कि उनमें यदि यौन सम्बन्धों का वर्णन मिल जाए तो चौंकना नहीं चाहिए। बात दरअसल यह है कि हिन्दी में आजकल कहानी की तीन चार दर्जन पत्रिकाएं निकलती हैं। इन सभी पत्रिकाओं को आप नई कहानी समझने लगें तो यह बड़ी भूल होगी। कुछ ऐसे लेखक हैं जो यौन सम्बन्धों पर आधारित उत्तेजनापूर्ण कहानी लिखकर साधारण पाठक का मनोरंजन करते हैं या मनोविकार की सामग्री जुटाते हैं। मैं उन्हें नई कहानी का दावेदार नहीं मानता।

हिन्दी कहानी का इतिहास न दुहराते हुए मैं आज के कहानी लेखकों का इस प्रसंग में नामोल्लेख करना चाहता हूँ। यदि हम नई कहानी को समझना चाहें तो हिन्दी के नए-पुराने लेखकों को सुविधा के लिए तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। पहला वर्ग उन लेखकों का है जो पुराने लेखक के रूप में समादृत हैं किन्तु आज भी कहानी लिख रहे हैं। सर्व श्री जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार उपेन्द्रनाथ अश्क अमृतलाल नागर, यशपाल, अज्ञेय उषादेवी मित्रा, विष्णु प्रभाकर प्रभृति लेखक इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इस वर्ग के लेखक कहानी के वस्तुशिल्प के पारखी कलाकार के रूप में ख्यात रहे हैं। अश्क, अमृतलाल नागर, यशपाल और अज्ञेय को तो नई कहानी के परिवेश में भी देखा जा सकता है। दूसरा वर्ग उन लेखकों का है जो आज की नई कहानी के समर्थ प्रतिनिधि लेखक हैं उनमें से कुछ विख्यात लेखकों के नाम इस प्रकार हैं—सर्व श्री मोहन राकेश कमलेश्वर राजेन्द्र यादव, सर्वेश्वरदयाल, मार्कण्डेय अमृतराय, अमरकान्त, मन्नू भंडारी, रमेश बक्षी निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, श्रीकान्त, शिवप्रसाद सिंह आदि। इस दूसरे वर्ग के लेखकों की सूची बहुत लम्बी है। लगभग दो दर्जन सशक्त लेखक इस वर्ग में हैं जिन्होंने नई कहानी को सवारा-सजाया है। इन लेखकों ने कहानी को नई संवेदना सांकेतिकता सम्प्रेषणीयता प्रतीकात्मकता और बौद्धिकता प्रदान की है।

तीसरा वर्ग उन कहानी लेखकों का है जो कहानी की पुरानी परम्परा से भी परिचित रहे हैं और नई कहानी को भी उन्होंने पुष्ट किया है। नई कहानी के साथ

उनका गहरा सम्बन्ध है। किन्तु अपनी संवेदना और सांकेतिकता में नए पन के आग्रह की दुहाई नहीं देते। सर्वश्री भैरवप्रसाद गुप्त, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र निर्गुण लक्ष्मीनारायण लाल आनन्द प्रकाश जैन, श्यामू संन्यासी, रेणु आदि इस वर्ग के समर्थक लेखक हैं। इन तीनों वर्गों का विभाजन मैंने नई कहानी के वस्तु-शिल्प को समझने के लिए किया है। इन तीनों वर्गों में अनेक लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने कहानी के विकास क्रम को भलीभांति देखा है और अभिलषित परिवर्तनों को अपनी रचनाओं में स्थान देकर नयेपन को स्वीकार किया है मेरे इस वर्गीकरण को केवल विकास क्रम समझने की एक प्रक्रिया ही समझना चाहिए।

नई कहानी की भावभूमियों का संकेत मैं ऊपर कर चुका हूँ। मुझे लगता है कि आज की कहानी कुछ ऐसे रूप में पनप रही है कि इसमें साहित्य की कई रूपविधाएं समाविष्ट होती जा रही हैं। रेखाचित्र, संस्मरण दैनन्दिनी रिपोर्ताज व्यंग्य-चित्र आदि अनेक विधाएं हम आज की कहानी में अन्तर्मुक्त देख सकते हैं। बुद्धिप्रधान कल्पनाप्रधान और भावनाप्रधान सभी रूपों में इसका विकास हो रहा है। मैं समझता हूँ जैसा व्यापक क्षितिज आज की कहानी का है वैसा पहले कभी नहीं था और जैसी तलस्पर्शिता आज की कहानी में है वैसी भी पहले कभी नहीं थी। व्यंजना शक्ति से ध्वनित होने वाला मृदु-कठोर व्यंग्य जैसा भारत की कहानी में प्रस्फुटित हुआ है पहले नहीं हो सका था। आज की कहानी में गांव की तरुण-श्यामल संवेदना भी व्यक्त हो रही है और नगर-महानगर की घुटन तड़प भी। महानगरों का मध्य वर्गीय व्यक्ति जिस परिपूर्णता के साथ आज की कहानी में व्यक्त हुआ है वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। कहानी केवल ग्रामीण या कस्बों में बंधी न रह कर अनेक भावभूमियों और आयामों में फैल गई है। मैं नई कहानी पढ़ता हूँ और बड़े चाव से पढ़ता हूँ। मात्र मनोरंजन मेरा साध्य न होने से मुझे कहानी में अनेक तत्व उपलब्ध हो जाते हैं। मेरी प्रतिक्रिया आपसे सर्वथा भिन्न है। मैं नई कहानी में प्रचुर सम्भावनाएं देखता हूँ मुझे लगता है कि यदि वस्तु-शिल्प के साथ कहानी की मर्यादा का ध्यान रखते हुए कहानी विकसित हुई तो यह साहित्य की पूर्ववर्ती अधिक सशक्त विधा सिद्ध होगी। मन बहलाव और समय काटने वाली कहानी से इसने अपना सम्बन्ध तोड़ कर स्वस्थ एवं संतुलित परम्परा ग्रहण की है। एक शंका यह भी है कि आज की कहानी मौलिक है या किसी अन्य भाषा की अनुकृति मात्र है। मेरा उत्तर यह है कि अनुकृति का प्रश्न ही नहीं उठता। शिल्प-विधान और वस्तु-चयन में तो आज की सभी भाषाओं में प्रायः एक सी कहानियां लिखी जा रही हैं किन्तु यह अन्धानुकरण नहीं है। यह परम्परात्याग तथा नूतन मूल्यों के ग्रहण के कारण हुआ है। आज की कहानी भाषाओं में एक-सी है। यह भ्रम है कि नई कहानी किसी पर भाषा की अनुकृति या नकल है। मेरा अनुरोध है कि नई कहानी का अनुशीलन उसकी उपलब्धियों को ध्यान में रख कर करना चाहिए किसी भी पूर्वाग्रह का प्रश्रय मन में स्थान नहीं देना चाहिए।

नयी कहानी की उपलब्धियाँ : बारह कहानियाँ

धनञ्जय वर्मा

हिन्दी नवलेखन, विशेषकर कहानी, के सन्दर्भ में पीढ़ियों का संघर्ष अधिकांशतः परिचमी ही रहा है मूल्य दृष्टि, प्रतिमान और भावबोध के धरातल पर वह उठ ही नहीं पाया या इस धरातल पर उसे देखने की फिक्र लोगों को कम ही रही। नयी या पुरानी पीढ़ी, केवल आयु और कालक्रम के अनुसार विभाजित नहीं होती जीवन की गति और इतिहास की प्रक्रिया को भी वे व्यक्त करती है। इनका संघर्ष मूल्य दृष्टि, प्रतिमान और भावबोध के परिवर्तन के कारण होता है लेकिन भ्रम उस समय होता है जब या तो यह मान लिया जाता है कि काल का क्रम रुक गया है और मानवी नियति और प्रकृति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। अतः परम्परा और पुरातन ही श्रेष्ठ है या जब नये और पुराने में एक अन्तर्गत के सम्बन्ध का ध्यान में न रखकर केवल उनके विरोध की ही समस्या का मूल सिद्ध मान लिया जाता है। अस्तु प्रत्येक नयी परिस्थिति में सामाजिक सन्दर्भ और सम्बन्ध परिवर्तित होते हैं और नये जीवन मूल्यों की चेतना जाग्रत होती है। ऐसी नयी परिस्थिति में रचना के संस्कार और प्रेरणा भी बदलते हैं। यदि जीवन की प्रक्रिया अधिक गत्यात्मक हुई (जो कि है) तो कभी कभी पूरा स्वरूप बदल जाता है तब यह परिवर्तन इतना क्रांतिकारी होता है कि नया विकास न होकर एक स्वतन्त्र उद्भावना अधिक लगता है। यह नयी उद्भावना नयी पीढ़ी या नया, केवल समय अवधि (टाइम ड्यूरेशन) के धरातल पर ही पुरानी पीढ़ी से पृथक नहीं होती वरन् जीवन दृष्टि और वैचारिक स्तर रचना की अन्तः प्रेरणा और शैली में भी पृथक होती है। यह तो सम्भव है कि समय अवधि की दृष्टि से पुरानी पीढ़ी 'वर्तमान' रहे लेकिन निश्चय ही वह नये जीवन और नयी मानवीय वास्तविकता से कट जाती है—अपनी निर्मित दृष्टि, स्तर, प्रेरणा, अनुभूति और प्रक्रिया करने के निश्चित संस्कार और स्वभाव के कारण वह नयी जीवन धारा से संगति नहीं बैठा पाती। यह किसी एक पीढ़ी का नहीं, हम सबकी विवशता है। जीवन की धारा होती ही इतनी निर्मम और वेगवती है कि व्यक्तियों का कौन कहे बड़ी से बड़ी उपलब्धि और मूल्य को भी छोड़कर आगे बढ़ जाता है। वह कोई भी समझ और गर्भित काम नहीं देती क्योंकि प्रश्न समभागी ...कि और

जागरूकता से आगे बढ़कर मानसिक बनावट अनुभूति और सवेदना के धरातल जीवन की पद्धति और दृष्टि का होता है और नयी पीढ़ी पुरानी से इन्ही अर्थों म पृथक होता है। नयी कहानी मे यह मानसिक सघटन भाव–बोध, सस्कार, परिस्थितियाँ, जीवन की पद्धति और प्रतिक्रिया करन का स्वभाव और दृष्टि परिवर्तित है और जहाँ स जिसम यह परिवतन हुआ और हो रहा है वही स नयी पीढ़ी का आरम्भ है। यहा न तो उम्र का कोई बधन है, न काल का। और निश्चय ही एव नयी पीढी का (म फिर कहता हू पीढ़ी स मतलब व्यक्ति या व्यक्ति-समूह से नही है, मूल्य दृष्टि प्रतिमान और भाव-बोध से है) अस्तित्व है चाहे इस कोई स्वीकार करे या न करे। यहा नया' सापेक्षक शब्द और विशेषण–मात्र ही नही है वह एक मूल्य और चेतना भी है। यदि वह सापेक्ष्य है तो भी काल सापक्ष्य नहीं दृष्टि सापक्ष्य है। दिक्काल की सीमा के निकट पर ही उसकी परीक्षा नही होगी, एप्राच निर्वाह और दृष्टि ही उसके निर्णायक बिंदु होग। सवेदना के धरातल और भाव-बोध से ही उनकी पहचान होगी जिसे हम नयी कहानी कहते हैं, वह परिवर्तित सन्दर्भों म नय भाव–बोध की ही कहानी है। ये परिवर्तित स दभ क्या हैं? आधुनिक युग म समाज की बदलती हुई स्थितिया म जीवन का व्यावहारिक पक्ष ही नहीं, अस्तित्व की मूलभूत समस्यायें भी परिवर्तित है। परिस्थितिया और पृथक–पृथक अनुभव-क्षणो के ऐसे अनुक्रम–जीवन म अनिश्चय और अनास्था का योग, व्यक्तिमन की प्रतिक्रियाओं का रूप बदल रहा है। अत परिवर्तित और परिवतनशील यथार्थ सत्ता–वस्तु–के विविध रूप उदघाटित हुय हैं और व्यक्ति (रचनाकार) से उसके नये सम्बध उस वस्तु से सरचनात्मक विभिन्न अथ–राग ही नये सन्दभ है। ये नये स दभ, बाह्य और आत दोनो क्षेत्रो म समान रूप से सक्रिय हैं। जीवनगत मूल्यो और नतिक धारणाओ म जो सक्रमण आया है युद्ध की विभीषिका एव आशका से राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय क्षत्र म जो अस्थिरता आई है भारतीय स्वतत्रता क पश्चात् एक नये अनिश्चित और व्यापक उद्वेलनमय समाज का ज म हुआ है, जो हर दिन अपना रूप–स्वरूप बदल रहा है, प्राचीन और बूढ़ी निष्क्रिय सास्कृतिक परम्पराओ को लिये शिथिल और प्रवचनामय सस्कार और परिवर्तिय मूल्यों का यह युग एक पृष्ठभूमि है जिसम व्यक्तिमन एक विघटन, विशृखलता और टूटन महसूस करता है। हर सबध टूटता सा सकट–ग्रस्त है या वह नये परिवेश क अनुकूल नवीनीकरण की प्रक्रिया–पीडा झेल रहा है। व्यक्ति के अस्तित्व बोध का स्वरूप और उसकी सवेदना की प्रकृति भी बदल गई है। शायद अतर्विरोध और जटिलता ही आज के युग की वास्तविकतायें है। युग-जीवन की इसी जटिलता और अतर्विरोध से व्यक्तिमन की जटिलता और अतर्विरोध उपजे हैं और हमारे सम्बन्ध वयक्तिक और सामाजिक सम्बन्धो म एक अतर्विरोधी, गुत्थिमय अतर्द्वन्द समा गया है इससे वस्तु और यथार्थ का रूप भी नहीं रह गया है–वह निरन्तर बदलता चल रहा है और हमारी

सृजनात्मक शक्तियों को चुनौती दे रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति, घटना या परिस्थिति का स्वायत्त एव स्वयमिद्ध कोई महत्व और अर्थ नहीं है, वह एक व्यापक सन्दभ और परिवेश का मात्र प्रतीक या प्रतिनिधि है। इसलिये हर जागरूक रचनाकार को अपने वातावरण की सम्पृक्त-चेतना की अनिवाय आवश्यकता है और जब तक रचना के व्यक्ति घटना और परिस्थिति की पूरे सामाजिक और व्यापक सन्दभ म सार्थकता नहीं, तब तक उसे नयी कहानी की वस्तु बनने का अधिकार नहीं, क्योंकि नयी कहानी का भाव-बोध भी बदल गया है। वह आज की परिस्थितियों में (से) उदभूत मानवीय वास्तविकता को समग्र चेतना और भाव-बोध की कहानी है। यह चेतना और भाव-बोध सामयिक जीवन और अस्तित्व के आन्तरिक प्रश्नों से सयुक्त, एक व्यापक सवेदनशीलता को उपज है। वे निश्चित नहीं गतिमान धारणायें हैं और जीवन के भोग और अनुभव के धरातल पर ही उन्हें पाया जा सकता है। युग के जटिल प्रश्न और उसकी समग्र व्यापक जटिलता को इसी धरातल पर समझा जा सकता है। अत रचनाकार की अन्तिम सवदना और अनुभूति ही उसके भाव-बोध की परिचायक है।

नयी कहानी एक ऐतिहासिक सन्दभ की उपज है—नरन्तय के धरातल पर और परम्परा से पृथक एप्रोच निर्वाह और दृष्टि के अन्तर के कारण। उसने युग के अनुभूत वास्तव के सारे अन्तर्विरोध प्रवचना और असगति को भोगा और अभिव्यक्त किया है। वह एक साथ ही मूल्य-भग और मूल्य निर्माण की कहानी है—तथा उसकी तात्कालिक परम्परा मे जिन उपलब्ध सत्यों और तथ्यों को स्वयमिद्ध मानकर विवरण और वणन से सजा दिया गया था या जिन्हें कटे-छटे विचार-विश्लेषण और निष्कपवाद का जामा पहनाया गया था उन्हें (उपलब्ध सत्यों और तथ्यों को) नयी कहानी ने अधिक गहराई म जाकर, अधिक व्यापकता और विस्तार म स्वस्थ और तटस्थ दृष्टि से देखा और उनको प्रक्रिया दी है—ताकि उस प्रक्रिया से होते हुए पाठक भी उन तक अनुभव और अनुभूति के धरातल पर पहुंच सकें। व्यतीत सामाजिक जागरूकता' जहां एक विचार-पद्धति या प्रणाली एवं 'कडीशन्ड मस्तिष्क' का परिणाम थी वहां अब वह एक व्यक्ति की सम्पृक्त-चेतना और निरन्तर भोगते हुए सेल्फ का परिणाम और प्रक्रिया है, इसलिये जहां पहले वह आरोपित लगती थी वहां अब वह हमारी चेतना, सवेदनशीलता और अनुभूति का अविभाज्य अग है।

लेकिन नयी कहानी म रचनात्मक मूल्यों का जितना और जैसा विकास हुआ, उसके समानान्तर आस्वाद का धरातल और मूल्यांकन का विवेक जाग्रत नहीं हो पाया, इसीलिये नयी कहानी के अस्तित्व पर शका करने वाले पुरानी पीढ़ी के ही नहीं नयी पीढ़ी म भी मिलते हैं। उस पर की गई चर्चाओं की तत्परता

के कारण व्यक्तिगत या वर्गीय सिद्धान्ता के कुहासे में एक पूरी की पूरी उपलब्धि के बारे में भ्रम फैला हुआ है। इस अराजकता और पक्षधरता का भी एक कारण है। दर-असल पिछले दशक में (ही) नयी कहानी ने इतनी विविध और विभिन्न तथा विरोधी दिशाओं का एक साथ संस्पर्श किया है कि एक-व-एक नयी कहानी की सम्पूर्ण अन्वित धारणा नहीं बन पायी। नयी या पुरानी अच्छी या बुरी घूम फिर कर चर्चाएँ यहीं केन्द्रित रही आई और न चाहते हुये भी खाने खींचने लगे बनते गए। इससे छुट्टी मिली तो आलोचना की नई भाषा ईजाद करने के लिये चर्चा संकेत-प्रतीक बिम्ब-शिल्प में सीमित हो गई और कहानी सबंधी मूल्यांकन की कौन कहे आस्वाद का भी कोई धरातल निश्चित नहीं हो पाया-क्योंकि कहानी के आलोचक थे हो नहीं जो थे वे कविता की बात करते करते कहानी में खो गए थे। रचनात्मक धरातल पर एक जीवित और जीवन्त विधा के रूप में कहानी के मूल्यांकन में इसीलिए आज भी अराजकता है। कुछ इस स्थिति के कारण और कुछ अपने ही स्टैंड को जस्टीफाई करने के लिये नये कवि की तरह नये कहानीकारों ने आलोचना को आपद् धर्म के रूप में स्वीकार किया (रचनाकार के द्वारा प्रस्तुत प्रतिमान और दृष्टिकोण उसकी रचनाओं के संदर्भ में तो महत्वपूर्ण हो सकता है लेकिन समग्र मूल्यांकन और समीक्षा का धरातल वह नहीं हो पाता। इसी का परिणाम है कि एक प्रवृत्ति और धारा दूसरी के प्रति सदयालु है और यही स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि नयी कहानी का प्रतिनिधित्व कहां है ? मैं फिर कहता नयी कहानी कोई प्रवृत्ति विशेष और धारा विशेष नहीं है वह आज की परिस्थितियों में (से) उद्भूत मानवीय वास्तविकता की समग्र संवेदना सचेतना और भाव बोध की कहानी है यहां जिन प्रवृत्तियों कहानि और लेखकों का उल्लेख किया जायगा वह नयी कहानी पर मात्र एक विहंगम दृष्टि एक सिंहावलोकन है अतः इसकी जो भी सीमा है वह मेरी अपनी सीमा है नयी कहानी की नहीं। इस सीमा के बाहर भी नयी कहानी का अस्तित्व है इससे इंकार नहीं किया जा सकता लेकिन उसमें कुछ है जिसे अभी पूर्ण और सार्थक होना है।

(१) परम्परा और नयी सचेतना प्रतीक्षा

राजेन्द्र यादव

अपने आपको पुरानी परम्परा से पृथक रखने या उसका विकास करने की एक सायास और जागरूक चेतना राजेन्द्र यादव में है। पिछली परम्परा की व्यापक सामाजिक जागरूकता ने जहां यादव की रचना को एक प्रगतिशील स्वभाव प्रदान किया है वहां उनके आधुनिक भाव बोध और कला की परिष्कृत और सूक्ष्म सजग ता[illegible] भी यादव ने ग्रहण की हैं। वे सामाजिक [illegible] और समस्याओं [illegible]

क ही दृष्टि से उठाने की बजाय उसकी समग्रता और व्यापकता म उठाने के आती हैं और सघर्षों को चेतना के अधिक से अधिक स्तर और आयाम म देखने के। साथ ही क व्यक्ति की ट्रेजेडी या उसका मानसिक उद्वेलन और अतर्विरोध भी वहा उतन थूल धरातल पर और विभक्त इकाई के रूप मे नही आता। उनके बहुत बारीक शे, व्यापक परिवेश से अनुप्रेरित और अन्तग्र थित होत हैं इसलिए उनकी कहानियो का निर्वाह बहुत सूक्ष्म और प्रभाव बनावट की ही तरह जटिल होता '। व अज्ञेय और जनेन्द्र से अधिक सामाजिक यथार्थ के लेखक हैं लेकिन यशपाल नेवाय के लेखकों से अधिक गहनतम अभिप्रायो के भी। इसी तरह अपन सम कालीनो म जहा कथ्यात्मक रूप और विषय सम्बन्धी एक-रसता से वे अधिक वैविध, जीवन्त और सामाजिक दायित्व-बोध पूर्ण हैं, वहीं इकहरी बुनावट वाली हर्षोन्मुख कहानियो के विषय और पात्रो की तरह और परिवेश की आन्तरिक चुना तियो से वतमान की विवशता भी वहा नहा है। दरअसल वे इन दोनो ही रचना सचेतनाओं के बीच एक सेतु की तरह हैं और यही पूर्व परम्परा का विकास और उसकी निरन्तरता का साधक करता है। सेन-त्रिलौन जहा लक्ष्मी कैद है पास फेल जाति के साथ ही 'प्रतीक्षा 'टूटना खुशबू' और एक कटी हुई कहानी को रखकर देखा जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी। इधर उनकी कहानिया एक मन स्थिति हो लेकर अधिक चली हैं और 'प्रतीक्षा एक विशेष मन स्थिति की कहानी है। उसका हर पात्र दूसरी जिन्दगी जीता हुआ अपन अवसर की प्रतीक्षा म है लेकिन इस सबकी यातना आशका, तनाव और अकेलापन की पीडा गीता ही भोग रही है। [illegible] के प्रति उसका आकर्षण, प्रेम और उसके विविध स्तर उसके अतर्विरोध और अन्तर्द्वन्द्व को ही बतात हैं। एक ओर उसके समलैगिक प्रवृत्ति है दूसरी ओर [illegible] वात्सल्य भाव जगाती है और तीसरी ओर तृप्ति का एक क्षणिक सुख सार्थकता की तरह अनुभूति [illegible] जाती है। एक ओर उसका अतीत उसे कुतरता है दूसरी ओर सामाजिक [illegible] का आशका उसे खाए जाती है। एक स्थायी पाप-बोध और [illegible] की अनुभूति उसके साथ साथ है। कभी वह [illegible] से तादात्म्य स्थापित करती है और कभी उसके प्रेमी रूप से और कभी अपने ही अकेलेपन की पीडा मागता हुई ऐंठती है। लेकिन गीता की यह ट्रेजेडी मनोविश्लेषण के प्रयोगो वाली केस-हिस्ट्री की कहानी से आगे बढ़कर आधुनिक व्यक्ति के विघटन और नैतिक मूल्यो के खोज की कहानी है। यह केवल निहरी प्रतीक्षा की कहानी नही है बल्कि पूरा सारे मौसम [illegible] [illegible] से निरन्तर एक ही बिंदु पर खडे लोगो की कहानी है जो अनजान ही [illegible] नैतिक धरातल की खोज म आकुल है। कहानी के तीनो पात्रो म [illegible] [illegible] भी इन पात्रो के सम्बन्ध नैतिक नही हैं और उन्हे लेकर कोई 'गिल्ट' या

'सिन' की अनुमति उनम नही है वल्कि ऊपर से न्सन पर तोना ही निहायत व्यक्ति गत स्वाथन्ष्टि स अपने अपने अवमर की प्रतीक्षा म है। मूल्या के विघटन या मोरल डिस्मौरल' स आगे मूल्यहीन या अमौरल धरातल पर खडे अनावन हैं। यह नतिक सत्रमरण से उत्पन्न एक वुकुप्रम म एक नतिक धरातल की प्रतीक्षा की कहानी है और क्या यह दुहरी जिन्दगी जीने की यातना, यह नतिक सत्रमण से उत्पन्न एक वकुग्रम केवल किसी एक पात्र का है ? क्या वह उस समाज और वातावरण का भी नही है जिसम ये पात्र रह रहे हैं ? गीता क्या केवल एक व्यक्ति मात्र है ? याव की भ्रान्त है कि वे किसी एक सामाजिक या मानसिक स्थिति को लेकर उसको सारा फोकस एक पात्र पर (म) कर देते हैं और उसे ही "यूनर्वा" मानकर बारीक से बारीक पक्ष उभारते हुय उस ही इतनी सम्पूर्णता और समग्रता म चित्रित करते हैं कि लगता है वहा व्यक्ति ही प्रधान है, वह व्यक्ति जिस परिवार और वातावरण से सयुक्त है उसका बहुत अप्रत्यक्ष सूत्र ही बच रहता है। इस दृष्टि से शिल्प के प्रति उनकी अतिरिक्त जागरूकता जहा उनकी कहानियो को एक ऊँचा कलात्मक स्तर देती है वही यथाथ की पकड उसके मूल्य के प्रति एक तात्कालिक द्राह का एहसास भी जगाती है।

(२) युग और व्यक्ति की सापेक्षिक अभिव्यक्ति मलबे का मालिक

मोहन राकेश

इसके विपरीत राकेश म अपने समय व आत्मा को ठीक से अभिव्यक्त कर पाने के लिए निरतर एक पुनगठन का प्रक्रिया मिलता है। परिवतन की बलवती आकाक्षा, वतमान म जीवन का दशन और साहित्य (की वम) और समाज की (अधिक) जीणशीण मर्यादाओ को तोडने की उनस उन्मुक्ति की प्यास उनमे पहले सग्रह से ही मिलने लगती है और परिस्थितियो के अनुसार तेजी के साथ नया रूप लेते जीवन की धडकना का सुनने की तडप और वह मानवीय संवेदना जिसमे लेकर हर घटना और पात्र के साथ एक आत्मीयता स्थापित करन-क्रमश विकसित होती गई है। जीवन का अधिक समीपी अङ्कन उसके माध्यम से किसी अतर्निहित परोक्ष यथाथ का संकेत सहज अनुभूति के साथ कई स्तरो पर स्थितिगीत और गतिशील वयक्तिक और सामाजिक यथाथ की खोज उसके सन्दर्भों का उद्घाटन और अतत पूरे युग की कथा-व्यथा अभिव्यक्त करने का प्रयत्न उनकी कहानियो का मूल-स्वर है। उनम युग के सामाजिक यथाथ और वस्तु-सत्य के सन्दर्भ म जीवन की बहुत तल्ख प्रतिक्रिया बदलते हुय विचारो की गति देती चेतना और एक सत्रमणशील दृष्टि मिलती है विगत मूल्यो की इस अशान्ति म भी, विघटन और ध्वस की गति और टूटते-टूटते विश्वासो की कगार पर भी एक आन्तरिक मानवीय

आस्था और निष्ठा और दृष्टि का संकेत भी उनकी कहानियों में मिलता है। इसका कारण यह है कि उनका धरातल नितांत वैयक्तिक नहीं, सामाजिक है, इसका वैयक्तिक लगने वाला स्वर भी मूलतः सामाजिक ही है जिसे कहानी की सांकेतिकता उभारती है। बात यह है कि अपने ही पात्रों के बीच कहानीकार एक ऐसा माध्यम ढूंढ लेता है जो कहानी की सारी अंतर्यात्रा सम्पन्न करा देता है, जहां पाठक दर्शक से आगे बढ़कर स्वयं भोक्ता बन जाता है और कहानी उसकी अपनी संवेदना का अङ्ग बन जाती है। यह पात्र या माध्यम ही वह संकेत होता है, जो कहानी को सीमित संदर्भों से उठाकर व्यापक धरातल दे देता है। बिना किसी साहित्य शास्त्रीय व्याख्या के सांकेतिकता का यही विस्तार है और लगता है कि पात्रों और स्थितियों के प्रति एक अजब सी तटस्था वह बरत रहा है। प्रकृत यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले लेखकों के साथ अक्सर ऐसा ही होता है। वे वस्तु स्थिति और समस्या को उनके सही रूप में बिना उनकी तात्कालिकता और तीव्रता नष्ट किए प्रस्तुत करते हैं।

"मलबे का मालिक" में लेखक रक्खे पहलवान या बुड्ढे गनी–किसके साथ है? या दोनों में से वह किसकी कहानी है? यह उन दोनों की कहानी होते हुए भी केवल उन्हीं की नहीं विभाजन की विभीषिका से बचे हुए उस मलबे की है जो हमारे सामने आज भी ज्यों का त्यों पड़ा है और उसकी चौखट की सड़ी लकड़ी के रेशे भर रहे हैं। रात की खामोशी के साथ मिली हुई कई तरह की हल्की हल्की आवाजें उसकी मिट्टी में से निकल रही हैं–हल्की लेकिन उतनी ही संजीदा। उसमें मलबे का भी अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व उभरता है और हमारी चेतना उस जड़ से सम्पृक्त होती हुई समस्त उस अतीत में घूमती हुई बार बार वहीं लौट जाती है। उसकी अपील में भावनाओं को आन्दोलित करने और सहज मानवीय संबंधों को झकझोरने की शक्ति है। राकेश की अन्य कहानियों की ही तरह उसका रचाव सांकेतिक और (निर्वाह में) संयम है उसका कैनवास भी काफी व्यापक और वस्तु के धरातल पर कोई [illegible] कई सम्बन्धों और हालतों का प्रभाव है। मूल्य भंग और निर्माण के बीच की यह कहानी है जहां "कई इमारतें तो फिर से खड़ी हो गई हैं मगर जगह जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद हैं जो नई इमारतों के साथ अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते हैं–जिनमें से एक केंचुआ (?) सरसराता है, अपने लिए सुराख ढूंढता हुआ जरा सा सिर उठाता है मगर दो एक बार सिर पटक कर और निराश होकर दूसरी ओर मुड़ जाता है। इस संकेत को स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है यह मलबा ही टूटते और टूटे मूल्यों की सारी कहानी सुना देता है। रक्खे पहलवान की ही तरह हमारा एक वर्ग आज भी इन टूटे मूल्यों के मलबे पर उसे ही अपनी जागीर समझता हुआ

विशिष्टता प्रदान करने वाली रेखाएँ अभी पूरी तरह उभर भी नहीं पाई हैं—किसी की एक, तो किसी की दो या तीन, बस इतनी ही रचनाएँ बन पड़ी हैं, यानी ऐसी कि जिन्हें 'रचना' कहा जा सके। उदाहरण के लिए प्रबोध कुमार की 'गाँठ', दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', प्रयाग शुक्ल की 'भाषा', विजय चौहान की 'रिक्ति', और काशीनाथ सिंह की 'सुख'। संवेदना और शिल्प की दृष्टि से श्रीकान्त वर्मा के कहानी-संग्रह 'झाड़ी' की कहानियाँ भी इसी कोटि में आती हैं। और यह उल्लेखनीय है, कि वय में पूर्ववर्ती पीढ़ी से सबद्ध होते हुए श्रीकान्त वर्मा ने इसी पीढ़ी के साथ यानी '५६–'६० से ही कहानी लेखन प्रारंभ किया। निश्चय ही उल्लेख मात्र से इन कहानियों की विशेषताएँ स्पष्ट नहीं होंगी, किन्तु सरहद की ये चौकियाँ हिन्दी कहानी के मानचित्र का कुछ तो आभास दे ही देता हैं। हिन्दी कहानी में वस्तुतः यह एक नई परम्परा है, और न्याय के लिए इस पर स्वतन्त्र विचार अपेक्षित है। प्रसंगात् सिर्फ इतना, कि यह भी एक शुरुआत है—संभावनापूर्ण शुरुआत।



नई कहानी की बात और वक्तव्य

कमलेश्वर

'नई कहानी' पर इधर बहुत बहस हुई है—कुछ गम्भीर स्तर पर और कुछ बहुत ही हीन स्तर पर। बहरहाल 'नई कहानी' हिन्दी में है, और अब इस बिन्दु से पीछे नहीं लौटा जा सकता। हाँ, जो है उसका जायजा लेना भी आवश्यक है।

'नई कहानी' पर विचार विमर्श करते हुए एक बार यह सुनाई पड़ा कि क्या 'नई कहानी' वह है जो नई उम्र के लोग लिख रहे हैं? या वह है जो मात्र भौगोलिक परिवेश में नई है?

कुछ लोग जो सतह से देखने के आदी हैं उन्हें सिर्फ यह लगता है कि कहानियाँ नगर, कस्बे और गाँव में बँट गई हैं और परिवेश की नवीनता को ही नयापन कहकर चलाया जा रहा है। बात इतनी ही नहीं है। नई कहानी ने भौगोलिक परिधि को ही नहीं तोड़ा, उसकी आन्तरिक दृष्टि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है।

जिस समय यह परिवर्तन हुआ, उससे पहले जन और उसके समाज के सन्दर्भ में सिर्फ एक पीढ़ी ही नहीं बदल रही थी, मात्र उम्र के तकाजे ही नहीं थे बल्कि वह सम्पूर्ण चेतना का संक्रमण काल था। ऐसा नहीं था कि पितालोग पुराने पड़ रहे थे और पुत्रलोग नये हो गये थे। हमारा इंगित उन परिवर्तनों की ओर है जो सामाजिक-आर्थिक और मानसिक धरातलों पर पड़ रहे दबाव के कारण हो रहे थे। यह दबाव उस मिले-जुले समाज को प्रभावित कर रहा था, जिसमें दो ही नहीं तीन और चार-चार पीढ़ियाँ एक साथ रह रही थीं और अब भी रह रही हैं। जिन अमीरजादों और साधन सम्पन्न लोगों की सन्तानों ने उन दबावों को प्राप्त सुविधाओं के कारण महसूस नहीं किया वे आज भी नये मूल्यों के सन्दर्भ में उन्हीं पुरानी चेतना को लेकर चल रहे हैं, जिनमें पौरुष [illegible] है जिन्दगी महज ऐय्याशी है और वे आज भी समाज के गतिशील मसलों के उतने ही विरोधी या उनसे उतने ही अलग-थलग हैं जितने कि उनके पुरखे थे। यह समुदाय सीमित है, पर उसकी चेतना निश्चय ही वही है जो उनके पितामहों की रही है।

इसी के साथ मध्यवर्ग के नौजवानों का भी एक बहुत बड़ा तबका ऐसा है जो सोचने-विचारने और जिन्दगी जीने के मूल्यों को लेकर वैचारिक और व्यावहारिक

स्तर पर उतना ही पुरातनपन्थी है जितने कि उनके जीवित अग्रज हैं। कहने का मतलब यह है कि नये विचारों का वहन करने वाले सिर्फ नई उम्र के लोग ही नहीं हैं उनमें अधिक वय के लोग भी हैं और उनका विरोध करने वाले सिर्फ पिछली पीढ़ी के लोग ही नहीं नई पीढ़ी के लोग भी हैं। यह टकराव उम्र में बँटी हुई पीढ़ियों का नहीं, वैचारिक धरातल पर दो तरह से सोचने वाली पीढ़ियों का है।

नई पीढ़ी के कथाकार ने एक नागरिक के रूप में प्रवेश किया था इस पीढ़ी के सभी कथाकार मध्यवर्ग से आए थे ऐसे घरों से, जिनके ढांचे चरमरा कर टूट रहे थे पर जो अपनी पुरातन गरिमा में फिर भी भूले हुये थे वह मध्यवर्ग अपनी विशिष्टता में आज भी 'हिन्दू' बना हुआ है, पर घरों से निकल कर आने वाली पीढ़ी 'हिन्दू' नहीं थी। कर्मकाण्डों से मुक्त, धर्म से निरपेक्ष यह पीढ़ी नये मानवीय सन्तुलन की खोज में थी। इस खोज में औद्योगिक विकास और शहरों की जिन्दगी ने बहुत सहारा दिया इस जिन्दगी ने चाहे उसे नया संतुलन न दिया हो पर पुराने से टूटने का बाध्य अवश्य किया। और यह बाध्यता ही नये की पहली चुनौती बनी। यदि जीवन की यह बाध्यता न होती, तो शायद नये का इतना दबाव भी न होता। वह नया फैशन के रूप में नहीं, एक अनिवार्य शर्त के रूप में आया था।

नई पीढ़ी के लेखकों ने इस शर्त को स्वीकार किया हर स्तर पर। मानसिक बौद्धिक, भावनात्मक—सभी स्तरों पर। भौगालिक रूप में गाँव, शहर, कस्बे के स्तर पर। यह आकस्मिक ही नहीं था कि अलग अलग जगहों में स्थित कहानीकारों ने नये की इस शर्त को अपनी अपनी तरह स्वीकार किया और इसीलिए इधर की कहानी में इतनी विविधता भी आई। यह विविधता भी नई कहानी की एक शक्ति है। कभी-कभी यह विविधता उन लोगों के लिए कठिनाई उपस्थित करती है जो आज की कहानी में एक बँधा-बँधाया ढांचा देखना चाहते हैं। सामाजिक स्तर पर जो ढांचा टूट गया है वह उस कहानी में स्फुट कैसे बचा रह सकता है जिसका सार ही जीवन है। मानसिक या बौद्धिक भाव विलास नहीं।

मृत्यु व्यक्ति की नियति है, विचारों की नहीं। विचारों की यह सम्पदा परम्परा से ही मिलती है, और उनमें जीते हुए निरन्तर विकसित और नया होते रहने की अनिवार्यता अपने परिवेश में जान वाले व्यक्ति की शर्त है।

कहानी लिखना व्यवसाय नहीं—विश्वास है। लेखक अकेला होता तो उसे किसी विश्वास या आस्था की जरूरत नहीं पड़ती। पर वह अकेला नहीं है अस्तित्व के संकट का एक क्लर्क या दुकानदार बनकर भी भरा जा सकता है (जो किसी भी

रूप में हीन नहीं है) पर मैं लेखक इसलिए हूँ कि उसे भोगने के साथ-साथ झेल भी सकता हूँ। यह संकट मेरे लिए सम्पूर्ण प्राप्ति नहीं है—इस संकट के पीछे छिपे तथ्य और रहस्य भी चेतना को प्राप्य हैं, इसलिए भोगने में जीने की कोई बाध्यता नहीं होती, पीछे देखकर, वर्त्तमान को वहन कर आगे देखना सहज प्रक्रिया बन जाती है।

कलाओं के विकास का आधार ही सामाजिक सम्बन्धित अस्तित्व है। यदि यह भी तत्त्व उनसे निरपेक्ष होता, तो केवल अन्तर्विरोधों में जी सकना ही सम्भव होता। जो निरपेक्ष हैं वे उन अन्तर्विरोधों में भूत की तरह जी भी रहे हैं और अपने सलीब उठाये हुए कब्रिस्तान की ओर उन्मुख हैं। यहाँ रहते हुए मौत को छलना ही मेरा काम है और इस काम में सारी दुनिया मेरा हाथ बँटा रही है—आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, यान्त्रिक आदि स्तरों पर। जो मेरे लिए किसी भी रूप में मौत पैदा करता है वह तत्त्व अमित्र है इसलिए मेरी उससे सहमति नहीं है और उसका प्रतिकार करते रहना मेरा धर्म है।

कहानी लिखना लेखक के लिए यातना नहीं है। यातनापूर्ण हैं वे कारण जो लेखक को कहानी लिखने के लिए मजबूर करते हैं और यह मजबूरी तभी होती है, जब लेखक का अपना संकट दूसरों के संकट से सम्बद्ध होकर असह्य हो जाता है या उसकी अपनी करुणा दूसरों की संवेदना से मिल कर उदात्त हो जाती है।

कल्पना लेखक को औरों से जोड़ती है, या यह कहें कि कल्पना से सम्पृक्त होने की तात्कालिक स्थिति ही कहानी की शुरुआत है। यह शुरुआत बार बार हुई है और महान कहानीकारों द्वारा हर बार यह व्याप्त होने की स्थिति तक पहुँची है।

कहानी की मृत्यु के घोषणापत्र लिखने वाले और उन पर अँगूठा लगाने वाले झूठी मान्यताओं के दरवाज़ों पर बैठे हुए मुहर्रिर और उनके चाकर 'चश्मदीद गवाह' ही हो सकते हैं—लेखक नहीं। लेखक मृत्यु का नहीं, जीवन का साक्षी होता है। शव को भावना अधिकारपूर्वक तार्किक करते हैं, लेखक नहीं। लेखक का जीवन इतिहास साक्षी है। इसके तमाम अन्तर्द्वन्द्वों का साक्षी है—व्यक्ति और उसकी सामाजिकता—दोनों का। जहाँ सामाजिकता की क्रूरता व्यक्ति के यथार्थ को दबाती है, या जहाँ व्यक्ति के अहं की क्रूरता सामाजिकता के यथार्थ को नकारती है, वहाँ आज की कहानी यानी नयी कहानी नहीं हो सकती—वहाँ आदर्शमूलक कथन ही हो सकता है। ऐसा कथन, जो किसी प्रकार की क्रूरता को आग्रह पूर्वक स्वीकार करने वाला दस्तावेज़ बन जाता हो।

नयी कहानी आग्रहों की कहानी नहीं है, अनुभूतियों की हो सकती है। और उसका मूल स्रोत है—जीवन का यथार्थ बोध। और इस यथार्थ को स्वर देने वाला

वह विराट मध्य और निम्न मध्य वर्ग है, जो अपनी जीवन शक्ति से आज के दुर्दांत पकड़ को जान अनजान झेल रहा है। उसका केन्द्रीय पात्र है (अपने विविध रूपों और परिवेशों में) जीवन को वहन करने वाला व्यक्ति। नयी कहानी ने इसलिए उस 'तामरे उपजीवी' को पनाह नहीं दी, जो एकाएक बहुत महत्वपूर्ण होकर प्रेमचन्द और प्रसाद के बाद यशपाल की समकालीन कहानी में सहसा घुस आया था। जिसने अपने झूठे आभिजात्य को अस्त्र बनाकर उस विराट वर्ग की नैतिकता और मानवीयता का और भी जर्जर किया था—उसके साथ बलात्कार किया था। जिसने आर्थिक रूप से विपन्न परिस्थितियों में जकड़, रूढ़ियों में फंसे उस विराट मानव समुदाय के लिए एक व्यक्ति-वादी नैतिक संकट खड़ा कर दिया था जिसने हर औरत को अपने लिए निर्जन स्थानों या शाहनशाहों में अकेला खड़ा कर देना चाहा था हर पुरुष को हीन-लघु बना देना चाहा था उसे उसके सार्थक परिवेश के प्रति शंकालु और संशयग्रस्त करके अकेला कर देने की कोशिश की थी और क्षणवादी दर्शन की पीड़ावादी व्याख्या से हर क्रूरता अनैतिकता और अमानुषिकता के प्रति उसे वीतराग कर देना चाहा था।

नयी कहानी ने इस षड्यंत्र को पहचाना था। तभी उसने जीवन को विभिन्न स्तरों पर वहन करने वाले, उससे सम्पृक्त केन्द्रीय पात्रों की तलाश की थी—यथार्थ की तलाश की थी जिसकी साक्षी हैं वे कहानियाँ जो इस दौर में लिखी गयी—पराया सुख, गदल, धरती अब भी घूम रही है जानवर और जानवर, जहाँ लक्ष्मी कैद है, टापरे का भोजन, रीफ की लावत, गुलकी बन्नो, गुलरमुर्गे, बन्नू, हसा जाई अकेला, नन्हा चौरह राशी पचायत, पखाकुलो, भैंस का कटया, तीसरी कसम, लन्दन की एक रात रवा यही सच है, गुलाब के फूल और काटे, हिरन की आँखें, सिक्का बदल गया, कस्तूरी मृग, समय, जमीन आसमान रक्तपात, फेंस के इधर और उधर, एक पति के नोटस आदि। कहानियाँ और भी हैं और यह भी सही है कि उपरोक्त कहानियों के लेखकों ने सभी कहानियाँ 'नयी' नहीं लिखी है पर यही आज की कहानी की एक सशक्त धारा है और कहानियों की इसी धारा से मैं अपने को जुड़ा हुआ पाता हूँ।

इन पिछले दस पन्द्रह वर्षों में कुछ 'गजटेड आलोचकों' के कारनामों के कारण प्रकारान्तर प्रगतिशीलता, जनतान्त्रिक दृष्टिकोण आदि शब्दों से लेखकों को परहेज हो गया इतना ही नहीं उन शब्दों से उन्हें डर भी लगने लगा—मेरे लिए वे शब्द डर का कारण नहीं हैं—वे मेरी नींव हैं।

हाँ, एक अन्तर्द्वन्द्व हमेशा मन में रहता है क्योंकि कोई भी विचार अन्तिम नहीं है, और बदलते परिवेश में, जब मूल्यों का संकट हो, आस्था को फिर-फिर

हढ़ोलन की आवश्यकता हो, निराशा से ऊब उबकर घबराने की स्थिति हो, वहाँ एक लेखक का काम बड़ा नाज़ुक हो जाता है। इस संक्रान्ति को धीरज से देखकर, अनुभव के स्तर पर जाकर संवेदनात्मक स्वर में कुछ कहना ही अपना दायित्व लगता है—और कहानियों की 'थीम' का चुनाव की यही लेखक की दृष्टि भी है। इसलिए जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होना लेखक की अनिवार्यता है। इस टूटन-हारन और अकुलाते मनुष्य की गरिमा में मेरा विश्वास है। मुझमें इतना झूठा दर्प और दुस्साहस नहीं कि अपनी समस्त पात्रों को हीन, कमीन, अश्लील, विगलित और रुग्ण आदि मानकर चल सकूँ। मुझे झुके हुए मस्तकों से सहानुभूति है, हारे हुए योद्धाओं से स्नेह है—क्योंकि मेरी दृष्टि में उनका झुका हुआ मस्तक शर्म का विषय नहीं है, शर्म और क्रोध का विषय हैं वे दुर्दान्त कारण, जिन्होंने उनके अस्तित्व के लिए हर तरह के संकट खड़े कर दिये हैं।

जिनकी जीत होती रहेगी, वे क्रूर होते जायेंगे। इसीलिए मुझे तो लगता है कि मैं हमेशा 'हारे हुओं' के बीच रहने के लिए प्रतिबद्ध हूँ, और यह तब तक रहेगा जब तक सब जीत नहीं जायेंगे और मैं बिल्कुल अकेला नहीं रह जाऊँगा। तब मुझे न आस्था की जरूरत होगी, न विश्वास की और न लिखने की।

इसीलिए, कहानी विचार और भावना—दोनों को वहन करने वाली विधा है। विचार के अभाव में भावना भावुकता में बदल सकती है और भावना के अभाव में विचार पुंसत्वहीन हो सकता है। तर्क संवेदना की शक्ति है, जो गहरे यथार्थ तक उतरने में मदद देता है। इसलिए बौद्धिकता को मैं कहानी का संयम मानता हूँ जो उसे अश्रुविगलित शोक प्रस्तावों और 'अँधेरे की चीखों' से अलग करती है। अपने यथार्थ का वहन करते हुए, निरन्तर बदलते परिवेश को देखते हुए लिखने का प्रयास ही मेरा प्रयास है।

यह प्रयास कभी मुझ या अन्य लेखकों को इतना न बाँधता, यदि यह 'नये' से प्रेरित न होता। आज प्रभावशाली रूप में लिखने की पहली शर्त ही यह अद्यतन या आधुनिकता का बोध है। पर आधुनिकता मेरे लिए वही है जो अपने ऐतिहासिक क्रम और सामाजिक सन्दर्भों से प्रस्फुटित हुई है—जो प्रभावों को तो ग्रहण करती है, पर अपने आन्तरिक और बाह्य प्रारूपों में नितान्त जातीय और राष्ट्रीय है।

पश्चिम की कुण्ठा, घुटन, अकेलापन, पराजय और हताशा चिन्ता का विषय हो सकती है, वर्ज्य नहीं, क्योंकि हमारी कुण्ठा, अकेलापन और अस्तित्व का संकट उससे नितान्त भिन्न है—वह इतने परिवार से उद्भूत है, वह धार्मिक सम्प्रदायों के दबाव से

अनुस्यूत है—हम अपने सलीब स्वयं ढोनेवालों की स्थिति में नहीं, हमारी स्थिति दूसरों द्वारा गाड़े गये सलीबों पर जबरदस्ती लटका दिये गये लोगों की है।

कहानी हमें दूसरों से भयाक्रान्त नहीं करती, उनमें हम संवेदना और सहबोध के स्तर पर सम्बद्ध करती है। नयी कहानी ने बड़ी सूक्ष्मता और कलात्मकता से इस सम्बन्ध-सूत्र को पुनः स्थापित किया है—और कुहासे में लिपटी या धुन्ध में डूबी वस्तु-स्थिति को बौद्धिक प्रौढ़ता से साकार किया है।

अमूर्त की अभिव्यक्ति एक खोज है, पर गलत सन्दर्भों में वही पलायन भी है। अमूर्तता सूक्ष्मता की पर्याय भी नहीं है, बल्कि वह बौद्धिकता की विरोधी भी है। अमूर्त को अभिव्यक्ति देना कला का दायित्व हो सकता है, पर अमूर्तता को प्रश्रय देना पलायन के अलावा कुछ और नहीं है। पिकासो या अन्य निराकारवादी चित्रकारों ने अमूर्त को अभिव्यक्ति दी है, अपनी अभिव्यक्ति को अमूर्त नहीं बनाया है। वर्ण्यवस्तु की विराटता और सूक्ष्मता की सघन सकोचित प्रस्तुति यथार्थ को धुंधला नहीं प्रखर करती है।

नयी कहानी इस दिशा में भी प्रयत्नशील रही है और उसने जीवन की जटिलता की अभिव्यक्ति को भी (मात्र जटिलता या कठिनता को नहीं) अपने प्रयोगों में शामिल किया है। असफल प्रयोग दुरूह और जटिल भी दिखायी दिये हैं, पर सफल प्रयोग स्पंदित जीवन-खण्डों के रूप में आज भी धड़क रहे हैं।

कला के स्तर पर कहानी बहुत ही कठिन विधा है। हर कहानी एक चुनौती बनकर सामने आती है और उसके सब सूत्रों को सम्भालने में नसें फटने लगती हैं—यह कठिन परीक्षा का समय होता है। भोगता रहता हूँ यह भोगना तब तक चलता रहता है, जब तक अनुभव अनुभूति में आत्मसात नहीं हो जाता।

अमूर्तता, लायी हुई सार्वेतिकता और 'अस्तित्व' को जीवन से ऊपर मानने का पश्चिमी दर्शन, दिमागी भ्रम और कन्दरावासी—इन तत्वों को लेकर भी कहानियाँ लिखी जा रही हैं तथा जो नितान्त अन्तर्मुखी होते जाने की नियति से आबद्ध हैं, वे कहानी की मूल जातीय धारा से इसलिए कटी हुई हैं, कि उन में जीवन के अपने संस्कारों की गन्ध नहीं है। पराई समस्याओं और पराई मानसिकता के मात्र दिमागी आवेग से ग्रस्त कुछ लेखकों ने इस तरह के लेखन को एक 'स्टेटस सिम्बल' बनाने की कोशिश ही नहीं की, बल्कि अपनी मानसिकता तथा अणु-भूमियता के दायरे भी बना लिये और उनमें अपने को कैद कर लिया। इसका परिणाम वे कहानियाँ हैं जो आज की व्यावसायिक पत्रिकाओं की माँग को पूरा करने के लिये लिखी जा रही हैं—किसी एक चमत्कार पर दस वाक्य वाक्य के सहारे ये कहानियाँ किसी 'मूड' या

स्थिति के निषेधात्मक प्रस्तुतीकरण तक ही जा पाती हैं, क्योंकि उनमें उद्दाम जीवन के किसी पक्ष का अनुभूत यथार्थ नहीं होता।

आज की कहानी ने जब अपने परिपाटीबद्ध फार्म को तोड़ा, तो कुछ प्रयत्नों में अराजकता आ जाना स्वाभाविक था। यह सिर्फ हिन्दी में नहीं बल्कि देशी विदेशी भाषाओं की नयी कहानी में भी हुआ है। समसामयिक विदेशी कहानी-साहित्य की जीवन्त और स्वस्थ धारा से परिचय न होने के कारण हमारे यहां भी वहां की विगलित और पराजित पीड़ा की आवाज में आवाज मिलाई गई और अस्तित्व के संकट को बन्द कमरों में बैठकर 'झेला' और प्रस्तुत किया गया जिससे आज की कहानी को लेकर भ्रान्त धारणाएँ फैलीं।

पर 'अस्तित्व' को, जीवन की एक स्थिति के रूप में मानते हुए और यथार्थ युग बोध को सहेजते हुए कहानी की मूल धारा ने जीवनपरकता का नहीं छोड़ा। आज की नई दुनिया की सचेतना कहानी के माध्यम से सबसे सशक्त रूप में प्रकट हो रही है। प्रत्येक देश में कुछ ऐसा है जो तेजी से मर रहा है और कुछ ऐसा है जो उभर रहा है। इस तीव्र संक्रमण में सही मूल्यों को पहचानना और उनको अपनी कला का अंग बनाना सहज नहीं है। मूल्यों और आधुनिक सचेतना के नाम पर हमारे यहां भी बहुत कुछ ऐसा लिखा गया है जिसका कोई सम्बन्ध समकालीन जीवन या जातीय जीवन से नहीं है और न वह व्यक्ति के वास्तविक मनोजीवन का ही प्रतिफलन है। विदेशों में कुछ बोहेमियन किस्म के लेखकों की जमात मौजूद है, जो अपनी कुण्ठाओं की शिकार है और अपने विकृत मनोभावों को बड़े ही चुस्त वाक्यों और चौंकाने वाली भाषा में पेश कर रही है—ऐसी भाषा और ऐसे वाक्यों में जिन्हें दुबारा पढ़ने पर कोई अर्थ नहीं रह जाता।

इन बोहेमियन या अपार पंक्तियों से तात्कालिक लेखन ने सभी को चौंकाया भी और उत्तेजित भी किया। लेकिन "चौंकाना" 'बोध' नहीं होता और उत्तेजना 'गति' नहीं होती।

चौंकाने और उत्तेजित करने की उसी क्रिया में हमारे कुछ लेखकों ने भी हाथ बँटाया और ऐसी मनोदशाओं या स्थितियों की कहानियाँ लिखीं, जो परिभ्रान्त मान्यताओं की ठण्डी निषेधात्मक रचनाएँ भर हैं। जो दिमागी कसरतों को व्यक्ति का सत्य स्वीकार कर जीवन में अकेलेपन, कुण्ठा, पराजय, अजनबीपन जुड़े न होने की पीड़ा को सालती घूम रही हैं—यह सारा व्यक्ति को सन्दर्भहीन मानकर चलती हैं, जिनके आगे या पीछे कुछ नहीं है, जो अपने एक 'निजी असम्पृक्त क्षण' में पूर्ण हैं।

विदेशों में भी इस विकृत दर्शन को साहित्यिक स्तर पर अस्वीकार किया गया

है। इसका प्रमाण वे रचनाएँ हैं, जो वहाँ की प्रभावशाली साहित्यिक पत्रिकाओं मे आ रही हैं, लेकिन जो हम तक नही पहुँचती।

नयी कहानी के बारे म कुछ शिकायतें सुनाई पडती हैं। पहली बात जटिलता की उठाई जाती है। संश्लिष्ट जीवन के कथा सूत्रों या अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्रयास आज की कहानी म किया गया। हर अनुभूति की, यदि हम ऊपरी स्तर से जरा हटकर बातें करें तो, अपनी लम्बाई चौडाई और एक अ यक्त आकार होता है। वह जीवन्त होता है, उसमें सासो की अनुगूँज भी होती है और इ सानी भावना भी। अनुभूति का उसकी इस समग्रता मे नयी कहानी ने ही प्रस्तुत किया है, नही तो अधिकाश कहानिया इकहरी अनुभूति का ही जीकर चलती थी, इसलिये उनमे सपाट सीधापन था। आज की कहानी मे उसी तरह का सीधापन नही, और न पहले की तरह व सपाट हैं। अनुभूतियो को उनकी समग्रता म पश करने क कारण नयी कहानी मे मासलता आई है, और वस्तु तथा शैली क नये प्रयोगों ने अभि यक्ति के ढग का बदला है, इससे प्रे षणीयता का परिचित सीधा रास्ता कुछ खोया-खाया सा नजर आ सकता है, पर लिखित और अ कित कला नये रास्ते की तलाश मे अनुभवो क नवीन धरातलों को छून क प्रयास म, जब-जब अकुलाती है, तब-तब कुछ आकार अनपहचाने से लगते हैं नयी इमारत की नीव पडन क बाद पहले-पहल जो आकार सामने आता है वह देखन म अजीब उलझा-उलझा सा लगता है बाद म उसका सौ दय स्पष्ट होता है और जरूरत के मुताबिक वह इमारत ज्यादा उपादेय साबित होती है।

कला के क्षेत्र म यह सृजन लगभग ऐसी ही प्रक्रिया से गुजरता है और रचना कार के मानस क धुँधले विचार बिम्ब सार्थक सन्दर्भों मे अ कित होन लगते हैं—अपन आकारो क साथ। ऐसे प्रयोगो की प्रक्रिया म कुछ अस्पष्टता कभी कभी रह जाती है, पर सफल प्रयोग जटिलता के शिकार नही होते—आज की कहानी क किसी भी सफल या सार्थक प्रयोग क प्रति जटिलता का आरोप नही लगाया जा सकता उल्टे, उनमें एक सुलझाव नजर आता है—जटिल और संश्लिष्ट जीवन के सूत्रो का। इधर की कहानी न अपने को उन अस्पष्ट गु जलको से निकाला है, जो मात्र ग्रन्थियो या कुण्ठाओ को जन्म देती थी। नयी कहानी का यह एक सशक्त पक्ष है कि उसने उलझे जीवन को सम्प्रेषित करते हुए भी, अपनी आन्तरिक गठन को बहुत सुलझाकर रखा है और इसीलिए उसका कथ्य और भी अधिक शक्ति सम्पन्न रूप म अभिव्यक्त हुआ है। लेकिन 'सीधापन और 'सुलझाव दो अलग बातें हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी क्षेत्रों म एक नवीन उन्मेष की सम्भावनाए दिखाई देने लगी थी। हर क्षेत्र म इस उन्मेष के लक्षण भी

गई इसलिये और व्यापक स्तर पर उसकी प्रतिक्रियायें भी हुईं। जन मानस की रूढ़ि प्रति झुठलाने लगी और संस्कृति, धर्म, सामाजिक मूल्य और साहित्य—सभी में नया कर सकने की इच्छा तीव्र होती गई। साहित्य में यह 'नया' भावबोध के रूप पर स्वीकारा गया और आधुनिकता को एक आवश्यक लक्षण माना गया।

साहित्य में आधुनिकता की माँग एक सच्ची माँग थी लेकिन यह आधुनिकता क्या? क्या यह समकालीनता ही थी? क्योंकि कुछ स्तरों पर समकालीनता को आधुनिकता माना गया है। लेकिन समकालीन जीवन मूल्य या विचार आधुनिक हों, आवश्यक नहीं है। 'आधुनिकता' एक सन्दर्भहीन मूल्य नहीं है। यह परम्परा के रूप में ही आँका जा सकता है। यह एक ऐसा मूल्य है, जो बीते हुए को सार्थक में भविष्य से जोड़ता है

आधुनिकता एक ऐसी मानसिक बौद्धिक स्थिति है, जो अपने परिवेश और समाज की अन्तर्गत समस्याओं से उन्मूलन करती है और समकालीन जीवन को संस्कार देती है। मुख्य-मुख्य मानव मूल्यों में सर्वव्यापी और सार्वजनीन होते हुए भी आधुनिकता का स्वरूप अपनी जातीय विशेषताओं से अलग नहीं होगा। जातीय संस्कारों में रहते हुए भी उसमें इतनी उदारता है कि वह विजातीय गुणों को अपने में समाहित करने की शक्ति रखती है। लेकिन आधुनिकता की इस उदारता का दुरुपयोग या गलत बोध भी हो सकता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कहानी के क्षेत्र में एक उन्मेष दिखाई पड़ा था। खास-तौर से सन् ५० के आसपास। यह उन्मेष एक अनिवार्य स्थिति थी। पर इस उन्मेष के साथ ही आधुनिकता दो रूपों में व्यक्त होती दिखाई दी—फैशन परस्ती के रूप में और दूसरे सार्थक बोध के रूप में। फैशनपरस्ती ने आधुनिकता के नाम पर निरर्थक विजातीय संस्कारों को ओढ़ा और इस सार्थक मूल्य को समाज के सन्दर्भ से काटकर नितान्त वैयक्तिक 'अर्थ' दिये और अपने लिए 'स्वातन्त्र्य' की माँग की—जबकि दूसरी ओर कुछ साहित्यकारों ने आधुनिकता को समाज के नये सन्दर्भों में आँका और व्यापक रूप से जीवन के प्रति आस्था की माँग की। नयी कहानी की आन्तरिक शक्ति यही आस्था है—जीवन के प्रति और जीवन के सभी सन्दर्भों के प्रति।

कहानी पिछली समस्याओं को लेकर व्यक्तिगत सामाजिकता की ओर [illegible], बल्कि सामाजिक और समाज से सम्पृक्त व्यक्ति का यथार्थ पाना और आर हुआ है। यह यात्रा कहानी से यथार्थ बोध की ओर नहीं, बल्कि यथार्थ बोध से कहानी की ओर है।

'नई कहानी' शुरू से यथार्थपरक, समाजपरक और प्रगतिशील मूल्यों के प्रति

समर्पित रही है । वह किसी गोष्ठी या मच पर एक प्रस्ताव के रूप में
होकर सृजन के स्तर पर नहीं उतरी है, उसका अपना स्वाभाविक विकास है
जिसके बीज प्रेमचन्द और प्रसाद में थे । यह आकस्मिक नहीं था कि नयी कह
उन्य के साथ ही प्रेमचन्द, प्रसाद, यशपाल आदि की कहानियों के प्रति दुबारा
बदला था । 'साप', 'जयम्पोल', 'पठार का धीरज', 'हॉलीवोन की बतखें' 'एक
'एक गौ' आदि में 'पूस की रात', 'कफन' 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि कहानि
आग्रह (एम्फसिस) विभक्त गया था । यह आग्रह अपनी पूरी गरिमा के साथ
कहानी के उदय के समय ही बदला था । और यह बदलता आग्रह मानववादी
हासिक दृष्टि और युग की सक्रान्ति की ही देन थी । हमारे समय की यथार्थ म
और सवेदना की ही देन थी, जिसने एक पूरी पीढ़ी को आध्यात्मिक, नैतिक
भौतिक स्तरों पर आक्रांत किया था ।

हाँ नयी कहानी ने अपने जातीय, राष्ट्रीय सदर्भों से अपने को अधिक
था अपने समाज के मानसिक आर्थिक और नैतिक रूप से प्रताड़ित, दलित
और टूटे हुए पात्रों को ही सहानुभूति और सवेदना दी थी लोक जीवन से सीधा स
जोड़ा था । नई कहानी के लेखकों ने उस 'यथार्थ सकट' को झेला था, उसे प्राप्त
किया था जो युद्ध और विभाजन के बाद एकाएक आ पड़ा था, और जिसे बहुत
के स्तर पर वह विवर्द्धित नई कविता वहन नहीं कर पा रही थी, जो क्रमशः
क्षणजीवी और लघुमानववादी होती जा रही थी ।

'नई कहानी' ने अपनी त्वरा में कुछ गलत रास्ते भी अपनाए, कुछ कु
और रुग्ण लेखकों को भी शायद पनाह दी वह सब इसलिए कि उसका मार्ग
तब नहीं था और वह समय भी ऐसा नहीं था जब प्रतिगामी लेखकों का हुआ
अपनी प्रवृत्तियों को स्पष्ट मुखरित कर पाया हो वे प्रतिगामी लेखक भी एक अ
अन्तर्द्वन्द्व के शिकार थे, और उनका अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट होने के लिए कुछ और स
मांगता था । जैसे-जैसे उनका कृतित्व खुलता गया और उनकी आस्थाएँ प्रकट ह
गया वे अपने आप 'लघुकहानी' के आन्दोलन में प्रविष्ट होते गये और 'अ में
चीखन' को ही अपनी सार्थकता समझ बैठे ।

और ऐसे समय जब कि 'नई कहानी' अपने जीवन-सापेक्ष मूल्यों को अभि
रूप से घोषित कर, अपने किंचित् भटकाव से निकलकर प्रशस्त पथ पर समस्त प्रग
तीज और यथार्थपरक मूल्यों को लेकर चल रही है—श्री शिवदानसिंह चौहान
की तरह जागे हैं और एकाएक लम्बी नींद के बाद चीख उठे हैं । कई बार साहित्य
इस प्रमाद में रागिनियाँ हुई हैं और जब-जब यह रागिनियाँ हुई हैं, तब-तब
चीत्कार करते, डरावने प्रेतस्वर मुखरित हुए हैं, और उन्होंने उन रागिनियों को बुझ

हा दम बना चाहा है।

श्री शिवदानसिंह चौहान आज यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, ...ह, विष्णु प्रभाकर, कृश्नचन्दर, राजेन्द्रसिंह बेदी आदि को मान्यता देने की सहिष्णुता ...ण रहे हैं, जब उनकी परवर्ती (नये कहानीकारों की) पीढ़ी और पाठक समुदाय भी ...ल से पहले समादर सहित उनके कृतित्व को जाग्रत प्राप्ति मान चुका है। और ...न प्रमाण में श्री चौहान वर्तमान तथा भविष्य की ओर पीठ किये हुए कुछ ऐसी ...ना में औचित्य के साथ खड़े हैं कि मेरे आतंक को मानो मेरे सहधर्मी के अस्तित्व ... माना।

जिस समाजपरक यथार्थवादी धारा के लिए श्री चौहान अपने विकृत आवेग ...में पड़ रहे हैं—साहित्य में वह कहाँ और कौनसी धारा है? वह कौन ...दिया है, जो अपने समर्थ कृतिकारों के साथ वैचारिक और सृजन के स्तर पर ...न मूल्यों के प्रति समर्पित है? आज कहानी की वह कौनसी उपलब्धि है जो ...रेणु, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, अमरकान्त, कमल जोशी, ...ना सोबती, हरिशंकर परसाई, मन्नू भण्डारी, लक्ष्मी नारायण लाल, शिवप्रसाद ..., उषा प्रियंवदा, धीरेन्द्र अस्थाना, शरद जोशी, राजेन्द्र अवस्थी, शशि तिवारी, ...रमेश बक्षी, ...नी, घनश्याम सेठी, ...जोशी, वीरेन्द्र म—...रना आदि के कृतित्व से अधिक प्रगतिशील और मानवतावादी मूल्यों को सहज ...र सामने आई है? या भविष्य की वह कौनसा आशा है जो प्रयाग शुक्ल विजय ...हान, रामनारायण शुक्ल, मधुकर गंगाधर, शरद देवड़ा, प्रबोधकुमार, महेन्द्र भल्ला ...सिंह, रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन, गंगाप्रसाद विमल, परेश दत्तगुप्त, डॉ० रा० ...श्री गिरिराज किशोर, एस० लाल, सुशील कुमार, ...नारायणसिंह, मधुकरसिंह ...लवाड़, काशीनाथसिंह, प्रेम कपूर, ममता अग्रवाल, मेहरुन्निसा परवेज, ओम ...वारी, ..., महेन्द्र, ...नाथ आदि के आश्रित उन्हें अधिक सम्भावना पूर्ण ...गाई रही है।

यह पूरी-की-पूरी पीढ़ी, मात्र कुछ वर्षों के अन्तराल से मान्य के बावजूद उन्हीं ...तरिक और बाह्य यथार्थवादी मूल्यों को लेकर नये दाय और नई जिज्ञासा की खोज ...मग्न है।

...नी मानसिक ...ट में आ ... वादियों और ...वादियों के ...थ मिलकर वे ...रा ... ... और ...र यथार्थ को ग्रहण करके ...माजिक विसंगति की कहानियों लिखने की ओर ही ज्यादा उन्मुख थे। ... भी ...न हावी हो जाता है, तो कुछ-कुछ जिल्मा... बन जाता है और अनजाने ... ...ना के लिए का प्रतिपादन करने लगता है। इसका ... ... समान ... ...

है। उसे प्रस्तुत करने वाला लेखक साहित्यिक सन्यासी के दर्जे तक उठ जाता है। सन्यास, चाहे वह जीवन मे हो या साहित्य मे—एक तरह का प्रबुद्ध पलायन ही

कथ्य और कला दोनों ही स्तरों पर नई कहानी ने अपने को जीवनप विचारधारा से जोड़कर विकसित किया है। यहाँ एक भ्रम हो सकता है, 'विकसि न द क' कहकर। व्यक्तिपरक धारा के सन्दर्भ में यही शब्द 'अलगाव' में बदल जाता यानी नई कहानी ने उस व्यक्तिमूलक धारा से अपने को तोड़ा या अलग किया। अलगाव को देखना और समझना बहुत आवश्यक है।

व्यक्तिपरक कला की माँग थी कि व्यक्ति को उसके आन्तरिक परिवेश में दे जाए। और उसी के मातहत कहानीकार गुह्यतम रहस्यों की खोज कर चमत्का नतीजे निकालने लगा विशिष्ट की खोज की गई और उसी का अन्वेषण। व्य का समाज सरिता के प्रवाह से निकालकर खुर्दबीन के नीचे, एक काँच की सतह रखकर ये विश्लेषण किये गए। हमारे उन कहानीकारों ने व्यक्ति के रेशे रेशे उ कर रख दिए यह पोस्टमार्टम होता रहा और व्यक्ति के जहर की 'रिपोर्ट' प्रका होती रही उन लेखकों ने उस जहर की कोई पहचान नहीं बता पाई जिससे आ की मानसिक दुनियाँ दूषित हो रही थी और वह कुण्ठा, पराजय, अकेलापन, स जनित कुण्ठा आदि से भ्रमित हो, तरह-तरह की मौतों का शिकार हो रहा था।

विशेष की पहचान एक बात है और विष खाने की मजबूरी के कारणों पहचान बिलकुल दूसरी बात है। नई कहानी ने अपना दृष्टिकोण बदलकर, कारणों तरफ रख किया। इसीलिए नई कहानी वहाँ से शुरू होती है (एक नये दृष्टिकोण साथ) जहाँ पहले की कहानियाँ समाप्त होती थी।

'नई कहानी' के सम्बन्ध में एक भ्रम बहुत ज्यादा है—लोग समझते हैं यह भी 'नई कविता' की तरह का कोई आन्दोलन है। नई कविता और न कहानी' के भाव जगत में मौलिक अन्तर है। नई कविता की अनास्था, पराज अकेलापन, कुण्ठा आदि उन्हीं अर्थ सदर्भों में नई कहानी की मानसिकता का अंग न हैं जिन अर्थों में वे नई कविता मे हैं। नई कविता के व्यक्ति का अकेलापन और न कहानी के पात्र का अकेलापन एक-सा नहीं है उसकी कुण्ठा और अनास्था भी अल हैं। फिलहाल नई कविता की मानसिक बुनावट उन व्यक्तिवादी कहानीकारों के ज्या निकट है जो अपने अन्त सघर्ष से जूझते हुए प्रबुद्ध पलायन कर गए—'नई कहानी फिर उस कटे हुये व्यक्ति को सचेत रूप से, मूल जीवन की धारा से जोड़ा और विस्तृ सामाजिक परिवेश में उसका चित्रण शुरू किया। अज्ञेय की 'रोज' कहानी की नायि जहाँ बैठी हुई थी, वहाँ से उठकर, अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' की नायिका

काम शुरू किया और अपने वैयक्तिक दुख को दुख न मानकर समय के दुख को अना-यास अनावरित किया और अब वह सब लोगों के साथ रात का भोजन जुटाने की तलाश में अकेला खड़ी है। अज्ञेय की नायिका अपने दुख में अकेली थी, पर अमरकांत की नायिका अपने दुख में अकेला होते हुए भी, सबके दुख से जुड़ी है। नई कहानी में यह उत्थान सचेत प्रयासों के फलस्वरूप है—अंत: प्रेरणा जनित आकस्मिकता के कारण नहीं। यह सचेत उत्थान ही मुक्ति है, और इस मुक्ति ने ही उसे नया बनाया है।

नई कहानी के उदय के दो मूल कारण थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के आस-पास कहानी की मूल धारा नारे लगा-लगाकर और सूरज उगा-उगाकर थक चुकी थी (यह शायद उस काल में जरूरी भी था) और कहानी की व्यक्तिवादी धारा समय की समस्याओं की जवाबदेही से कतराकर 'नीलम देश की कन्या' की खोज में लगी हुई थी और उसकी एकांगिता ने पाठकों को ऊबा दिया था।

दूसरी ओर कविता के क्षेत्र में छायावाद की वायवी भावधारा और कृत्रिमता से ऊब कर जो नई-कविता नये मान-मूल्यों को लेकर फिर से जीवन की ओर उन्मुख हुई थी (जिसका मूल स्रोत निराला की सजगता थी) और जिसका प्रतिनिधित्व शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, नरेन्द्र शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, नागार्जुन, केदार, नरेश मेहता आदि कवि कर रहे थे वह प्रयोगवाद की व्यक्तिमूलक चेतना के सैलाब में एकाएक बिखर गई थी और उसका मूल स्वर जीवन से विमुख हो अन्तश्चेतना की अंध गुहाओं में गूंजती सामन्ती आवाज का हो गया था।

नई कविता का मूल स्वर विपन्न की पीड़ा, पलायन, व्यक्ति का दुख, टूटन, अनास्था और घुटन से भरा था—जो इन्सान को लघु और कीड़े मकोड़ों से भी हेय मानकर चलने में तृप्ति पा रहा था, जो मनुष्य को उसके इतिहास से सम्पृक्त करके देखने में विश्वास नहीं रखता था, बल्कि उसे एक नितान्त असम्पृक्त इकाई के रूप में प्रस्तुत कर रहा था। वह समय की धारा को नकारते हुए 'नदी के द्वीप' के रूप में अपनी एकान्तिक सत्ता की घोषणा कर रहा था और टूटे हुए व्यक्ति की पीड़ा को अपनी दृष्टि और अपनी 'ईमानदारी' से अभिव्यक्ति दे रहा था। नई कविता की यह दृष्टि ही दूषित और सीमित थी, जो खण्डित होते दाँत की चरमराहट, नई सुबह, भाव विह्वलता, कराहटों और कराहों न जाने के दुख को ही देख रही थी। कुछ उसी तरह, जैसे किसी दुर्घटना में ग्रस्त माता अपने बच्चों, अपने नये वस्त्र अपनी निस्सहायता के अहसास से विकल और विगलित होते हैं।

नई कहानी उस कराहटों की कहानी नहीं थी। इसीलिए उस भावधारा से इसे सम्बद्ध नहीं किया जा सकता। नयी कहानी की दृष्टि अपने मूल्यों का मार्ग

कता, बनते सम्बन्धों व सन्तुलनों और इतिहास से सम्पृक्त व्यक्ति की इच्छा आकांक्षा, सुख-दुख आशा निराशा और सपनों की तरफ था। इसका प्रमाण वे कहानियाँ हैं जो नई कहानी के पहले उन्मेष के साथ सन ५० के आस-पास सामने आई—'चीफ की दावत, मलबे का मालिक, जहां लक्ष्मी कैद है, हंसा जाई अकेला, तीसरी कसम, काल सुन्दरी, बन्नू, दोपहर का भोजन, कमनाशा की हार, चौदह कोसी पंचायत गदल, परिन्दे, धरती अब भी घूम रही है आदि। इनके अलावा भी पचासों कहानियाँ हैं, जो इस बात की पुष्टि करती हैं।

नई कहानी में कथानक के ह्रास और अमूर्त चित्रण को लेकर उसके सश्लिष्ट होते जाने की बात उठाई जाती रही है। कुछ ऐसी कहानियाँ और विचार इधर आये हैं, जो इस बात का भ्रम पैदा करते हैं कि नई कविता और नई कहानी का भावबोध एक ही है। कहानी और कविता के भावबोध में मौलिक अन्तर है और उनके स्वर भी पृथक हैं। नई कविता की कुण्ठा, अकेलापन, टूटन और पराजय नई कहानी की मानसिकता का अंग नहीं है। इधर कुछ कहानियों में कविता जैसे धुंधले प्रतीक, कुण्ठित बिम्ब और निरर्थक रूपक आये हैं। यह तभी होता है जब कथाकार के पास कथ्य के रूप में या तो कुछ नहीं होता या इतना झीना होता है कि कहानी की मांसलता को झेल नहीं पाता—और तब ऐसी कहानियाँ चिपचिपी रोमांसवादिता को बौद्धिकता का जामा पहनाकर पेश की जाती हैं। उत्कट यथार्थ का झेल न सकने के कारण ही यह पलायन है। इसीलिए यह जीवन से भी पलायन है—जिन्दगी से भागते हुए उसका यथार्थ नहीं देखा जा सकता, और न उसकी सार्थक खोज ही की जा सकती है।

नई कविता की मानसिकता से प्रेरित कथ्यहीन कहानियाँ 'उक्तिवैचित्र्य' या वाग्वैदग्ध्य की अच्छी मिसाल हो सकती हैं, पर साहित्य के इस लक्षण को हम सदियों पहले नकार चुके हैं।

कवितानुमा कहानियाँ पश्चिमी साहित्य की कुण्ठा, अकेलापन, परम्पराहीनता, हार और अनास्था को ही लेकर चल रही हैं, जो हमारी जातीय संवेदना का स्वर नहीं है, चाहे कुछ कथा समीक्षक उनमें जातीय गुणों की खोज के लिए कितने ही चमत्कारी प्रयत्न क्यों न करें। दंगा के प्रभाव में मरते हुए और दंगा का-शिकार मरते हुए व्यक्ति की मृत्यु में अन्तर है। दोनों की मृत्यु एक नहीं है। रोशनी के लिए चीखते हुए व्यक्ति और रोशनी को सहन न कर सकने के कारण चीखते वाले व्यक्ति की चीख में अन्तर है। और इस अन्तर को देख सकने की दृष्टि ही आज की कहानी की दृष्टि है।

आज की हिन्दी-कहानी प्रगति और प्रयोग

डॉ० इन्द्रनाथ मदान

आज की कहानी के मूल्यांकन की समस्या साहित्य की अन्य विधाओं से सम्बद्ध है। जिसके लिए एक विशिष्ट आधार तथा मानदण्ड की अपेक्षा है। क्या साहित्य का मूल्यांकन या उसकी प्रवृत्ति का निर्धारण वस्तु की दृष्टि से किया जाये, या शिल्प के आधार पर, प्रगति की दृष्टि से अपेक्षित है या प्रयोग के आधार पर समीचीन है ? इस मूल समस्या का मैंने उत्तर छायावादी काव्य की प्रवृत्तियों के मूल्यांकन के सम्बन्ध में उठा कर एक तीसरे मानदण्ड की ओर संकेत किया था, जो साहित्य की विधा विशेष को प्रेरित करने वाली उस चेतना अथवा जीवन-दृष्टि को मूल्यांकन का आधार बनाता है जो वस्तु एवं शिल्प, प्रगति एवं प्रयोग दोनों को समन्वित करने की क्षमता से सम्पन्न है जो इन दोनों के मूल में अखंड एवं अभिन्न रूप में प्रेरक शक्ति है। यदि अधुनातन साहित्य के मूल में उस प्रेरक जीवन-दृष्टि को आधार बना कर उसे खोजा जाय तो उसका वस्तु-पक्ष तथा शिल्प-पक्ष जो एक-दूसरे में संश्लिष्ट हो कर उभरते हैं अधिक स्पष्ट हो सकते हैं। इस जीवन-दृष्टि के दो मुख्य तथा चार गौण स्तर हैं जो आधुनिक हिन्दी-साहित्य और सम्भवतः अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रेरणा देते हुए दृष्टिगत होते हैं। एक जीवन-दृष्टि का सम्बन्ध व्यक्ति चिन्तन, व्यक्ति-सत्य, व्यक्ति-यथार्थ, व्यक्ति-हित, व्यक्ति-विकास से है और दूसरी का सम्बन्ध समष्टि चिन्तन, समष्टि-सत्य, सामूहिक यथार्थ, समाज-मंगल, सामाजिक विकास से है। एक जीवन और जगत का चित्रण एवं मूल्यांकन व्यक्ति-चिन्तन से प्रेरित मान्यताओं एवं अनुभूतियों के आधार पर करती है और सामाजिक विधान तथा उसकी धारणाओं को व्यक्ति हित, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, व्यक्ति विकास के उद्देश्य से आँकती है और दूसरी समष्टि चिन्तन, समष्टि मंगल को केन्द्रस्थ कर व्यक्ति विकास, व्यक्ति हित आदि को नियमित करने के पक्ष में है। आज राजनीति, समाज तथा साहित्य आदि के क्षेत्रों में इन दो जीवन-दृष्टियों में घोर विरोध की स्थिति पायी जाती है। इसलिए इन परस्पर विरोधी जीवन-दृष्टियों में सह अस्तित्व की स्थिति की मान्यता दी गयी है। इन दो जीवन दृष्टियों के दो-दो विशिष्ट रूप हैं। समष्टि चिन्तन का एक सामान्य एवं मार्क्सवादी रूप है जिसकी उपलब्धि प्रेमचन्द के उपन्यास तथा कहानी-परम्परा में द्विवेदीकालीन काव्य में आलोचना की शुक्ल



पद्धति म होती है। इसन सृजनात्मक साहित्य के वस्तु एव शिल्प का रूपायित और आलोचना क माना को निर्धारित किया है। इस सामान्य समष्टि चिन्तन का विशिष्ट, वैज्ञानिक एव यथार्थवादी रूप मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि म लक्षित हाता है जा प्रगतिवादी काव्य, उपन्यास, कहानी तथा मार्क्सवादी आलोचना के मूल म है। इसी प्रकार व्यक्ति चिन्तन, आदि स प्रेरित जीवन दृष्टि का एक सामान्य एव आदर्शवादी रूप है जा छायावादी कविता, व्यक्तिवादी उपन्यास-कहानी तथा सौष्ठववादी आलोचना पद्धति म मिलता है। इसस छायावादी कविता, व्यक्तिवादी कथा साहित्य का वस्तु एव शिल्प तथा सौष्ठववादी आलोचना क मान प्रभावित हैं। इस सामान्य व्यक्ति चिन्तन से प्रेरित जीवन-दृष्टि जब विशिष्ट यथार्थवादी एव अतिशय व्यक्तिवादी रूप म उसी भाँति परिणत हाकर मनोवैज्ञानिक सिद्धाता से पुष्ट हान लगती है जिस भाँति सामान्य समष्टि चिन्तन से प्रेरित जीवन-दृष्टि मार्क्सवादी सिद्धातो से प्रभावित एव पुष्ट हाकर विशिष्ट एव वैज्ञानिक रूप धारण करती है, तो यह प्रयोग वादी कविता, मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहानी के वस्तु-पक्ष एव शिल्प-पक्ष को प्रेरणा एव आकार देता है और मनोवैज्ञानिक समीक्षा क मानदण्डो को निश्चित करती है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओ की प्रवृत्तियो और समीक्षा की विविध पद्धतियो के मूल म इन चार जीवन-दृष्टियो का प्रेरक शक्तियो के रूप म आँका जा सकता है और इसम साम्य सयोगवश न हो कर कारणवश है आकस्मिक न हो कर युग-चेतना क विविध स्तरो तथा लेखक के निजी सस्कारो का परिणाम है। इन दृष्टियो का स्वरूप इतना यान्त्रिक भी नही है जितना सुविधा की दृष्टि से तथा स्पष्ट करने के उद्देश्य से उद्घाटित किया गया है। एक ही कृति तथा एक ही साहित्यकार की विभिन्न कृतियो के मूल म उसकी जीवन-दृष्टि अन्तर्विरोध से भी ग्रस्त एव आक्रात हो सकती है। इसलिए कृति विशेष तथा साहित्यकार विशेष का प्रेरित करने वाली मूलचेतना म अन्तर्विरोध से अवगत हो कर ही उसका मूल्याकन अधिक सगत, स्पष्ट एव स्थायी हो सकता है। इसके लिए पाठक एव आलोचक की दृष्टि को स्वय पूर्वाग्रहो से मुक्त हाना पड़ता है जिसका आलोचना क क्षेत्र में प्राय अभाव पाया जाता है और इस अभाव क कारण कहानी-कला तथा अन्य साहित्य विधाओ की प्रवृत्तियो एव कृतियो का मूल्याकन एकागी रह जाता है।

आज की हिन्दी-कहानी को जीवन की जटिलता एव सकुलता का सामना करना पड़ा है जिसे अभिव्यक्ति देने क लिए भाव-बोध के नये स्तरो सौन्दर्य बोध के नये तत्वों, यथार्थ के नये धरातलो की उद्भावना करनी पड़ी है। इन नये सन्दर्भों की खोज ने आज की कहानी को नयी कहानी की सज्ञा देने पर

भी विवश कर दिया है। क्या आज की कहानी पुरानी अथवा प्रेमचन्द परम्परा की कहानी से इतनी भिन्न एवं स्वतन्त्र है जितनी नयी कविता द्विवेदी-कालीन काव्य तथा छायावाद से कट कर स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है? इस समस्या का आलोचकों तथा कहानीकारों ने विभिन्न स्तरों पर उठाया है और इसका समाधान अलग दृष्टियों से दिया है। इनके परस्पर विरोधी मतों के मूल में इनकी यही परस्पर विरोधी दृष्टियाँ हैं। इस समस्या पर वाद विवाद तथा आज की कहानी से सम्बद्ध अन्य विषयों पर विचार विनिमय प्रायः पत्र पत्रिकाओं में उपलब्ध है। इन पत्रिकाओं में कहानी, नई कहानियाँ, लहर, विनोद, कल्पना, इति के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त कहानीकारों ने स्वयं अपने संग्रहों की भूमिकाओं में निजी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के प्रयास में आज की कहानी के वस्तु-पक्ष तथा शिल्प-पक्ष पर आलोक डाला है। आज की कहानी के मूल्यांकन के लिए परिसंवादों तथा साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन भी हुआ है जिनमें कहानीकारों तथा इनके आलोचकों ने इसके अस्तित्व एवं महत्व को स्वीकार किया है। इस प्रकार उपेक्षित उर्मिला को उठाने में इन आलोचकों के योगदान की ओर भी संकेत करना आवश्यक है। डॉ० नामवर सिंह ने हिन्दी में सबसे पहले आज की कहानी को नयी कहानी की संज्ञा देने का साहस किया है। एक लेख में इन्होंने इस उपेक्षिता उर्मिला की सार्थकता का निरूपण करते हुए उसके शरीर (शिल्प) की अपेक्षा उसकी आत्मा (वस्तु) पर बल दिया है। इस धारणा में आलोचक की निजी दृष्टि का आभास मिलता है जो समष्टि चिन्तन से प्रभावित है। नामवर सिंह भीष्म साहनी की चीफ की दावत, कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' या देहाती जीवन के नये कथाकारों में हो 'वास्तविकता' की 'उपलब्धि' पाते हैं और जिनका अभाव अनेक की कहानियों में इन्हें खटकता है। इनकी दृष्टि में शिल्पवादी प्रवृत्ति में कहानी अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकती। इनके मतानुसार शिल्पवादी अथवा शिल्प को महत्व देने वाले आलोचकों ने कहानी की जीवन-शक्ति का अपहरण किया है जिसका इन्हें वास्तविक खेद है। इस प्रकार वस्तु एवं शिल्प को महत्व देने के विवाद के मूल में लेखकों की निजी जीवन-दृष्टि है। कहानी की वस्तु पर बल देने वालों पर समष्टि-चिन्तन तथा निराला का अधिक प्रभाव है और उनके शिल्प को महत्व देने वालों की जीवन-दृष्टि के मूल में व्यक्ति-चिन्तन तथा सौन्दर्य तत्व की प्रेरणा है। इन परस्पर-विरोधी जीवन दृष्टियों के परिणाम स्वरूप एक वस्तु को तो दूसरी शिल्प को अधिक मान्यता देने के लिए बाध्य है। इस सम्बन्ध में डॉ० नामवर सिंह का वक्तव्य है—'नये भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए नई [illegible] का नारा लगाया जाता है जिसके लिए कहानी में कभी केवल वातावरण कभी

एक व्यक्ति का मात्र रेखाचित्र, कभी व्यंग्य द्वारा प्रस्तुत एक विचार दिया जाता है और उसे कहानी का नाम दिया जाता है, इस पर डा० नामवर ने विरोध आपत्ति की है इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द ने भी शिल्प को नया रूप दिया था, चेखोव ने भी कथानक सम्बन्धी परम्परा को तोड़ कर कहानी का दामन नहीं छोड़ा था। अतः शिल्प का स्वामी वही है जो इसका दास है। वह शिल्पगत नवीनता की सीमा को निश्चित करने तथा बांधने के लिए गति का उदाहरण देते हैं। कहानी में कहानीपन उसी तरह आवश्यक है जिस तरह गीत में गाता रमणता आवश्यक होती है। श्रीकान्त वर्मा इस कहानीपन को सम्बन्ध' के रूप में आँकते हुए लिखते हैं—'कविता में जो लय है, कहानी में वह सम्बन्ध है। आज की कहानी के सम्बन्ध में इस प्रकार शिल्पगत समस्या को उठाया गया है। इसका एक कारण यह है कि कहानी के क्षेत्र में 'प्रयोगवादियों' ने जीवन को जटिल भावभूमियों तथा संकुल परिस्थितियों की अभिव्यक्ति देने के लिए इसके शिल्प का निखारने का प्रयास किया है। इनकी व्यक्ति-चिन्तन से प्रेरित जीवन दृष्टि डा० नामवर को इसलिए अमान्य है कि वह स्वयं अर्जुन के समान मछली की समाजवादी आंख के अतिरिक्त मछली को देखने के पक्ष में नहीं हैं। इनके शिल्प-सम्बन्धी विरोध का मूल कारण शिल्पवादियों का कथ्य है जो व्यक्ति-सत्य से प्रेरित है। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' में हुए शिल्पगत नवीनता इसलिए नहीं अखरती कि इस कहानी में लोक-कथा का समावेश है और अज्ञेय आदि के शिल्प प्रयोग इसलिए नहीं भाते कि उनकी कहानियों की वस्तु इनकी जीवन-दृष्टि के अनुकूल नहीं बैठती। वह इस सब के कहानीकारों पर यह आरोप लगाते हैं कि वे इस भ्रम में जीवन की व्यग्रता को व्यापक रूप में चित्रित कर रहे हैं, मधुरता के आधार पर निरर्थकता का प्रसार कर रहे हैं। इनकी दृष्टि में कहानी की सार्थकता दिशा की, अनदेखी स्थिति की इंगित करने में लक्षित होती है। 'मलय की खोज' इसलिए असफल कहानी सिद्ध की जा सकती है कि इसमें किसी विशिष्ट दिशा की ओर इशारा नहीं है। इसमें नारी के रिक्त एवं नीरस जीवन को दुखती रग पर हाथ तो अवश्य रखा गया है और दुखती रग पर हाथ रखना कहानी का उद्देश्य भी है, परन्तु यह रग मर्मज्ञ की न होकर व्यष्टि की है जो कि की जीवन दृष्टि के अनुकूल है और डा० नामवर के दृष्टिकोण के विपरीत है। इसी आधार पर इन्होंने मोहन राकेश का भी डाक बंगला का कहानीकार घोषित किया है और इनकी कहानियों को इस पक्ष में जुगनुओं को पकड़ने का प्रयास बताया है। राकेश की जिन कहानियों में व्यक्ति-चिन्तन का पुट अथवा व्यक्ति-

का रण है उसका महत्व डॉ० नामवर की दृष्टि में नगण्य है परन्तु इनकी कुछ कहानियों का कथ्य सामाजिक चेतना से अनुप्राणित होने के कारण आलोचक की विशिष्ट दृष्टि के अनुरूप हो सकता है और इसमें वह यायावर की सतही संवेदना के स्थान पर कहानीकार की गहरी संवेदना को पा सकते हैं और कहानीकार को दर्शक की सतह न देकर भोक्ताओं की पंक्ति में खड़ा होने की अनुमति दे सकते हैं। इस प्रकार आलोचक का मूल्यांकन उसकी मूलभूत जीवन दृष्टि से प्रभावित होकर एकांगी बन जाता है। इसी कारण डा० नामवर साहित्य में वैयक्तिक तथा पारिवारिक चेतना की अभिव्यक्ति को ठहराव की स्थिति घोषित करते हैं जो इनकी दृष्टि में युग सत्य नहीं है। युग सत्य का स्वरूप गत्यात्मक एवं प्रगतिशील होता है और डाक्टर साहब ने इसकी गति की चाल तथा प्रगति की दिशा को भी निश्चित कर रखा है। जीवन में शक्ति और सौन्दर्य का आधार इस नयी शक्ति के जीवन में दिखाई पड़े और नयी शक्ति की समस्याओं की ओर जागरूक कहानीकारों का ध्यान जाए।[1] इनकी विशिष्ट जीवन-दृष्टि मध्यवर्ग के निरर्थक जीवन में सार्थकता नहीं खोज पाती। इस जीवन की सफल एक भी ऐसी कहानी नहीं है जिसमें जीवन का स्वस्थ सौन्दर्य और मानव की शक्ति मिलती हो। इनके लिए नागरिक जीवन निरर्थक है और ग्रामीण सार्थक है। यह मत पूर्वानुस्मृति का नाम है या डॉ० नामवर सिंह की मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि का परिणाम है—इसका निश्चय करना कठिन नहीं है। अपने मतवाद के अधीन होकर वह नागरिक जीवन में इन सन्दर्भों की अभिव्यक्ति की भी नितान्त उपेक्षा करने पर बाधित हो जाते हैं जो अमृतराय तथा अन्य कहानीकारों की कृतियों में अभिव्यक्ति पा सके हैं और जो इनकी जीवन-दृष्टि का खण्डन भी करते हैं। अतः इनके कहानी-कला सम्बन्धी मूल्यांकन की निजी उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ हैं। इन्होंने कहानी के मूल्यांकन को एक गम्भीर स्तर पर अवश्य स्थापित किया है जिससे उपेक्षित कहानी-साहित्य को महत्व भी मिला है। इसका परिणाम यह भी निकला है कि कहानी-सम्बन्धी समीक्षा पुराने आधार को त्याग नये धरातल पर होने लगी है, केवल निष्प्राण दृष्टि से न होकर वस्तुगत दृष्टिकोण से भी होने लगा है, कथानक चरित्र चित्रण के शास्त्रीय चौखटे में आबद्ध न होकर समन्वित रूप में होने लगी है परन्तु कहानी को समग्र रूप में ग्रहण करने तथा समन्वित रूप में खोजने में भी आलोचक की मान्यताएँ पराश्रित तथा एकांगी रूप में बाधक एवं साधक बनी रहती है। एक ओर तो कहानी को समन्वित रूप में

1 नई कहानी सफलता और सार्थकता (कहानी १९५८) पृ १८

डा० नामवर आज की कहानी को नयी की सज्ञा उसके नये शिल्प के आधार पर देते हैं, इसम नये बिम्ब विधान एव नये प्रतीक विधान की दृष्टि से देते हैं, परन्तु इसके साथ ही सकेत के स्वरूप एव उद्देश्य को भी इन शब्दों में स्पष्ट एव निश्चित कर देते हैं ताकि कहानीकार इसके अस्वस्थ रूप के व्यामोह से स्वय को बचा सकें और जिससे राजेन्द्र यादव नहीं बच सके हैं—'सकेत किस ओर?' यह केवल कटाक्ष है या इसमें किसी सत्य की ओर सकेत है ? शब्द अपने आप सुन्दर है या अपने से पर किसी और वस्तु को दिखलाती है ? इनकी दृष्टि में उपेन्द्रनाथ अश्क, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश की कहानी कला में नाटकीय मोड है, चौंकाने की लत है, रोशनी का अभाव है जिसके फलस्वरूप अश्क स्वय राह देख नहीं पाते और राह को कोसना आरम्भ कर देते हैं। इसलिए अश्क की सकेतात्मक अथवा प्रतीकात्मक कहानियाँ लाजवन्ती की भाँति उनके कठोर छाया का स्पर्श कर कुम्हला जाती हैं। इनके कुम्हलाने का कारण स्पष्ट है। अश्क, राजेन्द्र यादव तथा राकेश की कुछ कहानियों में व्यक्ति-चिन्तन अथवा व्यक्ति-सत्य की प्रेरक दृष्टि है जो डा० नामवर के गले से नहीं उतर पाती। इनके लिए सत्य तो समष्टि चिन्तन के साँचे मे ढला होता है और यदि कहानी में सकेत एव प्रतीक इस सत्य को उद्घाटित करने में असफल हैं तो वे अमान्य तथा अग्राह्य हैं।

मोहन राकेश ने भी आज की कहानी को नयी सज्ञा देना उचित समझा है। इनकी दृष्टि में इसका निजी अस्तित्व एव व्यक्तित्व है। वह व्यग्यात्मक शब्दावली में इसकी परिभाषा को बाँधने का प्रयास करते हुए लिखते हैं—'नयी कहानी गाँव की कहानी है, नयी कहानी नये शिल्प की कहानी है, नयी कहानी महज मानसिकता की कहानी है, नयी कहानी उत्तर पाश्र्व के चित्रण की कहानी है, नयी कहानी सामाजिक सघर्ष की कहानी है, नयी कहानी साधारण और परिचित जीवन की कहानी है, नयी कहानी अपरिचित जीवन की कहानी है, नयी कहानी स्वच्छ पारदर्शक भाषा में लिखी जाने वाली कहानी है और नयी कहानी बल-बूटेदार भाषा में लिखी जाने वाली कहानी है। नयी कहानी सभी तरह की कहानी है और न जाने किस तरह की कहानी है।[1], इस तरह की बिन्दुहीन आलोचना तथा बिन्दुहीन कहानी के बिन्दु देने के लिए यहाँ इसके चार कोणों की ओर सकेत है और कहानी की बात को इनमें से किसी भी कोण से उठाया जा सकता है—शिल्प, भाषा, यथार्थ व

[1] बिन्दुहीन आलोचना (नई कहानियाँ जून १९६१) पृ ३६

अभिव्यक्ति और सार्वतिकता । इनमे शिल्प, भाषा एव साकेतिकता का सम्बन्ध इसके अभिव्यक्ति पक्ष से है और 'यथार्थ की अभिव्यक्ति' का अनुभूति-पक्ष से । राकेश और कारण की सम्भावना को स्वीकार कर किसी एक को उपलब्धि मानकर कहानी की सफलता का अंकन करना नही है। इन सभी उपलब्धियो मे जब सगति बैठ जाती है तब कहानी का आन्तरिक अन्विति का निर्माण होता है। वह नयी कहानी मे इस आन्तरिक अन्विति को आवश्यक मान कर इसे परम्परा से कटा हुआ भी नहीं स्वीकार करते। प्रेमचन्द की कहानियो मे भी सार्वतिकता का विकास भिन्न स्तरो पर हुआ है। 'कफन' तथा 'शतरज के खिलाडी' मे चरित्रो का स्वरूप मारबिड (morbid) है, परन्तु इनके सकेत मारबिड नही हैं। इसलिए आज की कहानी पुरानी कहानी का विकसित रूप है, परन्तु साथ ही इसका निजी व्यक्तित्व भी है जिसके आधार पर वह नयी है । राकेश नयी कहानी की उपलब्धियो का इसको नयी साकेतिकता मे पाते हैं और यह सार्वतिकता प्रेमचन्द, जैनेन्द्र तथा अज्ञेय का सार्वतिकता से भिन्न है। जैनेन्द्र तथा अज्ञेय की कहानी मे सकेत अमूर्त हैं जो काल्पनिक बिम्बो पर आश्रित है और ये कहानी की अपेक्षा कविता के अधिक निकट एव अनुरूप है। मोहन राकेश नयी कहानी के अस्तित्व एव व्यक्तित्व को मान्यता देते हुए कहते हैं कि यह नयी कविता के समान भारतीय जीवन तथा पाठक से अपना सम्बन्ध तोड नही बैठी है। इसकी दिशा व्यक्ति की आन्तरिक कुण्ठाओ की दिशा न हो कर एक सामाजिक दिशा है जो आगे की सम्भावनाओ को व्यक्त करती है। इस मान्यता के आधार पर राकेश की 'मिस पाल' 'अपरिचित' आदि कहानियो का नयी कहानी की कोटि मे रखना कठिन हो जायगा । इनकी अधिकाश कहानियो के मूल मे सामाजिक चेतना तथा कुछेक के मूल मे वैयक्तिक चेतना की प्रेरणा है और इनका यथा स्थान विवेचन किया जायगा । जब वह नये सदर्भो तथा बदलते हुए मूल्यो की बात करते हैं तब वह नयी कहानी को सामाजिक दिशा मे बाँध कर अपनी एकागी दृष्टि का परिचय देते हैं और अपनी कुछ कहानियो को भी इस कोटि से बहिष्कार कर देते हैं। व्यक्ति की कुण्ठा भी कहानी की वस्तु बन सकती है, इसकी ओर भी सकेत किया जा सकता है, इसे भी नये सन्दर्भ में देखा जा सकता है।

परन्तु इसमे रमण करना एक बात है, इसका चित्रण करना दूसरी बात है और इन दोनो मे भारी अन्तर पाया जाता है । राकेश स्वय अस्वस्थ जीवन चित्रण द्वारा स्वस्थ सकेत देने के पक्ष मे हैं। वह नयी कहानी के लिए वस्तु की अस्वस्थता का तब निषिद्ध नही मानते जब उसका सकेत से असतोष का भावना

जागता है। इस प्रकार वह व्यक्ति की कुण्ठा को कहानी की उचित वस्तु न मान कर निजी मानसिक द्वन्द्व की स्थिति का परिचय देते हैं। एक ओर वह स्वीकार करते हैं कि हर रोज के जीवन में सब कुछ अनेक सदर्भों में सामने आता है। इस विविधता को पकड़ना और इसे कहानी की सांकेतिक अन्विति में व्यक्त करना इनकी कहानी रचना का उद्देश्य एवं गन्तव्य है। इन विविध रंगों में व्यक्ति की कुण्ठा का भी एक रंग हो सकता है और संभव है यह काला हो और काले रंग से लेखक को चिढ़ भी हो। इनकी अपनी अभिरुचि डा० नामवर की तरह लाल रंग में न हो कर गुलाबी रंग में जान पड़ती है। इसीलिए डा० नामवर को राकेश की कहानियों में वे सकत नहीं मिलते जो लाल रंग में रंगे हुए हों। संभवत इस बात को दृष्टि में रख कर राकेश ने यह लिखा हो—'प्रभावग्रस्त जीवन की विडम्बना केवल खाली पेट और ठिठुरते हुए शरीर के माध्यम से ही व्यक्त नहीं होती विश्वास केवल उठी हुई बाहों के सहारे ही व्यक्त नहीं होता। इसके साथ यदि यह जोड़ दिया जाय कि रंग केवल लाल ही नहीं गुलाबी एवं काला भी हो सकता है तो राकेश की कहानी कला का स्वरूप अधिकांश रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। वह काले रंग से इसलिए चिढ़ते हैं कि इस रंग में इनकी 'मिस पाल' रंगी हुई है और वह कहानी भी है। इस प्रकार माँ अपनी काली बेटी का तिरस्कार कर उसे अपनी ममता से वंचित कर रही है। यह भी संभव हो सकता है कि कहानीकार व्यक्ति चिन्तन से प्रभावित अपनी जीवन-दृष्टि से संघर्ष कर रहा हो जो कभी कभी इनकी कहानी के मूल में उपलब्ध है। इनके परिणामस्वरूप वह शिल्प की अपेक्षा वस्तु को अधिक महत्व देने के पक्ष में जान पड़ते हैं—नये शिल्प का विकास केवल प्रयोग की चेतना से नहीं नये मैटर के सामने पुराने की असमर्थता के कारण होता है।[1] इनकी कहानी-कला का शिल्प पक्ष प्रयोग-रुचि पर आधित न हो कर नये स्वस्थ संकेत देने की व्याकुलता से स्थापित है। इसलिए इनकी कहानी में कहानीपन सुरक्षित है, जिस कारण वह अपनी कहानी-कला का सम्बन्ध परम्परा तथा भारतीय जीवन से जोड़ते हैं। आज की कहानी का मोहन राकेश का योगदान सृजन तथा मान्यता की दृष्टियों से विशिष्ट महत्व रखता है। वह कहानी के छोटे और साधारण कैनवास के माध्यम से बड़ा और असाधारण संकेत देना चाहते हैं जिसे वह व्यापक सकेत का नाम भी देते हैं। यह मान्यता की इस दृष्टि को 'स्वस्थ एवं अधिकारी' नहीं मानते जो आज की कहानी का सम्बन्ध एक विशेष तरह के शिल्प या वस्तु से

[1] एक और जिन्दगी नये सदर्भों की खोज

साथ जोड कर उसका मूल्यांकन करती है। इसके लिए अभिव्यक्ति म जिस स्वाभाविकता की आवश्यकता है वह जीवन की सहज अनुभूतियां से ज म लेती है और स्वत ही रचना को सहज एव सवेद्य बना देती है।[२] इस प्रकार राकेश नयी कहानी के स्वरूप का स्पष्ट कर उसके स्वत त्र अस्तित्व को स्थापित करते हैं। यह कहानी नया दृष्टि का परिणाम है, इसके प्रभाव का स्वरूप भी नया है और इसका क्षेत्र भी अधिक विस्तृत है, परन्तु इसमें ठहरे हुए यथार्थ के वैयक्तिक एव पारिवारिक रूप की अभिव्यक्ति निषिद्ध है और सामाजिक पार्श्व के व्यापक भाग का चित्रण अभीष्ट है। इसलिए वह स्वय तो प्रेम त्रिकोण के आधार पर, जिसमे ठहरे हुए यथार्थ का वैयक्तिक स्वर ही ध्वनित होता है, कहानी रचना नहा करते परन्तु म न्नू भडारी की 'यही सच है' कहानी से इतने प्रभावित हो उठते हैं कि वह इसमे व्यक्ति यथार्थ को स्थितिशील रूप म न पा कर गतिशील रूप मे आंकने लगते हैं और अमृतराय की प्रेम त्रिकोन पर आधारित कहानी 'समय' म अव्यक्त एव गूढ़ सकेत को भी खोज निकालते हैं। राकेश को अज्ञेय की 'रोज' म सकेत अस्वस्थ और अमृतराय की 'समय' म स्वस्थ लगता है जबकि इन दोनो कहानियो म नारी का समय निगल गया है। 'रोज' म नारी की व्यथा राक्षस की व्यथा बनने म असफल और 'समय' म गीता की व्यथा सहज ही इनकी व्यथा बन जाती है।[१] इन दोनो नारियो के मौन म एक उदासी है जो समान रूप से हृदय को झकझोर डालती है। इस असमान मूल्यांकन का कारण आलोचक का 'ठहरे हुए यथार्थ' के वैयक्तिक रूप का विरोध है और 'चलते हुए यथार्थ' के सामाजिक रूप के प्रति मोह है। इस मोह का वह स्वय भी कभी कभी अपनी कहानियो म परित्याग करने के लिए विवश हो जाते है। इसी कारण इनका व्यक्ति चिंतन अथवा व्यक्ति सत्य से प्रभावित दृष्टिकोण 'यही सच है' और 'समय' म भी स्वस्थ एव सार्थक सवेदना की उपलब्धि पा सकता है।

आजकी हिन्दी-कहानी को नयी की सज्ञा देने वालों म नामवर सिंह तथा मोहन राकेश के अतिरिक्त राजेन्द्र यादव, रमेश बक्षी, आदि ने भी अपने-अपने दृष्टिकोण से इसके नयेपन का निरूपण कर इसे 'नया' के विशेषण से मण्डित किया है। राजेन्द्र यादव के अनुसार आज की कहानी का एक ऐसा व्यक्तित्व अवश्य सँवरा और निखरा है जो इसको 'परम्परा से एक दम भिन्न है' और इसके साथ ही इसमे परम्परा के कुछ

२ नये बादल वक्तव्य

१ नई कहानियां, जुलाई, १९६०, पृ० ७८

रा की सामान्यता भी है। [1] इस तरह आज की कहानी नयी है और पुरानी भी है, परम्परा से भिन्न भी है और परम्परा का विकास भी है। इस प्रकार वह इसके स्वरूप को सुलझाने की अपेक्षा उलझा कर ही रख देते हैं। इन्होंने कहानी सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' नामक कहानी-संग्रह की भूमिका में निरूपित करने का प्रयास किया है जिसे वह मादर हीयरिंग का नाम देते हैं। इसमें एक ओर वह कृष्णा सोबती की कहानी बादलों के घेरे को महत्व देते हैं जिसमें व्यक्ति चिन्तन का स्वर है, और दूसरी ओर अमरकांत की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' को महत्व देने में संकोच करते हैं जो 'प्रगतिशील' जीवन दृष्टि से अनुप्राणित है। इससे वह अपने दृष्टिकोण को प्रगतिशील सिद्ध करना चाहते हैं। मानव-जीवन को जीना है और इसके लिए समाज में स्वस्थ सम्बन्धों की स्थापना अवश्य करनी है। इन सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए धन, समाज, नैतिकता की रूढ़ियों को नष्ट भी करना होगा। इन अस्वस्थ सम्बन्धों के मूल में समाज की आर्थिक व्यवस्था है। इस प्रकार की मान्यताओं में यादव के 'प्रगतिशील' दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। प्रेम की समस्या का समाधान भी वह इसी दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। तिकोन की स्थिति पति, पत्नी तथा प्रेमी में उपलब्ध होती है, वह इन तीन व्यक्तियों को दो में परिणत कर, तिकोन को तोड़ कर दो दुकान बना डालते हैं। इस प्रकार वह सामन्ती मान्यताओं का विरोध करने में अपने व्यक्ति-चिन्तन का परिचय अवश्य देते हैं जो एक सीमा तक प्रगतिशील दृष्टि है, परन्तु जब वह प्रगतिशीलता की इस सीमा से आगे चलने की बात करते हैं तो इनकी मान्यताएँ हृदयगत न होकर बुद्धिगत होने का आभास देती हैं। कहानी कला सम्बन्धी इनके सैद्धान्तिक निरूपण तथा जैनेन्द्र अज्ञेय आदि की कहानियों के मूल्यांकन में समष्टि चिन्तन से प्रभावित इनकी 'प्रगतिशील' जीवन दृष्टि लक्षित होती है, परन्तु इनकी अपनी कहानी कला के मूल में व्यक्ति-चिन्तन का गहरा रंग है। इसे लेखक ने जब लाल रंग का पुट दिया है तो वह कच्चा बन कर ही रह जाता है। राजेन्द्र यादव निजी आन्तरिक विरोध के कारण नयी और पुरानी, प्रगति और प्रयोग, वस्तु और शिल्प को समझाने में उलझ जाते हैं और अन्ततः जो यह स्थिति इनकी कहानियों में भी उपलब्ध होती है। एक ओर वह जैनेन्द्र अज्ञेय आदि की कहानी कला के अस्तित्व को 'भारत' के रूप में स्वीकार करते हैं और दूसरी ओर यह वह भी मानते हैं कि मात्र भी नए सारे साहित्य से कट कर इन कहानीकार की अलग दुनिया है जिसमें रहकर अरविन्द, कलाकार मानसिक तथा समाज हैं जहाँ "मांदे वन" में वास करने वाली 'नारी कुर्सी का साम्राज्य' था।

---

[1] कथा साहित्य पेशन और पार्श्व में (विनोद प्रदस्त १०)

जिनकी अब पुरानी पीढ़ी के कथाकारों में गणना होने लगी है, और नयी पीढ़ी के कहानीकारों में हरिशंकर परसाई, मधुकर गंगाधर, नित्यानंद तिवारी, श्रीकान्त वर्मा राजकमल चौधरी, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर मार्कण्डेय आदि के नाम लिये जाते हैं और इनके अतिरिक्त आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान डा० देवीशंकर अवस्थी डॉ० देवराज, डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त आदि ने आज की कहानी की संभावनाओं तथा सीमाओं का अपनी अपनी दृष्टि से विवेचन करते हुए इसे नयी कहानी की संज्ञा देने से संकोच किया है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि काव्य के क्षेत्र में आज की कविता का नामकरण 'नयी' के रूप में पहले हो चुका था और आज की कहानी का स्वरूप नयी कविता के समान नहीं है। इसलिए इनकी दृष्टि में आज की कहानी को नयी कहानी का नाम देना अनुचित एवं असंगत जान पड़ता है। इसका दूसरा कारण यह है कि प्रायः सभी कहानीकारों एवं आलोचकों ने आज की कहानी में वस्तुगत एवं शिल्पगत नवीनता को परस्पर विरोधी दृष्टियों से आंका है। इससे आलोचना के क्षेत्र में सकुलता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। किसी विपरीत जीवन-दृष्टि से असहमत होना एक बात है, परन्तु उससे प्रेरित तथा अनुप्राणित कहानी का पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो कर अवमूल्यन करना दूसरी बात है। इस अवमूल्यन का कारण आलोचक की निजी अभिरुचि की सीमाएँ भी हो सकती हैं। इन कहानीकारों तथा आलोचकों में जिनमें कहानी लेखक के पाठक तथा कहानी-पत्रिकाओं के सम्पादक भी शामिल हैं, एक ही कहानी के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मत प्रकट करते हैं और इन मतों के मूल में जीवन-बोध एवं सौन्दर्य-बोध के परस्पर विरोधी धरातल हैं। आज की कहानी का मूल्यांकन इन धरातलों पर हुआ है। इस सम्बन्ध में वस्तु एवं शिल्प ग्राम-कस्बा एवं नगर कस्बा आदि के प्रश्नों को उठाया गया है, संकोता एवं प्रतीकों के स्वस्थ एवं अस्वस्थ होने की समस्या को प्रस्तुत किया है, परन्तु उस मूल जीवन-दृष्टि की उपेक्षा की गयी है जो वस्तु के चयन, शिल्प की गठन, संकेत प्रतीक के स्वरूप, प्रभाव-क्षण की अभिव्यक्ति आदि को रूपायित करती है।

इस पुरानी बनाम नयी कहानी के वाद विवाद में शिवदानसिंह चौहान ने नयी का न केवल घोर विरोध किया है वरन् उन आलोचकों को भी कोसा है जो नयी के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्थापित करने के प्रयास में संलग्न हैं। इनका दावा है कि नामवर सिंह जब नयी कहानी का फलसफा गढ़ने के लिए अल्बेयर कामू, सार्त्र और शायद ग्राह्मग्रीन के दरवाजों पर सजदे कर रहे थे जिसके परिणाम-स्वरूप कहानी का मूल्यांकन कथानक, चरित्र चित्रण के आधार पर करने की अपेक्षा संश्लिष्ट रूप में करने के

१ लहर नयी कहानी विशेषांक (१९६१) पृ १३।

रण म थे उस समय स्वय वह नयी कहानी का अध्ययन कर रहे थे। शिवदानसिंह को जिन कहानी का सम्प्रेष्य भाव प्रभाववादी स्वरूप, कथन-वैचित्र्य वस्तु के वहन आयाम क कारण अभूतपूर्व लगा, वह कहानी इनकी दृष्टि म 'शिशु का अभ्यास, पागल का प्रलाप, बौद्धिक उलझन अथवा पिछडे सस्कारो का उदाहरण थी।'[1] आलोचक सकोचवश इन कहानियो के नाम नहीं गिनवाते हैं। वह इन कहानियो को अटक-पटी' 'बवकानी' और बोर बस्तु समझते हैं। इनमे वह कहानीपन का अभाव पाते हैं। इसलिए इन कहानियो क मूल्यांकन के लिए किसी सौन्दर्यशास्त्र का गढनेकी आवश्यकता नहा समझते। नयी चेतना का अभिव्यक्ति देने वाली अधिक गठी तथा कलात्मक कहानी को 'नयी' कहना अनुचित है इस प्रकार इनकी दृष्टि म कथन वैचित्र्य, अभिव्यक्ति की नवीनता और शिल्पगत चमत्कार अपने आप म विशेष मूल्य नहीं रखते। शिवदानसिंह स्वय का प्रतिमा का कायल समझते हैं और इन्ह प्रतिमा उन कहानियो म दिखाई देती है जिनकी वस्तु समष्टि चिन्तन से प्रभावित होती है। इसलिए अश्क की 'जाग और मुस्कान' इनकी दृष्टि म स्वस्थ सवत नहीं द सकी हैं। इसका कारण यह है बडी जात के लडके और छोटी जात की लडकी मे इश्क करवाना समाजवादी मान्यता न हो कर सुधारवादी मान्यता है। चौहान की दृष्टि म यह युग-सत्य न हो कर मात्र तथ्य है और युग-म य इसम निहित है कि जाति भेद ही अनुचित है। जब तक अश्क ब्राह्मण की लडकी का भगी क लडक से कहानी म इश्क नहा करवाते, तब तक शिवदानीय सत्य की अभिव्यक्ति कहानी म नहीं हो सकती।'[1] इस तरह की कहानियो को पढ़ कर इनक हृदय की घुटन बढ़ती है, घुमडन घनीभूत होती है। चौहान अपनी विशिष्ट दृष्टि क कारण केवल दो आयामो—लम्बाई तथा चौडाई—को मान्यता द पाते हैं और इनक अतिरिक्त किसी अ य आयाम को स्वीकार करना इनक मतानुसार 'आयामबाजी' है। इस प्रकार नयी कहानी सम्बन्धी शिवदान सिंह का विरोध इनकी जीवन दृष्टि स बँधा हुआ है, परन्तु नामवर सिंह को सामाजिक चेतना लम्बाई-चौडाई क अतिरिक्त अन्य आयामो का भी बोध निकालती है और इन आयामो को 'नयी कहानी' की विशिष्टता क रूप में आँकती है। इस सम्बन्ध म इनका मन्तव्य है कि नयी कहानी म वास्तविकता के अधिक-से अधिक स्तरो का उद्घाटन गया है, कथानक क पुराने ढाँचे को तोडा गया है जिसस आन्तरिक सगति की प्रधानता बाह्य सगति हो रहता है। इसस कथानक का प्रगठन बद्धि सगत एव क्रमबद्ध होता है जिसे शिवदान सिंह चौहान दो आयामो म ही रखना चाहते हैं—लम्बाई और चौडाई। जहा तक वास्तविकता क स्तरो का प्रश्न है इन प्रगतिशील आलोचको को दृष्टि म विशेष अन्तर नहा पाया

१ लहर नयी कहानी विशेषांक, पृ० १८।

जाता, परन्तु जहां कहानी के शास्त्रीय तत्वों का प्रश्न है नामवरसिंह इनकी उपेक्षा करने के पक्ष में हैं। इसलिए वह आज की कहानी में गद्य के विविध रूपों का समन्वय देखते हैं। इसमें उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, डायरी, संस्मरण आदि की शैलियों का पारस्परिक विनिमय हुआ है। यह इस कारण हुआ है कि वस्तु की जटिलता सदैव शिल्प की विविधता को जन्म देती रही है। इसके उदाहरण आज की अनेक कहानियों में उपलब्ध हैं। यदि लेखक कहानी में 'नये मानव' की ओर संकेत करता है तो कहानी को नयी के विशेषण से वंचित करना नामवर सिंह को अनुचित जान पड़ता है। इनकी युक्ति यह है कि प्रगतिवादियों ने स्वयं 'नये मानव, नये युग तथा नये साहित्य' का नारा लगाया था। इनका नया मानव' समाजवादी चेतना के साथ में ढला हुआ होता है। इस 'नये मानव' के स्वरूप के सम्बन्ध में भी भारी अन्तर पाया जाता है। एक प्रगतिवादी के लिए नये मानव का एक साँचा है, पन्त के लिए दूसरा, अज्ञेय के लिये तीसरा और सम्भव है मुक्तक के लिए चौथा साँचा भी हो सकता है। इस नये मानव की कल्पना मात्र के साहित्यकारों तथा शिल्पकों के अपनी तथा युग की चेतना के अनुरूप की है और इसके विविध स्तर हैं। जीवन-दृष्टि में समानता होने पर भी स्तर की विभिन्नता की सम्भावना हो सकती है। यह स्थिति शिवदानसिंह चौहान तथा नामवर सिंह में कहानी के शिल्प सम्बन्धी मत भेद में उपलब्ध होती है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल भी शिवदान सिंह की भाँति आज की हिन्दी-कहानी को नयी कहानी के स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में स्वीकारने के पक्ष में नहीं हैं। वह आज की कहानी को नयी कहानी से उसी भाँति दूर रखना चाहते हैं जिस भाँति कविता को नयी कविता से। नयी कविता परम्परा से कटा हुआ आन्दोलन है। इनके मतानुसार आज कहानी में प्रेमचन्द जैसे कथा शिल्पियों का स्वस्थ स्वर, स्वस्थ संस्कार और स्वस्थ मन है।' यह विशुद्ध भारतीय है जिसकी अपनी ऐतिहासिक दाय है। इस प्रकार आज की कहानी-परम्परा पुष्ट है, नयी रूढ़ियों को रूढ़ि है।[1] डा० लाल यह मानने से सकोच नहीं करते कि इसका रूप अवश्य बदल गया है। इसमें जीवन के अलक्षित पक्षों को उभारा एवं चित्रित किया जा रहा है और इस चित्रण में कहानीकार की दृष्टि भी नवीन है। वह इसके पक्ष-पाठक में इतने रस का आस्वादन नहीं कर पाते जितना इसमें सामान्य जीवन की संवेदना का स्पर्श करने का प्रयास कर पाते हैं। इसलिए इनको निर्मल वर्मा की कहानियों में एक ही लड़की को उलझा-उलझा कर विन्यास सजा-सजा कर चित्रित करने की प्रवृत्ति में एकरसता का आभास मिलता है, परन्तु अमरकान्त की कहानियों

---

१ कहानी शिल्प और मूल्यांकन (जुलाई, १९५९)

में इन्हें शिल्पगत सहजता एवं सरलता की उपलब्धि तथा शिल्प चमत्कार को नकारने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इस प्रकार वह परम्परा के आधार पर आज की कहानी में शिल्पगत नवीनता के विरोधी हैं और इसे 'नयी कहानी' से दूर रखने के पक्ष में हैं।

[1] श्रीकान्त वर्मा आज की कहानी के स्वभाव को बदला हुआ पाते हैं परन्तु इसके चरित्र को नहीं। वह नयी कहानी में आस्था तो रखते हैं परन्तु 'नयी कहानी' जटिल सामाजिक यथार्थ से मुँह चुराती है। इसलिए उसे नया की संज्ञा से अभिहित करना असंगत जान पड़ता है। इनके मतानुसार राजेन्द्र यादव की कहानी शिल्प में ही नयी है इसकी वस्तु पुरानी है, इसमें नये यथार्थ को चीन्हने की दृष्टि 'नयी' है।[2] वह आज के कहानीकार के साहस को 'विविध भारती' के संगीत के रूप में अंकित करते हैं जिसमें शास्त्रीय संगीत के स्थायी मूल्य का अभाव है। आज की कहानी में पात्रों की खोज तो अवश्य देखने को मिलती है, परन्तु चरित्रों की खोज का अभी इसमें अभाव है। इसी तरह इसमें घटना की खोज उपलब्ध है, परन्तु सम्बन्ध की खोज का अभाव खटकता है। वह प्रबोध कुमार की 'सो-मी' 'घेरे' तथा 'मैत्री' में कुछ परिवर्तन हुआ नहीं पाते। इन कहानियों को वह शायद 'नयी कहानी' तो न कहें परन्तु उन्हें इसके निकट आने की अनुमति दे दें। जब तक कहानी में 'स्वभाव' की अपेक्षा 'चरित्र, नहीं बदलता, 'पात्र' के स्थान पर चरित्र' को नहीं खोजा जाता और 'घटना' की अपेक्षा सम्बन्ध' को नहीं उभारा जाता तब तक आज की कहानी को 'नयी कहानी' के मन्दिर में प्रविष्ट होने की आशा नहीं मिल सकती। इस प्रकार श्रीकान्त वर्मा, जिनकी नयी कविता के स्वतन्त्र अस्तित्व तथा निजी व्यक्तित्व में पूरी आस्था है, आज की कहानी में अर्थवत्ता की उत्पत्ति एवं निष्पत्ति द्वारा इसे ही नयी बनाने के पक्ष में हैं। वह आज की कहानी में शिल्प की नवीनता को तो स्वीकार करते हैं परन्तु इन्हें वस्तु की नवीनता का अभाव खटकता तथा अखरता है। इनकी धारणा है कि प्रेमचन्द की कहानियों की परम्परा सपाटपन की ओर बढ़ रही है और कहानी की यात्रा को 'सतह से सतहीपन' के रूप में आँका जा सकता है। परन्तु आज के युग का सत्य इतना जटिल होता जा रहा है कि हर व्यक्ति मानसिक रोग से ग्रस्त है। इस चिन्तन तथा मूल्यांकन का आधार श्रीकान्त वर्मा की व्यक्ति मूलक जीवन-दृष्टि है जो मानव को विशिष्ट रूप में अथवा मनुष्य को व्यक्ति के रूप में जानने तथा व्यक्त करने के लिये लिए आकुल करता है। मार्कण्डेय को आज की कहानी में वस्तु एवं शिल्प दोनों की नवीनता दृष्टिगत होती है, परन्तु कहानी में इन्हें कहानीकार की दृष्टि में आधुनिकता

१ आज की हिन्दी कहानी (कहानी, जुलाई, १९५८)
२ नये यथार्थ का उद्घाटन (कहानी नवम्बर १९५०)

का प्रभाव खटकता है। इस दृष्टि के आधार पर ही बदलते हुए मनुष्य तथा उसके परिवेश को देखा, समझा तथा आँका जा सकता है। आज की कहानी अधिक सूक्ष्म पाठक और अधिक जागरूक पाठक की माँग तो अवश्य करती है, परन्तु इसे 'नई कहानी' की संज्ञा देने से मार्कण्डेय कतराते हैं। इसे नयी' कहलाने का तब अधिकार होगा जब इसमें कहानीकार की दृष्टि नवीन होगी वह इस नवीन दृष्टि की व्याख्या नहीं करते। इसका सम्बन्ध व्यक्ति चिन्तन से है या समष्टि चिन्तन से—इस सम्बन्ध में मार्कण्डेय मौन धारण कर गये हैं। जिसका कारण यह हो सकता है कि इनका निजी दृष्टिकोण अभी पूरी तरह विकसित न हो पाया हो।

आज की हिन्दी कहानी की समस्या को डा० शिवप्रसाद सिंह ने जातीय साहित्य के आधार पर उठाया है और इसे ग्राम कथा से सम्बद्ध किया है। वह ग्राम कथा में जनता के दुख संघर्ष, इच्छा आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास और नगर-कथा में जातीय साहित्य का अभाव पाते हैं। इसमें नगर का जीवन न होकर कहानीकार का अपना जीवन होता है।[1] आफिसों, कालिजों, और विश्वविद्यालयों की लड़कियों के पीछे मँडराने में नगर का जीवन नहीं होता है यह उसकी समस्या नहीं है। परन्तु प्रश्न ग्राम कथा बनाम नगर-कथा का इतना नहीं है जितना चित्रित करने की दृष्टि और क्षमता का है। शिवप्रसाद सिंह की जीवन दृष्टि के मूल में समष्टि चिन्तन है वह मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। इसके आधार पर इन्होंने प्रेम चन्द तथा उत्तर प्रेमचन्द कहानी-साहित्य का मूल्यांकन भी किया है। वह प्रेमचन्द की देन को इन शब्दों में स्वीकारते हैं कि उन्होंने सुधारवादी दृष्टि और यथार्थवादी चेतना के बल पर हिन्दी-कहानी का जीवन के निकट ला दिया था।' और जैनेन्द्र प्रभृति प्रवर्तक की कहानी-कला को इसलिए नकारते हैं कि इसमें व्यक्तिवाद के घृणित रूप की प्रधानता है जिसने रुग्ण मन और खण्डित व्यक्तित्व के चित्रण को प्रेरणा दी है।' उसमें रोमांटिक खण्ड विश्व को उभारा एवं उतारा गया है। वह यशपाल की कहानी कला में भी मात्र रूढ़ियों एवं ढकोसलों पर व्यंग की चोटें ही सुन पाते हैं और इसमें जनता के जीवन का अभाव इन्हें खटकता है। इनके मतानुसार 'जातीय' कहानी में दाय को समझते हुए समाज और जीवन में स्वस्थ विकासशील तत्वों को प्रेरणा होती है, बाहर भीतर के प्रभावों का विश्लेषण होता है। वह नागरिक जीवन को लेकर कहानी लिखने के नितान्त विरोधी नहीं हैं इस जीवन की भी सम्भावनाओं को स्वीकार करते हैं, इस जीवन के खोखलेपन पर हरिशंकर परसाई तथा अमृतराय के व्यंगों की दाद भी देते हैं कृष्णा सोबती तथा निर्मल वर्मा की नगर कहानियों में

---

१ आज की हिन्दी कहानी (कहानी मार्च, १९५९)

कामलता एवं सुन्दरता के आधार पर इन्हें जातीय साहित्य की उपलब्धि के रूप में भी आँकते हैं, परन्तु मोहन राकेश का 'मिस पाल' पर हँसना इन्हें कुत्सित लगता है। इसलिए वह ललक को चैलेंज की भाषा अपने को तब तक अनुमति देने के पक्ष में नहीं हैं जब तक उसके पास चैलेंज की करुणा से भरा हुआ हृदय न हो। इस कहानी के मूल में वर्ग चिन्तन का पुट है जो शिव प्रसाद सिंह की जीवन-दृष्टि से मेल नहीं खाता। इसलिए वह मोहन राकेश की कहानी में जीवन को जातीय जीवन से कटा हुआ पाते हैं और तात्कालिक को सड़क, होटल और काफी के प्याला में न बँधा हुआ पाते हैं। इतने से सन्तुष्ट न हो कर वह यह मत प्रकट करने से भी संकोच नहीं करते कि नगरक कथा-कार लड़कों को कथा पतन समझते हैं और उसे टूटने की ताक में रहते हैं। वह उन नगर-कथाओं में 'जातीय साहित्य' की उपलब्धि को स्वीकार करते हैं जिनमें समष्टि चिन्तन का रंग है, सामाजिक चेतना की ही ध्वनि है प्रगतिशीलता का स्वर है। शिवप्रसाद सिंह ग्राम-कथा तथा आंचलिक कथा में अन्तर को स्पष्ट करते हुए आंचलिक कहानी के सूत्रपात का श्रेय स्वयं लेना चाहते हैं जब १९५१ के 'प्रतीक' में के में इसका प्रथम प्रकाशन हुआ था।[1] ग्राम-कथा में आंचलिक तत्व तथा स्थानीय रंग साधन बन कर आते हैं, जब कि आंचलिक कहानी में ये साध्य-रूप में होते हैं। इनके मतानुसार ग्राम-कथा में जीवन की प्रधानता रहती है, आंचलिकता की चादर में दुर्बलता को छिपाने का प्रयास भी होता है। अमृतराय ने प्रचारित नागरिक जीवन को अपनी कहानी-कला का आधार बनाया है। इन्हें सामाजिक दायित्व के निर्वाह में भी प्रगतिवादी की गंध नहीं आती। वह ग्राम कथा में अधिक-से अधिक रोमेन्टिसिज्म की प्रवृति को पाते हैं और नये राग-बोध तथा नयी भावकिता के नाम पर वास्तविक जीवन की गहरी एवं दृढ़ तकनीकी कमी को दोहन का प्रयास पाते हैं। इनका संकेत रेणु, शानी मार्कण्डेय, माकरलाम तथा शिवप्रसाद सिंह की ग्रामीण जीवन पर आधारित कहानियों की ओर है। इसलिए प्रश्न ग्राम-कथा बनाम नगर-कथा का न हो कर सामाजिक दायित्व का है, साहित्य की सहृदयता का है, नैतिक दृष्टि का है जो समष्टि-चिन्तन से प्रभावित हो। अमृतराय की निजी जीवन-दृष्टि में नीम रहस्य तथा नीम शहराती संस्कारों का पुट है और मार्क्सवादी चिन्तन का प्रभाव भी लक्षित है। आज की ग्राम-कथा ने गाँव के उपेक्षित जीवन को उभारने तथा चरित्रों को उघाड़ने का काम किया है जिसका सूत्रपात में प्रेमचन्द की 'पूस की रात' 'कफन' आदि में हो चुका था और आज की नगरकथा ने उपलक्षित जीवन को चित्रित करने तथा चरित्रों

१ आज की हिन्दी कहानी (कहानी मार्च १९५६) पृ ७२

२ आज की हिन्दी-कहानी (कहानी मार्च, १९५६)

की सूक्ष्म मन स्थितियो को विश्लपिन करने का बीडा उठाया है जिसका सूत्रपात अज्ञेय की कहानी कला म उपलब्ध है। इन कहानिया क वस्तु पक्ष तथा शिल्प-प ़ म नवीनता का पुट है और दृष्टि की विभिन्नता है।

आज की कहानी के मूल्याकन की मूल समस्या पुरानी बनाम नयी, ग्राम बनाम नगर, प्रगति बनाम प्रयाग, सदभ बनाम सवेत, भावभूमि बनाम आयाम आदि की इतनी नहा, जितनी जीवन-दृष्टि के स्वरूप की है। हिन्दी-कहानी की परम्परा को प्रेमचन्द से आरम्भ करना सुविधाजनक है। इसक विकास अथवा ह्रास क मूल म चेतना क चार विविध स्तर, जीवन दृष्टियों क चार विभिन्न धरातल अथवा चार पर स्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ है जिनसे अवगत हो कर इसका मूल्याकन अधिक युक्तियुक्त एव आलोचना सगत जान पडता है। इसके पहस इस कारण की ओर सकेत भी किया जा चुका है कि इन विविध स्तरा, धरातला एव जीवन दृष्टिया म उपन्यास एव कविता की प्रवृत्तियो तथा आलोचना की पद्धतिया को भी लगभग समान रूप म प्रभावित तथा प्रेरित किया है। कहानी क क्षेत्र म भी इन चार प्रवृत्तिया का उपलब्ध होना मूल्या कन क इस मानदण्ड का पुष्ट करता है। प्रेमचन्द परम्परा क कहानी साहित्य क वस्तु एव शिल्प का रूपायित करने वाली, प्रगति एव प्रयोग का निर्धारित करने वाली, सामाजिक' प्रवृत्ति हे जिसे विशि ट अथ आवश्यक है इसके आधार पर प्रेमचन्द परम्परा की कहानो का उद्दश्य भी स्पष्ट हा जाता है। इस सामाजिक प्रवृत्ति के मूल म समष्टि चिन्तन का सामान्य रूप है, समाज मगल की समान भावना है सुधारवाद की सामान्य दृष्टि है आदर्शवाद का गहरा पुट है, मानव का जातिगत स्वरूप है। इस परम्परा म प्रेमचन्द सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ कौशिक, चण्डीप्रसाद हृदयश, ज्वालादत्त शर्मा, वृ दावनलाल वर्मा, राय कृष्णदास आदि की कहानियाँ आती हैं। इनकी कहानिया म यक्ति-जीवन का स्वरूप सहज एव सरल है, सत्य का रूप आज क सत्य के समान जटिल नहा है। इसका कारण यह है कि इस युग म मनुष्य का रूप सामान्य था अभी विशिष्ट नही हा पाया था। मनुष्य जब विशिष्टता की ओर उन्मुख होने लगता है तो इसक सम्बन्धा का स्वरूप जटिल से जटिलतर हाता जाता है। इस जटिल परिस्थिति का कहानीकार को सामना करना पडता है या इससे पलायन और या इसमे सगति विठान क लिए इस पर आवरण डालना पडता है। जयशकर प्रसाद की परम्परा क कहानीकारा न इस व्यक्ति का, झाँकने या इससे पलायन करने का प्रयास किया है। कहानी की इस प्रवृति का व्यक्तिवादी' सज्ञा देना व्यक्तिवाद को विशिष्ट अथ प्रदान करता है। इस प्रवृत्ति म

१ गीली मिट्टी निवदन पृ ८

व्यक्ति हित की सामान्य भावना, व्यक्ति चिन्तन का सामान्य रूप, आदर्शवाद का पुट तथा मानव का वैयक्तिक स्वरूप आदि उपलब्ध होते हैं। सामाजिक प्रवृत्ति की कहानी कला में व्यक्ति के हित को समाज मंगल की दृष्टि से अधिक चित्रित किया जाता है, और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कहानी साहित्य में सामाजिक मान्यताओं एवं धारणाओं को व्यक्ति-विकास एवं व्यक्ति हित की कसौटी पर परखा जाता है। एक में दूसरे का अभाव नहीं होता है। प्रश्न यह है कि किसे केन्द्र में और किसे परिवेश में रखना अपेक्षित है? प्रसाद, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पहाड़ी, बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि की कहानियों में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति प्रेमचन्द-परम्परा की सामाजिक एवं सुधारवादी प्रवृत्ति से मोहभंग की सूचक है। इनकी कहानी कला के वस्तुपक्ष एवं शिल्पपक्ष को व्यक्ति-सत्य की दृष्टि प्रभावित करती है और इसमें मनुष्य का वैयक्तिक रूप चित्रित है। इसके साथ-साथ एवं अनन्तर 'सामाजिक' एवं 'व्यक्तिवादी' प्रवृत्तियाँ ने विशिष्ट रूप कहानी-कला को प्रभावित करने लगते हैं—सामाजिक प्रवृत्ति विशिष्ट हो कर समाजवादी अथवा प्रगतिवादी प्रवृत्ति में परिणत हो जाती है और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति विशिष्ट रूप धारण कर मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्ति बन जाती है। एक में मार्क्सवादी चिन्तन का और दूसरी में मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का प्रभाव है। जैसे अज्ञेय आदि की कहानी-कला के वस्तुपक्ष तथा शिल्पपक्ष को रूपायित करने वाली जीवन-दृष्टि व्यक्ति चिन्तन के विशिष्ट रूप से प्रेरित है और व्यक्ति सत्य के उस पक्ष को उद्घाटित करती है जो कभी-कभी नदी की धारा से कट कर उसमें द्वीप बन जाता है। इनकी कहानी-कला में संकेतों और प्रतीकों का आग्रह जो इसके शिल्पपक्ष को निखारता है। अज्ञेय के संकेत एवं प्रतीक इतने काल्पनिक अमूर्त होते हैं कि इनकी कहानी मानस धरातल पर निर्मित न हो कर वायवीय होने का आभास भी देने लगती है। इसलिए मोहन राकेश सामाजिक चेतना से प्रेरित हो कर जैनेन्द्र तथा अज्ञेय की कहानी कला को काल्पनिक बिम्बों पर आधारित मान कर भारतीय जीवन से सम्बद्ध नहीं समझते हैं और शिवप्रसाद सिंह समष्टि चिन्तन के अधीन हो कर इनकी कहानियों को अभारतीय विदेशी, विजातीय होने की संज्ञा देते हैं। अज्ञेय की कहानी 'रोज' का मूल्यांकन विभिन्न दृष्टियों से हुआ है जिसके परिणाम स्वरूप इसके कथानक को सर्वथा अभारतीय है, अमूर्त है, परम्परा से कटा हुआ है, यथार्थ से विच्छिन्न है, जड़ एवं ह्रासशील है परन्तु इसके बावजूद 'रोज' को कहानी की संज्ञा न देना भी अनुचित है।[1] इसी प्रकार समष्टि चिन्तन से प्रभावित कहानी का स्वरूप यशपाल, मोहन राकेश

---

१ गीली मिट्टी निबन्ध, पृ० ८

की सूक्ष्म मन स्थितियो को विश्लेषित करने का बीडा उठाया है जिसका सूत्रपात अज्ञेय की कहानी कला म उपलब्ध है । इन कहानिया क वस्तु-प र तथा शिल्प-प र मे नवीनता का पुट है और दृष्टि की विभिन्नता है ।

आज की कहानी क मूल्याकन की मूल समस्या पुरानी बनाम नयी, ग्राम बनाम नगर, प्रगति बनाम प्रयाग, सदभ बनाम सवत, भावभूमि बनाम आयाम आदि की इतनी नहा, जितनी जीवन-दृष्टि क स्वरूप की है । हिन्दी-कहानी की परम्परा को प्रेमचन्द से आरम्भ करना सुविधाजनक है । इसके विकास अथवा ह्रास क मूल मे चेतना के चार विविध स्तर, जीवन दृष्टियों क चार विभिन्न धरातल अथवा चार पर स्पर विराधी प्रवृत्तियाँ हैं जिनसे अवगत हो कर इसका मूल्याकन अधिक युक्तियुक्त एव आलाचना सगत जान पडता है । इसक पहल इस कारण की आर सकेत भी किया जा चुका है कि इन विविध स्तरा, धरातला एव जीवन-दृष्टिया म उप यास एव कविता की प्रवृत्तिया तथा आलोचना की पद्धतिया को भी लगभग समान रूप मे प्रभावित तथा प्रेरित किया है । कहानी क क्षेत्र म भी इन चार प्रवृत्तियो का उपलब्ध होना मूल्या कन क इस मानदण्ड का पुष्ट करता है । प्रेमच द परम्परा क कहानी-साहित्य क वस्तु एव शिल्प का रूपायित करन वाली, प्रगति एव प्रयोग का निर्धारित करने वाला, सामाजिक' प्रवृत्ति है जिमे विशि ट अथ आवश्यक है इसके आधार पर प्रेमचन्द परम्परा की कहानो का उद्दश्य भी स्पष्ट हा जाता है । इस सामाजिक प्रवृत्ति क मूल म समष्टि चिन्तन का सामान्य रूप है, समाज मात्र को समान भावना है, सुधारवाद की सामान्य दृष्टि है आदर्शवाद का गहरा पुट है, मानव का जातिगत स्वरूप है । इस परम्परा म प्रेमचन्द सुदशन, विश्वम्भरनाथ कौशिक, चण्डीप्रसाद हृदयश, ज्वालादत्त शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, राय कृष्णदास आदि की कहानियाँ आती हैं । इनकी कहानियो म व्यक्ति-जीवन का स्वरूप सहज एव सरल है, सत्य का रूप आज के सत्य क समान जटिल नहा है । इसका कारण यह है कि इस युग म मनुष्य का रूप सामान्य था, अभी विशिष्ट नहीं हो पाया था । मनुष्य जब विशिष्टता की ओर उन्मुख होने लगता है तो इसके सम्बन्धा का स्वरूप जटिल से जटिलतर होता जाता है । इस जटिल परिस्थिति का कहानीकार को सामना करना पडता है या इससे पलायन और या इससे सगति बिठान क लिए इस पर आवरण डालना पडता है । जयशकर प्रसाद की परम्परा क कहानीकारा न इस व्यक्ति का, आँकने या इससे पलायन करन का प्रयास किया है । कहानी की इस प्रवृत्ति का व्यक्तिवादी' सज्ञा देना व्यक्तिवाद को विशिष्ट अर्थ प्रदान करता है । इस प्रवृत्ति म

१ गीली मिट्टी निवदन, पृ ८

व्यक्ति हित की सामान्य भावना, व्यक्ति चिन्तन का सामान्य रूप, आदर्शवाद का पुट तथा मानव का वैयक्तिक स्वरूप आदि उपलब्ध होते हैं। सामाजिक प्रवृत्ति की कहानी कला में व्यक्ति के हित का समाज मंगल की दृष्टि से मंथन एवं विवेचन किया जाता है और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कहानी साहित्य में सामाजिक मान्यताओं एवं धारणाओं को व्यक्ति विकास एवं व्यक्ति हित की कसौटी पर परखा जाता है। एक में दूसरे का अभाव नहीं होता है। प्रश्न यह है कि किसे केन्द्र में और किसे परिवेश में रखना अपेक्षित है? प्रसाद, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पहाड़ी, बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि की कहानियों में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति में सम्बन्ध-परम्परा की सामाजिक एवं सुधारवादी प्रवृत्ति से मोहभंग का सूचक है। इनकी कहानी कला के वस्तुपक्ष एवं शिल्प-पक्ष को व्यक्ति-सत्य की दृष्टि प्रभावित करती है और इसमें मनुष्य का वैयक्तिक रूप विवृत है। इसके साथ-साथ एवं अनन्तर 'सामाजिक' एवं 'व्यक्तिवादी' प्रवृत्तियों के विशिष्ट रूप कहानी कला को प्रभावित करने लगते हैं—सामाजिक प्रवृत्ति विशिष्ट हो कर समाजवादी अथवा प्रगतिवादी प्रवृत्ति में परिणत हो जाती है और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति विशिष्ट रूप धारण कर मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्ति बन जाती है। एक में मार्क्सवादी चिन्तन का और दूसरी में मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का प्रभाव है। जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि की कहानी-कला के वस्तुपक्ष तथा शिल्पपक्ष को रूपायित करने वाली जीवन-दृष्टि व्यक्ति चिन्तन के विशिष्ट रूप से प्रेरित है और व्यक्ति सत्य के उन पक्षों को उद्घाटित करती है जो कथा-कर्मी नदी की धारा से कट कर उसमें द्वीप बन जाता है। इनकी कहानी-कला में मनको और प्रतीकों का आग्रह जो इसके शिल्प-पक्ष को निखारता है। अज्ञेय के संकेत एवं प्रतीक इतने काल्पनिक अमूर्त होते हैं कि इनकी कहानी मानस धरातल पर निर्मित न हो कर वायवीय होने का आभास भी देने लगती है। इसलिए मोहन राकेश सामाजिक चेतना से प्रेरित हो, कर जैनेन्द्र तथा अज्ञेय की कहानी कला को काल्पनिक बिम्बों पर आश्रित मान कर भारतीय जीवन से सम्बद्ध नहीं समझते हैं और शिवप्रसाद सिंह समष्टि चिन्तन के प्रणेता हो कर इनकी कहानियों को अभारतीय विरासत, विजातीय होने की संज्ञा देते हैं। अज्ञेय की कहानी 'रोज' का मूल्यांकन विभिन्न दृष्टियों से हुआ है जिसके परिणाम स्वरूप इनके बयान का सबल अभारतीय है, अमूर्त है, परम्परा से कटा हुआ है, यथार्थ से विच्छिन्न है, जड़ एवं ह्रासशील है परन्तु इसके बावजूद 'रोज' को कहानी का गौरव न देना भी अनुचित है। इस प्रकार समष्टि चिन्तन से प्रभावित कहानी का स्वरू   तथ,

---

१ गीला मिट्टी : निवेदन, पृ० ८

भीष्म साहनी, भैरवप्रसाद गुप्त, नागार्जुन, अमृतराय, दयानन्द अनन्त, अमरकान्त आदि की रचनाओं में दृष्टिगत होता है।

आज की हिन्दी कहानी में समष्टि चिन्तन एवं व्यक्ति चिन्तन का रूप इतना स्पष्ट एवं स्थूल नहीं है जितना इस के पहले की कहानी में उपलब्ध होता है। इन दो बड़े पक्षों की चार शाखाएँ इतनी उपशाखाओं में विकास पा कर एक-दूसरे में उलझ चुकी है कि कभी कभी किसी उपशाखा का उसकी शाखा से सम्बद्ध करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार किसी कहानी विशेष में लेखक की मूल चेतना को पकड़ना भी दुष्कर हो जाता है। आज की हिन्दी कहानी की उपलब्धि को इसकी विविधता में आँका गया है और इसकी अनेकस्वरता, अनेकरूपता तथा अनेकरंगता को स्वीकार किया गया है, कभी वस्तु के आधार पर और कभी शिल्प के आधार पर, कभी प्रगति के आधार पर और कभी प्रयोग के आधार पर, परन्तु इसके मूल में दोनों पक्षों को रूपायित करने वाली उस विशिष्ट जीवन दृष्टि को पकड़ने तथा आधार बनाने का इतना प्रयास नहीं हुआ है जितना यह अपेक्षित है। आज की हिन्दी कहानी की उपलब्धि एवं सार्थकता इसकी वस्तुगत तथा शिल्पगत विविधता के कारण हिन्दी उपन्यास की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। आज के कहानीकारों की सूची इतनी विस्तृत है और इनकी कहानियों की संख्या इतनी बड़ी है कि इन सबका मूल्यांकन एक निबन्ध की सीमित परिधि में समेटना संभव नहीं है। इसलिए कुछ लेखकों की उन कहानियों की ओर मात्र संकेत किया जा सकता है जो आज की वस्तुस्थिति को इन दो मूल स्तरों पर अभिव्यक्ति देने का प्रयास कर रहे हैं। इन कहानीकारों को, मूल्यांकन की सुविधा के लिए दो श्रेणियों में विभक्त करना असंगत न होगा। आज के कुछ कहानीकार व्यक्ति चिन्तन, व्यक्ति सत्य को जीवन-दृष्टि से जीवन की असंगतियों तथा जटिलताओं का चित्रण कर रहे हैं। यह कहानी की एक दिशा है। इसकी दूसरी दिशा कहानी की उस धारा से सम्बद्ध है जिसमें कहानीकार समष्टि चिन्तन, समष्टि सत्य अथवा सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हो कर सामाजिक विषमताओं को उद्घाटित कर रहे हैं। इस व्यक्तिचिन्तन तथा समष्टि चिन्तन के भी विविध स्तर हैं, व्यक्ति यथार्थ तथा समष्टि-यथार्थ के भी विभिन्न धरातल हैं, व्यक्ति हित तथा समष्टि मंगल के भी अनेक स्तर हैं। यशपाल की कहानियों में समष्टि-सत्य को जीवन-दृष्टि अमरकान्त की कृतियों के मूल में समष्टि सत्य की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति से भिन्न है। इसी प्रकार अज्ञेय की कहानी-कला के मूल में जो व्यक्तिमूलक जीवन-दृष्टि है वह मन्नू भंडारी, उषा प्रियम्वदा कृष्णा सोबती, प्रयाग शुक्ल, रमेश बक्षी, जिनेन्द्र प्रकाश कुमार आदि के कहानी साहित्य को प्रेरित करने वाली

व्यक्तिमूलक जीवन दृष्टि से भिन्न है। निर्मल वर्मा की कहानी-कला का यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो उसमें भी जीवन-दृष्टि अन्ततः व्यक्तिमूलक रूप में ही उभर कर आती है। इनके सम्बन्ध में प्रायः यह मत प्रकट किया जाता है कि इनकी कहानी कला सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है और इनकी विशेषता बिम्ब विधान में लक्षित है। इस भ्रान्ति का परिहार इनकी कहानियों के आधार पर ही हो सकता है जिनका विश्लेषण यथा स्थान किया गया है। इस प्रकार मोहन राकेश की कुछ कहानियों के मूल में जीवन-दृष्टि व्यक्ति चिन्तन से अनुप्राणित है और इनका अधिकांश कहानी साहित्य सामाजिक चेतना से प्रेरित है। राजेन्द्र यादव की कहानी-कला के सम्बन्ध में प्रायः यह धारणा रूढ़ हो चुकी है कि इनकी रचनाएँ सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं, परन्तु इनकी कहानियों का विश्लेषण इस धारणा की पुष्टि नहीं करता। इनकी कहानियों के मूल में चेतना का स्वरूप अन्ततः व्यक्तिमूलक है, चाहे यह समष्टिमूलक होने का आभास अवश्य देता है। अन्य कहानीकारों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की भ्रान्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका परिहार इनकी कला में मूल चेतना पकड़ने से ही हो सकता है। इस चेतना को पकड़ने तथा समझने के प्रयास में मुझसे भूल हो जाना मानवीय एवं स्वाभाविक है और भूल करना मेरा अधिकार भी है परन्तु जो नहीं है उसे आरोपित करना या सिद्ध करना मेरा अपराध होगा। मैंने यह भूल की है या अपराध किया है या दोनों—इसका निश्चय इन कहानीकारों की कृतियों के इस विश्लेषण तथा इनमें व्यक्त सत्यों के मूल्यांकन के आधार पर हो सकता है। यदि किसी लेखक के सम्बन्ध में एक धारणा रूढ़ हो जाती है अथवा किसी भ्रान्ति का व्यापक रूप में प्रचार हो जाता है तो उसका परिहार एवं निराकरण करना दुष्कर हो जाता है। इसका एक उदाहरण दिया जा सकता है। लेखक का उपन्यास [illegible] के मूल में प्रायः सामाजिक चेतना को आंका गया है और इसकी पुष्टि स्वयं लेखक द्वारा भी होती रही है, परन्तु इनके कहानी साहित्य को प्रेरणा देने वाली तथा इसमें चित्रित मानवीय सम्बन्धों को निरूपित करने वाली जीवन-दृष्टि का स्वरूप अन्ततः व्यक्तिमूलक है और इसका परिचय इनकी मूल चेतना से अवगत होने पर ही मिल सकता है। इसी तरह और लेखकों के सम्बन्ध में भी कुछ धारणाएँ रूढ़ हो चुकी हैं जिनका निराकरण अपेक्षित जान पड़ता है। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, आदि की कहानी-कला के वास्तविक स्वरूप एवं उद्देश्य से अवगत होने के लिए उस चेतना से अवगत होना आवश्यक है जो इनके लेखक को मर्म देता है, वस्तुस्थिति को चित्रित करती है, वस्तु का चयन करती है, वस्तु को शिल्प का रूप देती है, सम्बन्धों का निरूपण करती है। इनके सम्बन्ध में यह धारणा रूढ़ हो चुकी है कि इनकी कहानियाँ सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं, परन्तु राकेश

की 'अपरिचित' 'मिस पाल, सुहागिनें' आदि के मूल में चेतना का स्वरूप व्यक्तिमूलक ही कहा जा सकता है। इसी भाँति राजेन्द्र यादव की 'एक कमजोर लड़की' 'जहाँ लक्ष्मी कैद है,' 'अभिमन्यु की आत्महत्या' छोटे छोटे ताजमहल के समष्टिमूलक प्रतीकों के आवरण में इनकी व्यक्तिमूलक चेतना छिपी हुई है जो बाहर आये बिना रह भी नहीं सकती। इसलिए यादव की सामाजिक चेतना का स्वरूप हृदयगत न हो कर बुद्धिगत है। बुद्धि का अंकुश जब कभी शिथिल हो जाता है तो इनकी व्यक्तिमूलक चेतना जीवन और जगत का आंकन लगती हैं। आज की कहानी के मूल में चेतना के जो दो रूप उपलब्ध हैं-वैयक्तिक एवं सामाजिक इन्हें व्यक्तिमूलक एवं समष्टिमूलक कहना अधिक संगत होगा। एक व्यक्ति को केन्द्र में रख कर, इसे आधार बना कर सामाजिक मान्यताओं, धारणाओं आदि का मूल्यांकन करती है और उन रूढ़ियों का विरोध करती है जो व्यक्ति-विकास का अवरुद्ध करती हैं, और दूसरी समष्टि विकास की दृष्टि से वैयक्तिक मूल्यों एवं मान्यताओं का विरोध करती है जो इस विकास में बाधक बनती है। आज की हिन्दी-कहानी में इन दो परस्पर विरोधी जीवन-दृष्टियों का उत्कर्ष हो चुका है।

अमरकान्त, अमृतराय भीष्मप्रकाश श्रीवास्तव दयानन्द अनन्त भीष्म साहनी मधुकर गंगाधर, मोहन राकेश, मार्कण्डेय रेणु, शिवप्रसाद सिंह आदि की कहानियों में सामाजिक चेतना को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष एवं अस्पष्ट रूप में विविध स्तरों पर तथा विभिन्न सबलता द्वारा उभारा गया है। एक कहानीकार की सभी रचनाओं में इसकी अभिव्यक्ति उपलब्ध नहीं होती। इसलिए इनकी उन कहानियों को जो व्यक्तिमूलक चेतना से अनुप्राणित हैं, इनकी कहानी कला के अपवाद के रूप में आँकना ही उचित है। इनकी अधिकांश कहानियों को प्रेरित एवं रूपायित करने वाली जीवन-दृष्टि समष्टि मूलक है। इसका स्वरूप कभी सामान्य है तो कभी विशिष्ट इसकी प्रवृत्ति कभी 'सामाजिक' है तो कभी समाजवादी। अमरकान्त ने अपनी कहानियों में प्रायः उस सामाजिक विषमता की ओर बार बार संकेत किया है जो मानव जीवन के विकास में बाधक हैं। इनके संकेतों में शक्ति है जो झकझोर डालती है और चित्रण में व्यंग्य है जो काटता है। इनकी कहानियों की वस्तु का आधार सामान्य जीवन तथा ठोस यथार्थ है। इस यथार्थ का चित्रण यशपाल की तरह नंगा भी नहीं है जिससे प्रचार की गंध निकलती हो। इनकी कहानियों में बड़े बोल की अपेक्षा छोटे-छोटे बोल हैं जो बड़ा असर करते हैं। 'दोपहर का भोजन', 'जिन्दगी और जोंक' बस' पस और [illegible]फला, डिप्टी कलक्टरी, 'गम का जंजीर, नौकर, आदि कहानियों में जो जिन्दगी और जोंक नामक कहानी-संग्रह में संकलित हैं इनका कहानी-कला का उद्देश्य मानवी रूप में उभरा है। इस समष्टिमूलक जीवन-दृष्टि से प्रेरित ध्यान

का न तलवार' कहानी भी है जिसमें प्रगतिवादी चेतना को स्थूल अभिव्यक्ति मिली है और सम्भव है इसलिए इस कहानी-संग्रह में उसे स्थान नहीं दिया गया।

'इनके समष्टिमूलक चिन्तन में धीरे धीरे इतना निखार आता गया है कि वह अब अस्मि-चिन्तन की ओर उन्मुख होने लगा है। यह समष्टि चिन्तन से साहचर्य की स्थिति का परिणाम भी हो सकता है अथवा सामूहिक चेतना की नाना अनुभूति का प्रतिफल भी। परन्तु अभी इस सम्बन्ध में कोई निश्चित मत प्रकट नहीं किया जा सकता। इस व्यक्तिमूलक चेतना का आभास 'दो दो के लाट,' 'लाल लड़की और आस्था' आदि नवीनतम कृतियों में होने लगा है। 'दोपहर का भोजन' में एक विपन्न जीवन का करुण चित्र है। सिद्धेश्वरी माँ अपने तीन पुत्रों और पति को दोपहर का भोजन कराते समय उस विपन्नता विवशता की ओर संकेत कर जाती है जो सामाजिक विषमता का परिणाम है। यह संकेत कहानी पर आरोपित होने का आभास नहीं देता, परन्तु कहानी के भीतर से सहज रूप में उभरता है। 'पति का पालथी मार कर और धीरे धीरे भोजन करना बूढ़ी गाय के जुगाली करने के समान है,'— इस तरह के चित्र द्वारा तथा व्यंग्य वाणी के माध्यम से अभाव की स्थिति को गहराया गया है। 'जिन्दगी और जोंक' में एक भिखमंगे के माध्यम से जो भीख नहीं माँगना चाहता कहानीकार ने समाज में घोर विपन्नता की असह्य स्थिति को चित्रित किया है। गोपाल रज्जू और रजुआ नामक इसके जीवन विकास के तीन चरण हैं जो प्रतीक रूप में प्रस्फुटित हैं। इसके जीवन सार को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—'वह मरना नहीं चाहता था इसलिए जोंक की तरह जिन्दगी में चिमटा रहा। लेकिन लगता है जिन्दगी स्वयं जोंक सरीखी उससे चिमटी थी और धीरे-धीरे उसके रक्त की अन्तिम बूँद पी गयी।'[2] इस प्रकार व्यक्तिगत दृष्टि से वह मर चुका है, परन्तु समष्टिगत दृष्टि से वह समाज में आज भी जीवित है। कहानी के अन्त में बिना उत्तर दिये इस प्रश्न को उठाया है—'जोंक वह था या जिन्दगी? वह जिन्दगी का खून चूस रहा था या जिन्दगी उसका?' इस प्रकार जिन्दगी और जोंक के प्रतीकों द्वारा उस व्यापक परिवेश को इंगित किया गया है जो इस करुण स्थिति के मूल में है। यही ध्वनि 'डिप्टी कलक्टरी,' 'दस पैसे, और मूँगफली,' 'नौकर' आदि कहानियों से निकलती है। पहली कहानी में एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की विवशता तथा महत्वाकांक्षा का सजीव एवं व्यंग्यात्मक चित्रण है। इस परिवार के सदस्य अपनी उन्नति के सुनहरे सपने देखते हैं जो चूर-चूर हो जाते हैं। अभाव से मुक्ति पाने की महत्वाकांक्षा किस

---

१ स्थान का न तलवारें (कहानी जनवरी १९५७)

२ जिन्दगी और जोंक पृ० १४१

प्रकार त्याग की प्रेरणा देती है और वह त्याग किस प्रकार विफलता मे परिणत हो जाता है—इसके चित्रण म सामाजिक विपमता गहरे रग म उभरती ह । यही रग 'कफ़, पैस और मू गफली' तथा 'नौकर' म उघडता है । इस गहरे रग का उघाडने क लिए अमरकान्त ने व्यग का आश्रय लिया है, परन्तु यह इनकी बाद की कहानिया म फीका ही नही पडता, अन्त भी जाता है । 'लाट' [1] का प्रेरणा देने वाली चतना का स्वरूप व्यक्तिमूलक है । इसमे एक युवक दारोगा अपने अतिथि की लडकी पर मुग्ध हा जाता है । और वह लडकी अपने सहपाठी क प्रेम-पाश मे पहले से ही बँध चुकी है जिसका युवक दारागा को ज्ञान नही है । कहानी का सकेत दारोगा के चरित्र के सस्कार एव परिष्कार म लक्षित होता है । नारी को खिलौना मात्र समझने वाल इस व्यक्ति को नयी दृष्टि प्रदान कर लखक ने उसकी नारी सम्बन्धी मा यता का रूपातरित कर दिया है । इस कहानी म अमरकान्त की सामाजिक चतना वैयक्तिक चतना में परिणत होन का आभास देती है । इसी चेतना की अभिव्यक्ति 'देश देश के लाग' [2] म दृष्टि गत हाती है । इसम जीवन धारा से कट हुए एक स्नाव का व्यगात्मक रखा चित्र है जा उदासीनता रिक्तता एव शू यता की गहरी अनुभूति को पा कर एक उधेड बुन म यस्त हा जाता है । कहानी से व्यग उभरत उभरते रह जाता है । यह कहानी सामाजिक चतना से इतनी प्रेरित नही है जितनी वैयक्तिक कुण्ठाआ क चित्रण के उद्देश्य स अनुप्राणित है । इसका सवत इन कुण्ठाआ क चित्रण म उलझ जाता है । इसी भाँति 'लडकी और आर्ट' [3] म 'मयूर छट्टे हैं' की स्थिति वा विश्वविद्यालय-परिवेश म चित्रण वैयक्तिक स्तर पर किया गया है । इन कहानिया म उतनी शक्ति नहा है जितना लखक की उन रचनाआ म जिनके मूल म सामाजिक चतना और सामाजिक विषमता की अभिव्यक्ति है । अमरकान्त की पकड वैयक्तिक विडम्बनाआ पर इतनी दृढ़ नहा जितनी सामाजिक विषमताओ पर है । इसलिए इनकी कहानी कला का वास्तविक स्वरूप 'दापहर का भोजन' 'डिप्टी कलक्टरी' 'जिन्दगी और जाक' आदि कहानियो म उपलब्ध है और वैयक्तिक चतना स अनुप्राणित इनकी कहानियो को एक नय प्रयोग क रूप म ही आँकना अभी सगत जान पडता है । इनकी कहानी कला के भावी विकास अथवा दिशा क सम्बन्ध म कोई निश्चित मत देना अभी अनुचित हागा ।

मोहन राकेश की कहानी कला का वास्तविक स्वरूप भी अधिकाशत सामाजिक चतना से अनुप्राणित है और अ शत व्यक्तिमूलक चतना स। इनकी कहानी की

१ नई कहानियाँ (नवम्बर १९६०)
२ नई कहानियाँ (जनवरी, १९६२)
३ नई कहानियाँ (नवम्बर १९६२)

मुख्य धारा म 'नये सदर्भों की खोज सामाजिक चेतना से सचालित है और इसमे मावेतिकता का विकास प्राय समष्टि-सत्य एव व्यापक परिवेश के धरातल पर हुआ है। इनकी दृष्टि म वही कहानी नयी कहलाने का अधिकार रखती है जिसको दिशा व्यक्ति की आन्तरिक कुण्ठाओ की दिशा न हो कर सामाजिक दिशा हो और सामाजिक दिशा आगे की सभावनाओ को व्यक्त करती हो। वह जीवन के वस्तु-क्षेत्र को, मनुष्य की मूल प्रकृति को शाश्वत एव स्थायी मान कर जीवन के बदलते हुए सदर्भों म मनुष्य को चित्रित करने म अपने कहानी कला के उद्देश्य को आँकते हैं। आज के जीवन की घुटन और घुमडन से जूझ कर उन शक्तियो को और सचेत करना वह कहानी कला का लक्ष्य समझते हैं। इसलिए वह इस कला की शमा को तब तक हर रग म जलाये रखने के पक्ष म जान पडते हैं जब तक कि सहर नहीं होती। इसी म इनके सकेत की स्वस्थता तथा परिवेश की व्यापकता दिखाई देती है। वह व्यक्ति सत्य को स्थितिशील और समष्टि-सत्य को गतिशील मान कर व्यक्ति-सत्य को व्यक्त करने वाले कहानीकारो को अपनी जगह पर ठहरा हुआ समझते हैं, जबकि जीवन अपनी जगह पर कभी ठहर नहीं सकता। राकेश अपने यायावर स्वभाव के कारण ठहरने वाले कहानीकारो म तो नहीं हैं परन्तु 'मिस पाल' 'अपरिचित' तथा 'सुहागिने' आदि कहानियो म चलते चलते थक कर किंचित् विश्राम ले कर चलते हैं। इनके तीन कहानी-सग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं—नये बादल (१९५७) जानवर और जानवर (१९५८), एक और जिन्दगी (१९६१)। इनमे अधिकाश कहानियो की दिशा सामाजिक है, परन्तु कुछ कहानियो के मूल म व्यक्ति चिन्तन का स्वर भी ध्वनित है। इनकी कहानी की वस्तु म अनेकरूपता है परन्तु इनके शिल्प म एकरूपता है। राकेश ने प्रेम त्रिकोण पर आधारित कहानी को तो अभी तक तिलांजलि दे रखी है। 'मलबे का मालिक,' 'मन्दी,' 'फटा हुआ जूता,' 'परमात्मा का कुत्ता,' 'हक हलाल,' 'बस स्टैंड की एक रात,' 'मवाली,' 'उलझते धागे' आदि म सामाजिक चेतना और 'अपरिचित,' 'सामाए,' 'आद्रा,' 'सुहागिनें' 'मिस पाल,' 'एक और जिन्दगी' आदि म व्यक्तिमूलक चेतना कहानी को अनुप्राणित करती है। इस प्रकार वह अपनी जीवन दृष्टि को पत्थर बनाने अथवा सामाजिक कठघरे म आबद्ध करने म सफल नहीं हो पाये हैं। अथवा वह अभी किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच सके हैं किसी निश्चित लक्ष्य के ग्राहक नहीं बन सके हैं। एक यायावर को एक पथ पर निरन्तर चलने म इतना आराम नहीं मिलता जितना उसे पथ के बदलने म मिलता है। इसलिए इनकी कहानी कला म दोनों दिशाओ की उपलब्धि होती है। इनमे वस्तु की विविधता तथा शिल्प की सहजता एव स्वाभाविकता है जो कभी-कभी इतनी सहज एव विरलता से हो जाती है कि वह यात्रा-कथा का रूप भी धारण कर लेती है। इनकी अधिकांश

कहानियों में वातावरण की सृष्टि कभी कभी "मैनरिज्म" बन जाती है। इस उद्देश्य की पूर्ति प्रायः जीव-जन्तुओं के माध्यम से की गयी है। 'मलबे का मालिक' में कौआ और कुत्ता, 'अपरिचित' में उड़ता हुआ कीड़ा जो झुलस कर बत्ती से चिपक जाता है, 'मादा' में मादा सुअर और उसके बच्चे, 'जानवर और जानवर' में कुत्ता बिल्ली आदि साधक एवं सूक्ष्म संकेत देने में सहायक होते हैं। इन संकेतों के अतिरिक्त अन्य संकेतों को भी कहानी की 'बनतर' में गूँथा गया है जो कभी सामाजिक विषमता और कभी वैयक्तिक कुण्ठा को इंगित करते हैं। 'मलबे का मालिक' में गिरे हुए मकान का मलबा भारत-पाकिस्तान के विभाजन के परिणाम तथा उजड़े हुए जीवन का प्रतीक है। कहानी का संकेत इसके अन्त में उभरता है जब भटका हुआ एक कौआ मलबे में पड़े लकड़ी के चौखट पर बैठ कर उसके रेशों को इधर उधर छितराने लगता है और एक कुत्ता उसे वहाँ से उड़ाने के लिए भौंकने लगता है। अपनी अपनी दृष्टि से दोनों का मलबे पर अधिकार है। इस प्रकार यह संकेत उस सामाजिक परिवेश को इंगित करता है जो देश के विभाजन का परिणाम है। 'परमात्मा का कुत्ता' में पाकिस्तान से विस्थापित एक किसान भौंक-भौंक कर अफसरों को अपने प्रति न्याय का व्यवहार करने के लिए बाधित कर देता है। जब तक वह चुप साधे रहा और शिष्टाचार से काम लेता रहा, तब तक उसका कुछ न बन सका। अब 'बेहयाई का हजार बरकत' मान कर वह अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है। इस प्रकार भगवान के कुत्ते ने गतिहीन स्थिति को भौंक-भौंक कर गतिशील बना दिया। कहानी के अन्त में दफ्तर के जड़ अफसरा मशीनी जीवन का संकेत इस स्थिति को गहराता है और वातावरण की सृष्टि करता है जो राकेश की कहानी कला की विशिष्ट रूढ़ि बन चुकी है। 'मवाली' में उस लड़के के जीवन का एक अंश चित्रित है जो चौराहे के मैदान में नंगे पाँव नंगे सिर घुटनों तक लम्बी मैली कमीज पहने तफरीह वालों के सामान की मवालीगिरी करता है और जिस पर चोरी करने का झूठा आरोप लगाया जाता है। वह कहानी के नपुंसक आक्रोश एवं क्रोध को सागर की लहरों को पत्थर मार कर ही व्यक्त कर सकता है। इस प्रकार एक शोषित के सामाजिक अन्याय के प्रति क्रोध की वैयक्तिक स्तर पर अभिव्यक्ति एक शिखण्डी के कोप का रूप ही धारण कर सकती है जिसे लहर पत्थर के प्रतीक द्वारा उभारा गया है। 'जानवर और जानवर' में मिशन कम्पाउण्ड की पृष्ठभूमि में एक पादरी के चरित्र द्वारा इस संकेत को उभारा गया है कि पादरी की विशिष्ट कुतिया और पास के साधारण कुत्ते में भारी अन्तर है, जानवर और जानवर' में यह अन्तर स्वीकृत रहा है, बड़ा जानवर छोटे जानवर को मार सकता है, बड़ी मछली छोटी मछली को खा सकती है, इन जानवरों के माध्यम से जीवन की विषमता को गहराया गया है। इसकी गतिविधि गिरजे की घण्टियों के समान बिना ढंग बजती चली आ रही है। 'हक

हलाल' म नारी के प्रति सामाजिक अन्याय का भार व्यक्त किया गया है। एक अखबार बेचने वाला अपने धन को तब हक हलाल का पैसा मानता है जब उसकी क्षीन पत्नी घर से भाग कर घर को लौट आती है। इस सामाजिक विषमता की स्थिति का 'दस स्टैंड की एक रात' म एक परिस्थिति के चित्रण द्वारा गहराया गया है। इसका माध्यम सर्दी की रात म धधकते कोयलों की अंगीठी है जिस पर दम व मनजर का अधिकार है जिससे कुली आदि वंचित किये जाते हैं। जीवन की उष्णता सम्पन्न के लिए और शीतता विपन्न के लिए समाज म सुरक्षित होती है। इस प्रकार मोहन राकेश ने सकेतों एवं प्रतीकों का आश्रय लेकर सामाजिक विषमता का चित्रण किया है इस चेतना को गहराया है। इनके तीसरे संग्रह की कहानियों म सबसे अधिक सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण हैं। यह इनकी कहानी कला के शिल्पगत विकास का द्योतक है। इनकी कुछ कहानियों म नैमित्तिक कुण्ठाओं जटिलताओं आदि को भी उभारा गया है। इस सम्बन्ध म कहानीकार का कथन है कि अस्वस्थ वस्तु के माध्यम से भी स्वस्थ सकेत दिया जा सकता है। सकेत की स्वस्थता तथा अस्वस्थता कहानीकार की जीवन दृष्टि का परिणाम है। इन कहानियों म राकेश की दृष्टि व्यक्ति-चिन्तन से प्रेरित है। 'अपरिचित' म जीवन की विडम्बना इसम लक्षित होती है कि जो नारी परिचित है वह वस्तुत अपरिचित है और जो अपरिचित है वह वास्तव म परिचित बन कर आती है, जो निकट है वह वस्तुत दूर है और जो दूर है वही निकट होने का आभास देती है। इस स्थिति को लेखक ने कुशलता एवं सूक्ष्मता से चित्रित किया है। एक महिला का उदास चेहरा, गहरी आँखें, सरल स्वभाव, वत्सल प्रवृत्ति, बाल-मुस्कान, एकान्तप्रियता मितभाषिता, संवेदनशीलता, रेलगाड़ी के एक डिब्बे म एक यात्री के मन पर गहरी छाप अंकित कर देते हैं। इस यात्री की पत्नी का स्वभाव इस अपरिचित महिला के व्यक्तित्व के नितान्त विपरीत है। इस महिला का पति जिसे उसने विदा भेजा है अपनी पत्नी से उलट स्वभाव का व्यक्ति है। इस चित्र को उभारने के लिए कलाकार ने सूक्ष्म तूलिका के सूक्ष्म स्पर्शों से काम लिया है। गाड़ी जीवन यात्रा का प्रतीक बन कर आती है, डिब्बे की बत्ती आस-पास उड़ता हुआ कीड़ा जो झुलस कर उसके साथ चिपक जाता है इन दम्पतियों के जीवन की पीर व्यक्त करता है। कथ्य एवं कथन की दृष्टि से यह कहानी राकेश की उन कहानियों म से है जिनके मूल म चेतना सामाजिक की अपेक्षा वैयक्तिक स्तर पर है। इस श्रेणी म 'सामाएँ' को भी रखा जा सकता है जिसम एक कुण्ठित तरुणी की मनोदशा का सजीव चित्रण है जिसे मिडिल पास किये चार साल बीत चुके हैं और जिसका अभी तक विवाह नहीं हो सका है। इसका कारण यह है कि उस नारी म अपना मुख रख कर सोचना पड़ता है और यह उसकी कुण्ठा को गहराता है। एक दिन वह घर

के दमघाट वातावरण से बाहर निकलती है। वह अपना शृंगार कर, गले में सोने की जंजीर पहन कर अपनी सहेली के विवाह में सम्मिलित होती है और लौटते समय एक मन्दिर में स्तोत्र सुनने के लिए जब वहाँ खड़ी हो जाती है तो उसकी आँखें एक नवयुवक की आँखों से टकरा जाती हैं। सहसा भीड़ में किसी का हाथ जब उसके कन्धे का स्पर्श करता है तो उसका शरीर पुलकित हो उठता है। इस सुखद स्पर्श की मधुर स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए जब वहाँ से चल देती है, तब उसे पता लगता है—'उस स्पर्श का आभास तो वहाँ था, पर सोने की जंजीर गले में नहीं थी।' इस प्रकार एक कुण्ठित युवती के क्षणिक उल्लास की अनुभूति का वैयक्तिक स्तर पर चित्रित कर उसे मोहभंग की अनुभूति में परिणत किया गया है। इसी कोटि में 'आर्द्रा' कहानी भी रखी जा सकती है, जिसमें माँ की ममता को दो पुत्रों के बीच डोलता दिखाया गया है। इसे गहराने के लिए मोटा सूअर और उसके बच्चों का संकेत के रूप में प्रयोग किया गया है। इसी धरातल पर 'आखिरी सामान' कहानी की रचना हुई है। इसमें एक ऐसे सम्भ्रान्त परिवार के अवसान का चित्र एक एलबम के द्वारा अंकित है जिसका सारा सामान नीलाम हो चुका है। इस एलबम का अंतिम पन्ना अभी खाली है और इसका आखिरी सामान मिसेज भंडारी हैं जिसे नीलाम किया जा सकता या किया जा चुका है। उसका पति उन्नति के लिए अपनी पत्नी को घर के सामान के रूप में आँकता है। मिस्टर भंडारी का खाने की टेबल पर मक्खी से परेशान होना और मिसेज भंडारी का बालों में उलझे हुए तिनके को मसल कर फेंक देना सूक्ष्म संकेत है जो एक विषम परिस्थिति को उभारते हैं। एक अतिथि का उनके घर में आना मिस्टर भंडारी के लिए मक्खी निगलने के समान है और मिसेज भंडारी के जीवन में उस तिनके की भाँति है जो उसके जीवन में अटका रहता है और जिसे वह मसल कर फेंकने में असमर्थ है। इस वैयक्तिक स्तर पर 'सुहागिनें' में दो विवाहित नारियों के चरित्र का तुलना द्वारा एक की कुण्ठा को व्यक्त किया गया है। हेड मिस्ट्रेस मनोरमा के जीवन की रिक्तता इसमें अंकित है। उनका सन्तानहीन होना उनके जीवन में काँटे की तरह चुभता रहता है। एक सुहागिन सम्पन्न है और दूसरी विपन्न। सम्पन्न सुहागिन के जीवन की विडम्बना को कहानी के अन्त में बान की फाँस के चुभने द्वारा व्यक्त किया गया है। इस कहानी-संग्रह में 'एक और जिन्दगी' कहानी शिल्प के किनारों को तोड़ कर जिन्दगी की नदी में बहने लगती है। इसका सत्य उस व्यक्ति के जीवन में लक्षित होता है जिसे जीवन दो बार धोखा दे चुका है। अपनी पहली पत्नी से तलाक ले कर दूसरी को वह मानसिक रोग से ग्रस्त पाता है। जीने की अदम्य आकांक्षा उसे रंग में जलने के लिए प्रेरणा देती है। कहानी का वास्तविक सत्य इसके अन्त में उभरता है जब एक तूफानी रात में इस व्यक्ति को अपना जीवन साथी एक कुत्ते में मिलता है जो

अनजान ही इसके पीछे-पीछे चलता रहता है और इन्सान से अधिक वफादारी का सबूत देता है। वह किसी के कथन को सार्थक बनाता है—मैंने जैसे-जैसे इन्सान को पहचाना है वैसे-वैसे कुत्तों से मेरा स्नेह बहुत गहरा होता गया है। इस कहानी में मोहनराम की स्थिति का वैयक्तिक स्तर पर ही चित्रित किया गया है। इस प्रकार मोहन राकेश की कहानियों की दो स्पष्ट दिशाएँ हैं—एक सामाजिक और दूसरी वैयक्तिक चेतना से प्रेरित है, एक समष्टिमूलक तथा दूसरी व्यक्तिमूलक चिन्तन से अनुप्राणित है। सामाजिक दिशा की द्योतक 'परमात्मा का कुत्ता' है जिसमें सामाजिक चेतना का गहरा रंग है और वैयक्तिक चेतना की सूचक 'मिस पाल' है जिसमें नारी के रिक्त जीवन का चित्रण है, सूने हृदय को सूने उपकरणों से भरने का प्रयास है। इसका सशक्त संकेत अन्त में उभरता है जब वह बिन बुलाये अपने अतिथि को बस के अड्डे तक पहुँचाने आती है और उसके दोनों हाथों में बिस्कुट के दो खाली डिब्बे उसके सूने जीवन के प्रतीक बन कर दिखने लगते हैं। इसके अतिरिक्त यह प्रतीक सिकन्दर के उन हाथों का स्मरण कराने में भी सफल होता है जिसमें इन डिब्बों को पकड़ने की शक्ति नहीं थी। मिसपाल के कुण्ठित जीवन का चित्रण वैयक्तिक स्तर पर हुआ है जो मोहन राकेश की कहानी कला का दूसरा मुख है।

आज की हिन्दी कहानी में 'सामाजिक दिशा तथा चेतना' वाले कलाकारों में भीष्म साहनी, शिवप्रसाद सिंह, रामकुमार, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, रेणु, ओमप्रकाश श्रीवास्तव, दयानन्द अनन्त आदि की गणना की जाती है परन्तु इनकी कहानियों के मूल में चेतना के सूक्ष्म विश्लेषण से इस मत की सदैव पुष्टि नहीं होती। इसके अतिरिक्त अन्य कहानीकारों के नाम भी लिये जाते हैं जिनकी कला का वस्तु-पक्ष तथा शिल्प-पक्ष सामाजिक चेतना से अनुप्राणित माना जाता है, परन्तु इनके सम्बन्ध में किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचने के लिए एक विस्तृत विवेचना की अपेक्षा है। इनमें मधुकर गंगाधर, अमृतराय, विजय चौहान, शैलेश मटियानी, हरिशंकर परसाई, हृदयनाथ नागार्जुन के नाम गिनवाये जाते हैं। इनकी कहानी-कला के वास्तविक स्वरूप के स्पष्टीकरण तथा उद्देश्य के निरूपण के लिए भी एक विस्तृत विवेचना की आवश्यकता है जो एक निबन्ध की सीमित परिधि में संभव नहीं। अमृतराय तथा नागार्जुन आदि कहानीकारों की कृतियों में सामाजिक पक्ष निश्चित है, परन्तु अन्य कहानीकारों की रचनाओं में चेतना का स्वरूप इतने निश्चित रूप में नहीं उभरता जितना माना जाता है। भीष्म साहनी का लक्ष्य कहानी में सादृश्यता लाना और उसके माध्यम से जीवन के बहिरंगी एवं बहुरंगी चित्र प्रस्तुत करना है। इनकी कहानियाँ न प्रेमचन्द-परम्परा की ध्वनि है वह सशक्त का इतना सहारा नहीं लेती जितना विवरण का, परन्तु चाचा बेटा नामक कहानी इस दशा का अपवाद है। यह अभिजात्य के अनन्य उपासक होने के

कारण लक्षणा एव व्यजना की आराधना से दूर रहते हैं, इनकी 'चीफ की दावत' में भी मौलिक उद्भावना का अभाव है और इसमें प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी' की ध्वनि को सुना जा सकता है। इनकी जीवन दृष्टि का परिचय इनके सटीक व्यंग में उपलब्ध है जिसके द्वारा यह मध्यवर्गीय जीवन मूल्यों पर प्रहार करते हैं। इनके व्यंग की रेखाएं कहीं-कहीं इतनी स्थूल हो जाती हैं कि चित्र जड होने लगता है। 'पहला पाठ' में एक आर्यसमाजी के सिद्धांत एव व्यवहार में विरोध की स्थिति को उभारा गया है वह जातिभेद को मिटाने के लिए जातिभेद की पुष्टि करता है। 'समाधि भाई रामसिंह' में धार्मिक अंधविश्वासों पर कड़ा व्यंग है। इनकी चेतना के मूल में समष्टि मंगल की भावना है जो इन्हें सामंती तथा मध्यवर्गीय संस्कृति की व्यंगात्मक आलोचना द्वारा समाज को एक नये सांचे में ढालने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए भीष्म साहनी में समूह के प्रति जागरूकता, दृष्टि में प्रगतिशीलता, व्यक्ति के प्रति उदासीनता और वस्तु के प्रति आग्रह है। इनकी कहानी कला का मूल मन्त्र सोद्देश्यता में मुखरित होता है परन्तु दयानन्द अनन्त की 'गुड़ियां गम न गस' नामक कहानी में इस सोद्देश्यता को कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है।[1] इसमें दो वर्गों के खेल के माध्यम से समाजवादी चेतना का सशक्त निरूपण भावात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली में हुआ है। रामू एक गरीब बाप का और वसन्त एक अमीर बाप का बेटा है। वसन्त का यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह गुल्ली-डंडे के खेल में रामू को दबाकर रखे और उसे मारपीट भी सके। इनके पिताओं में शोषक एवं शोषित का सम्बन्ध था और है। इस प्रकार व्यक्तिगत सम्बन्ध के स्तर पर कहानीकार ने उस व्यापक परिवार की ओर संकेत किया है जिसमें शोषित की फटेहाली, विवशता, सिसकियाँ, नपुंसक बड़े बाहर हैं घर में रोग है तथा जेब में धन का अभाव है। इस परिवार के क्रन्दन को शोषित समाज की चीत्कार में परिणत कर लेखक ने सामाजिक विषमता का चित्रण समाजवादी चेतना से अनुप्राणित होकर किया है।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह की सामाजिक चेतना उपेक्षित जीवन के चित्रण की प्रेरणा रही है जिसके फलस्वरूप इन्होंने आंचलिक एवं ग्रामकथा के द्वारा जातीय जीवन के प्रश्न को उठाया है और इसका उत्तर अपनी कहानी सम्बन्धी आलोचना तथा कहानियों में दिया है। वह मनुष्य की महानता में अपने अडिग विश्वास की घोषणा करते हुए लिखते हैं— मनुष्य और उसकी जिन्दगी के प्रति मुझे मोह है जो अपने अस्तित्व को उभारने के लिए विविध क्षेत्रों में विरोधी शक्तियों से जूझ रहा है, अंधविश्वास, उपेक्षा, विवशता प्रवारणा अतृप्ति शोषण, राजनीतिक अत्याचार और युद्ध स्वार्थान्धता के नीचे पिसता हुआ भी जो अपने सामाजिक और वैयक्तिक हक के

---

१ कहानी दिसम्बर, १९५२

लिए लड़ता है हँसता है, रोता है, बार बार गिर कर भी जो अपने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ता वह मनुष्य तमाम शारीरिक कमजोरियों और मानसिक दुर्बलताओं के बावजूद महान है।' [1] इस मनुष्य को कहानीकार ने गाँव में ही खोजा और पाया है नगर में उसके प्रभाव को ही घोषित किया है। इसलिए इन्होंने ग्राम कथा का ढोल बजा कर नगर-कथा की तूती को मौन करना चाहा है और इस पर अमृतराय ने आपत्ति की है—'यथार्थ की गहरी पकड़ की कमी गँवई शब्दों की फुलझड़ी से भी पूरी नहीं होगी और न कितने ही यत्न से साधा हुआ लोकल कलर का चित्रण स्वयं एक साध्य बन सकता है।' [2] इसमें रेणु की आंचलिक कहानी के स्वरूप एवं उद्देश्य की ओर संकेत प्रत्यक्ष और ग्राम कथा के आन्दोलन की ओर परोक्ष है। अमृतराय गाँव तथा नगर दोनों के जीवन को चित्रित करने के लिए सामाजिक उद्देश्य तथा दायित्व को आवश्यक मानते हैं, वस्तु की अपेक्षा दृष्टि में विश्वास रखते हैं। डॉ० शिवप्रसाद सिंह दोनों पर अंकुश लगा देते हैं। इन्हें भाव भूमि तथा दृष्टि दोनों की उपलब्धि ग्राम-जीवन में ही होती है। इनके 'सँपेरा' में उपेक्षित जीवन का चित्रण है जो ग्राम-कथा की विशेषता है। इस उपेक्षित जीवन का चित्रण मार्कण्डेय, हृदयनाथ, शेखर जोशी, रेणु, आदि अनेक कहानीकारों ने विभिन्न दृष्टियों से किया है। इनकी रचनाओं की उपलब्धियों तथा सीमाओं का मूल्यांकन करने के लिए इनके मूल में उस चेतना अथवा जीवन-दृष्टि के स्वरूप से अवगत होना अपेक्षित है जो इनकी कहानियों के वस्तुपक्ष एवं शिल्पपक्ष को रूपायित करती है। इस उपेक्षित जीवन की गहनता को विभिन्न आयाम के साथ चित्रित किया गया है इसे जानने तथा पहचानने के लिए अमृतराय ने सामाजिक दृष्टि पर बल दिया है। इसका यह भी एक कारण हो सकता है कि देहात में अभी मानव का स्वरूप विशिष्ट न हो कर सामान्य है, गाँव में अभी वैयक्तिक चेतना की अपेक्षा सामाजिक चेतना का अधिक महत्व है, परन्तु व्यक्ति-चिंतन से प्रेरित एक कहानीकार इस उपेक्षित जीवन को रोमांटिक रंग में भी रंग सकता है और धानी ने यह किया भी है। इसलिए अन्ततः बात आ कर लेखक की दृष्टि पर टिकती है जो वस्तु एवं शिल्प को आकार देती है अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का संस्करण करती है। शिवप्रसाद सिंह के 'बिन्दा महाराज' में एक उपेक्षित चरित्र के प्रति लेखक की अपार आस्था तथा गहरी सहानुभूति एक हिजड़े का भी मानवीय रूप देने में सफल होती है। इसी प्रकार सँपेरा में उपेक्षित जीवन का चित्रण उपलब्ध है। एक सँपेरे में मानवीयता को उभारने के लिए उसके चित्रण को उन्नत रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही सांप के मन में शक्ति रहती है—इस अन्धविश्वास को भी कहानी में गहराया गया है। 'कर्म

१ कर्मनाशा की हार, भूमिका, पृ ६
२ गीली मिट्टी, निवेदन, पृ ८

नाशा की हार' उस नदी की हार है जो अपने कोप से इहार का प्रातिनिकरता रहे है, परन्तु इसकी बाढ़ को रोकथाम के लिए बांध को ठीक किया जा रहा है, ग्रामीण समाज भी कर्मनाशा से कम कठोर नहीं है जिसके लिए 'नया दृष्टि' अर्जित है। नदी की उत्ताल तरंगों के समान समाज के कठोर नियमों को नियमित करना होगा ताकि इसमें रूढ़ियों के नाश तथा जीवन के विकास की सभावना हो सके। इस प्रकार लेखक देहाती जीवन में नयी चेतना के संचार के प्रति सजग जान पड़ते हैं जिसमें इनकी रोमांटिक दृष्टि का आभास मिलता है। इस रोमांटिक दृष्टि में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और समष्टिमंगल में सामंजस्य एवं संश्लेषण न हो कर सम्मिश्रण है। इस कारण कथाकार ग्राम जीवन के मर्म को स्पष्ट करने का प्रयास उसके बाह्य रूप में उलझ जाते हैं और उसके बाह्य रूप को अलंकृत करने के लिए उपमाओं की फुलझड़ी जलाने लगते हैं। इन उपमाओं की निधि एवं राशि में भी लेखक के रोमांटिक बोध का परिचय मिलता है। शिवप्रसाद सिंह ने अपनी तथा मार्कण्डेय की ग्राम-कथा में त्रुटियों को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया है, परन्तु इन त्रुटियों के मूल में अपनी रोमांटिक दृष्टि का वह उपेक्षा कर गये हैं जो इनका वास्तविक कारण है और जिसे अमृतराय ने 'नॉस्टेल्जिया' की संज्ञा दी है। 'इस घर की याद' में भी रोमांटिक भावना रहती है। शिवप्रसाद सिंह ने कहानी सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण एक कहानी के माध्यम से भी किया है जिसमें प्रेमचन्द की बूढ़ी काकी प्रसाद की 'मधुआ,' अज्ञेय की रोज,' जैनेन्द्र की 'जाह्नवी' और यशपाल की तुमने क्यों कहा कि मैं सुन्दर हूँ ?' को कहानियों से नारी पात्रों को लेकर इनके प्रति अपने दृष्टिकोण का निरूपण किया है। इसमें प्रसाद का मधुआ' शोषित मानव का प्रतीक बन कर आता है जिसके प्रति इन नारियों की प्रतिक्रियाओं में इनके लेखकों का दृष्टिकोण उभरता है। इस 'कहानियों की कहानी' में कथाकार अपनी दृष्टि को 'प्रगतिशील' सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। अज्ञेय की रोज, जैनेन्द्र की जाह्नवी, यशपाल की माया आदि के व्यंग्य का व्यंग्यात्मक निरीक्षण एवं परीक्षण किया गया है जिससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि कहानीकार इनसे सहमत नहीं है। बूढ़ी काकी परम्परा की प्रतीक है 'जाह्नवी' काल्पनिक एवं स्वच्छंद रोमांस का, 'रोज' कुण्ठा की, 'माया' उपयोगितावाद तथा नग्नवाद की और 'मधुआ' निरीह एवं शोषित मानव की, इस पंक्ति में लेखक यदि 'कर्मनाशा की हार' की विधवा फूलमतिया का बिठला देते और उसकी कोख से अवैध पुत्र को देव बना देते तो चित्र अधूरा न रह जाता और 'जीवन की गहनता' अपने पूरे आयाम के साथ चित्रित हो जाती, ग्राम कथा अपने जातीय एवं भारतीय रूप में उभर कर आती और राजेन्द्र यादव के कबाड़खाने का सारा शिल्पगत विचित्र माल बिकने से रह जाता और उनकी दुकान बंद हो जाती। इस प्रकार ग्राम-

कथा की नयी दुकान को खोलने का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता। इस प्रकार ग्राम कथा को आधार बना कर नवलता का नवलता के लिए प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति आज की कहानी के मूल्यांकन में बाधक ही बन सकती है। वस्तुत शिवप्रसाद सिंह को कहानी कला की उपलब्धि उपेक्षित जीवन को चित्रित करने का है जिसका सूत्रपात प्रेमचन्द ने किया था। वह जैनेन्द्र अज्ञेय की व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि के घोर विरोधी हैं, यशपाल के प्रचारात्मक दृष्टिकोण के पक्ष में भी नहीं जान पड़ते और अश्क के रोमांटिक खण्ड चित्रों में भी सन्तुष्ट नहीं है। इसलिए अपने लिए वह एक नये पथ को प्रशस्त करना चाहते हैं जो परम्परा से सम्बद्ध हो, जातीय एवं भारतीय हो, जिस पर चल कर वह अपने गाँव में पहुँच जायँ, जहाँ सुधारवादी दृष्टि की अपेक्षा नव रोमांटिक भाव से वह इस गाँव का चित्रण करें और उन दुखी पात्रों को अपनी सहानुभूति में नहला दें जिनको गाँव में वह पहले उपेक्षा करते रहे हैं। इस यज्ञ में अनेक कहानीकारों ने अपनी अपनी आहुतियाँ दी हैं जिनमें मार्कण्डेय, अमरकान्त, हृदयनाथ, शेखर जोशी, रेणु और कमलेश्वर की भी गणना हो सकती है जिनके लिए ग्राम को जगह कस्बे ने ले ली है। इन आहुतियों को देते समय जिन मन्त्रों का उच्चारण हुआ है वे केवल ऋग्वेद के न हो कर अन्य वेदों के भी हैं, परन्तु इनकी ध्वनि समवेत गायन की है। रेणु की 'ठुमरी' में मृदंग का स्वर है जो आंचलिकता से प्रेरित है, शेखर के 'कोसी का घटवार' में पनचक्की का पहाड़ी संगीत है जो वातावरण की सृष्टि करता है। कमलेश्वर के 'कस्बे का आदमी' 'देवा की माँ' तथा 'राजा निरबंसिया' उपेक्षित पात्र हैं जिनके माध्यम से कस्बे के जीवन को चित्रित किया गया है। इस प्रकार ग्राम कथा तथा कस्बे की कहानी में 'लघु मानव' को सहानुभूति एवं अभिव्यक्ति मिली है। मार्कण्डेय का हंसा भी इसी श्रेणी का लघु मानव है। 'गुलरा के बाबा,' 'लँगड़े बाबा,' 'ललमा,' 'बायक तिवारी,' 'छोटे महाराज,' 'गुसाईं,' 'मिरदंगिया,' 'फूलमतिया,' 'कफ़न,' 'गन्ने' आदि पात्रों में जातिगत विशेषताएँ हैं मानवीय कोमलता एवं कठोरता है, सहजता एवं सरलता है, बौद्धिक उन्माद का अभाव है। इन चरित्रों में आशा का स्वर है, जीने की कामना है, संघर्ष के प्रति आग्रह है जिनका अभाव नगर कथा में इन कहानीकारों को खटकता है। इसलिए कमलेश्वर 'राजा निरबंसिया' की भूमिका में मानवीय मूल्यों के संरक्षण, जीवन शक्ति के सम्प्रेषण और सामाजिक विधान के नये साँचे में ढालने की प्रेरणा देते हैं। इनके लिए आज की कहानी का मापदण्ड मनोरंजन न होकर मनुष्य की गौरव गरिमाओं को उभारना तथा स्पर्श करने की क्षमता है।[1] इस आधार पर वह आज की कहानी को 'नयी' कहानी का मान प्रदान कर देते हैं। इसमें एक ओर कलात्मक अभिव्यक्ति, शिल्प गौरव और नाना

१ राजा निरबंसिया भूमिका

का व्यजना शक्ति म विकास हुआ है और दूसरी ओर नयी भाव भूमियो का सृजन भी हुआ है।[1] 'नयी कहानी सामान्य की समर्थक है और साथ ही विशिष्ट की पोषक। शैली शिल्प सामान्य को विशिष्ट बनाता है और वस्तु कथ्य विशिष्टता को सामान्यता म परिणत करता है। इन दोनो के मूल म कहानीकार की सामाजिक चेतना वस्तु शिल्प दोनो को रूपायित करती है।

इस सामाजिक चेतना अथवा 'व्यापक परिवेश' एव समष्टि चिन्तन की जीवन-दृष्टि पर अमृतराय ने भी विशेष बल दिया है। कथ्य गाँव का हो या नगर का या किसी अन्य परिवेश का, उसे जिस प्रकार की चेतना के साँचे म कहानी का सश्लिष्ट रूप दिया गया है वह उस कहानी को सार्थक एव निरर्थक बनाने की क्षमता से युक्त है। अमृत राय की कहानी समय' की थीम प्रेम त्रिकोण पर आधारित है जिसका सम्बन्ध नगर के परिवेश से है। इसम एक व्यक्ति अपने बचपन की चहेती को उसके विवाहित जीवन के परिवेश म जा कर जब देखता है तो वह उसे इतना बदला हुआ तथा समय से निगला हुआ पाता है कि वह हताश हो कर लौट आता है। इन दोनो के मौन म इतनी अकुलाहट एव छटपटाहट है कि वह उस सामाजिक परिवेश की ओर स्पष्ट सकेत किये बिना नही रहता जिस ने इनकी व्यथा को गहराया है। इस प्रकार मनुष्य का दु ख दद ग्रामीण जीवन म सीमित हो कर नही रह जाता और न ही वह नागरिक जीवन म सकुचित हो कर बन्द हो जाता है। इसकी व्याप्ति चारो ओर है, आस-पास तथा दूर के जीवन म भी है। अमृतराय सामाजिक जीवन-दृष्टि तथा कहानी की सोद्देश्यता को इतना महत्व देते हैं कि कभी कभी इनकी कहानी विवरणात्मक रेखाचित्रो एव सस्मरणो को भी अपनी परिधि में समेटने का दम भरने लगती है। इस सामाजिक चेतना के भी विविध स्तर एव रूप हैं। रमेश बक्षी जैसे कहानीकार जिनकी मूल चेतना व्यक्ति चिन्तन से प्रभावित है 'कुछ माँ कुछ बच्चे' सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है। इसम तीन परिवारो के चाय पीने बैठने आदि के चित्रण से उनकी वर्गगत विशेषताओ को उभारा गया है। उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग की तीन माताओ के साथ उनके तीन बच्चे एक काफी हाउस म एकत्रित हो जाते हैं। बक्षी ने इनकी प्रतिक्रियाओ के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा अपनी युग-दृष्टि का परिचय दिया है इनके तीनो बच्चो म भेद भाव का अभाव है और कप की ओर ग्लास की चाय का स्वाद भी एक समान है, परन्तु इन तीन माताओ म इतना वर्गगत भेद भाव पाया जाता है कि इन बच्चो का आपस म खेलना भी वे सहन नहीं कर सकती। अन्त म फुटपाथ पर बैठी कुनिया के इन बच्चो के साथ खेलने, अपने पिल्ले बुला लेने म व्यग का चरम विकास उपलब्ध है। इस सकेत के द्वारा समाजगत तथा जिसगत विष

१ राजा निरबसिया भूमिका

मता पर व्यग कसा गया है। इस प्रकार कुतिया के रूप म चौथी मा भी उतनी ही मचन एव सचष्ट है जितनी तान माएँ जो अपने बच्चा क' एक दूसरे से अलग रखना चाहती हैं। इस प्रकार की कहानिया तथा कहानीकारा को अनुप्राणित करन वाली चेतना का स्वरूप सामाजिक है, प्रभावित करने वाला चिन्तन समष्टि मूलक है, प्रेरित करने वाली भावना समाज मगल की है।

माज की कहानी की दूसरी दिशा वैयक्तिक चेतना स अनुप्राणित है, इनक मूल म यद्यपि चिन्तन है इनम जीवन का व्यक्ति सत्य क आधार पर आंका गया है और समाज को व्यक्ति-हित की कसौटी पर परखा गया है। इन कारण इस प्रवृत्ति की कहानी-कला पर अनक आक्षेप किये गये हैं विभिन्न आरोप लगाये गये हैं। इस कोटि क कहानीकारा की मूल चेतना क स्वरूप क सम्बन्ध म मतभेद की स्थिति भी उपलब्ध होती है। उपेन्द्रनाथ अश्क राजेन्द्र यादव निर्मल वर्मा आदि की कहानी-कला का सामाजिक चेतना सामाजिक दायित्व से अनुप्राणित माना गया है परन्तु इनकी कहानिया का सूक्ष्म निरूपण इस धारणा की पुष्टि नहीं करता। इसक विपरीत इनकी कहानिया को प्रेरित करने वाली चेतना व्यक्तिमूलक है जीवन दृष्टि व्यक्ति चिन्तन की है, आधार यक्ति-यथार्थ का तथा स्तर व्यक्ति-सत्य का है। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि इन कहानीकारों ने सामाजिक प [illegible] की उपेक्षा की है अथवा इनकी वैयक्तिक चेतना का स्वरूप जैनेन्द्र अज्ञेय की व्यक्ति चेतना क समान है। इन्होंने सामाजिक पक्ष का चित्रण एव मूल्यांकन व्यक्ति चिन्तन क आधार पर किया है सामाजिक मान्यताओं को व्यक्ति विकास की दृष्टि से आंका है। सामाजिक सम्बन्धों का व्यक्ति हित की कसौटी पर परखा है। इनकी वैयक्तिक चेतना का स्वरूप अनय क व्यक्ति चिन्तन क समान जीवन धारा से कटा हुआ नदी का द्वीप नहीं है अथवा जैनेन्द्र की व्यक्तिमूलक जीवन दृष्टि क समान जीवन-दर्शन म परिणत नहीं हो जाता या जीवन देव की कन्या क काल्पनिक लोक म नहीं उड़ान भरता। अश्क की वैयक्तिक चेतना का स्पष्ट एव निखरा हुआ रूप पलंग' की कहानिया म उपलब्ध होता है, निर्मल वर्मा का परिन्दे' तथा [illegible] कहानियों म, राजेन्द्र यादव का जहाँ लक्ष्मी कैद है' तथा अभिमन्यु की आत्म हत्या' म। अश्क क व्यक्ति चिन्तन म सामाजिकता का पुट अधिक है, निर्मल वर्मा म सूक्ष्मता एव [illegible] और राजेन्द्र यादव म बौद्धिकता का। इन कहानीकारा क अतिरिक्त इस कोटि क अन्य कहानीकारा म रामकुमार, उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती मन्नू भंडारी [illegible] प्रयाग शुक्ल जितेन्द्र, [illegible] तथा मधुकर गंगाधर आदि का कहानी-कला [illegible] करने वाली व्यक्तिमूलक चेतना क विविध स्तर हैं। अश्क ने अपना कहानीकला [illegible] एव विकास की मेरे कहानी-लेखन क ३२ वर्ष' (जो अब पुनः [illegible] हो चुके हैं) निबन्ध म स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वह लेखन क [illegible] म स्वय पर [illegible]

की व्यंजना शक्ति में विकास हुआ है और दूसरी ओर नयी भावभूमियों का सृजन भी हुआ है।[१] 'नयी कहानी सामान्य की समर्थक है और साथ ही विशिष्ट की पोषक। शैली शिल्प सामान्य को विशिष्ट बनाता है और वस्तु कथ्य विशिष्टता को सामान्यता में परिणित करता है। इन दोनों के मूल में कहानीकार की सामाजिक चेतना वस्तु शिल्प दोनों को रूपायित करती है।

इस सामाजिक चेतना अथवा 'व्यापक परिवेश' एवं समष्टि चिन्तन का जीवन-दृष्टि पर अमृतराय ने भी विशेष बल दिया है। कथ्य गाँव का हो या नगर का या किसी अन्य परिवेश का, उसे जिस प्रकार की चेतना के साँचे में कहानी का संश्लिष्ट रूप दिया गया है वह उस कहानी को सार्थक एवं निरर्थक बनाने की क्षमता से युक्त है। अमृत राय की कहानी 'समय' की थीम प्रेम तिकोन पर आधारित है जिसका सम्बन्ध नगर के परिवेश से है। इसमें एक व्यक्ति अपने बचपन की चहेती को उसके विवाहित जीवन के परिवेश में जा कर जब देखता है तो वह उसे इतना बदला हुआ तथा समय से निगला हुआ पाता है कि वह हताश हो कर लौट आता है। इन दोनों के मौन में इतनी अकुलाहट एवं छटपटाहट है कि वह उस सामाजिक परिवेश की ओर स्पष्ट संकेत किये बिना नहीं रहती जिस ने इनकी व्यथा को गहराया है। इस प्रकार मनुष्य का दुख दर्द ग्रामीण जीवन में सीमित हो कर नहीं रह जाता और न ही वह नागरिक जीवन में सकुचित हो कर बन्द हो जाता है। इसकी व्याप्ति चारों ओर है, आस-पास तथा दूर के जीवन में भी है। अमृतराय सामाजिक जीवन दृष्टि तथा कहानी की सार्थकता को इतना महत्व देते हैं कि कभी कभी इनकी कहानी विवरणात्मक रेखाचित्रों एवं संस्मरणों को भी अपनी परिधि में समेटने का दम भरने लगती है। इन सामाजिक चेतना के भी विविध स्तर एवं रूप हैं। रमेश बक्षी जैसे कहानीकार जिनकी मूल चेतना व्यक्ति चिन्तन से प्रभावित है 'कुछ माँ कुछ बच्चे' सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है। इसमें तीन परिवारों के चाय पीने बैठने आदि के चित्रण से उनकी वर्गगत विशेषताओं को उभारा गया है। उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग की तीन माताओं के साथ उनके तीन बच्चे एक काफी-हाउस में एकत्रित हो जाते हैं। बक्षी ने इनकी प्रतिक्रियाओं के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा अपनी व्यंग-दृष्टि का परिचय दिया है इनके तीनों बच्चों में भेद भाव का अभाव है और कप बसी और ग्लास की चाय का स्वाद भी एक समान है, परन्तु इन तीन माताओं में इतना वर्गगत भेद भाव पाया जाता है कि इन बच्चों का आपस में खेलना भी वे सहन नहीं कर सकीं। अन्त में फुटपाथ पर बैठी कुनिया के इन बच्चों के साथ खेलने, अपने पिल्ले बुला लेने में व्यंग का चरम विकास उपलब्ध है। इस संकेत के द्वारा समाजगत तथा जिसगत विष

---

१ राजा निरबसिया भूमिका

मता पर व्यंग कसा गया है। इस प्रकार कुतिया के रूप में चौथी मां भी उतनी ही सचेत एवं सचेष्ट है जितनी तीन माएं जो अपने बच्चों को एक दूसरे से अलग रखना चाहती हैं। इस प्रकार की कहानियों तथा कहानीकारों को अनुप्राणित करने वाली चेतना का स्वरूप सामाजिक है, प्रभावित करने वाला चिन्तन समष्टि मूलक है, प्रेरित करने वाली भावना समाज मंगल की है।

आज की कहानी की दूसरी दिशा वैयक्तिक चेतना से अनुप्राणित है, इसके मूल में व्यष्टि चिन्तन है इसमें जीवन को व्यक्ति सत्य के आधार पर आंका गया है और समाज को व्यक्ति-हित की कसौटी पर परखा गया है। इस कारण इस प्रवृत्ति की कहानी-कला पर अनेक आक्षेप किये गये हैं विभिन्न आरोप लगाये गये हैं। इस कोटि के कहानीकारों की मूल चेतना के स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद की स्थिति भी उपलब्ध होती है। उपेन्द्रनाथ अश्क राजेन्द्र यादव निर्मल वर्मा आदि की कहानी-कला को सामाजिक चेतना सामाजिक दायित्व से अनुप्राणित माना गया है परन्तु इनकी कहानियों का सूक्ष्म निरूपण इस धारणा की पुष्टि नहीं करता। इसके विपरीत इनकी कहानियों को प्रेरित करने वाली चेतना व्यक्तिमूलक है, जीवन दृष्टि व्यष्टि चिन्तन की है, आधार व्यक्ति-यथार्थ का तथा स्तर व्यक्ति सत्य का है। इससे यह आशय नहीं है कि इन कहानीकारों ने सामाजिक पक्ष की उपेक्षा की है अथवा इनकी वैयक्तिक चेतना का स्वरूप जैनेन्द्र, अज्ञेय की व्यक्ति चेतना के समान है। इन्होंने सामाजिक पक्ष का चित्रण एवं मूल्यांकन व्यष्टि चिन्तन के आधार पर किया है, सामाजिक मान्यताओं को व्यक्ति विकास की दृष्टि से आंका है, सामाजिक सम्बन्धों को व्यक्ति हित की कसौटी पर परखा है। इनकी वैयक्तिक चेतना का स्वरूप अज्ञेय के व्यक्ति चिन्तन के समान जीवन धारा से कटा हुआ 'नदी का द्वीप' नहीं है अथवा जैनेन्द्र की व्यक्तिमूलक जीवन दृष्टि के समान जीवन दर्शन में परिणत नहीं हो जाता या नीलम देश की राजकन्या के काल्पनिक लोक में नहीं उड़ान भरता। अश्क की वैयक्तिक चेतना का स्पष्ट एवं निखरा हुआ रूप 'पलंग' की कहानियों में उपलब्ध होता है निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' तथा [illegible] कहानियों में राजेन्द्र यादव की 'जहां लक्ष्मी कैद है' तथा 'अभिमन्यु की आत्महत्या' में। अश्क के [illegible] चिन्तन में सामाजिकता का पुट अधिक है, निर्मल वर्मा में सूक्ष्मता एवं उलझाव का और राजेन्द्र यादव में बौद्धिकता का। इन कहानीकारों के अतिरिक्त इस दिशा के अन्य कहानीकारों में रामकुमार, उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, [illegible] प्रयाग शुक्ल जितेन्द्र, [illegible] मधुकर गंगाधर आदि की कहानी-कला को प्रेरित करने वाली व्यक्तिमूलक चेतना के विविध स्तर हैं। अश्क ने अपनी कहानी-कला के उद्देश्य एवं विकास को 'मेरे कहानी-लेखन के २२ वर्ष' (जो अब [illegible] हो चुके हैं) नामक निबन्ध में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह कथन के [illegible] स्वयं पर भी

हेनरा, माम चेखव, मोपासाँ तथा अन्य कहानीकारों के दाली शिल्प प्रभाव का स्वीकार करते हुए अपनी प्रयोगात्मक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। वह अपनी रोमानी कहानियों से हटकर आज की मनोवैज्ञानिक कहानियों तक में एक विकास के सूत्र को खोज निकालते हैं। इस विकास को कहानी के वस्तुपक्ष तथा शिल्पपक्ष दोनों क्षेत्रों में उदाहरण दे कर स्पष्ट करते हैं। वह अपनी कहानी कला को रोमांस से यथार्थ की ओर व्यक्ति से समाज की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, अभिधा से व्यंजना की ओर विकसित पाते हैं। इनकी धारणा है– मेरी कहानियाँ सदैव समाजगत रही है। (१९२६ से १९३८ तक) समाज की कुरीतियाँ, कुण्ठाएँ आन्दोलन मेरी कहानियों में प्रतिबिम्बित होते रहे, व्यक्ति के मन में भी यदि मैंने झाँका तो उसे समाज के परिपार्श्व में रख कर ही।[1] इस धारणा की पुष्टि में वह 'मुकुर' 'पिंजरा', 'नासूर,' 'चट्टान' आदि कहानियों के उदाहरण देते हैं। वह अपनी कहानी कला को 'प्रगतिशीलता' की लहर से भी प्रभावित मानते हैं जो उस समय लाहौर में बुद्धिजीवियों के लिए फैशन बन चुकी थी। इस स्पष्टीकरण के उपरान्त 'पलग' में संकलित अपनी अधुनातन कहानियों में सकेतों को समझते हुए वह लिखते हैं—इनका (बेबसी) सामाजिक यथार्थ नहीं है। इसमें व्यक्ति-सत्य है और इसकी ओर से आँखें नहीं मूँदी जा सकती।[2] अश्क ने कभी भी इस व्यक्ति-सत्य से अपनी आँखें नहीं मूँदी हैं। इन कहानियों के लिखने में वह स्वयं ही सकोच और बारह बरस प्रतीक्षा करते रहे हैं। इनकी कहानी-कला दोनों के मूल में चेतना का स्वरूप प्राय व्यक्ति चिन्तन एव व्यक्ति सत्य से प्रेरित रहा है जिसके आधार पर लेखक ने अपने पात्रों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों की आलोचना की है और सामाजिक मान्यताओं को आँका है। कथा साहित्य के क्षेत्र में अश्क ने प्रेमचन्द के सुधारवाद से मोहभंग की स्थिति को परम्परा में प्राप्त किया है। इसके कथा साहित्य का उद्देश्य व्यक्ति हित की भावना तथा व्यक्ति सत्य की धारणा से प्रेरित है। इनकी कहानियों में सकेत एवं प्रतीक प्राय वैयक्तिक कुण्ठाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। अश्क ने यह स्वीकार किया है कि परिवार तथा वातावरण की कुण्ठाओं तथा असगतियों ने उन्हें कहानीकार बनाया है और वे 'व्यक्ति के दर्द का स्रोत खोजते-खोजते समाज के दर्द का आभास' पा सके हैं। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँस कर इन्सान मर कर ही निकल पाता है। अश्क का इन्सान मानव न हो कर व्यक्ति है जिसके दुख दर्द को पहचान कर वह सामाजिक मान्यताओं को वैयक्तिक कसौटी पर परखने लगते हैं। इनके अधुनातन कहानी सग्रह में वैयक्तिक चेतना का स्वर अभिव्यक्त रूप में ध्वनित होता है और सकेतात्मक एव प्रतीकात्मक शिल्प का

१ मेरे कहानी लेखन के बत्तीस वर्ष पृ० ४४

२ पलग ये कहानियाँ पृ० १७८

प्राधान्य रहता है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों की वस्तु सेक्स से सम्बद्ध है जिसकी 'इन्तज़ार, 'अंकुर' 'उबाल,' 'चट्टान' आदि में भी सुनी जा सकती है। इनमें सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा वैयक्तिक यथार्थ का उद्घाटन है और इसे भी समर्थ पाठक के लिए उपादेय समझते हैं। 'ठहराव,' 'बबसो,' 'भाग और मुस्कान' 'पलँग' आदि कहानियों में व्यक्ति के मनोविज्ञान का प्रतीकात्मक शैली में चित्रित करने का प्रयास है। इनके संकेत एवं प्रतीक प्रगतिवादी आलोचकों की दृष्टि में अस्पष्ट एवं उलझे हुए हैं और मनोविश्लेषणवादी विवेचकों के लिए स्पष्ट एवं उलझे हुए हैं। प्रदक की धारणा है कि 'पलँग' में शिल्प का निखार है और 'भाग और मुस्कान' में वस्तु की सूक्ष्मता है। इस प्रकार वह वस्तु को शिल्प और शिल्प को वस्तु समझने की भूल कर गये हैं। 'पलँग' के मूल में मनोविश्लेषण के अनुसार मातृ रति की धारणा है। इसलिए इसमें वस्तु-पक्ष का महत्व है जिसे पलँग के माध्यम से व्यक्त किया है। 'भाग और मुस्कान' में संकेत स्वरूप एवं अनुलिपि है और इस सबतात्मकता के कारण इसका महत्व इस शिल्प में लक्षित होता है। इस प्रकार के मतभेद के होते हुए भी प्रदक की कहानी कला मूलतः एवं प्रायः वैयक्तिक चेतना अथवा व्यक्ति मूलक जीवन-दृष्टि से ही अनुप्राणित है। इसके आधार पर ही इनके कहानी साहित्य का मूल्यांकन संगत एवं अपेक्षित है।

आज के कहानीकारों में राजेन्द्र यादव तथा निर्मल वर्मा की कहानी कला के स्वरूप एवं उद्देश्य के सम्बन्ध में यह धारणा प्रायः दृढ़ हो चुकी है कि इनके मूल में सामाजिक चेतना अथवा समष्टिमूलक जीवन-दृष्टि है। इस धारणा को पुष्ट करने में राजेन्द्र यादव का निजी योगदान भी है। इनकी कहानियों का यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय और बाह्य परतों को उघाड़ कर यदि इनकी कहानी-कला की आत्मा में झाँका जाय तो इस धारणा में सत्य की उपलब्धि नहीं होती। इन दोनों कहानीकारों की कृतियों के मूल में चेतना का स्वरूप प्रायः व्यक्ति मूलक है। इनके व्यक्ति चिन्तन में उन रूढ़ियों एवं मान्यताओं का विरोध है जो व्यक्ति विकास एवं व्यक्तिहित में बाधक बनती हैं। इनके व्यक्ति सत्य के निरूपण में सामाजिक चेतना अथवा शक्ति का उत्सर्ग भी नहीं है और राजेन्द्र यादव ने तो व्यक्ति चिन्तन में प्रभावित उन कथाकारों की कड़ी आलोचना की है जो 'व्यक्तिस्वातन्त्र्य' और 'आत्मोपलब्धि' के माध्यम से बौद्धिक अराजकतावाद की धारा को पुष्ट करते हैं और जो हिन्दी में 'मनोवैज्ञानिक कथाकारों' के नाम से परिचित हैं।[१] यादव के व्यक्ति चिन्तन में और इन मनोवैज्ञानिक कथाकारों के 'व्यक्ति-सत्य एवं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' के

---

१ दिनेश्‍ कल्प, १९६०, पृ० १८०

स्वरूप में अन्तर पाया जाता है, मनोवैज्ञानिक कथाकारों के व्यक्ति चिन्तन का रंग गहरा तथा रूप विशिष्ट है और इसकी मात्रा इतनी अतिशय हो जाती है कि वे कभी कभी सिकुड़ एवं सिमट कर आत्मलीन हो जाते हैं। राजेन्द्र यादव की व्यक्तिमूलक चेतना आत्मकेन्द्रित न हो कर सामाजिक दायित्व की ओर उन्मुख है जिसे वह बौद्धिक स्तर पर ही ग्रहण कर सके हैं और इस धरातल पर इसका निरूपण भी करते हैं। इनकी कहानी-कला को प्रेरित करने वाली जीवन दृष्टि मूलतः एवं अन्ततः व्यक्तिमूलक है और इनकी सामाजिक चेतना हृदयगत न हो कर बुद्धिगत है। इस आन्तरिक विरोध के कारण इनकी कहानियों में वस्तु एवं शिल्प का सन्तुलन नहीं हो पाया है और इनके प्रतीकों एवं संकेतों का स्वरूप अनुभूत न हो कर बौद्धिक है। लक्ष्मी का कैद होना, अभिमन्यु की आत्महत्या का प्रयास, छोटे छोटे ताजमहल आदि प्रतीकों का प्रयोग सामाजिक चेतना को उभारने के उद्देश्य से किया गया है, परन्तु ये प्रतीक कहानियों पर आरोपित होने का आभास इसलिए देते हैं कि इन कहानियों का वस्तु व्यक्तिमूलक दृष्टि से अनुप्राणित है जिस पर सामाजिक धारणा का आवरण डाल कर कहानियों को सामाजिक दिशा में घसीटा गया है। राजेन्द्र यादव की कहानी-कला का विश्लेषण इस अन्तर्विरोध की स्थिति को स्पष्ट कर देता है 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' में लेखक ने प्रतीक का आश्रय लेकर एक धनी पुजारी तथा महा कंजूस के घर में लक्ष्मी नाम की लड़की की कैद की स्थिति का चित्रण किया है। इस कैद तथा घुटन के कारण वह मानसिक रोग से ग्रस्त है। आज का राक्षस जिसने लक्ष्मी को कैद कर रखा है धनपति के रूप में अवतरित है। गोविन्द की कुण्ठा को वैयक्तिक स्तर पर उभार कर कहानी को किशोर भावुकता से आक्रान्त किया गया है। इस कहानी का मूल स्वर कुण्ठित, दमघोट, एवं बंद जीवन की अभिव्यक्ति में ध्वनित होता है, परन्तु प्रतीक सामाजिक धारणा एवं उद्देश्य से प्रेरित हैं। इनमें संगति के अभाव का कारण यह है कि कहानी की वस्तु व्यक्तिमूलक जीवन-दृष्टि से अनुप्राणित है और इस पर आरोपित प्रतीक के मूल में समष्टि चिन्तन है। 'अभिमन्यु की आत्महत्या' में भी प्रतीक पद्धति का आश्रय लेकर एक व्यक्ति की वर्षगाँठ पर आत्महत्या के उसके असफल संकल्प को चित्रित किया गया है। इस स्थिति को गहराने के लिए कैलाश-सुभद्रा के प्रसंग को जोड़ा गया है। इस कहानी के कथ्य के मूल में व्यक्ति-चिन्तन की जीवन दृष्टि है जो पति-पत्नी के सम्बन्ध को वैयक्तिक स्तर पर उठा कर उसे सामाजिक दिशा में जाने से रोकती है। अभिमन्यु चक्रव्यूह से जीवित निकल तो आता है, परन्तु उसके इस प्रकार निकलने में स्वाभाविकता की अपेक्षा विवशता का स्वर ध्वनित होता है जो द्वन्द्व की स्थिति का द्योतक है। 'एक कमजोर लड़की की कहानी' में लेखक सूत्रधार के रूप में उस कमजोर लड़की का एकाकी अभिनीत करते हैं। जिसका प्रेम एक व्यक्ति से रहा

है और जिसका विवाह दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। प्रमोद के कथन में सामान्य भावुकता का चित्रण है—'यह याद रखना कि तुम्हारी आत्मा चिरकुमारी है और इसका किसी के साथ विवाह नहीं हो सकता। सविता का अपने पति से इस स्वीकृति में एक नया स्वर ध्वनित होता है— जब लड़की अपने घर से आती है तो अपने सारे सम्पर्कों और सम्बन्धों को वहीं छोड़ आती है।' इस कहानी में प्रेम-त्रिकोण के चित्रण एवं निरूपण में व्यक्ति-चिन्तन की दृष्टि है। 'खुले पंख, टूटे डैने' में भी एक बार तीस लड़की के दमित जीवन का चित्रण है जो तीन पुरुषों के निकट सम्पर्क में आ कर भी अपने रिक्त जीवन को भरने से वंचित रह जाती है। मीनल अब इतनी वयोवृद्ध हो चुकी है कि उसके लिए एक नये सिरे से जीना मात्र एक विडम्बना है। उसका नीरस एवं कटु जीवन उसकी निजी कुण्ठाओं, ग्रन्थियों तथा सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है। इसी स्तर पर यादव की कहानी 'छोटे छोटे ताजमहल' की रचना हुई है जिसमें कथानक इतना संक्षिप्त एवं गौण है कि उसे कुछ शब्दों में ही आबद्ध किया गया है—'वह बात न मीरा ने उठाया, न खुद उसने' इस घुटन के कारण पात्रों का परिचय स्थायी रूप न ले सका। यह सब कुछ ताजमहल की छाया तले हुआ और इसमें एक दूसरा ताजमहल बना जिस पर मुस्कराहट की नक्काशी थी। इस कहानी में विवाह न कर सकने की बात को वैयक्तिक स्तर पर चित्रित किया गया है और इस पर नामवर सिंह ने आपत्ति भी की है। राजेन्द्र यादव का यह वैयक्तिकता का स्वर इनकी अन्य कहानियों में 'बौद्धिक प्रगतिशीलता' के बोझ के नीचे दबा रहा है, परन्तु इस कहानी में यह उन्मुक्त रूप में ध्वनित हुआ है। यह स्वर इनकी कहानी-कला का मूल स्वर है, यह वैयक्तिक चेतना इनकी रचनाओं को प्रेरित करने वाली मूल चेतना है, यह व्यक्ति-चिन्तन इनके छोटे-छोटे ताजमहलों के निर्माण करने का मूल प्रेरणा है। इसे नामवर सिंह प्राणहीन रूप की सज्जा से अभिहित करें अथवा इस पर भोगवाद का आरोप लगाने की कृपा करें, परन्तु इसके मूल में व्यक्ति-सत्य की जीवन दृष्टि की उपेक्षा करना यादव का कहानी कला के मूल स्वरूप तथा उद्देश्य की अवहेलना करना होगा। इस प्रकार यादव की कहानियों में बार-बार एक कमजोर लड़की का चित्रण उपलब्ध होता है। कहीं वह किसी की कैद में है, कहीं वह ससुराल में आ कर अपने पहले प्रेम-सम्बन्ध को भूलने का प्रयास करती है, कहीं पत्नी बन कर सन्तान के लिए जान में सताप पाती है, कहीं दमित जीवन बिता कर इतनी बूढ़ी हो जाती है कि विवाह के सुख से वंचित रह जाती है, कहीं ताजमहल की छाया में बैठ कर भी अपनी बात नहीं कह पाती। यह कमजोर लड़की क्योंकि अभी तक अपनी पूरी बात नहीं कह सकी है, इसलिए उसे विभिन्न परिस्थितियों में चित्रित किया जा रहा है और उसकी पुनरावृत्ति यादव की कहानियों में हो रही है। यह इनकी अनुभूति का अभिन्न

जो अब नहीं रहा। कुछ भी याद करना आत्म विडम्बना है।' 'माया का मर्म'[1] में वैगाटेल का सुमेर है जिसके लिए हम का नाम बदल कर लता माथुर हो जाता है। इनकी आयु में आगे अन्तर को पाटने का काम रोमांस की शक्ति के द्वारा हुआ है। 'तीसरा गवाह' में राहूजी साहब सन्दर्भ में आ कर अपने अतीत जीवन के एक पृष्ठ को खोल कर एक रोमांटिक अनुभूति की गाथा सुनाने लगते हैं। इसमें हम का नाम नीरजा नया अवश्य है, परन्तु अनुभूति पुरानी है। अतीत की मधुर स्मृति सुमेर की जगह राहूजी साहब को कचोटती है। 'अँधेरे में'[2] 'वैगाटेल' का सुमेर रोगग्रस्त हो कर शिमला पहुँच जाता है और उसका रोमांस बाना के साथ चलता है। इस रोमांस के साथ माँ-बाबा के रोमांस को जोड़ा गया है जो अँधेरे में पनपता है। पिता और पुत्र दोनों के जीवन में एकाकीपन की अनुभूति को गहराया गया है। इस कहानी में भी रोमांस की विफलता का स्वर ध्वनित होता है। 'पिक्चर पोस्टकार्ड' भी रोमांटिक अनुभूति पर आधृत है, परन्तु दृश्य एक विश्वविद्यालय का है। इसमें रोमांस का स्तर पिल्ला की कोटि का है। विश्वविद्यालय के जीवन में युवकों की दृष्टि में युवतियों का महत्व मिष्ठान्न का है या पुडिंग की प्लेट का है। इसकी परिणति परेश के नानू को पिक्चर पोस्टकार्ड भेजने में होती है। 'परिन्दे' में कहानीकार विफल प्रेम की अनुभूति पर विजय पाने के लिए आकुल है जिसका आभास डाक्टर के दृष्टिकोण में उपलब्ध होता है। डाक्टर छिछली भावुकता को व्यक्ति की जिद समझता है जिससे वह अन्त चिपका रहता है। मिस लतिका, जो स्वयं रोमांटिक अनुभूति के विभिन्न रंगों को देख चुकी है, इस दृष्टि से इतना प्रभावित हो जाती है कि वह मिस जूली के प्रेम-पत्र को लौटा कर स्वयं स्वस्थ एवं संतुलित अनुभव करने लगती है। इस कहानी में सुमेर ने डॉक्टर के इस स्वस्थ दृष्टिकोण को आत्मसात कर लिया है इस प्रकार निर्मल वर्मा की कहानियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी कहानी कला के मूल में जीवन दृष्टि का स्वरूप वैयक्तिक चेतना से रूपायित है जिसने इनकी कहानी के वस्तु पक्ष का निर्धारित किया है तथा शिल्प को निखारा एवं सूक्ष्म रूप दिया है। इनकी कहानियों में प्रायः कथ्य-कथन का मधुर मिलन पाया जाता है और इसमें इनकी कहानी कला की विशिष्टता को आँका जा सकता है। संकेत एवं प्रतीक-पद्धति के प्रयोग से इनकी कहानी को सूक्ष्म रूप प्राप्त हुआ है और इसमें वस्तु वातावरण की सृष्टि भी हुई है।

आज की कहानी को इस दिशा में उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती तथा मन्नू

---

१ परिन्दे (१९६०)

२ बासमो नई कहानियाँ, अगस्त १९६०

गया' आदि कहानियाँ आती हैं जिनके मूल में चेतना का स्वरूप वैयक्तिक है जीवन के मान मूल्य व्यक्ति-सत्य एवं व्यक्ति-चिन्तन से प्रभावित हैं और अभिव्यक्ति का स्तर व्यक्ति-यथार्थ पर आधारित है। कृष्णा सोबती की कहानीकला भी सायास, सचेष्ट, एवं कष्टसाध्य न हो कर सहज एवं स्वाभाविक है।

इस दिशा अथवा प्रवृत्ति के कहानीकारों में रामकुमार, रमेश बक्षी, जितेन्द्र, प्रताप कुमार, प्रयाग शुक्ल आदि ने इसकी वस्तु को सूक्ष्म बनाया है, शिल्प को निखारा एवं उलझाया है जिससे इनकी प्रयोगशील दृष्टि का परिचय मिलता है। रमेश बक्षी ने आज की कहानी को नयी बनाने के लिए अनेक प्रयोग किये हैं जो पाश्चात्य चित्रकला की प्रभाववादी, प्रतीकवादी प्रवृत्तियों से प्रभावित है। रामकुमार की कहानी-कला में चित्रकला के प्रभाव को स्वीकारा तथा नकारा गया है। रमेश बक्षी की कहानी कला को प्रेरित एवं प्रभावित करने वाली व्यक्ति-चिन्तन की दृष्टि का स्वरूप स्पष्ट है। इसके शिल्प-पक्ष में वक्रता एवं प्रतीकों का प्रयोग सचेत तथा सायास है। इस क्षेत्र में रमेश बक्षी की विशिष्ट देन है जिसके फलस्वरूप आज की कहानी के लिए 'नयी' होने का खतरा पैदा हो गया है और इसके 'स्वभाव' के साथ इसके 'चरित्र' बदलने की स्थिति भी उत्पन्न होने लगी है। और यह श्रीकान्त वर्मा की 'आत्मा' को सन्तुष्ट करने की क्षमता से सम्पन्न है। श्रीकान्त ने जिस यथार्थ के धरातल की बात की है उसे व्यक्ति-सत्य के स्तर पर आँकने की प्रवृत्ति रमेश बक्षी, प्रताप कुमार, प्रयाग शुक्ल तथा अन्य कहानीकारों की रचनाओं में दृष्टिगत होती है। इनकी कहानी व्यक्ति के बदलते हुए सम्बन्धों को चित्रित करने से कम मुँह चुराती है, परन्तु इन सम्बन्धों की व्याख्या करने का खतरा श्रीकान्त की कहानी ने मोल ले लिया है। रमेश बक्षी ने कहानी-सम्बन्धी अपनी धारणाओं का उल्लेख 'आत्म-कथन' में किया है।[1] इनका मन्तव्य है कि मेरी कहानियों में क्षण प्रभाव का चित्रण हुआ है। इस प्रकार वह क्षण चित्रों को वक्रता तथा प्रतीकों के माध्यम से अंकित करने का प्रयास करते हैं। वह घटना को आज में नहीं रहने, चरित्र के बिम्ब को आज में मलाने है। वह घटनाहीन जीवन में घटना का काल्पनिक विधान नहीं रचते 'चरित्रहीन' जीवन में स्थूल चरित्र की सृष्टि नहीं करते, परन्तु अनुभूति के उन क्षणों को अभिव्यक्ति देते हैं जो जीवन में चमक कर प्रश्न मर्द कर जाते हैं। इन क्षण चित्रों का अंकन 'लहरें'[2] 'कमल का फूल'[3], 'तितली के पंख'[4], बादलन पर तितली कामना'[5],

---

१ लहर अगस्त, १९६१, पृ २१३, २१४
२ नई कहानियाँ अक्तूबर, १९६१
३ कहानी जून १९६२
४ कल्पना जनवरी, १९६१
५ ज्ञानोदय - मार्च, १९६१

'एक प्रकथा'[1], 'एक पौध की जीवनी' आदि इनकी अनेक कहानियां म उपलब्ध होता है। 'शबरी' म रामाम की यग मे परिणति, 'कमल का फूल' म सामाजिक विषमता पर प्रहार, तितली क पख म मोह भग की स्थिति का चित्रण, 'वायलन पर तिलक कामोद' म क्षण चित्र का अ कन, 'एक अकथा म एक पलायनजीवी व्यक्ति की खण्ड अनुभूति का काव्यात्मक चित्रण 'एक पौधे की जीवनी' म एक मधुर क्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति, पमस की कैद मे कुनकुना पानी [2] म क्षण प्रभाव को वाणी मिलो है। इन कहानियां म संकेतों तथा प्रतीकों का जमघट है जो कभी गु म्फित और कभी आरोपित होने का आभास देते हैं। इस प्रकार शिल्प की दृष्टि स रमेश वर्मा ने नये क्षितिजों की खोज की है। और क्षितिज इसलिए कि वह नयी कहानी को कविता क निकट लाना चाहते है और चित्रकला की गोद म बिठलाने के पक्ष म हैं। वह स्वीकार करते है कि इन्होने अपनी कहानियां म चित्रकला तथा सांकेतिकता का आश्रय लिया है और मूल रगो क शीघ्र स्पर्श से प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है। इन 'प्रभाववादी' तथा 'क्षणवादी' कहानियां में चेतना का स्तर वैयक्तिक है जीवन-दृष्टि व्यक्ति मूलक है। इस प्रकार वैयक्तिक अनुभूति क क्षण सामाजिक परिवेश से कभी कट कर और कभी सम्बद्ध हो कर जीवन का मूल्याकन करते हैं। कहानी क शास्त्रीय तत्वो की दृष्टि से शिवदान सिंह चौहान इनकी रचनाओं को कहानी की सत्ता देना कभी स्वीकार नहीं करेंगे और सभव है इनकी 'कुछ मांएँ कुछ बच्चे' को कहानी का बचकाना प्रयोग मानने क लिए तयार भी हो जायें। इन कहानियां म अनुभूति के खण्डो अथवा क्षणों को अभिव्यक्ति अवश्य मिलती है। इनका कहानी कला म नवीनता के प्रति आग्रह है, जिसका उपलब्धि वस्तु एव शिल्प दानो क्षेत्रो म दृष्टिगत होती है। इनक मतानुसार अनुभूति को उसकी अभिव्यक्ति से अलगाया नही जा सकता। इस प्रकार इनकी कहानी-कला पर अभिव्यंजनावाद की गहरी छाप है जिसक मूल म वैयक्तिक चेतना की प्रेरणा है। इसी भाँति रामकुमार की कहानी कला का धरातल भी वैयक्तिक है जिस पर इन्होंने प्रेम, विवाह तथा अन्य समस्याओं का चित्रण एव निरूपण व्यक्ति-सत्य तथा व्यक्ति हित की दृष्टि स किया है। 'डेक'[3], प्रस्तुति ह[4] आदि कहानियों म प्रेम तथा विवाह पर प्रश्न चिन्ह लगा कर इनका मूल्याकन वैयक्तिक मान्यताओं के आधार पर किया है। 'डेक' निखिल और नूसिदेन क मिलन एव विच्छेद की कहानी है जिसम एक भारतीय युवक तथा पेरिस की एक युवती मे स्नेह, युवती के मोह भग की

१ लहर नवम्बर १९६१
२ ज्ञानोदय सितम्बर, १९६०
३ कहानी १९५७
४ कहानी १९५९

गहरी अनुभूति युवक को अखरती है। सावन में बच्चे पड़ने पर युवती में अनुताप भावना तथा उसका दृढ़-संकल्प आदि के चित्रण में मन की पुकार का ही विवाह का स्थायी मूल्य घोषित किया है और इसमें व्यक्ति चिन्तन का स्वर गुंजित होता है। 'प्रश्न चिह्न' में शशि और मालती का, मालती के विवाद के बाद एकान्त में मिलन होता है जब शशि के जीवन में विरसता की स्थिति आ चुकी है। इनमें पारस्परिक प्रेम की परतें धीरे-धीरे उघड़ती हैं। युवक सामाजिक बन्धनों तथा पाप-पुण्य की धारणाओं से मुक्त है और युवती की दृष्टि भी वैयक्तिक चेतना से प्रभावित है। 'अन्त में प्रश्न' का महत्व इसके प्रश्न चिह्न बने रहने में ही लक्षित होता है। अन्त में आज के कहानीकारों की भाँति नवीनता तथा प्रतीकों का यथास्थान तथा यथासम्भव प्रयोग किया है परन्तु रमेश बक्षी की तरह सर्वत्र शान्ति का साध्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। जितेन्द्र की कहानी 'धुँए'[1] में भी निरपेक्ष दृष्टि से एक नारी के जीवन में मोहभंग की स्थिति को वैयक्तिक स्तर पर उभारा गया है। इसका उद्देश्य रोमांटिक प्रेम की परिणति धुँए में दिखलाना है। इस प्रकार रोमांस तथा वास्तविकता में पाट कितना चौड़ा होता है इसकी ओर कहानी का संकेत है। कहानी के अन्त में पत्नी अपने पति के धुँए में पाकर उसे पहचानने की चेष्टा करती है—क्या उसका पति वही व्यक्ति है जो रोमांटिक प्रेम का प्रतीक बन कर उसके जीवन में एक बार आया था? इस तरह प्रेम तथा विवाह के सम्बन्ध का मूल्यांकन व्यक्तिमूलक दृष्टि से किया गया है। इस कहानी में धुँए द्वारा उस व्यापक परिवेश की ओर संकेत किया गया है, जिसमें ये परिणाम हैं।

इन कहानियों तथा कहानीकारों के अतिरिक्त रामप्रकाश श्रीवास्तव, कान्ति चौधरी, सत्यपाल आनन्द, वीरेन्द्र अग्रवाल, कमल जोशी, नरेन्द्र मेहता, निर्गुण, धर्मवीर भारती, प्रबोध कुमार, मधुकर गंगाधर, मुद्राराक्षस, रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी, राजेन्द्र कुमार, विजय चौहान, लक्ष्मण मटियानी, श्यामानन्द वर्मा, हरिशंकर परसाई आदि की रचनाओं का विवेचन इस निबन्ध में सम्भव नहीं हो सका है जिसके बिना आज की कहानी का यह मूल्यांकन अपूर्ण रह गया है। इसे पूर्ण करने के लिए एक विस्तृत विवेचन की अपेक्षा है। आज की कहानी को सम्पन्न बनाने में इन कहानीकारों के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इससे पहले इस साहित्यिक विधा को इसकी लघुता के कारण प्राय उपेक्षा होती रही है, परन्तु आज हर लघुता महत्ता के रूप में आँकी जा रही है। यह लघुता मानव की हो, पौधों में यह कुकुरमुत्ता की हो, पेड़ों में यह बबूल की हो, कीड़ों में यह मकड़ी या जोंक की हो, अनुभूतियों में यह धरा की हो, रंगों में यह काम रंग की हो, पौराणिक पात्रों में यह

---

1 कहानी १९५७

मन्थरा की हो, पशुग्रा में यह गधे की हो, रसों में यह बुद्धि रस की हो, मानवीय सम्बन्धों में यह घृणा की हो—ग्राज जीवन की जटिलता के परिवेश में उपक्षित का महत्व है ग्रौर साहित्यकार स्वय को सकुलता की स्थिति में जकडा हुग्रा पाता है। इसलिए कहानी के सम्बन्ध में भी नयी सवेदना, साकेतिकता, सम्प्रेषणीयता, जटिलता, बौद्धिकता, प्रतीकात्मकता ग्रादि की समस्याग्रों को उठाया जा रहा है। इन समस्याग्रों को उठाने में साहित्यकार का 'भटकाव तथा ठहराव' भी हो सकता है ग्रौर इसमे उसकी विवशता को भी ग्राँका जा सकता है। यह भटकाव व्यक्तिवादी दृष्टि या वयक्तिक चेतना का परिणाम है ग्रथवा जीवन की जटिलता या व्यक्ति की सकुलता का—इस सम्बन्ध में किसी निश्चित मत या मन्तव्य को घोषित करना एक ग्रोर शिवदानसिंह चौहान, नामवर सिंह तथा दूसरी ग्रोर ग्रज्ञेय, रमेश बक्षी को ग्रधिक शोभा देते हैं जो समष्टि सत्य तथा व्यष्टि सत्य को ग्रन्तिम सत्य के रूप में उपलब्ध कर चुके हैं ग्रौर जिनकी जीवन दृष्टियाँ रूढ हो चुकी हैं। ग्राज की कहानी का स्वरूप उस वाद्य यन्त्र या ग्रारकेस्ट्रा के समान है जिसमें सम तथा विषम सब तरह के स्वर समाहित हैं, परन्तु इसमें दो परस्पर विरोधी मुख्य स्वर हैं—एक सारगी का जो सूक्ष्म है तथा व्यक्ति चिन्तन से ग्रनुप्राणित है ग्रौर दूसरा मृदग का जो सशक्त है ग्रौर समष्टि चिन्तन से प्रेरित है। मोहन राकेश जसे कहानीकार केवल सारगी बजाना जानते हैं ग्रौर भूल से कभी-कभी मृदग पर भी हाथ मार देते हैं, राजेन्द्र यादव बजाते सारगी हैं ग्रौर बात मृदग बजाने की करते हैं, ग्रमरकान्त की श्रेणी के कथाकार मृदग को ही ध्वनित करते है तथा मृदग के ग्रतिरिक्त ग्रन्य भारतीय तथा पाश्चात्य वाद्य यन्त्र हैं जिनके विशिष्ट स्वर है। ग्राम कथाकारो को गिटार से चिढ है ग्रौर वे जातीय ढोल का पीटने के पक्ष में हैं। इन वाद्य यन्त्रो को दो मुख्य श्रेणियो में विभक्त किया जा सकता है—एक सारगी, वायलिन, सितार ग्रादि तार के वाद्य यन्त्रो से सम्बद्ध है ग्रौर दूसरी मृदग, तबला ढोल ग्रादि से। इनके सह ग्रस्तित्व में ग्राज वाद्यवृन्द के सम्पूर्ण सगीत को ग्राँका जा सकता है। ग्रन्तिम ध्वनि किस श्रेणी के वाद्य-यन्त्रों से निकलगी यह कहना कठिन है। ग्राज इनके स्वरो में वैषम्य की स्थिति है, पारस्परिक विरोध की परिस्थिति है जिसे स्वीकार करना वस्तुस्थिति को स्वीकारना है। ग्राज यह स्थिति जीवन तथा उसकी कहानी दोनो मे उपलब्ध है।

कहानी से अकहानी, फिर कहानी

मन्मथनाथ गुप्त

इस समय हिंदी में कहानियों पर जितनी आलोचनाएँ हो रही हैं, उतनी किसी और विषय या विधा पर नहीं हो रही हैं। यह युग कहानियों और हलके-फुलके गीतों का युग है, क्योंकि थका माँदा आदमी जब काम से लौट कर आता है तब कुछ मनोरंजन चाहता है। फिर भी कहानी पर जितनी आलोचनाएँ आये दिन प्रकाशित हो रही हैं, उन पर वही कहावत चरितार्थ होती है कि 'बारह हाथ की ककड़ी तेरह हाथ का बीया'। अभी तक किसी विश्वविद्यालय ने इस पर शोध नहीं किया है, और आँकड़े इकट्ठे नहीं किये हैं, पर यह निर्विवाद है कि जितनी कहानियाँ लिखी जा रही हैं उनसे अधिक कहानियों पर आलोचना लिखी जा रही है।

इलियट ने इस प्रकार की समीक्षा के विषय में कुछ मजेदार बातें लिखी हैं जो ये हैं—विद्वत्ता के, चाहे जितने भी विनम्र रूप में हो, कुछ अधिकार होते हैं। हम मान लेते हैं कि हम जानते हैं कि कैसे इनका इस्तेमाल किया जाय और कैसे इनकी अवहेलना की जाय। समीक्षा सम्बन्धी ग्रन्थों और लेखों में यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि लोग कलाकृतियों के अध्ययन की जगह कलाकृतियों की आलोचना पढ़ने की अभ्यस्त मनोवृत्ति के शिकार हो जायें, और ऐसा होते देखा भी गया है। समीक्षा का उद्देश्य रुचि को शिक्षित या परिष्कृत करना है न कि बने-बनाये मतों को जन्म देना। पर तथ्य रुचि को भ्रष्ट नहीं कर सकता, अधिक से अधिक यह किसी एक रुचि को, जैसे इतिहास, पुरातत्व या जीवनी की रुचि को इस भ्रान्ति में संतुष्ट कर सकता है कि यह दूसरे की मदद कर रहा है। असली भ्रष्ट करने वाले लोग वे हैं जो बने-बनाये मत या कल्पना पेश करते रहते हैं। इस सम्बन्ध में मजे की बात यह है कि महाकवि गेटे और कोलरिज भी निर्दोष नहीं हैं। क्योंकि कोलरिज का हैमलेट क्या है, क्या इसे जहाँ तक तथ्य प्राप्त थे, एक ईमानदार खोज कहा जा सकता है या यह महज आलोचक कोलरिज को ही एक आकर्षक पोशाक में पेश करता है?

किसी भी विषय पर आलोचना का उद्देश्य मत का या रुचि का परिष्करण होना चाहिए, जिससे कृति पर नये कोण से रोशनी पड़े, ताकि पाठक को उसके अंदर पैठ प्राप्त हो। पर किसी भी हालत में ककड़ी से बीया बड़ा नहीं हो सकता, कम से कम प्रकृति में ऐसा न होता है और न संभव है। इस प्रकार, कहानियों से

यह स्वाभाविक है कि नदी की तरह साहित्य कभी एक ही जलराशि को ले कर अपना कारोबार नहीं चला सकता। समय समय पर उसमें नयी नदियों का आकर मिल जाना, उफान आना और नये टापुओं का उदय होना, उसकी गति रेखा का परिवर्तन होना स्वाभाविक है, और इसी के साथ नयी आलोचना का उदय होना भी स्वाभाविक है। फिर भी नयी आलोचना कभी नये साहित्य का स्थान नहीं ले सकती। आलोचना एक प्रकार का व्याकरण है और मातृभाषा में ही ऐसा हो सकता है कि व्याकरण का पठन पाठन और रचना इतना अधिक हो जाय कि साहित्य उसकी बाढ़ में डूब जाय।

फिर, यदि आलोचना किसी मसरफ की होती, यानी उसमें कोई नया सिद्धांत या नया दृष्टिकोण सामने आता, तो उससे कुछ लाभ हो सकता था, पर यहाँ तो केवल यही चल रहा है—'मेरे हमदम मेरे दोस्त', ऊँटों की शादी में गदहों का वह पंचम स्वर में आलाप कि गदहे ऊँट के रूप की प्रशंसा करते हैं और ऊँट गदहे के कंठ को सराहते हैं। मैं नाम लेने से बचना चाहता हूँ पर आज यह हालत है कि बहुत से नये लोगों ने अपने नाम जितनी बार छापे के हरफों में दूसरों की कलम से और अपनी कलम से देख होंगे, उतनी बार प्रेमचन्द ने सारे जीवन-काल में नहीं देखा होगा। अभी अभी किसी ने, शायद डा० प्रभाकर माचवे ने लिखा था कि भगवती चरण वर्मा पर हिंदी में कोई पुस्तक नहीं है जब कि वह हिंदी के एक श्रेष्ठ उपन्यासकार और 'चित्रलेखा' के लेखक हैं, जिसकी लगभग एक लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

इस प्रकार परस्पर प्रशंसा की यह चक्की बहुत महीन पीस-कात रही है और उसमें लाभांश भी अच्छे आ रहे हैं। सब कुछ ठीक है। चोरबाजारी में बहुत से लोग लाखों का वारा-न्यारा कर रहे हैं, उसमें कोई बड़ी बात नहीं है, पर परेशानी तो इस बात से है कि सामयिक रूप से ही सही, बहुत से लोग पथ भ्रष्ट हो रहे हैं और खोटे सिक्के को सही मान कर चल रहे हैं अवश्य, जैसा कि अब्राहम लिंकन ने कहा था—यह संभव है कि कुछ व्यक्तियों को हमेशा के लिए धोखे में रखा जाय, यह भी संभव है कि कुछ समय के लिए सारे लोगों को धोखे में रखा जाय, पर यह संभव नहीं है कि सारे लोगों को सारे समय धोखे में रखा जाय। पर्दाफाश तो होगा ही और सत्य की किरणें छिटकेंगी ही पर जब तक यह धींगामस्ती चल रही है तब तक गत्यवरोध तो रहेगा ही, तब तक बहुत से मुसाफिर गलत रास्ते पर चले जायेंगे।

जैसा मैं बार बार कह चुका हूँ, कालिदास का वह कथन ही सत्य है कि सारी पुरानी बातें अच्छी नहीं हैं, और न सारी नयी बातें ही अच्छी है। नया तो आयगा

ही, उन्हें कोई रोक नहीं सकता, पर नया वाकई नया है, यह भी जाँच करना पड़ेगा।
कहीं ऐसा तो नहीं कि नये के नाम पर जो कुछ चालू है उसकी आड़ में मार खायी हुई
और हार खायी हुई विचारधाराएँ भी बूढ़ी वेश्याएँ प्लास्टिक सर्जरी की बदौलत
शूर्पणखा की तरह आगे आने की कोशिश कर रही हैं। जहाँ तक नये साहित्य में
भाषा शैली, यहाँ तक कि कथावस्तु और कथ्य सम्बन्धी नये प्रयोग हो रहे हैं, हुए हैं,
वे तो बराबर होते रहे हैं—बल्कि प्रत्येक रचयिता अपने पूर्ववर्तियों से इसी बदौलत
भला होता है, पर जब नये के अन्दर से अति पुरातन शैतान बोलता है, तब खतरा
पैदा होता है।

साधारणतः रूप से, अवश्य यह अति सरलीकरण है। कला के सम्बन्ध में दो
मतवाद रहे हैं। एक का कहना रहा है—कला कला के लिए है। दूसरा कहता है—
कला जीवन के लिए है। इन दोनों के बीच हजारों प्रकार की सीढ़ियाँ बन सकती
हैं और सैकड़ों डेढ़ ईंट की मस्जिदें तैयार हो सकती हैं। यह भी सही है कि जिन
उपमाओं की धारें इतनी घिस-पिट गयी कि उनमें प्रेषणीयता का दम नहीं रहा
उन्हें पाताल की खाड़ी में डुबा कर नयी उपमाएँ खोजी जायेंगी भाषा के तरकश में
नये-नये तीर—कुछ अमृत से बुझे हुए और कुछ जहर से बुझे हुए—भरे जायेंगे, शैली
भी ऐसी नयी होगी कि मालूम तो हो कि कुछ पढ़ रहे हैं। जहाँ तक इन प्रयोगों और
प्रयासों का सम्बन्ध है, वे अवश्य ही अनिवार्य हैं और उनकी जितनी भी प्रशंसा की
जाय वह थोड़ी है। पर इस सम्बन्ध में यह दावा करना या यह धारणा उत्पन्न
करने की चेष्टा करना कि ऐसा कभी हिन्दी में ही हो रहा है, कहीं नहीं हुआ। यह
केवल अहमन्यता और अन्ततोगत्वा हीनताभाव का परिचायक है।

यूरोपीय साहित्य में यह सब तमाशा बहुत पहले हो चुका है और वहाँ जो मन
ऐसा व्यक्ति और प्रवृत्ति जिसकी प्रतिभा का जन्म हो चुका है और उनके कारण जो
उफान आया था, उसका खात्मा भी हो चुका है। यह कोई भी नहीं कहता कि आज
का अर्थ यह है कि उसका असर जा चुका है। जब नगा अतल सागर में समा नहीं पाती
और किनारे के पत्थरों की बाड़ कर दोनों पाटों पर नग्न ताण्डव करता है तब वह
अपने पीछे जो पानी मिट्टी छोड़ जाता है, उसके सम्बन्ध में यह तो नहीं कह सकते
कि वह कुछ नहीं है। वह खाद है और उसका महत्व और कोई न जाने, किनारे पर
रहने वाला किसान जानता है, जानता है तभी वह हर साल बाढ़ की मार खाने पर भी
दुबारा गाँव को खाक समझ जान कर अपना गाँव नदी के किनारे ही बसा रहता है।

वर्जीनिया वुल्फ और जॉयस ने भाषा और शैली सम्बन्धी जो प्रयोग किये, वे
बहुत ही रोचक और दिलचस्प थे। कहा गया कि मैटर कुछ नहीं है, शैली ही सब कुछ

एक ऐसा भद्दा कार्य है, जैसे किसी बहुत सुरुचिपूर्ण डिनर के दौरान, जो मोमबत्तियों की रोशनी में चालू हो, कोई भुना चना निकाल कर खाने लगे। कथाकार द्वारा दी गयी टिप्पणी भी जहालत मानी गयी, यद्यपि बालजक, ताल्स्ताय, मापासाँ आदि पुराने गुरु लोग इसके बहुत आदी थे। चेतना प्रवाह का सिद्धांत अपनाया गया। कहा गया कि एक मनुष्य बिल्कुल सरल रेखा मे नहीं सोचता, बीच में कितनी ही भँवरें और विषयांतर होते रहते हैं। कई जगह पुराना विचार रक्त प्रवाह में 'कोलस्ट्रोल' की तरह प्रवाह को रोकता है और गाठें पड जाती हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जॉयस आदि ने जो प्रयोग किये, वे बहुत कुछ सार्थक रहे, पर इस सम्बन्ध में यह भी देखने की बात है कि अपने अपने युग में सभी महान लेखक भाषा और शैली मे नवयुग के प्रवर्तक हुए हैं। कई बार तो लेखक को भाषा का कुआँ खोद कर तब पानी पीना पडता है। शेक्सपियर ने अपने युग में बहुत सी नयी बातें चलाया। अब तो खोज यह बता रही है कि जायस और वुल्फ के पहले डारोथी रिचडसन ने दोनो के लिए रास्ता खोल दिया था पर डारोथी रिचडसन ऊँची कलाकार नहीं थी। जैसे ईसा के लिए जान दि बेप्टिस्ट ने रास्ता तैयार किया था, उसी तरह से डारोथी ने रास्ता तैयार किया। रास्ता तो तैयार करना ही पडता है, बिना रास्ता तयार किये नये किस्म की गाडी उस पर नहीं चल सकती। बैलगडी की कच्ची सडक पर लारियाँ और बसें नहीं चल सकती। किसी भी परिवहन विशेषज्ञ से पूछिए तो वह मार्ग निर्माण के इस द्वंद्ववाद के सम्बन्ध में अपने जाने या अनजाने मे बतायेगा। अन्तर्गत वस्तु एक तरफ और शैली तथा भाषा दूसरी तरफ एक दूसरे से उसी प्रकार बँधी हुई हैं, जिस प्रकार व्यक्ति और उसकी परछाई। दोनो केवल हो सकते हैं जब व्यक्ति न रहे बल्कि प्रेत हो जाय।

भाषा और शैली को अन्तर्गत वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। प्रयोग केवल भाषा और शैली सम्बन्धी नहीं होते बल्कि प्रयोग सभी क्षेत्रों मे चालू रहते हैं पर कुछ ऐसा हुआ कि मोटे तौर पर यूरोपीय साहित्य में १६१५ से १६४५ तक जो प्रयोग हुए वे भाषा और शैली सबधी ही हुए, यानी उसके अलावा जो प्रयोग हुए उन पर लोगो का ध्यान उतना नहीं गया। यह पता लगाया गया है कि चेतना प्रवाह या 'सेंसिबिलिटी' वाले उपन्यास का प्रारम्भ फ्रांस मे दूजार्दाँ से हुआ, जिसका पहला ऐसा उपन्यास १८८७ में प्रकाशित हुआ। डारोथी रिचडसन इसके बाद आयी। उसका उपन्यास 'प्वायेन्टेड रूफस' यानी 'नोकदार छतें' १६१५ में प्रकाशित हुआ। यह एक माला की प्रथम पुस्तक थी जो 'मिरियम माला' कहलायी। मिरियम एक यात्री है, जिसकी चेतना मे सारा उपन्यास घटित होता है। 'यूलिसिस' १६२८ में प्रकाशित हुआ।

इन प्रयोगों से अंग्रेजी साहित्य को लाभ पहुँचा, फिर भी, जैसा सभी मानते हैं, जॉयस और वुल्फ का विशेष अनुकरण नहीं हुआ, यानी जो अनुकरण हुआ वह सफल नहीं हो सका। साथ-साथ नयी आलोचना भी आयी थी, पर उसके बावजूद जॉयस और वुल्फ की परम्परा नहीं चली पर जैसा मैं बता चुका हूँ, यह कहना गलत होगा कि उनका असर नहीं पड़ा। असर पड़ा, और भारत की अन्य भाषाओं तथा हिन्दी नवलेखन पर अब चल कर लगभग एक दशक से इसका असर दिखाई पड़ रहा है। उस असर पर हम बाद को आयेंगे पर जो कुछ भी हो जॉयस आदि के बाद उपन्यास फिर बहुत-कुछ पुराने ढर्रे पर लौट गया, यद्यपि प्रतिकहानी और अकहानी, प्रति उपन्यास की तलवार उसके सिर पर लटकी रही। लोक अनुकरणकारियों से और अपने व्याकरण और अपनी शैली में लिखने वाला से, जिनकी रचनाओं की बहुत कुछ हालत ऐसी हो गयी थी कि वे खुद ही लिखें और खुद ही समझें—जैसे आधुनिक कला में है इतने ऊब गये कि उन्होंने उपन्यास और कहानी पढ़ना ही छोड़ दिया और यदि खोजी दिमाग का विश्वास किया जाय तो अब पढ़े लिखे सुसंस्कृत लोग खुल आम यह डींग मारने लगे कि हम तो कहानी और उपन्यास पढ़ते ही नहीं हम तो इतिहास और जीवनी पढ़ते हैं।

कलाकार और साहित्यकार अपने को चाहे जितना महत्व दें पर एक वह भी व्यक्ति है, जिसका नाम है पाठक। पाठक को साथ ले जा कर लेखक कुछ भी कर सकता है उसके रास्ते में कोई बाधक नहीं हो सकता। पर यदि लेखक ने पाठक को मझधार में छोड़ दिया तो वह देखता कि अन्त में उसने अपने को ही मझधार में छोड़ा है पाठक तो सूखी जमीन पर पहुँच गया है और वहाँ से डूबते हुए कलाकार को मुस्कराता हुआ या गालियाँ देता हुआ—जैसी भी उसकी प्रवृत्ति हो, देख रहा है। पाठक का छूट जाना साहित्यकार के लिए कभी लाभप्रद नहीं हो सकता। पाठक हाथ छोड़ेगा तो प्रकाशक हाथ छोड़ेगा, क्योंकि प्रकाशक कोई प्रयोग करने के लिए बावला नहीं होता, उसे तो प्रयोग वहीं तक प्रिय और उपादेय लगते हैं जहाँ तक उसमें मुनाफे की रकम में चार चाँद लगें। अवश्य, बुद्धिमान प्रकाशक एक हद तक घाटा भी उठा सकता है बशर्ते कि बाद को घाटा सूद दर सूद लौट आये। इसलिए इन आश्चर्य नहीं कि सुसंस्कृत पाठकों ने अपना रास्ता, बल्कि कहना चाहिए अहवादी नव-लेखन को प्रोत्साहन नहीं दिया और निबन्ध, इतिहास और जीवनियों में लौट पड़ने लगे।

अभी तक कला के क्षेत्र में कथित आधुनिकता यानी तथाकथित 'डिकेडेन्टिज्म' कला चालू है, पर उपन्यास-कहानी में उसका अन्त हो गया यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, उपन्यास और कहानी चित्रकला से कहीं अधिक रोजमर्रा की है इसलिए उसमें पाठक

एक ऐसा भद्दा कार्य है, जैसे किसी बहुत सुरुचिपूर्ण डिनर के दौरान, जो मोमबत्तियों की रोशनी में चालू हो, कोई भुना चना निकाल कर खाने लगे। कथाकार द्वारा दी गयी टिप्पणी भी जहालत मानी गयी, यद्यपि बालजक, ताल्स्ताय, मोपासाँ आदि पुराने गुरु लोग इसके बहुत आदी थे। चेतना प्रवाह का सिद्धांत अपनाया गया। कहा गया कि एक मनुष्य बिल्कुल सरल रेखा में नहीं सोचता, बीच में कितनी ही भँवरें और विषयांतर होते रहते हैं। कई जगह पुराना विचार रक्त प्रवाह में 'कोलेस्ट्रोल' की तरह प्रवाह को रोकता है और गाठें पड जाता है।

इसमें कोई सदेह नहीं कि जायस आदि ने जो प्रयोग किये, वे बहुत कुछ सार्थक रहे, पर इस सम्बन्ध में यह भी देखने की बात है कि अपने अपने युग में सभी महान लेखक भाषा और शैली में नवयुग के प्रवर्तक हुए हैं। कई बार तो लेखक को भाषा का कुआँ खोद कर तब पानी पीना पडता है। शेक्सपियर ने अपने युग में बहुत सी नयी बातें चलायी। अब तो खोज यह बता रही है कि जायस और प्रुफ के पहले डारोथी रिचर्डसन ने दोनों के लिए रास्ता खोल दिया था पर डारोथी रिचर्डसन ऊँची कलाकार नहीं थी। जैसे ईसा के लिए जान दि बैप्टिस्ट ने रास्ता तैयार किया था, उसी तरह से डारोथी ने रास्ता तैयार किया। रास्ता तो तैयार करना ही पडता है, बिना रास्ता तैयार किये नये किस्म की गाडी उस पर नहीं चल सकती। बैलगाडी की कच्ची सडक पर लारियाँ और बसें नहीं चल सकतीं। किसी भी परिवहन विशेषज्ञ से पूछिए तो वह मार्ग निर्माण के इस द्वंद्ववाद के सम्बन्ध में अपने जान या अनजान में बतायेगा। अंतर्गत वस्तु एक तरफ और शैली तथा भाषा दूसरी तरफ एक दूसरे से उसी प्रकार बँधी हुई हैं, जिस प्रकार व्यक्ति और उसकी परछाई। दोनों केवल हो सकते हैं जब व्यक्ति न रहे बल्कि प्रेत हो जाय।

भाषा और शैली को अंतर्गत वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। प्रयोग केवल भाषा और शैली सम्बन्धी नहीं होते बल्कि प्रयोग सभी क्षेत्रों में चालू रहते हैं, पर कुछ ऐसा हुआ कि मोटे तौर पर यूरोपीय साहित्य में १९१५ से १९४५ तक जो प्रयोग हुए वे भाषा और शैली संबंधी ही हुए, यानी उसके अलावा जो प्रयोग हुए उन पर लोगों का ध्यान उतना नहीं गया। यह पता लगाया गया है कि चेतना प्रवाह या 'सेंसिबिलिटी' वाले उपन्यास का प्रारम्भ फ्रांस में दूजारदाँ से हुआ, जिसका पहला ऐसा उपन्यास १८८७ में प्रकाशित हुआ। डारोथी रिचर्डसन इसके बाद आयी। उसका उपन्यास 'प्वायेन्टेड रूफस' यानी 'नोकदार छतें' १९१५ में प्रकाशित हुआ। यह एक माला की प्रथम पुस्तक थी जो 'मिरियम माला' कहलायी। मिरियम एक यात्री है जिसकी चेतना में सारा उपन्यास घटित होता है। 'यूलिसिस' १९२८ में प्रकाशित हुआ।

इन प्रयोगों से अंग्रेजी साहित्य को लाभ पहुँचा, फिर भी, जैसा सभी मानते हैं, जायस और वुल्फ का विशेष अनुसरण नहीं हुआ, यानी जो अनुसरण हुआ वह सफल नहीं हो सका। साथ-साथ नयी आलोचना भी आयी थी, पर उसके बावजूद जायस और वुल्फ की बराबरी नहीं चली, पर जैसा मैं बता चुका हूँ, यह कहना गलत होगा कि उनका असर नहीं पड़ा। असर पड़ा, और भारत की अन्य भाषाओं तथा हिन्दी नवसृजन पर अब चल कर लगभग एक दशक से इनका असर दिखाई पड़ रहा है। उस असर पर हम बाद को आयेंगे पर जो कुछ भी हो जॉयस आदि के बाद उपन्यास फिर बहुत-कुछ पुराने ढर्रे पर लौट गया, यद्यपि प्रतिकहानी और अकहानी, प्रति उपन्यास की तलवार उसके सिर पर लटकी रही। ताक अनुकरणकारियों से और अपने व्याकरण और अपनी शैली में लिखने वालों से, जिनकी रचनाओं की बहुत कुछ हालत ऐसी हो गयी थी कि वे खुद ही लिखें और खुद ही समझें—जैसे आधुनिक कला में है, इतने ऊब गये कि उन्होंने उपन्यास और कहानी पढ़ना ही छोड़ दिया और यदि खोजी विद्वानों का विश्वास किया जाय तो अब पढ़े लिखे सुसंस्कृत लोग खुस आम यह डींग मारने लगे कि हम तो कहानी और उपन्यास पढ़ते ही नहीं, हम तो इतिहास और जीवनी पढ़ते हैं।

कलाकार और साहित्यकार अपने को चाहे जितना महत्व दें, पर एक वह भी व्यक्ति है, जिसका नाम है पाठक। पाठक को साथ ले जा कर लेखक कुछ भी कर सकता है, उसके रास्ते में कोई बाधक नहीं हो सकता। पर यदि लेखक ने पाठक को मझधार में छोड़ दिया तो वह देखेगा कि असल में उसने अपने को ही मझधार में छोड़ा है, पाठक तो सूखी जमीन पर पहुँच गया है और वहाँ से डूबते हुए कलाकार या मुस्कराता हुआ या गालियाँ देता हुआ—जैसी भी उसकी प्रवृत्ति हो, देख रहा है। पाठक को भूल जाना साहित्यकार के लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकता। पाठक साथ छोड़ेगा तो प्रकाशक हाथ छोड़ेगा, क्योंकि प्रकाशक कोई प्रयोग करने के लिए बैठा नहीं होता उसे तो प्रयोग वहीं तक प्रिय और उपादेय लगते हैं जहाँ तक उसे मुनाफे की रकम में चार चाँद लगें। अवश्य, बुद्धिमान प्रकाशक एक हद तक घाटा भी उठा सकता है बशर्ते कि बाद को घाटा सूद दर सूद लौट आये। इसलिए हम आश्चर्य नहीं कि सुसंस्कृत पाठकों ने प्रयोगवादों, बल्कि कहना चाहिए अहंवादी नव-सृजन को प्रोत्साहन नहीं दिया और 'मिलर्स', इतिहास और जीवनियों में मौज पड़ाने लगे।

अभी तक कला के क्षेत्र में कथित आधुनिकता यानी नान फिगरेटिवनेस' कला लागू है, पर उपन्यास-कहानी में उसका अन्त हो गया, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। उपन्यास और कहानी चित्रकला से कहीं अधिक रोजमर्रा की है इसलिए उसमें लेखक

भरे प्रयोगो का पहले आहूतकार्य हो जाना बिल्कुल वैसा ही है जैसा होना चाहिए था। इस क्षेत्र मे उपभोक्ता उतने दिनो तक स्वप्न के राशन पर पलने के लिए तैयार नही था। यहाँ इतना ही बता कर कला के प्रसग को समाप्त कर दिया जाय कि फिर से न केवल समाजवादी क्षेत्रो मे बल्कि सारे सभ्य जगत मे किसी न किसी रूप मे 'फिगरेटिव' यानी पहचान मे आने वाली कला का पुनरुत्थान हो रहा है। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र मे यह पुनरुत्थान या पुनरावर्तन पहले हुआ। ऐसा इस कारण हुआ कि विधा का तकाजा ऐसा ही था और इस विधा मे धाँधली या सिक्का तभी तक चल सकता था, जब तक उसके साथ महान प्रतिभा का हस्ताक्षर सयुक्त हो, यानी दूसरे शब्दो मे, धाँधली जब धाँधला न रह जाय। कई प्रयोग ऐसे होते हैं जिन्हे केवल महान प्रतिभा ही चमका सकती है।

मैंने पुनुरुत्थान और पुनरावर्तन शब्दो का प्रयोग किया पर इससे यह समझने की जरूरत नही है कि साहित्य और इस क्षेत्र मे कहानी और उपन्यास वही लौट गये जहाँ वे वुल्फ, जायस और प्रूस्ट आदि के पहले थे। नही ऐसा कभी नही होता। इस बीच टेम्स से लेकर गगा तक बहुत पानी बह चुका था। बहुत सी खादें मिल चुकी थी, जो नयी और उत्तेजक थी। इसलिए अब जो पौधा सामने आया या आ रहा है, वह पहले की तरह नही है, उससे भिन्न है, क्योकि उसने बीच की चीजो को पचाया है और उससे पुष्ट हो कर अपनी जडे नीचे की ओर और शाखाएँ न जाने कहा कहा फेंकी हैं। ऊपर बतायी बातो के बाद जब हम हिन्दी के क्षेत्र मे लौटते हैं तब यहा विचित्र परिस्थितियो का सामना होता है। बातें वही हैं, प्रयोग भी वही हैं, नारे और झडे कुछ भिन्न इसलिए है कि छिपाना है कि यह अनुकरण या जूठन है। साहित्य मे अनुकरण कोई बहुत बुरी बात नही है, विशेषकर जबकि अब ससार दिन ब दिन सकुचित होता जा रहा है। पहले लखनऊ से एक लहर दिल्ली पहुचने मे जितने दिन लगते थे, अब उतने समय मे सारे ससार की परिक्रमा हो सकती है। इसलिए इस सबध मे भारतीयता का नारा दे कर दामन बचाने की चेष्टा व्यर्थ है। इसलिए हम उस सम्बन्ध मे कुछ नही कहना चाहेंगे। प्रयोग हो रहे हैं और पहले भी मैं बराबर मान चुका हूँ और मानता रहूँगा कि इन प्रयोगो से हिन्दी भाषा की प्रेषणीयता मे बहुत वृद्धि हुई। और उससे वह कच्चा माल तैयार हुआ जिसमे महान प्रतिभा का जन्म हो सकता है। इसके लिए नवलेखन की, जिसमे हम नयी कविता को भी गिनेंगे, जितनी प्रशसा की जाय थोडी है।

पर जब जब इस प्रशसा के सीग पर चढ कर यह दावा किया जाता है कि हमी अन्तिम पैगम्बर हैं, हमारे बाद कुछ नही होने का और हमारे पहले जो कुछ हुआ वह तो खैर कूडा ही था, तभी हम राजनीति और दूकानदारी के हथकडे दिखायी

देते हैं। अब तक यह भी दावा था कि यह तो पीढ़ियों की लड़ाई है और नयी पीढ़ी स्वाभाविक रूप से पुरानी पीढ़ी से अधिक क्रान्तिकारी है। दूसरे शब्दों में यह कहा गया कि जो लोग पहले कथा-साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहे थे, वे गलत और गुमराह थे, प्रतिक्रियावादी थे, इत्यादि इत्यादि। यह तर्क कुछ दिनों तक बहुत अच्छा रहा क्योंकि सचमुच एक तरफ एक वय वर्ग के लोग थे और दूसरी तरफ दूसरी वय वर्ग के। जब तक यह परिस्थिति रही तब तक तर्क ठीक चला, पर इधर सचमुच नाम से कुछ अपेक्षाकृत नयी उम्र के लोगों के सामने आने से उन तर्कों का पेंदा निकल गया।

कुछ भी हो, यद्यपि हमारे यहाँ नयी कहानी—यहाँ तक कि अकहानी के प्रतिपादक स्थायी पड़े थे और उन्होंने वे सब तर्क और स्वराधार चुरा लिये थे जो पाश्चात्य में तत्सम्बन्ध के सिलसिले में दिये गये, पर जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, नयी कहानी वालों ने कतई अकहानी आदि मतवाद को नहीं अपनाया—सिवाय उन उदाहरणों के जब वे कहानी बनाने में असमर्थ रहे और यह जबर्दस्ती करते रहे कि उनका जना हुआ भ्रूण या गर्भ-स्राव प्राणी मान लिया जाय। मुझे तो ताज्जुब होता है कि कथा-रूढ़क या और इस सिलसिले में नयी कहानी के जो नमूने सामने आये हैं, उनमें कथानक की प्रचुरता है, चरित्र भी हैं, अक्सर चरम परिणति भी होती है। इस प्रकार से जो सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ और जिस पर कसमें खायी गयीं, उसका अनुसरण नहीं हुआ। कथनी और करनी के बीच इस फटाव पर हँस कर हम आगे बढ़ आ सकते हैं, पर उससे परिस्थिति का ठीक मूल्यांकन नहीं हो पायेगा। क्या कारण है कि प्रतिपादन कुछ और होता रहा है और कार्यान्वयन किसी और तरह से होता रहा? इसका कारण यह है कि जिन परिस्थितियों में पाश्चात्य में अकहानी का नारा उठा, वे परिस्थितियाँ यहाँ अभी उत्पन्न नहीं हुई हैं। वे बाद को उत्पन्न होंगी। होगा ही, ऐसी कोई बात नहीं क्योंकि कई बार सामाजिक स्थितियों को लाँघ कर अगली स्थिति में पहुँचा जा सकता है। खैर, उस बात को यहीं छोड़ दिया जाय। हमने पुराना शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है कि परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई और नारे बुलन्द कर दिये गये, परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई और दूसरी परिस्थितियों में उत्पन्न नारे यहाँ की परिस्थितियों पर थोप दिये। यह ऐसे ही हुआ जैसे रामनामी के साथ टाई बाँध दी जाय। इसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि नयी कहानी के वे अगुए जो विदेश जाने का सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं, अक्सर अपनी कहानियों में उन्हीं की जुगाली करते हैं, या बम्बई और दिल्ली के मानचित्र पर जबर्दस्ती पेरिस और न्यूयार्क का मानचित्र छाप देते हैं।

इससे इनकार नहीं है कि नयी कहानी आन्दोलन तथा उनसे सम्बद्ध प्रयोगों से

भाषा और शैली सम्बन्धी कुछ उपलब्धियाँ सामने आयी हैं पर अन्तगत वस्तु को केवल व्यक्ति की कुंठाओं और मनोभावों तक सीमित रखने के प्रयत्न खतरे हैं। कुछ पाठकों का तो यहाँ तक कहना है कि यदि चारों तरफ अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, कुंठा और निराशा है भी तो मनुष्य साहित्य, नाटक सिनेमा आदि में उससे भाग जाना चाहता है। ऐसी पलायनवादी मनोवृत्ति की सराहना नहीं की जा सकती, पर आशा की किरण न हो अँधेरा बहुत ही कष्टकर हो जाता है। जबदस्ती काल्पनिक आशा की किरण लाने की जरूरत नहीं है। क्या यह सच नहीं है कि इतिहास की सारी खुराफातों और मनुष्य की आत्मा को गुलाम बनाने के षडयंत्रों के बावजूद मनुष्य बराबर प्रगति करता गया है, उसकी जंजीरें टूटती गयी हैं?

सचेतन का नारा, जहाँ तक मैं देख रहा हूँ, उन्हें धीरे धीरे सही चिन्तन की ओर ले जा रहा है। व्यक्ति समाज का अंग है, वह उससे मुक्त नहीं हो सकता। यदि समाज में कोई कमी है तो उसे सुधारना पड़ेगा और बराबर सुधारते जाना पड़ेगा जैसा मकान में होता है। वक्त की जरूरत के अनुसार उसमें नयी खिड़कियाँ भी खोली जाती हैं और कभी कभी मकान को तोड़ कर उसकी जगह सम्भव है कि मकान बनाया ही न जाय, सड़क ही बना दी जाय पर मकान से जो लोग निकलेंगे वे कहीं रहेंगे तो सही। सचेतन आंदोलन तभी सफल हो सकता है जब वह इस तथ्य को अपना ले कि कला का आखिर कोई उद्देश्य है जैसा वह अपनाता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। कलाकारों और साहित्यकारों के तगड़ी मानवता की सृष्टि करनी है। भारत को ऐसे फ्रांसीसियों का देश नहीं बनाना है जो हर आक्रमणकारी के सामने घुटने टेक दें। हमें तो एक तगड़ा और स्वस्थ राष्ट्र बनाना है। पर उस प्रकार का भी तगड़ा नहीं जैसा हिटलरी राष्ट्र था। साहित्य के संदर्भ में ऐसी मान्यताओं और मूल्यों की सार्थकता इस कारण है कि साहित्य स्वयं कोई अलग विधा नहीं है, वह संपूर्ण मानव की एक विशेष अभिव्यक्ति है।

जब पाश्चात्य में ही लोग कुंठावाद से उकता चुके हैं और कुंठावाद में बहने के कारण स्वस्थ लोग कथा-साहित्य से ऊब चुके हैं, तब क्या यह आशा करना दुराशा मात्र होगी कि हमारे यहाँ भी साहित्यकार समय की गति को पहचान कर और सारे अनुभवों को समेट कर आगे की ओर बढ़ें?



स्वतन्त्रता के बाद की कहानी

श्रीमती विजय चौहान

जिसे नई कहानी का बदलता हुआ 'परिवेश' कहा जाता है और जीवन की जो 'संश्लिष्टताओं' की तरफ संकेत किया जाता है, दरअसल वे उस ऐतिहासिक प्रक्रिया के विभिन्न रूप हैं। इस प्रक्रिया का शुरुआत आजादी से पहले हो चुकी थी, उसी वक्त से जब बड़े शहर बनने लगे, मिलों की चिमनियों में से धुआँ निकलने लगा, या यूँ कहें कि 'गोदान' का गोबर जब से कलकत्ता, बम्बई या कानपुर में नौकरी करने गया। शहर पहुँच कर उसकी बोलचाल, पोशाक और रहन सहन में भी अन्तर आया। उसके जीवन में नई समस्याएँ पैदा हुई जिसका चित्रण कहानीकार आज तक कर रहे हैं, कुछ मजदूर बस्तियों की गन्दगी का चित्रण करते हैं, कुछ उस कुत्सित सभ्यता का पर्दाफाश करते हैं जो इन्सान को मशीन बना देती है, कुछ लेखक मजदूरों का अत्यन्त दयनीय रूप में दिखाते हैं मूक पशु की तरह काम करने वाला जो दो जून पेट भरने के बाद पैर पसार कर सो जाता है, ताड़ी पीता या दिल बहलाने के लिए सिनेमा चला जाता है। कुछ लेखकों ने उसकी नई चेतना और आक्रोश को व्यक्त किया है। यह तस्वीर अभी मुकम्मल नहीं हुई है, इसमें नई और पुरानी दोनों पीढ़ियों के कहानीकार लगे हुए हैं।

पुरानी पीढ़ी के कथाकार नई औद्योगिक सभ्यता के "ग्लैमर" से चौंधियाए नहीं बल्कि उन्होंने इस सभ्यता के कमजोर पहलुओं का चित्रण किया। यह मशीनी और शहरी सभ्यता एक निर्मम बुलडोजर की तरह पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं और जीवन मूल्यों को तोड़ती चली जा रही थी, आज भी तोड़ती जा रही है, बिना यह सोच विचारे कि पुरानी सभ्यता में भी पायदार और स्थायी मूल्य की चीजें मौजूद हैं, प्रेमचन्द की पीढ़ी ने सामन्ती जीवन के जर्जर मूल्यों पर प्रहार किया था। उनके बाद के लेखकों ने औद्योगिक सभ्यता से पैदा हुई 'पेटी बुर्जुआ' "बाबू" मनःप्रकृति के दुच्चेपन पर प्रहार किया। 'उग्र' जैनेन्द्र, यशपाल, अश्क, भगवती चरण वर्मा की अनेक कहानियाँ इसी बात की गवाह है, बहुत बरस पहले 'कहानी' में 'बाबुन' शीर्षक से एक कहानी छपी थी जो अत्यन्त मार्मिक और मर्म स्पर्शी रचना थी। दुर्भाग्य से लेखक का नाम तो मुझे याद नहीं किन्तु कहानी की थीम अभी तक याद है। एक ग्रामीण लड़का नौकरी की तलाश में शहर आता है और अपने परिवार के लिए बबुआ बन जाता है। शहर में

वह अपने बाबू और अम्मा को एक पत्र लिखकर शिकायत करता है कि उन्होंने क्या उसे उजले कपड़े पहनाकर और साबुन से नहला कर 'बाबू' बना लिया था। अब वह इन चीजों के बगैर नहीं रह सकता। साबुन की टिकिया और उजले कपड़े उस शहरी संस्कृति के प्रतीक हैं जिन्होंने लाखों लोगों को बेगाना बना दिया है— अपने परिवार के लोगों से और अन्त में अपने से भी' यह बेगाना पन (Self Alienation) औद्योगिक संस्कृति की देन है जिसने एक तरफ घोर व्यक्तिवाद को जन्म दिया है तो दूसरी तरफ श्रम विभाजन, यन्त्रीकरण और बड़े शहरों के कारण व्यक्ति अपने को अकेला और बेगाना महसूस करने लगा है।

स्वतन्त्रता के बाद तरुण लेखकों की नई पीढ़ी ने एक नये समाज को देखा जिसमें भाई-भतीजावाद, अवसरवादिता और स्वार्थपरता का बोलबाला था। आदर्शों की बातें करने वाले नेताओं का भी नया आचरण सामने आया। जीवन का एक नया 'पैटर्न' उभरा—जिसका मूलमन्त्र था—हर सूरत में 'सत्ता' हथियाओ, योग्यता अयोग्यता का कोई सवाल नहीं 'अपना' प्रचार करो, 'अपने' लोगों को हर जगह लगवाओ, उसके लिए उचित अनुचित साधनों का इस्तेमाल करो। 'सत्ता' पाने के लिए देशव्यापी दौड़ शुरू हुई। प्रेमचन्द के समय में यह दौड़ सरकारी दफ्तरों तक सीमित थी। अब स्कूल कालिज, विश्वविद्यालय, विधान सभायें, पार्लियामेण्ट, यहाँ तक कि जिला परिषदें और पंचायतें भी षड्यन्त्रों, गुटबाजियों के अखाड़े बन गये। लेखकों के मन में सवाल उठा क्या यही हमारी स्वतन्त्रता का वास्तविक रूप है?' जिन्हें नेक' और 'महान' समझा जाता था मुखौटाधारी निकले। पुरानी और नई दोनों पीढ़ियों के लेखकों ने मुखौटों के पीछे छिपे कुत्सित चेहरों का चित्रण अपनी रचनाओं में किया। लेकिन इस परिस्थिति के लिए दलबदलू नेता जिम्मेदार थे, साधारण लोग नहीं। जनसाधारण में उपदेशों और फतवेबाजियों के प्रति वितृष्णा पैदा हो गई थी और वह नाक भौं सिकोड़ कर कहने लगे थे 'सब साले चोर हैं"। लेकिन 'नयेपन' ने भी उनके मन में एक अतृप्ति और अकुलाहट पैदा कर दी थी। जीवन संघर्ष की जटिलताओं के साथ 'बेगानापन' भी बढ़ता जा रहा था।

शहरी जिन्दगी ने नये सवाल पैदा किये थे जिनका हल अभी तक नहीं निकला—पश्चिमी देशों में भी नहीं यहाँ तो माशा अल्लाह, अभी शुरुआत हुई है। ये सवाल मूलतः आर्थिक और मनोवैज्ञानिक हैं। शहरी जीवन में सबसे बड़ा सवाल है एडजस्टमेन्ट' का। मिसाल के लिए शिक्षिता नारियों की उस पीढ़ी को लीजिये जो आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होते हुए भी परतन्त्र है। वे जिन दफ्तरों में काम करती हैं उनका फर्नीचर तो आधुनिक जरूर है लेकिन उनके साथ काम करने वाले पुरुषों की आधुनिकता टेरेलीन' की बुशर्ट और 'डेक्रान' की पतलून तक ही सीमित है। उनके

नम्स्कार अभी तक सामंती है, नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण भी सामंती है, जिसकी अभिव्यक्ति अनेक स्तरों पर कटुता और कुंठा पैदा करती है। जहाँ पहले पुरुष वर्ग इन शिक्षित नारियों को ईर्ष्या और शंका की दृष्टि से देखता था अब वह शिक्षित नारियों का आर्थिक शोषण भी करने लगा है। काम करने वाली स्त्री को या तो माँ बाप शादी नहीं होने देते, या कोई उससे शादी करने को तैयार नहीं होता, या वह खुद ही शादी के लिए तैयार नहीं होती या शादी के बाद उसके ससुराल वाले उसे सताते हैं। चाहते हैं वह कमाकर भी लाये और नौकर की तरह घर का काम भी करे। इन समस्याओं पर हिन्दी में सैकड़ों अच्छी बुरी कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं कुछ ने शिक्षित नारियों से हमदर्दी दिखाई है तो कुछ ने उन पर 'सैटायर' के तीर चलाये हैं।

पाश्चात्य साहित्य विशेषकर शीतयुद्ध की साहित्यिक विचारधाराओं से प्रभावित होकर कुछ कहानीकार व्यक्ति के 'अजनबीपन' को मानवमात्र की नियति मानने लगे हैं कुछ एक कदम आगे बढ़ गये हैं और घोषित करते हैं कि 'बोरडम' और बेगानापन' इन्सान का जन्म सिद्ध अधिकार है और अल्ट्रा मॉडर्न बनने की अनिवार्य शर्त अस्तित्ववाद है। पूँजीवादी सभ्यता ने इन्सान की जिन पाशविक स्वार्थपरक प्रवृत्तियों को उभारा है, उन कुत्सित रूपों को ही वे इन्सान का असली रूप समझने लगे हैं। 'जीवन मूल्यों' "नैतिकता" और "प्रतिबद्धता" की चर्चा उन्हें नारेबाजी और दकियानूसी मालूम होती है। कुछ लेखक पुरानी पीढ़ी के लेखकों और आलोचकों पर पिल पड़े हैं, मानो सारी सामाजिक विषमताओं और अवसरवादिता के लिए पुरानी पीढ़ी ही जिम्मेदार हो कुछ लेखक तो इसलिए पुरानी पीढ़ी पर हमला करते हैं क्योंकि राजनीति के पैटर्न में यह जरूरी है कि आत्म प्रचार के लिए कोई नया आन्दोलन छेड़ा जाय कुछ इसलिए करते हैं क्योंकि यह फैशन है। किशोर लड़के लड़कियाँ अपने व्यक्तित्व को असर्ट करने के लिए, अपनी हीनभावना को छिपाने के लिए, अपने माँ बाप, परिचितों और रिश्तेदारों के लिए जिस किस्म की बकवास, झूठी और 'बुढ़ौती' बातें रस ले ले कर और पूरी 'ईमानदारी' के साथ करते हैं, उन बातों का सार ज्यों का त्यों लिखकर भी कहानी का शीर्षक दे दिया जाये तो कुछ लोगों को वह 'स्मार्ट' कहानी मालूम होगी, उसमें आधुनिकता के सारे तत्व होंगे (इसी तरह स्कूलों की आवारा पर लिखे गये अश्लील वाक्यों को भी कहानी में जोड़ कर उसकी आधुनिकता बढ़ाई जा सकती है)।

किशोरावस्था में हर लड़का और लड़की अपने को अनिवार्य और महान समझता है। उसे लगता है कि जीवन का सारा बोझ वही ढो रहा है और बड़े बूढ़े मरे जा रहे हैं। ऐसा ही दृष्टिकोण कुछ नये लेखकों ने अपनाया है जो साहित्य की धारा पर अमेरिका के जमाने तक के 'अच्छा' को 'इंडकलाब' करना चाहते हैं नई

कहानी के अनेक समपकों के समय समय पर प्रकाशित होने वाले वक्तव्यों का स्थायी स्वर यही है कि अब तक जो लिखा गया है वह असली साहित्य नहीं है, पाठकों को धोखे में रखा गया है।

पहले 'नई' और 'पुरानी' कहानी का सवाल उठाया गया था, 'आंचलिक' और 'शहरी कहानी' का सवाल उठाया गया था और अब 'नई' और 'पुरानी' पीढ़ी का सवाल उठाया जा रहा है, लेकिन हकीकत यह है कि स्वतन्त्रता के बाद की अविस्मरणीय कहानियों में पुराने लेखकों की कहानियाँ भी हैं और नये लेखकों की भी, इस तरह बाजी और मेखलबाजी से अलग, कोई भी पाठक जानता है कि पुरानी पीढ़ी के लेखकों ने भी नई चीजों पर नई नई कहानियाँ लिखी हैं और 'नई' कही जाने वाली कहानियों में भी 'पुरानापन' है। कुछ बरस पहले उषा प्रियम्वदा की 'वापिसी' कहानी को 'नई' कहानी घोषित किया गया था। लेकिन अगर उस कहानी पर उषा प्रियम्वदा की जगह चद्रकिरण सौनरिक्सा का नाम होता तब भी उस कहानी की श्रेष्ठता कम न होती क्योंकि चद्रकिरण सौनरिक्सा ने भी इसी शैली में अनेक उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी हैं। 'आधुनिकता' और व्यक्तिवाद के गढ़ अमरीका में रह कर भी उषाप्रियम्वदा और सोमावीरा की कहानियों में परम्परागत भारतीय जीवन के मूल्यों के प्रति जो 'नास्टल्जिया' है, वह 'नयेपन' का लक्षण है या दकियानूसी' होने का ?

जिस तरह 'टरलीन' की बुशर्ट, और अंग्रेजी में बातचीत एक प्रकार से अपने कचरी बाबू संस्कृति की प्रतीक बन गई है उसी तरह कई बार दाम्पत्य और सेक्स की समस्याओं का चित्रण करते समय विदेशी शराबों के मूचीपत्र, और खाने की चीजों के नामों की किलेबन्दी के बावजूद हिन्दी कहानीकार का सामंती संस्कार 'ग्राम्यदोष' बन कर बाहर झाँकता है तो शिक्षित पाठक को कोफ्त होती है, लेकिन लेखक बेचारा क्या करें जब जाने माने समीक्षक एक तरफ तो शिकायत करते हैं कि हिन्दी में मैथ्यू आर्नल्ड, टी एस इलियट और एफ आर लीविस पर अधिकारपूर्ण चर्चा नहीं होती और उसी लेख में यह वाक्य पढ़ने को मिलता है "शेक्सपीयर के नाटकों में सामान्यतया और मकबेथ के 'टू बी और नोट टू बी' से शुरू होने वाले अवतरण में निहित चिन्तन या चेतना 'मेटाफिजिकल' कोटि की नहीं है। (डाक्टर देवराज विश्व के समीक्षकों के बीच 'ज्ञानोदय' अगस्त अंक) गनीमत है कि अभी भी स्कूलों कालिजों में शेक्सपियर पढ़ाया जाता है। 'टू बी आर नोट टू बी' वाली पंक्तियाँ 'हैमलेट' में हैं 'मैकबेथ'' में नहीं।

नये कहानीकारों में भी ऐसे लेखक हैं जो आस्थावान रचनायें लिख रहे हैं, और आज की शहरी संस्कृति के अमानवीय पहलुओं और आधुनिकता के आडम्बर तले छि

हुए दुश्चरित्र का चित्रण कर रहे हैं। वातावरण के बावजूद उन महान रचनाओं की तलाश कर रहे हैं जो आज भी इन्सान को दूसरे इन्सान से बांधे हुए हैं।

उधर नवशिक्षितों की संख्या लाखों तक जा पहुँची है, इनके लिये पुरानी और नई दोनों पीढ़ियों के साहित्यकार 'बेकार' हैं और फुटपाथों पर बिकने वाली सस्ती पत्रिकायें और पुस्तकें उनके मनोरंजन और ज्ञानपिपासा की तृप्ति का एकमात्र साधन हैं, यदि इन पुस्तकों के लेखक संगठित हो कर प्रचार शुरू कर दें—'असल नये हम हैं क्योंकि हम सबसे ज्यादा बिकते हैं और हर प्रकार के दायित्व से मुक्त हैं, अपने को 'महान' घोषित करने वाले बुजुर्ग और नये कहानीकारों की पुस्तकें दो हजार कापियों से अधिक नहीं बिकतीं' और मान लीजिये विश्वविद्यालयों में भी इन्हीं लेखकों की दुनिया पर नाम पर लिए जाने लगें तब? राजनीति के पैटर्न में सब कुछ सम्भव है आज का असाहित्य कल 'श्रेष्ठ साहित्य' घोषित हो सकता है।

इस लेख का अभिप्राय नये कहानीकारों का मूल्यांकन प्रस्तुत करना नहीं है क्योंकि हर युग की सूची अलग होती है परन्तु सूचियों को समाप्त करना यहाँ मेरा अभीष्ट नहीं है कहने का मतलब यह है कि भारतीय जीवन की समस्यायें आज जो सामने आई हैं, उन नई और पुरानी दोनों पीढ़ियों का हर लेखक अपने संस्कारों, समझ और रुचि के अनुसार प्रस्तुत कर रहा है। और अच्छी बुरी कहानियाँ लिख रहा है, पाठक की दृष्टि में कहानी अच्छी या बुरी होती है चाहे वह नई कहानी हो या पुरानी कहानी हो। सामन्ती परम्परायें आज भी कायम हैं जैसी कि प्रेमचन्द के समय में थीं, गरीबी, शोषण भी ज्यों के त्यों हैं, सिर्फ उनकी 'कास्ट्यूम्स' बदल गई हैं भूमिका वही है।

आज लेखक को अपनी भूमिका निश्चित करना है अपने दायित्व का दायरा निर्धारित करना है और यह फैसला करना है कि वह इन्सान को रोते न रहकर मात्र स्टाकर बूढ़ा में शामिल होना चाहता है या अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा करना चाहता है जो हर युग में सच्चा और ईमानदार लेखक करता है।

अस्तित्ववादी दर्शन को तोड़मरोड़ कर जिस विकृत रूप में हिन्दी साहित्य में पेश किया गया है उतना शायद किसी देश में नहीं किया गया होगा। अस्तित्ववादी जीवन में सही चुनाव (Choice) पर जोर देते हैं लेकिन शुद्ध और उचित के बीच उचित के चुनाव की बात करते हैं किन्तु हिन्दी के 'नये' मसीहाओं के फतवों का स्वर स्पष्ट है कि यदि लेखक शुद्ध को चुनता है तो वह आधुनिक है, उचित को चुनता है तो वह परिपाटीग्रस्त है, परम्परा, कुण्ठा और नैतिकता का अस्वीकार करना दकियानूसी अनुमान है, यह महानता और मानवद्रोह आधुनिकता का साक्षात्कार है, अब मात्र

का जीवन और कृतित्व इस बात का साक्षी है कि वे दिन प्रतिदिन 'प्रतिबद्धता' और 'दायित्व' के निकट आते रहे।

आधुनिकता का भावबोध, दो चार विदेशी पत्रिकाओं में छपे लेखों का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करके, पाठकों पर रौब जमाना नहीं, बल्कि अपने युग की समस्याओं को समझकर आत्मसात करना है।

प्रेम-कहानियों का बदला हुआ स्वरूप

श्रीकान्त वर्मा

सब चीजें इतनी तेजी से बदल रही हैं कि धीरे-धीरे 'बदलना' भी एक अर्थहीन शब्द में बदला जा रहा है। बदलती हुई दुनिया, बदलते हुए मूल्य, बदलता हुआ मनुष्य, बदलती हुई भाषा। लगता है हम लगातार कपड़े बदल रहे हैं और जब तक अपने कपड़ों पर खुश होकर दर्पण के सामने खड़े होते हैं तब तक हमें खुद अपने कपड़े गन्दे लगने लगते हैं। और हमें नये बिल्कुल नये कपड़ों की जरूरत महसूस होने लगती है। मेरा अभिप्राय सिर्फ यही है कि स्त्री को साड़ी बदलने में जितना समय लगता है, सम्बन्ध बदलने में उससे भी कम वक्त लगता है।

सम्बन्ध बदलते हैं और सम्बन्धों के साथ-साथ भाषा बदल जाती है। तमाम दुनिया की भाषा कुल मिला कर स्त्री-पुरुषों की बातचीत है, जो उनके सम्बन्धों के मुताबिक बदलती रहती है। एक समय आता है जब दोनों एक-दूसरे की भाषा समझने में असमर्थ हो जाते हैं और तब भाषा नहीं रह जाती, आत्मालाप रह जाता है, आत्म यन्त्रणाएँ और आत्म रतियाँ रह जाती हैं।

लोग इतनी तेजी के साथ आत्मरति की ओर बढ़ रहे हैं कि इसे ध्यान में रखते हुए मैं यह भी कह सकता हूँ कि हमारी प्रेम करने की क्षमता नष्ट होती जा रही है। लेकिन ऐसा कहने के बाद फिर मनुष्यता के लिए कुछ और कहने और सोचने की गुंजाइश नहीं रह जाती। तब केवल यही कहना शेष रह जाता है कि आगे ही दिनों में मनुष्य 'प्रेमविहीन रोबॉट' होकर रह जाएगा। मैं ऐसा नहीं सोचता। अन्धकारमय दुनिया में भी, गैस चैम्बर में भी, तलुवन के घावों से मरते हुए भी मनुष्य के भविष्य में विश्वास मैं करता आत्मवंचना नहीं है, लेकिन अगर होती, तब भी यह विश्वास करना पूरी तरह मान्य होता।

प्रेम अब भी एक जादुई शब्द है और उसे सुनकर अब भी हमारी धड़कन 'न एक और हो' धड़कन गुनाह पर जाती है। अन्तर केवल इतना है कि अब वह मासूमियत से 'नया हुआ एक पत्ता बीमार और एकांगी शब्द नहीं रहा, बल्कि वह एक स्वतन्त्र व्यापार मनुष्य के सबसे कोमल अनुभव के रूप में स्पष्ट होता जा रहा है। उसकी व्याख्याएँ सामने आ रही हैं।

स्त्री जब तक केवल एक समर्पिता थी, तब तक प्रेम केवल एक जनाना शब्द लगता था। लगता था केवल स्त्रियाँ ही प्रेम करने और दुख भोगने के लिए पैदा हुई हैं, क्योंकि तब तक प्रेम का अर्थ केवल देना था। शरतचन्द्र और जैनेन्द्र कुमार की आँसू भीगी नायिकाएँ केवल देने के लिए पैदा हुई थी। लेकिन अब ये रचनाएँ ही नहीं, ये स्त्रियाँ भी केवल औपन्यासिक लगती हैं। इसका कारण है। जिन स्त्रियों ने अपनी युवावस्था में इन कहानियों को पढ़कर अपने दुख से पहली बार साक्षात्कार किया होगा, अब वे नहीं रहीं। उनका स्थान एक आत्मसजग स्त्री ने ले लिया है जिससे निपटना पुरुष के लिए ही नहीं, कहानीकार के लिए भी कठिन हो गया है।

शरतचन्द्र की नायिकाएँ अब भी हैं, मगर आधुनिकता से अछूते उन अंचलों में, जहाँ स्त्री की दिनचर्या नहीं बदलती है और उसकी नियति में परिवर्तन नहीं हुआ है। सब कुछ निश्चित बल्कि पूर्व निश्चित चला आ रहा है।

संकट उस शिक्षित और समृद्ध समाज में है, जिसके स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों में एक नये प्रकार की उथल पुथल चल रही है और जिसके कारण एक नये किस्म की अनिश्चितता ने जन्म लिया है। प्रेम पहले भी, हमेशा से ही, अनिश्चित था। मगर प्रेम से पैदा होने वाले सम्बन्ध निश्चित थे। अब प्रेम भी अनिश्चित है और प्रेम से पैदा होने वाले सम्बन्ध भी। कुछ भी निश्चित नहीं। सबसे बड़ा संकट यही है।

यह संकट लोकतन्त्र ने, जनवादीकरण ने, अपने अधिकार ही नहीं बल्कि अपने अस्तित्व के प्रति सजगता ने पैदा किया है। लेकिन यह लोकतन्त्र यह जनवादीकरण यह सजगता—सभ्यता ही नहीं, मनुष्यत्व का उत्कर्ष है, इसलिए इस संकट को भी उसकी मानव परिणति के रूप में भगतना ही नहीं होगा स्वीकार करना होगा। इससे कोई मुक्ति नहीं। यह अनिश्चितता, यह नियतिहीनता, एक नई विवशता है, एक नई परत नता है। और शायद यह जरूरी थी मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने के लिए। सम्पूर्ण स्वाधीनता की तर्कसंगत परिणति यह नयी पराधीनता ही है।

वास्तव में हमारा प्रेम दो स्वाधीनताकामी व्यक्तियों का प्रेम है। स्वाधीनता अन्त में निरर्थकता तक पहुचती है और प्रेम भी आखिर में निरर्थकता तक ही पहुचता है। मगर आज का सारा साहित्य स्वाधीनता और प्रेम के संघर्ष का साहित्य है। लड़ाई स्त्री और पुरुष के ही बीच नहीं चल रही है, बल्कि दोनों के अन्दर अलग अलग भी यह संघर्ष चल रहा है।

अपने को स्वीकार करते हुए दूसरों को स्वीकार न कर पाना ही सब से बड़ी विडम्बना है। हम जैसे जैसे अपने को स्वीकार करते जाते हैं, वैसे वैसे दूसरे को स्वीकार कर पाने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। मगर इससे भी बड़ी विडम्बना यह

है कि हम दूसरे को न तो पूरी तरह स्वीकार कर पाते हैं न पूरी तरह अस्वीकार। इस स्वीकार और अस्वीकार के बीच एक भयानक छटपटाहट है और यही आज के स्त्री पुरुषों की नियति है। प्रेम अर्द्ध-स्वीकृति है या अर्द्ध-अस्वीकृति यही पता कर सकना कठिन हो गया है। छूटे हुए व्यक्ति के बारे में यह फैसला कर पाना मुश्किल हो गया है कि हम सचमुच कभी उनसे जुड़े भी थे या नहीं। अगर हम कभी उनसे जुड़े भी थे, तब भी हम उसे झुठलाना चाहते हैं क्योंकि यह अनुभव करना कि हम उनसे जुड़े थे, अपनी यन्त्रणा को और भी गहरा करना है।

सारी कोशिश यन्त्रणा से पलायन कर एक आसान सुख प्राप्त करने की है यह जानते हुए भी कि यन्त्रणा से कोई मुक्ति नहीं। इसीलिए पश्चिम की तमाम प्रेम कहानियों का अन्त कोई थियेटर या कोई आसानी से प्राप्त हो जाने वाली स्त्री, कोई उन्मत्त बिताई हुई रातें या कोई और दूसरा दृश्य है, हालांकि कहानी के अन्त में उन कहानी के स्त्री-पुरुषों के मुंह में एक अधूरा स्वाद रह जाता है—यह अहसास रह जाता है कि यह अन्त कहानी का है उनका नहीं। उनके आगे एक अकेलेपन का आत्महीनता का समूचा जीवन पड़ा हुआ है।

प्रेम में भी अकेलापन है और अकेले न रह पाने की स्थिति भी प्रेम है। अपने से घबराकर भी लोग प्रेम कर रहे हैं। राजकुमार की कहानियों की तरह अपने ही भीतर के समुद्र पर बह रहा एक काठ का विशालकाय टुकड़ा है। अपने डूबने की आशंका से घबरा कर हम एक अनजानी स्त्री को उंगली पकड़े हुए हैं और वह तब तक—जब तक कि बन्दरगाह नहीं आ जाता। और वह उतार कर चली नहीं जाती। हम कहां जा रहे हैं या वह किधर चली गयी इसका पता हमें नहीं। केवल अपनी उंगली फिर से अकेली, शायद पहले से अधिक अकेली रह जाने का बोध रह जाता है। प्रेम का नैतिक पक्ष या नैतिक परिणति अब बहुत कुछ नहीं रही। केवल उसका भावनात्मक अर्थ रह गया है।

प्रेम की कोई नैतिकता नहीं। मगर प्रेम सब से बड़ा नैतिक अनुभव है। हम लोग हर चीज को सामाजिक क्रिया के रूप में देखने के आदी हो चुके हैं यहां तक कि बिल्कुल आत्मीय अनुभवों को भी—एक ऐसे अनुभव को जिसकी कोई सामाजिक व्याख्या नहीं हो सकती। यही कारण है कि अपनी ही आंखों-देखी और आज ही आयी पढ़ी प्रेम-कहानियां भी समझ में नहीं आतीं। और अगर आतीं भी हैं तो केवल विकृत सम्बन्धों की कहानियों के रूप में। आज आधुनिक साहित्य यदि आज एक नहीं, अनेक आचरणों द्वारा विकृत और अनैतिक ठहराया जा रहा है तो उसका कारण यही है कि वे यह समझ सकने में असमर्थ हैं कि प्रेम केवल एक अनुभव

है। उसकी नैतिक या अनैतिक परिणति कुछ भी नही। अगर उसकी कोई परिणति है तो वह केवल परिणति है। उसके आगे अनैतिक या नैतिक विशेषणो का प्रयोग अनावश्यक ही नही, गलत है। एक धनी प्रौढा स्त्री और एक नवयुवक के प्रेम को कहानी केवल एक प्रेम कहानी है या एक विकृत और अनैतिक सम्बन्धो की कहानी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि लेखक ने उसका निर्वाह किस रूप मे किया है। लेकिन यदि लेखक ने अपनी कहानी का निर्वाह एक प्रेम-कहानी के रूप मे किया है, तब भी व्याख्याकार उसकी व्याख्या एक 'शोषक स्त्री' और एक 'मेल प्रास्टिट्यूट' की कहानी के रूप में कर सकते हैं। लेकिन यह भी उतना माघातिक नही—हम इस कहानी की भ्रामक व्याख्या कह कर टाल सकते है—जितना यह आरोप कि ये अनैतिक सम्बन्धो की विकृत कहानिया है या विकृत सम्बन्धो की अनैतिक कहानियाँ हैं। अनीति और विकृति का मुकदमा चला कर जिन असाधारण कलाकृतियो पर प्रतिबन्ध लगाया गया और जो बाद मे एक समूचे पाठक वर्ग की सवेदना मे विकास और परिष्कार के *फलस्वरूप रिहा हुई, वे सब से मानवीय अनुभवो की कहानियाँ थी। मनुष्य का सब से* मानवीय अनुभव—प्रेम—सब से निवसन होता है। किसी प्रेम कहानी को अश्लील *ठहराते समय आलोचक को पहले यह फैसला कर लेना चाहिए पर वह यह फैसला* नही कर पाता कि कही ऐसा तो नही है कि उसे अश्लीलता से उतनी चिढ नही, जितना कपडो से मोह है। *आलोचक का स्थान शौकीन स्त्री का 'वार्ड्रोब' नही* होना चाहिए।

प्रेम एक अनिर्णय की स्थिति है। अनिर्णीत स्त्री पुरुषो के सकल्प विकल्प, राग प्रतिराग की एक दीर्घ मन स्थिति जो अनुभव के धरातल पर ठहरी हुई है। लेकिन वह दरअसल ठहरी हुई भी है या नही, इसका निर्णय कर सकना भी कठिन है। वह ठहरी हुई शायद है, लेकिन अपने आप नही तीसरे गवाह की प्रतिक्षा मे। प्रतिक्षा के अतिम क्षण मे यह 'तीसरा गवाह' उपस्थित नही होता और गवाह' के गुम होने के क्षण के झुटपुटे मे सब कुछ खो जाता है। जो खो जाता है वह भी सकल्प है और जो उपस्थित नही हुआ वह भी सकल्प था। स्वय सकल्प ही अपना गवाह था, जो दो के बीच मे 'तीसरे' की तरह बैठा हुआ था और जब उसकी तलाश हुई, तो वह उठकर कही और चला गया। हाजिर ही नही हुआ।

लेकिन इस गैर हाजिरी को हम कहानी के माध्यम से समझते हैं। हमारे अपने जीवन मे वह कौनसी चीज थी जो उठकर चली गयी या क्या वह सचमुच ही *थी, हम मालूम नही कर पाते। प्रेम-कहानी इसकी व्याख्या नही करती, बल्कि व्याख्या* के लिए एक अनुभव के लिए एक कहानी छोड जाती है, जैसा कि 'तीसरा गवाह' कहानी करती है।

यह मनिर्णय ही नया मन स्थिति है, बल्कि धीरे धीरे वह आधुनिकता के पर्याय के रूप में बदलता जा रहा है। इसका कारण शायद यह है कि स्वयं हमारे होने में ही एक संकट है। यह संकट पहले भी रहा होगा। मगर पहले शायद वह और किसी नाम से पुकारा जाता होगा। शायद मृत्यु के नाम से। मगर अब उसे हम युद्ध के नाम से नहीं, प्रेम के नाम से युद्ध के नाम से, महत्वाकांक्षा और घृणा के नाम से पुकारते हैं।

न जाने कितने हजार वर्षों की धार्मिक और नैतिक आस्था से उत्साहित मनुष्य ने अपने कन्धों से मारा का मारा जुआ उतार फेंका है। एक हद तक वह अनैतिहासिक भी हो गया है। मैं यह नहीं मानता कि इस आस्थाहीनता का अगला कदम 'आत्मघात' है। अपने में बड़ी किसी शक्ति में इस आस्थाहीनता की परिणति आत्मघात नहीं है बल्कि एक नयी आस्था की खोज है—अपने आप में आस्था। शक्ति अपने आप में पा सकने की बड़ी कोशिश है और इस के लिए कई शताब्दियाँ तय करनी होंगी। और जब तक यह नयी आस्था प्राप्त नहीं हो जाती तब तक अपनी असहायता निराधारता से घबरा कर युद्ध, प्रतिहिंसा, घृणा और उत्पीड़न के नये-नये धरातल हमारे सामने से दर उभरते रहेंगे।

इतिहास का यह अद्भुतपूर्व स्थिति है। जो मनुष्य सामने खड़ा है या गिर रहा है या झुक रहा है या रो रहा है या रेंगता जा रहा है, उसे न अपने से बड़ी किसी शक्ति पर विश्वास है न स्वयं में आस्था। वास्तव में वह बिल्कुल निराधार है। उसकी घृणा भी निराधार है और उसका प्रेम भी।

प्रेम करते हुए, प्रेम के अनुभव से समृद्ध होते हुए भी उसे पता ही नहीं चलता कि वह किसे प्रेम कर रहा है? पास बैठी हुई स्त्री को या जो वहाँ नहीं है बल्कि है ही नहीं, उस स्त्री को, या अपने आपको। एक स्त्री दो व्यक्तियों से प्रेम कर रही है। एक कमरे में है दूसरा शहर में। जो कमरे में है, उसमें वह पति भाव की प्रति मूर्ति रखती है और जो शहर में है उसमें कमरे वाले की। वह एक से दूसरे की कल्पना करती है या दोनों उसे प्यार करते हैं। शायद दोनों उसे प्यार करते हैं, मगर वह केवल अपने-आपको। और इस ख्याल से घबराकर कि वह दोनों में से किसी को प्यार नहीं करती, वह दोनों का प्यार करने की कोशिश करती है। मगर न कमरे में जो है न शहर में। इसलिए वह कुछ भी नहीं कर पाती।

यही सबसे बड़ा ट्रेजेडी है—इतना बड़ा न कि दोनों में बड़ा को न होना। सारे सम्बन्ध इसलिए अचिर सम्बन्धों की कहानियाँ हैं। यह नहीं कि इन सम्बन्धों में

ईमानदारी नहीं। जब तक यह सम्बन्ध रहा, तब तक पूरी ईमानदारी के साथ एक-एक क्षण के स्वर्ग और नरक की रचना की। मगर एक दिन यह सम्बन्ध एक ठूँठ में बदल गया और फिर कुछ भी अनुभव करने से वे वंचित हो गये।

ये वंचित और ठूँठ स्त्री-पुरुष हैं, जो बार-बार अपने अनुभव को रचने की सफल और नाकाम कोशिश कर रहे हैं।

प्रेम की मनोदशाएँ ही प्रेम का एनाटमी हैं। यह अजीब व्यंग्य है कि बड़े कथाकार बड़ी-बड़ी चीजें पहचान लेते हैं, मगर छोटी-छोटी चीजों और उन सूक्ष्म धड़कनों को नहीं सुन पाते जिनके नजर अन्दाज होने से हम यह नहीं समझ पाते कि इस अनुभव की बुनियाद कहाँ थी। जैसे एक महावृक्ष में तमाम शाखाएँ हों, मगर वे पत्तियाँ न हों, वैसे ही प्रेम की भारी भरकम कहानियों में सारा पराक्रम है, मगर वे पत्तियाँ नहीं हैं जिनमें छन छनकर हवा आती या जिनके होने से पेड़ हरा और जीवित दिखाई पड़ता।

प्रेम-कहानियों की जड़ ये पत्तियाँ ही हैं, और कहीं उनकी जड़ नहीं। एक एक पत्ती एक जड़ है, और किस पत्ती के हिलने से या झरने से समूचे पेड़ में परिवर्तन हो गया इसे एक कथाकार ही समझ सकता है।

कहानी-कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण एक छोटी-सी कहानी 'आफ्टर' (प्रबोध कुमार 'कृति' अगस्त १९६१) की कहानी यह है कि एक लड़की एक परिचित डाक्टर की दुकान पर दवा लेने आई हुई है। डाक्टर उससे घरेलू बात चीत कर रहा है और यहाँ-वहाँ के सवाल कर रहा है और वह अदब के साथ सुन रही है। मगर थोड़ी ही देर में डाक्टर उससे प्रेम निवेदन करने लगता है और अपने आप यह अन्ध टूट जाता लड़की का समूचा व्यवहार मौसम की तरह अचानक बदल जाता है। अभी जो लड़की सहमी हुई-सी बात कर रही थी, सजग हो जाती है डाक्टर में अपना एक अधिकार प्राप्त कर लेती है और अपना अधिकार जताते हुए कहती है—अब वह नहीं आ सकेगी वह खुद आए। एक ही क्षण के इस अनुभव में पड़कर लड़की एक और ही लड़की में बदल गयी। डाक्टर प्रार्थी हो गया और लड़की डाक्टर से बड़ी हो गई। यह अचानक वयस्क हो जाना, सजग हो जाना, दूसरे से ही नहीं, अपने से भी बड़ा हो जाना ही प्रेम था।

प्रबोध कुमार ने व्यवहार में परिवर्तन के जरिये सम्बन्धों के परिवर्तन की कहानी लिखते हुए जो काम लिया है एक दूसरे धरातल पर अर्थात लगातार बदलती हुई मन स्थितियों के चित्रण के धरातल पर अपनी कहानियों में वही काम निर्मल वर्मा ने किया है। निर्मल वर्मा की कहानियाँ प्रेम की प्रक्रिया की कहानियाँ हैं और

वस्तुत आधुनिक कहानियों को प्रेम-कहानी कहना ठीक नहीं। उन्हें प्रेम की प्रक्रिया का कहानी कहना चाहिए।

निर्मल वर्मा ने कर्म से अधिक महत्व मन स्थिति को क्या दिया, यह स्वय एक महत्वपूर्ण सवाल है। मन स्थिति का यह उतार-चढ़ाव यह सगीत, यह चित्र वास्तव म केवल कहानी म एक नयी बुनावट पेश करने की कोशिश है या यह इस लिए है कि कर्म है ही नहीं, सारा-का-सारा प्रेम केवल एक आन्तरिक लय की तरह है, जो कहीं पर मरुस्थल म गायब हो जाने वाली नदी की तरह गायब हो जाता है और कहीं पर फिर अचानक उभरकर बहने लगता है।

मगर 'परिन्दे' म सग्रहीत प्रेम-कहानियों की खूबी यह है कि उनकी बुनावट म सगीत है उनम बिम्ब हैं चित्र हैं तो ये बहुत साधारण कहानियाँ हैं, अधिक-से अधिक उन्हें कारीगरी कहा जा सकता है, और यह किसी भी समय का और कोई भी कलाकार कर सकता था। लेकिन इन कहानियों की खूबी यह नहीं, बल्कि यह है कि इन्हें पढ़ते हुए एहसास होती है और पहली बार यह अनुभव होता है कि प्रेम एक एहसास से भरा हुआ अनुभव है। सारे पात्र निष्क्रिय हैं और उन सबका एक निष्क्रिय ससार है। यह ससार इसलिए निष्क्रिय नहीं कि करने को कुछ भी नहीं है, बल्कि इसलिए निष्क्रिय है कि हर कुछ करने की अन्तिम परिणति निरर्थकता है। इन कहानियों के तमाम स्त्री पुरुष इस निरर्थकता के अनुभव और पूर्वानुभव में जी रहे हैं। सचमुच ही इन स्त्री-पुरुषों को देखकर डर लगता है। लेकिन ये स्त्री-पुरुष, ये सभी पात्र मनुष्य की कल्पना नहीं हैं, किताबी व्याख्याएँ नहीं हैं, बल्कि आधुनिक ससार के मनुष्य से साक्षात्कार हैं।

यह निष्क्रियता, यह निरर्थकता, यह उखड़ापन मनुष्य को कहाँ ले जाएगा या उसकी अन्तिम सामाजिक और राजनीतिक परिणतियाँ क्या होंगी, यह एक अलग बहस का विषय है। व्यक्तिगत रूप से मैं यह नहीं मानता कि यह निरर्थकता मनुष्यता का अन्तिम भविष्य है। मैं यह भी नहीं मानता कि निरर्थकता का यह अनुभव मनुष्य को इतिहास में पहली बार हो रहा है, लेकिन यह जरूर है कि यह अनुभव मनुष्य को अब और अधिक तीव्र ढंग से हो रहा है। जब भी कोई सस्था टूटती है चाहे वह धर्म हो या कुछ और, उन सस्थाओं के सम्बन्ध मनुष्य को अपने अस्तित्व की निरर्थकता का अनुभव होता है। फिलहाल सारी सस्थाएँ टूटी हुई हैं। मगर यदि कोई नया सस्था गढ़ती है तो पहले यह स्वीकार करना होता है कि अब तक जो सस्थाएँ थीं वे नहीं रहीं। कोई भी नया ज्ञान तभी उभार होता है जब हम यह पूरी तरह अनुभव कर लेते हैं कि अब जो नयी मानव-स्थिति मानते हैं, उनके आगे अब तक के सारे

दशन फीके बल्कि झूठे पड रह है। लकिन जब तक हम अपन लिए, मनुष्य के लिए कोई नया दर्शन, कोई नया अर्थ नही ढू ढ लत, तब तक यह बमतलब जिन्दगी ही जिन्दगी है।

मनुष्यता के लिए एक नये दशन की खोज कोई एक मनु य नही करता, बल्कि सारी मनुष्यता करती है। मनुष्य के अन्दर एक सकट की शुरुआत स्वय एक खोज की शुरुआत है। हर नया दशन मनुष्य के आत्मसघष की परिणति है। चू कि साहित्य भी मनुष्य क आत्मसघष की आत्माभिव्यक्ति है, इसलिए उसकी भी परिणति दशन है। लकिन वह अभिव्यक्ति दशन की नही इस आत्मसघर्ष की, इस सकट की ही है। हम यह कह सकते है कि अगर साहित्य नही होता अर्थात् मनुष्य का आत्म सघष नही होता तो दशन नही होता। इसीलिए दशन साहित्य से छोटा शब्द है।

साहित्य मे यह माग कि वह झूठी पड रही विचारधाराओ, सस्थाओ और सम्प्रदायो को साख रखने क लिए उन नयी मानव-स्थितियो को झुठलाए, जिनक कारण य सस्थाएँ और विचारधाराएँ झूठी पड रही हैं, न केवल साहित्य-विरोधी है बल्कि स्वय मनुष्य-विरोधी है।

आज क मनुष्य का प्रेम सबसे नयी मानव-स्थिति है और आज क प्रेम का कहानियाँ सबसे नयी मानव-स्थितियो का कहानियाँ हैं।

प्रेम एक अनुभव है, लेकिन उसके अ दर न जाने कितन अनुभव हैं। घृणा, रति, आत्मरति प्रतिहिंसा, दाह दुख, आन द। कोई अनुभव नही जो प्रेम क अनुभव म नही। इसीलिए प्रेम के अनुभव स गुजरने के बाद सारा अस्पष्ट ससार स्पष्ट हो जाता है।

लकिन ऐसा नही है कि प्रेम के भीतरी अनुभव बिल्कुल नये अनुभव हैं। ये आदिम अनुभव हैं और हमशा रहगे। मीडिया, इलेक्ट्रा और हुकाव क चरित्र, व्यक्तित्व और प्रेम म जो पाप शाप और प्रतिहिंसा थी, वह आज की हर स्त्री के व्यक्तित्व मे है। केवल इनकी परिणतिया बदल गयी हैं। प्रतिहिंसा की परिणति अब अनिवायत हत्या नही, घृणा की परिणति अब जरूरी नही कि युद्ध ही हो। सभ्यता न मानवीय प्रवृत्तियो की सामाजिक परिणतियाँ बदल दी है और हर रोज बदल रही हैं कानूनी तौर पर बदल रही हैं। मगर कानून परिणतियो का बदल सकता है भीतर की दुनिया को नही। चूँकि भीतर की दुनिया नही बदली जा सकती और बाहर की दुनिया बदल रही है, इसलिए बाहर और भीतर की दुनिया म एक असगति है। इस असगति की पैदायश है न्यूरोसिस। स्त्री और पुरुष के सबध म आज अधिक असगति है, इसलिए स्वय प्रेम म एक न्यूरोसिस है। स्त्री का मन अधिक नाजुक है, यथार्थ

से सारी बैठा सकने में प्रतिरोध प्रतनय है मत स्त्री में यह न्यूरासिस अधिक है।

इन्हीं कारणों से आधुनिक प्रेम-कहानियों में अधिकाधिक न्यूरासिस है। और इसलिए इन प्रेम-कहानियों में स्त्रियाँ न्यूरोटिक जान पड़ती हैं। वे जान ही नहीं पड़ती हैं न्यूरोटिक हैं। न्यूरासिस कई चीजों का हो सकता है। मगर आज के मनुष्य का सबसे बड़ी न्यूरासिस है प्रेम।

प्रेम की दुनिया अनिश्चित है। मगर प्रेम अपने आप में एक अधूरा अनुभव नहीं। जो बात शकुन्तला के विषय में कही गयी वही प्रेम के विषय में कही जा सकती है कि प्रेम स्वर्ग और नरक का मिलन-स्थल है। 'मिलन' प्रेमियों का सबसे प्रिय शब्द है। लगता है स्वर्ग और नरक में भी एक धरातल पर एक-दूसरे के प्रति भयानक, अनजाना और तर्कातीत आकर्षण है और वे एक जगह पर आकर मिलते हैं। जिस जगह पर आकर मिलते हैं वही जगह प्रेम है।

शकुन्तला स्वयं प्रेम का एक समूचा अनुभव है, समूची कविता है समूचा सगीत है। प्रेम की परिभाषा अगर किसी भी केवल एक शब्द में की जा सकती है, तो वह शब्द है शकुन्तला। प्रेम की वेदना और प्रेम का सुख, दोनों ही केवल एक शब्द में परिभाषित होकर रह गये हैं। प्रेम की जिन्दगी यह नियति दो धार की धार। हर प्रेम में दुर्भाग्य की यह धार है, लेकिन अगर यह धार न होती तो प्रेम एक अधूरा अनुभव होता और अधूरा अनुभव और कुछ भी हो प्रेम नहीं हो सकता।

लेकिन यह भी एक सत्य ही है कि प्रेम अधूरा नहीं, लेकिन हमारी (हिन्दी की) अधिकांश प्रेम कहानियाँ बहुत हद तक अधूरी हैं। वे अधूरी हैं क्योंकि वे सेक्स विहीन हैं। अब भी ऐसा लगता है कि सेक्स को हम एक मानुषिक रूप में स्वीकार नहीं कर पाये। इसलिए हमारे यहाँ सेक्स की कहानियाँ और प्रेम की कहानियाँ अलग हैं। जो सेक्स की कहानियाँ लिखते हैं उनकी रुचि ही नहीं, प्रतिभा भी परिपक्व एवं बाजारू किस्म की है। और वे बाजारू होने के लिए ही पैदा हुए थे। या फिर सेक्स की समस्या मूलक कहानियाँ हैं, जैसा कि यशपाल ने लिखी हैं। मगर उनमें भी सेक्स नहीं है, सेक्स की समस्या है। या जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ हैं जिनमें न तो मुलायम है न निषेध, बल्कि सेक्स के प्रति एक अस्वस्थ दृष्टिकोण है, एक गोंजी हुई सी दृष्टि है। 'अज्ञेय' ने जरूर अपने साहित्य में सेक्स को उसकी कविता और सुन्दरता दिया है। मगर समूचे हिन्दी साहित्य पर सेक्स की दृष्टि से दृष्टि डालना एक निराशाजनक अनुभव ही है।

कहानी में सेक्स का अर्थ अनिवार्य नहीं कि अश्लील हो ही। सेक्स के बारे हुई कहानी सेक्सविहीन हो सकती है।

जैसे एक स्त्री की उपस्थिति मे समूचे वातावरण मे एक उष्णता और गुनगुनाहट आ जाती है, वैसे ही कहानी की बुनावट म सेक्स की उपस्थिति से एक उष्णता आ जाती है। यह उष्णता हमारी कहानियो म नही है।

० ० ०

प्रेम कहानियो के विषय मे ये सारी बातें मैंने नगरवासी स्त्री पुरुष के सम्बन्धो म तनावो और उलझनो को लेकर ही कही हैं, क्योकि हिन्दी की अधिकतर प्रेम कहानियाँ नगरवासी स्त्री पुरुषो की ही प्रेम कहानियाँ हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नही कि प्रेम किसी एक अ चल तक सीमित है, या यह कि केवल नगरवासी ही प्रेम करने मे समर्थ है।

हिन्दी का दुर्भाग्य ही यही है कि उसके सभी लेखक मध्यवर्गीय है और नगर वासी हैं। इसीलिए हिन्दी की कहानियो मे इतनी एकरसता है। जिन लेखको न हिन्दी कहानी को इस एकरसता को तोडने का दावा करते हुए ग्राम्य कथाओ की सृष्टि की वे भी असल मे मध्यवर्गीय ही थे और उनकी प्रेम कहानियाँ तो और भी फार्मूला ग्रस्त है, बिल्कुल फिल्मी हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानियाँ जरूर अपवाद हैं और हिन्दी का तीसरा *या चौथा सवश्रेष्ठ उप यास ही नही, हिन्दी की सवश्रेष्ठ प्रेम कहानियाँ भी, यह* अजीब बात है, 'रेणु ने ही लिखी हैं। कलात्मकता ऊचाइयो तक पहुँचने वाली महान् *प्रेम कथा, रसप्रिया' जैसे समूची भारतीय लोक कथा, लोक-कविता, लोक-सगीत का* निचोड है, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि इस एक कहानी म प्रेमानुभव को *व्यक्त करने के लिए लोक कलाएँ सगठित और जीवित हो उठी हैं।*

हिन्दी म अगर महान् प्रेम कथाएँ नही हैं, तो इसका कारण यह नही कि हमारा प्रेम छोटा या ओछा है बल्कि यह कि हमारे पास महान् लेखक नही है। प्रेमानुभव आदमी को उदार और बडा बनाता है। मगर यह प्रेम भी, यह विडम्बना ही है, *साधारण लेखक को महान् लेखक नहो बना सकता।* मगर इसके लिए प्रेम को दोष देना फिजूल है। और अगर हम सचमुच प्रेम करते हैं तो किसी को दोष देना ही फिजूल है।

नई कविता बनाम नई कहानी
समीक्षा-अविवेक का एक और उदाहरण

डा० देवीशंकर अवस्थी

आलोचना के मानदण्डों या मूल्यों की अराजकता के उदाहरण हिन्दी में रोज ही दिखाई पड़ते हैं। 'कल्पना' का 'उर्वशी-संवाद' (या परिसंवाद) हो या 'अभिनव काव्य' मंच की संस्थापना का प्रयास हो एक बात साफ है कि आलोचना की दृष्टि धुंधली पड़ती जा रही है। विद्यापीठस्थ समीक्षक यदि संवेदना के स्तर पर लड़खड़ाते और जमीन से कटे दिखते हैं तो सृजनशील साहित्यकार पूर्वग्रहों या अपने निज के औचित्य को सिद्ध करने में प्रकृत पथ को छोड़ते हैं। परन्तु इसमें भी अधिक खेदजनक स्थिति तब दिखाई देती है जब कि केवल चौंकाने या खबरों में बने रहने के लिए कुछ फतवे दिए जाते हैं और स्थापनाएं की जाती हैं। इस क्रम का नया उदाहरण 'नई कविता बनाम नई कहानी' की समस्या है। कुछ महीने पहले 'नई कहानियां' में रचना-दृष्टि के साथ आलोचना-दृष्टि के न विकसित होने पर खेद प्रकट करते हुए मोहन राकेश ने बताया था कि 'नई कहानी', 'नई कविता' से आगे का आन्दोलन है। 'नई कविता' की विकृतियों का परिष्कार करके यह 'नई कहानी' अस्तित्व में आई है। मोहन राकेश के इस सुर के साथ तत्काल तान दी कमलेश्वर ने और उन्होंने भी कहा कि हां 'नई कविता' तो कुंठावादी है पर 'नई कहानी' में एक नई सामाजिकता है। हिन्दी के गजधर्मी पाठक आलोचक-लेखक सभी चुप रहे। शायद इसलिए कि ऐसी स्थापनाएं हिन्दी में बहुत-सी होती रहती हैं कौन चिंता में पड़े। पर इधर 'सारिका' में मोहन राकेश पुनः नई निगाहों के जो नए सवाल (या जवाब) लेकर आए हैं उनमें इसी बात को दोहराया गया है।

सारिका फरवरी ६८ का अंक लें। 'माध्यम की खोज' को आधार बना कर उन्होंने अपनी स्थापना प्रकट करनी चाही है। इसके पहले मात्र स्थापना उन्होंने की थी तर्क नहीं दिए थे। इसलिए तो उस समय कुछ कहना समुचित नहीं था। आइए, इन तर्कों की तर्कशीलता भी तनिक जांच ली जाए। राकेश जी शुरू करते हैं, तीन चार महीने पहले मैंने एक जगह लिखा था कि ऐतिहासिक दृष्टि से 'नई कहानी' का आंदोलन 'नई कविता' का सहवर्ती न होकर उससे आगे का आंदोलन है। तो इस स्थापना के विरोध में कुछ लोगों ने टिप्पणियां लिखीं (स्वयं इन पंक्तियों के लेखक के खाते में एकाध प्रासंगिक रिमार्क ही आए हैं।) ऐसे लोगों के बारे में उनका कहना है शब्द ऐतिहासिक की ओर शायद उनका ध्यान ही नहीं गया। गया होता तो इस कथन में उन्हें अवास्तविकता नजर न आती। इस ऐतिहासिक वास्तविकता के बारे में

उनके तक या है —

(१) 'नई कहानी' क ग्रा दोलन की शुरुग्रात सन् पचास के लगभग हुई 'नइ कहानी' यह नाम तो उसे सन् पचपन–छप्पन के बाद से दिया जान लगा। राकेश जी क्या कृपा कर बताए गे कि नई कविता का ग्रा दोलन भी पचास-इक्यावन क पास स ही शुरु हुग्रा था या नही ? हिन्दी के बहुत से लेखक पाठक जानते है ग्रौर स्तम्भ लेखक को भी याद हागा कि इसके पूर्व प्रयोगवाद की चर्चा होती रही है नई कविता की नही। ग्रौर 'प्रयोगवाद' यदि कविता के क्षेत्र म १६४३ से चर्चा का विषय बना था तो उसी की सहवर्ती ग्रज्ञेय' की 'पठार का धीरज' 'जयदोल' जैसी कहानिया भी हैं। ग्रौर बन्धु यदि ग्राप 'नई कविता' को प्रयोगवाद से प्रारम्भ करना चाहते हैं (जैसा कि स्वय मैं भी चाहता हू) तो नई कहानी को भी वहीं से चलना पडेगा। शैली शिल्प ही नही, यथार्थ की पकड भी वहा दूसरी हो गई है। जहा तक नामकरण का प्रश्न है 'नई कविता नाम भी शायद १६५३ म 'नए पत्ते' म प्रकाशित रेडियो परिसवाद मे ग्रज्ञेय द्वारा दिया गया था। पर सारी, नई कहानी का नामकरण सस्कार, बकौल राकेशजी के १६५५ के ग्रास पास हुग्रा था ग्रौर इस तरह वह दो साल छोटी बहिन हो गई। पर किया क्या जाय साहित्यिक विधा व रूप म कहानी छोटी है ही ग्रौर ग्रपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण भी। पर जब छोटी बहिन कहा जाता है तब भी इतना तो प्रकट हा है कि वह भी उसी भाव बोध से उपजी है जिससे नई कविता। ग्रौर ग्रगर ग्रापकी ही मान्यता के ग्रनुसार नई कविता का ग्रान्दोलन तब तक एक निश्चित रूप ग्रौर ग्रर्थ ग्रहण कर चुका था। तो इससे यह कैसे प्रकट हो जाता है कि उस माध्यम की सम्भावनाए समाप्त हो गई थी। सचमुच केवल हिन्दी म ही माध्यमा क बारे म ऐसे विचित्र तक दिए जा सकते हैं।

पर रुकिए। तक का जाल ग्रागे भी मिलेगा। राकेश भी तत्काल पलट कर कहते हैं, 'जिस क्राइसिस क ग्र तर्गत नई पीढी की रचेतना 'नई कहानी' क प्रयोगो की ग्रार उन्मुख हुई, उसक प्रभाव तथा प्रतिक्रियाए नइ कविता पर ग्रलग से नजर ग्राने लगी थी, शमशेर तथा मुक्तिबोध जैसे कवियो ने उन प्रभावो क ग्रन्तर्गत नइ कविता' को भी एक नई दिशा दे दी थी।' लेखक क इस वक्तव्य में जो 'चतुराई' निहित है वह तो बडी जल्दी साफ हो जाती है कि कहानी ग्रौर कविता दोनो की समानताग्रो को स्वीकार करना ग्रावश्यक हो गया था। पर इस 'चतुर' वक्तव्य मे भी एक निहायत ग्रनक्रिटिकल तथ्य है ग्रौर वह यह कि शमशेर या मुक्तिबोध जस कवियो ने कौन सी नई दिशा ५४–५५ के ग्रास पास नई कविता को द दी थी तथा 'नई कविता' पर इस नई सचेतना के प्रभाव ग्रौर प्रतिक्रियाए क्या हैं ? इसके ग्रतिरिक्त जिस 'क्राइसिस' शब्द का निर तर मुखर जप लेखक न किया है उसके सम्बन्ध में कुछ

कहने की आवश्यकता है। जनवरी वाली 'सारिका' में क्राइसिस को उन्होंने विभाजन से जोड़ा था और बताया था कि नई पीढ़ी पर इसका गहरा प्रभाव है–उन पर भी जिन्होंने कि इसे भोगा नहीं था। इस सम्बन्ध में भी कुछ प्रश्न और कुछ सवाल उठते हैं। पहला सवाल तो यही कि विभाजन की क्राइसिस के अन्तर्गत अज्ञेय ने भी कुछ कहानियां ('शरणार्थी' संग्रह) लिखी थीं–क्या इन्हें वे नई कहानी के अन्तर्गत रखना चाहेंगे? दूसरी बात यह कि लेखक ने जरूर उन मूल्यों की इमारतों को ढहते हुए देखा होगा–भोगा होगा और हर बार नई चेतना की बात करते ही उनकी आंखें वहीं पहुँच जाती हों–पर क्या यह सही नहीं है कि नई कहानी के अन्तर्गत १६२५ में जन्मे राकेश की पीढ़ी के लेखक ही नहीं १६३५ के बाद उत्पन्न लेखक भी हैं और ये लोग विभाजन की इस क्राइसिस से क्या कर प्रभावित हुए हैं? एक तीसरा सवाल और है कि क्या देश की परिस्थिति या नियति या सचेतना मात्र विभाजन में बन्दी है? अगर विभाजन न होता तो क्या बंजर जमीनें हरी न होतीं क्या सदियों से मानित खान पान और रहन सहन के तरीके न बदलते? विभाजन-ग्रस्त लोगों को मैं चोट नहीं पहुंचाना चाहता, पर इतना निवेदन अवश्य है कि विभाजन से हमारे सामाजिक संगठन में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है तथा जो नई 'सचेतना' आई है वह विभाजन के बिना भी आकर रहती। विभाजन की क्राइसिस को लेकर जिस रूमानी ढंग से वे भावुक हो उठे हैं उसकी आवश्यकता अब नहीं है। इस सन्दर्भ में साहित्य से केवल एक उदाहरण देना चाहूंगा—रेणु के कथा-साहित्य का। रेणु' को आप नई कहानी के अपने वृत्त के अन्तर्गत रखते हैं या नहीं? तथा रेणु के लेखन का आपकी इस 'क्राइसिस' से क्या सम्बन्ध है? शमशेर एवं मुक्तिबोध का सम्बन्ध भी इस 'क्राइसिस' से निरूपित करने का कष्ट करें तो हम पाठकों का अधिक भला हो।

अपने वक्तव्य की इन असंगतियों पर ध्यान न देते हुए वे नयी कहानी की अग्रगामिता का एक बड़ा ही मजेदार उदाहरण देते हैं कि 'इस पीढ़ी की सामूहिक चेतना अपने लिए अभिव्यक्ति का जो विस्तार चाहती थी उसके लिए कहानी का माध्यम अधिक अनुकूल पड़ता था इसीलिए छप्पन-सत्तावन के बाद से बहुत से प्रतिष्ठित और उदीयमान नए कवि भी धीरे धीरे इस माध्यम की ओर आकृष्ट हो आए, क्योंकि दृष्टि और शिल्प का जो अनुशासन नई कविता के लिए एक रूढ़ि बन चुका था, उस तोड़कर नई भूमि में प्रयोग करने के लिए यह माध्यम उन्हें अधिक उपयुक्त जान पड़ा' तर्क वही है जिसे भी तम तार्किक परिणति तक पहुंचाया जा सके। सन् ५६ ५७ के बाद एक नये कहानीकार ने 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' नाटक लिखे–लगता है कि कहानी का माध्यम उनकी 'क्राइसिस' वाली सचेतना के लिए अपर्याप्त हो गया था अब ये नाटक नए नाटक हैं और 'नई कहानी' से आगे के आन्द-

लन हैं (इसलिए भी कि १९६८ तक इनका 'नया नाटक' नामकरण नहीं हो सका—शीघ्र ही यह संस्कार भी आयोजित करना पड़ेगा।

इस तार्किक परिणति की बात को छोड़ दिया जाए तो भी यह दिखाना कठिन नहीं है कि रघुवीर सहाय या श्रीकान्त वर्मा की कविताओं और कहानियों का संवेदनात्मक धरातल एक ही है। अन्तर इन विधाओं की आवश्यकताओं का है। काव्य की अभिव्यक्ति विशुद्ध संवेदना के अधिक निकट रहती है इसी कारण सतही दृष्टि से पढ़ने वाले उसे वैयक्तिक अहंवादी असामाजिक आदि मानने लगते हैं परन्तु कहानी में जिन उपकरणों को लिया जाता है अपेक्षित सामाजिकता का अधिक गन्ध देते हैं। कविता की एक विशिष्ट इकाई है बिम्ब और कहानी का पात्र। वस्तुतः साहित्य-रूपों के पारस्परिक संघर्ष और अन्तसम्बन्ध को लेकर बहुत कुछ चर्चा की जा सकती है। सदैव से ये रूप एक दूसरे से भिन्न या देते आए हैं और नवलेखन में भी कहानी कविता ने एक दूसरे को किस प्रकार समृद्ध बनाया है इसकी चर्चा अलग से की जा सकती है और अच्छा होता यदि मोहन राकेश या कमलेश्वर इस पक्ष पर ध्यान दे सके होते-पर इतना निश्चित है कि तब एक चौंकाने वाली जनलिस्टिक बात न कही जा सकती और एक पुष्ट समीक्षा विवेक की आवश्यकता पड़ती। ऐतिहासिक दृष्टि से भी हिन्दी में मैथिली शरण गुप्त की कविताएं और प्रेमचन्द का प्रारम्भिक कहानियां, निराला और नवीन की कविताएं एवं प्रेमचन्द की परवर्ती कहानियां, प्रसाद की कविताएं एवं उन्हीं की कहानियाँ महादेवी और बच्चन की कविताएं और जैनेन्द्र की कहानियां, प्रगतिशील कविताएं एवं कहानियाँ सहवर्तित्व की भूमिका में देखी जा सकती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन माध्यमों को किस प्रकार संघर्ष करना पड़ा है—अपने ही आत्मरूपों एवं आरोपित मर्यादाओं से इसकी भी पड़ताल की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा यहां नहीं। नई निगाहों वाले सवालकार का अनुमान है कि नई कविता से लोग इसलिए नई कहानी में धसे हैं कि नई कविता का विकास जहां एक सामूहिक शिल्प-शैली को लेकर हुआ नई कहानी में आरम्भ से ही हर लेखक ने वस्तु की अपेक्षाओं के अनुसार अपनी अलग शिल्प शैली का विकास किया। 'शायद ऐसे ही तर्कों को लाजवाब कहा जाता है। हर आदमी के सवाल जवाब देने लायक होते भी कब हैं ? फिर भी वहम में एक प्रश्न है कि क्या राकेश जी यह बताने की चेष्टा करेंगे कि कुंवर नारायण, रघुवीर सहाय केदारनाथ सिंह श्रीकांत वर्मा, मदन वात्स्यायन अजितकुमार आदि की रचनाओं में कौन सी सामूहिक शिल्प शैली है। लगता है कि गीतकारों की रचनाओं को वे नई कविता समझते हैं। यों वास्तविक रचना के भीतर सामूहिक शिल्प शैली की बात करना अपनी ही नासमझी का परिचय देना है। सचमुच ही किसी भी देश और साहित्य में नई पीढ़ी के बुनियादी

मघर्ष को ग्रोछी दृष्टि म देखने वाला का कमी नही रहती । हमारे यहा यह ग्राछापन कुछ ग्रधिक माना म है बस इतना ही फर्क है । इम ग्रोछपन के कर्णधारा म व भी हैं जा एक साथ ही पूरी नई पीढी क प्रयत्नो का नकार दत हैं ग्रौर इनम वे भी गए नीय है जो नई पीढी क एक बहुत बडे ग्र श को नई कविता का कुण्ठावस्था ग्रादि कहकर काट दना चाहते हैं । समझ मे दोनों खानी हैं ।

स्वय मोहन राकेश का कहना है कि, कहानी को जिस ग्रर्थ म कविता से ग्रलग किया जाता था उस ग्रथ म नय प्रयागकारा ने उसे ग्रलग नही रहन दिया ग्रपन का यात्मक सवगा की ग्रभिव्यक्ति क लिए एक बृहत्तर कैनवस के रूप म भी इसे ग्रपना लिया है । इतना कहन क बाद भी कविता ग्रौर कहानी के माध्यमो के ग्रन्तर को जिस तरह उन्होंने निरूपित करना चाहा है वह नितात कृत्रिम एव ग्रसिद्ध साहित्य शास्त्र पर ग्राधारित है । उन्हे यह ज्ञात है कि एक व्यापक माध्यम के रूप म कहानी की सम्भावनाग्रा को हिन्दी क कहानीकारा न ही नहा दखा विश्व का कई भाषाग्रा म इस माध्यम को एक नई प्रयोगात्मक दृष्टि म ग्रहण किया गया है । पर लगता है कि इस प्रयागात्मक दृष्टि की दिशा उन्हाने नहीं दखी नहीं तो वे जानत हात कि कहानी की चरम काम्य नियति कही कविता क ग्रासपास ही है । नइ पीढी क एक ग्रत्यन्त सवदनशील कथाकार निमल वर्मा का यह मन्तव्य इस सम्बन्ध म ध्यान दन योग्य है बीसवी शताब्दी की सबस महान कहानी डेथ इन वनिस' सिर्फ एक कवल है या फाकनर की काई भी 'कहानी' गद्य के टस्तवर पर है एक काव्य-खण्ड चट्टान पर खीच गए भित्ति चित्रो सी जादुई ।' निमल न राकश को ग्रपना माध्यम को बात को ही कहा ग्रधिक व्यजक एव शक्तिपूर्ण भाषा म कहते हुए लिखा है ग्रगर व कहा नियाँ हैं ना सिफ ग्रात्मघाता ग्रर्थ म एक कवल हैं दूसरी कविता, तीसरी एण्टी कहानी उन्हाने स्वय बडी निममता से ग्रपनी ही विधा को तोडा है, उसक चौखटो से मुक्त होकर उन सूखी ग्रौर कठोर ग्रौर नामहीन चाजा रा छूने की कोशिश की है, जा पकड स बाहर हैं ।'

इसीलिए जब नई कहानियाँ' का यह सम्पादकीय (जनवरी ६०) पढने को मिलता है कि 'कवितानुमा कहानिया पश्चिम साहित्य की कुण्ठा, प्रवलापन, परम्परा हीनता, हार ग्रौर ग्रनास्था का हा सकर चल रही है जो हमारी जातीय चेतना का स्वर नहा है । तो फतवे की इस सादगी पर क्या ग्रा सकती है-प्रश्न की उठायत नही । कविता मानवीय सवदनाग्रों की सबसे सबल एव स्फटिक ग्रभिव्यक्ति है ग्रौर यह कहानी की सिद्धि हागी कि उसक परिमडल पर उपरथ का जा सक । जहा तक जातीय चेतना का प्रश्न है हमारे ग्रापके चाहे बिना ग्रब तक इस दश मा ,जाति की सवदना का मुख्य माध्यम कविता हा रही है ग्रौर हमें प्रसन्नता है कि यथाथ के नाम

पर को आने वाली भयकर विकृतियों एव कलाहीनता से ऊपर उठकर कहानी की काव्यात्मक सवदनाओ (या सवेदो ?) के निकट आ रही है। कमलेश्वर की भी कहा लिया। और जब कमलेश्वर कहते हैं कि नई कविता की कुण्ठा अकेलापन टूटना और पराजय नई कहानी की मानसिकता का अग नही है।' तो क्या यही नहीं लगता कि उनकी और नरेन्द्र शर्मा या नन्ददुलारे वाजपेयी की मानसिकता का धरातल एक ही है। ये लोग भी तो नई कविता पर यही तोहमत मढते हैं। और यह भी कि नई कविता के बारे में न तो वे कुछ जानते हो नहीं और नई कहानी के बारे में कुछ कैसे कहा जाए। उसके बहुवचन के तो वे सम्पादक ही हैं। पर यदि व्यक्तिमूलकता और सामाजिकता ही कसौटियाँ हैं तो क्या कमलेश्वर या मोहन राकेश यह बताने की कोशिश करेंगे कि एक और जिन्दगी (मोहन राकेश) कहानी किधर से सामाजिक है ? अपवादस्वरूप एक कहानी को अलगाकर मैं नही कह रहा हूँ। स्वयं मैं इस कहानी को एक अच्छी सशक्त कहानी मानता हूँ।

अन्त में इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि यह यदि चौहान के लिए है तब तो अनुचित है ही पर यदि यह एक छोटे से वृत्त के औचित्य के लिए है तो और भी बुरा है। अच्छा हो अगर कहानी की चर्चा कथा साहित्य के सदर्भ में हो की जाए। इसी जगह एक बात और भी कहना चाहूँगा कि हिन्दी में कहानी चर्चा अत्यधिक स्फीत धरातल पर हुई है-बल्कि कहूँ कि अधिक महत्वपूर्ण विधा उपन्यास की कीमत पर हुई है। कहानी में अधिक चर्चा और विश्लेषण की सभावनाएं नहीं हैं और इसीलिए इधर उधर भाग कर चर्चा की सभावनाओं के लिए स्थान खोजने की चेष्टा होती है। अच्छा हो कि कहानी-पत्रिकाएं अब कहानी चर्चा की जगह 'कथा चर्चा' करें और तभी तमाम समय की वह बकवास बन्द हो सकेगी जो आज नई कहानी' का बकर चल रही है। 'वासन्ती' के कहानी विशेषांक में भी इन पक्तियों के लेखक ने कहा था कि कहानी की, माध्यम के रूप में, सम्भावनाएं सीमित हैं। कहानी पर होने वाली तमाम बहस को पढ सुनकर वह बात मुझे आज और भी ठीक लगती है। हमारे कथाकारों की अब धारण-क्षमता लगती है काफी सीमित है और उपन्यास जैसे अत्यधिक शक्तिशाली माध्यम को झेल सकने की सामर्थ्य वे नही जुटा पा रहे हैं। मैं कहना तो यह भी चाहूँगा कि तथाकथित नई कहानी के क्षेत्र में भी साहसपूर्ण प्रयोगों का अभी अभाव है और 'आधुनिकता' की बडी झीनी चादर ही उनमें मिलती है। बहुधा सामाजिकता (जो प्रगतिवाद की उतारी हुई वेश-भूषा ही अधिक है।) के नाम पर फालतू कहानियों की कमजोरी को छिपाने की चेष्टा भी इन कहानीकारों द्वारा की जाती है।

कहानी केवल कहने की चीज नहीं है, मात्र सुनने की भी नहीं—उसे समझना भी पड़ता है, वैसे समझना पड़ता है, जैसे कविता को शायद यह हिन्दी में हुई कहानी-चर्चा और कहानी-सृजन की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। पर यह उपलब्धि साधारण नहीं है। इसका अर्थ है कि कथा साहित्य को एक कला रूप की गम्भीरता मिली है। अपनी अत्यधिक जन प्रियता के बावजूद उपन्यास-कहानी के प्रति एक अगम्भीर भाव पश्चिमी देशों तक में बना हुआ है, इसीलिए जब उसकी कला रूप की तरह हिन्दी में चर्चा की बात की जाती है तो यह उपलब्धि महत्वपूर्ण बन जाती है।

पर जहाँ एक ओर इन परिचर्चाओं ने उसके महत्व को स्थापित किया वहाँ खासी खामख्यालियाँ भी पैदा कीं, और अवसर समुचित परिदृश्य के सन्दर्भ में उसे च्युत भी किया। ज्यादातर यह भी हुआ कि खास दौर की एक खास विषय पर लिखी गयी कहानियों को ही मुख्य जीवन्त परम्परा के रूप में स्थापित करने की चेष्टा की गया। इस सम्बन्ध में 'नयी कविता' और 'नयी कहानी' के आन्दोलनों की अगर तुलना की जाय तो कुछ मजेदार तथ्य निकलते हैं। नयी कविता' के कवियों समीक्षकों रा इस बात का बराबर एहसास रहा है कि वे पूर्ववर्ती काव्य-रूढ़ियों को तोड़ रहे —उनसे हट रहे हैं। इसीलिए जहाँ एक ओर नयी रचनाशीलता का उन्मेष प्रकट ता है वहीं तमाम छायावादी काव्य सिद्धान्तों पर आक्रमण करते हुए नयी कविता के .य सिद्धान्तों की स्थापना भी होती चलती है। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि एक ही पीढ़ी के भीतर वैसी कटुता या आपसी विवाद कविता में उस मात्रा में नहीं दिखायी देते जैसे कि 'नयी कहानी' में दिखायी देते हैं।

ऐसा क्यों हुआ ? क्या इसलिए कि कहानी उस मात्रा में नयी या आधुनिक नहीं हो सकी, जितनी कि कविता हो सकी ? कहानी बहुत-कुछ अपने रूढ़िगत ढाँचे की सीमाओं के भीतर ही हाथ-पैर मारने की चेष्टा करती रही। इसीलिए शुरू में नयी कहानी और पुरानी कहानी के अन्तर को स्पष्ट करने की चेष्टा भी उतनी नहीं हुई। शायद तमाम कहानी-लेखक-आलोचक कहानी के इन नये साहित्य शास्त्र से स्वयं परिचित नहीं थे। आज भी परिचित हैं यह नहीं कहा जा सकता। इसका प्रमाण अभी आलोचना' के ३१ वें अङ्क एवं नई कहानियाँ' के अक्तूबर अङ्क के सम्पादकीय हैं। शिवदानसिंह चौहान एवं कमलेश्वर दोनों ही एक-दूसरे के दृष्टिकोण को गालियाँ देते हैं पर दोनों की ही कसौटी और आलोचना की शब्दावली एक ही है—अन्तर केवल कुछ नामों का पड़ता है। सामाजिकता, जन-जीवन, यथार्थ आदि के जिन ढाँचे-ढाँर्स

शब्द बाणों को लेकर चौहान आक्रमण करते हैं, वे ही कमलेश्वर के तरकस के भी तीर हैं।

आधुनिकता बोध की इस कमी या कहानी के रूढ़ि प्राप्त रूप बन्ध की प्रमुखता का एक प्रधान कारण शायद उसकी जन-प्रियता [यानी मनोरंजन-परकता] है। यानी कि पाठक की स्थापित प्रत्याशाओं को धक्का देने का साहस नये कहानीकार बहुत कम कर सके हैं। उषा प्रियंवदा के कहानी-संकलन 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' की रिव्यू करते हुए कुँवरनारायण ने एक बहुत ही पैनी बात कही थी—और मैं समझता हूँ कि वह बात अधिकांश तथाकथित नये कहानीकारों पर लागू होती है। कुँवरनारायण का मत था, 'जिन्दगी और गुलाब के फूल की कहानियाँ कहीं भी एक नये तरह के पाठक की माँग नहीं करतीं। वे "सामान्य अनुभवों को इस तरह नया स देन देती हैं कि पाठक को कहीं भी संस्कारगत धक्का नहीं लगता।' कहना चाहूँगा कि तमाम 'नयी कहानी' की यही शक्ति भी है पर यही सबसे बड़ी सीमा भी, जब कि कविता के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। जन-रुचि, व्यावसायिक सफलता आदि का मोह छोड़ कर नये कवियों ने कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रयोग किये।

यहाँ पर नयी कविता और नयी कहानी के पारस्परिक सम्बन्ध, परस्पर आश्रय, योगदान, या विषमता पर विस्तार से विचार नहीं किया जायगा। यहाँ पर केवल एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता था कि पुराने और नये का अन्तर कहानी के क्षेत्र में अधिक सजगता से अभी हाल में ही सामने आया है—सम्भवतः कहानी अच्छी और नयी के परिसंवाद के आसपास से।

इसके पूर्व ग्राम-कथा, नगर कथा, कस्बा कथा, आंचलिक-कथा और राष्ट्रीय कथा रोमांस-कथा और रोमांसहीन कथा अन्यथा और अनास्था की कहानियों के विवाद उठाये जाते रहे। और अब तो देशी कथा बनाम विदेशी कथा, साहित्यिक कहानी बनाम लोकप्रिय कहानी, नयी कविता बनाम नयी कहानी, कवितानुमा कहानी और कहानीनुमा कहानी, अँधेरे की चीख की कहानी और अँधेरे से निकलने की कहानी, सचेतन कहानी, सक्रिय कहानी, कहानी प्रथम कोटि की साहित्यिक विधा या द्वितीय कोटि का साहित्य रूप आदि दर्जनों सवाल हैं, जो कहानी के क्षीर (?) सागर का मन्थन करने में जुटे हुए हैं। इन्हीं के बीच यथार्थता, सामाजिकता प्रतीकता, नाटकीयता, नया भावभूमि, नया शिल्प आदि भी आते जाते रहे हैं। परन्तु, कहना न होगा कि ऊपर गिनाये गये तमाम चर्चित सवाल एक ही पीढ़ी के भीतर प्रसंगानुकूल रहे हैं। फिर सवाल उठता है कि यह आपसी 'कटायुद्ध' क्यों? इसके पीछे सजग विवेक चेतना है या मात्र व्यावसायिक होड़?

मैं कहना चाहूंगा कि दोनों ही यावसायिक होड भी (जिससे सौभाग्यवश नयी वेता बची रह सकी।) और यथार्थ के प्रति आग्रहशील चेतना भी। अपनी बात ष्ट करूँ—सबसे पहले उठने वाले विवाद नगर कथा बनाम ग्राम कथा के विवाद रा। आज दोनों ही पक्षों ने इस विवाद की यथता को स्वीकार कर लिया है पर ५ से ५७ तक यह विवाद जिस धुरी पर घूमता रहा है वह यथार्थ के प्रामाणिक ार का था। मार्कण्डेय या शिवप्रसाद सिंह के लिए वह यथार्थ गाव में था और राजेश ा राजेन्द्र यादव के लिये नगर में, तो कमलेश्वर के लिए वह कस्बे में बसता था। पने अनुभव क्षेत्र के प्रति अधिक ईमानदारी इससे लक्षित होती है, पर अपने को धिक महत्वपूर्ण सिद्ध करने की यावसायिक आकांक्षा भी इस विवाद में विद्यमान ी और तनिक सवत विवेक से विचार करने के बाद इस विवाद पर कफन भी डाल या गया। [यहीं यह याद करा देना अप्रासंगिक न होगा कि ठाकुरप्रसाद, केदारनाथ वह सर्वेश्वर या नरेश मेहता के गाव या जगल के चित्र, रघुवीर सहाय या कुँवर ारायण के शहरी चित्रों से इस प्रकार नहीं अलगाये गये। एक ही आन्दोलन के ं अंतर्गत दोनों ही प्रवृत्तियां स्वीकार की गयी थीं।]

'यथार्थ' की बात करने के पूर्व ही लगे हाथ तनिक व्यावसायिकता पर और वचार कर लेने की आवश्यकता है। कुछ लोग 'यावसायिकता का अर्थ प्रभूत लेखन' से लते है। पर हमें लगता है कि यावसायिकता का यह बड़ा ऊपरी अर्थ है। साल दो ाल में ए० कहानी लिखकर भी यावसायिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इस प्रसङ्ग ं यावसायिकता का अर्थ है अत्यधिक जन-प्रियता—लोकप्रिय होने का आग्रह। लोक प्रेय होने का यह आग्रह लेखक में उस साहस के अभाव को जन्म देता है जिसके कारण वह अपनी खरी अनुभूति के लिए पर्याप्त शिल्प का प्रयोग नहीं कर पाता या कि उस अनुभूति को ही काट-छांट देता है। वह मनोरंजनपरक लोकप्रियता के चक्कर में पड़कर किस्सागोई को अपना लेता है। जिस प्रकार चित्रकला को सबसे बड़ा खतरा फोटोग्राफी से या कविता को संगीत से होता है उसी प्रकार कहानी या उपन्यास का सबसे बड़ा खतरा किस्सागोई है। कहना न होगा कि तमाम नये कहानीकार भी इस किस्सागोई के चक्कर में जा पड़ते हैं। वे लोग यह भूल जाते हैं कि देवकीनन्दन खत्री किशोरीलाल गोस्वामी आदि लेखकों एवं प्रेमचन्द के मध्य का सबसे बड़ा अन्तर यही किस्सागोई का बिन्दु है।

पर, जैसा कि अभी कहा जा चुका है—मूल प्रश्न यथार्थ के प्रति प्रतिबद्धता का है। जब निर्मल वर्मा की कहानियों की विदेशी पृष्ठभूमि या विदेशी चरित्रों का लेकर आक्षेप किया जाता है तब भी मूल आक्षेप यही रहता है कि ये अप्रामाणिक यथार्थ

की कहानियाँ हैं-केवल चौंकाने या रोब डालने के लिए लिखी गयी हैं। या कि जब अज्ञेय, श्रीकान्त या सर्वेश्वर की कहानियों पर व्यक्तिवादी होने का आरोप लगाया जाता है तब भी यही कि यह कृत्रिम भूमि है-यथार्थ की वास्तविक स्थिति नहीं। जब शिवदानसिंह चौहान या हंसराज रहबर समस्याओं की लम्बी सूची गिनाते हैं कि नये कहानीकार इन पर क्या नहीं लिखते तो उनका आक्षेप यही रहता है कि यथार्थ की समस्याओं से नया कहानीकार कतराता है और जब उनको उत्तर देते हुए कोई नया लेखक या आलोचक कहता है कि 'समस्या' प्रधान (या समस्या को लेकर लिखा जाने वाला) साहित्य अक्सर अप्रामाणिक अनुभव [यानी कृत्रिम यथार्थानुभव] पर आधारित होता है इसीलिए नकली भी होता है तो यथार्थ की ही बात उठाता है। इसी प्रकार जब व्यावसायिकता का आरोप तमाम नये या पुराने कहानीकारों पर लगाया जाता है तब भी उसका मूल रूप यही है कि इन लोगों ने व्यावसायिक माँग पर अपने यथार्थ अनुभव को निछावर कर दिया है।

इसलिए सबसे रपटीला शब्द 'यथार्थ' हो जाता है-कहीं वह समस्या के नाम से आता है, तो कहीं अनुभव तो कहीं किसी और नाम रूप में, नाना रूप धरा हरि। इसलिए आवश्यकता इस यथार्थ को समझ लेने की है। यथार्थ दृष्टिकोण है या विषय वस्तु, यथार्थ शैली है या रूपबन्ध का सम्पूर्ण शिल्प। यथार्थ के प्रति प्रतिबद्ध होने की शर्त क्या है और उसकी पहचान क्या है? इन बातों पर तनिक विस्तार से विचार किया जाना चाहिए। बिना इस शब्द की स्पष्ट व्याख्या के तमाम चर्चा अरूप और आधारहीन बनी रहती है।

कहानी की चर्चा-परिचर्चा के अम्बार में एक बात और भुला दी गयी है कि कहानी सम्पूर्ण 'कथानुभव' वाले साहित्य का अंग है और उसे उपन्यास की चर्चा से अलग करके देखने में काफी गड़बड़ियाँ होती हैं। यह हो सकता है कि किसी युग विशेष में कहानियाँ अधिक महत्वपूर्ण लिखी गयी हों पर उसे पूरे 'फिक्शन' के संदर्भ से काटना उचित न होगा। नाटक की चर्चा से अलग करके एकांकी को परखना या तमाम कथा-काव्यों (या बन्धकाव्यों) से अलग करके मात्र छोटी आत्मपरक गीतियों की चर्चा करने का जो परिणाम हो सकता है, वही इस कहानी-चर्चा के साथ भी हुआ है। कहानी जैसे एक व्यापक संदर्भ से कट गयी। इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि कहानियों की अलग-अलग चर्चा नहीं की जा सकती-तात्पर्य मात्र इतना है कि नयी कहानी को उचित संदर्भ में देखने के लिए 'नदी के द्वीप', 'मैला आँचल' 'बूँद और समुद्र' 'उखड़े हुए लोग', 'झूठा सच', 'अँधेरे बंद कमरे' 'यह पथ बंधु था' आदि को भी सामने रखना होगा। बल्कि कहना तो यह चाहूँगा कि कविता को भी मद्देनजर रखना

हागा। मुझे अक्सर यह लगा है कि नयी कविता और नयी कहानी दोनों की ही उप लब्धियों एवं असफलताओं में काफी दूर तक समानताएँ भी मिलती हैं।

भयावह सन्दर्भ और कुछ कहानियां

'इन अठारह सालों में वह स्वप्न बिल्कुल बिखर चुका है। हमने खुद ही जान अपने साथ कोई क्रूर मज़ाक किया था, ऐसा लगता है, जब हम अपनी उन स्वप्निल कल्पनाओं के बारे में सोचने लगते हैं। उस स्वप्न और इस यथार्थ को जब आस-पास रखकर देखते हैं तो हम कितने अन्धे थे, इसका होश हमें आता है। जो यथार्थ हमारे सामने है, वह सचमुच ही भयावह है।'

—गुलाबदास ब्रोकर धर्मयुग १५ अगस्त ६५

'आज इसे (भारत को) जो चीज़ भयावह है वह है नौकरशाही—आपका द्वारा कल्पित किसी भी चीज़ से कहीं अधिक दुर्दम्य एक भारतीय दुःस्वप्न।'

—टाइम (साप्ताहिक) १३ अगस्त ६५ का भारत पर भाष्य।

'स्वाधीनता दिवस, १९६५ १८ वर्ष के तरुण भारतीय लोकतन्त्र की स्थिति पर सरसरी निगाह दौड़ाएँ तो जो चित्र सामने आता है उसमें छायाएँ ही अधिक गहरी दीखती हैं, प्रकाश के बिन्दु उतने उज्ज्वल नहीं दीखते। अन्न और वितरण की अनिश्चित स्थिति, बढ़ते हुए दाम, सङ्कटापन्न आयोजन मुद्रा की तंगी, विद्यार्थियों का उपद्रव, असन्तोष और खीझ की एक देश व्यापी घुटन निश्चय ही इनको देखकर किसी का चित्त प्रसन्न नहीं हो सकता।'

—दिनमान २० अगस्त ६५ का साम्पादकीय वक्तव्य।

बिना किसी प्रयास के सहसा चुन लिये गये ये कुछ उद्धरण हैं जो हमारे वर्तमान सन्दर्भ को परिभाषित करने में काफी दूर तक सहायक होंगे। यह भयावह स्थिति राष्ट्रीय सन्दर्भ की तो है ही, अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ की छायाएँ कहीं अधिक काली और गहरी दिखती हैं। लगता है कि एक सङ्कट से दूसरे सङ्कट पर पहुँचना ही हमारे कदमों का एकमात्र रफ्तार बन गयी है। किसी भी सचेत व्यक्ति के लिए यह निरन्तर अधिक प्रखरता से स्पष्ट होने वाला अनुभव है कि शान्त और सुखी दुनिया बीत गयी। अब जो है वह कष्टकर है, आनन्द की प्राप्ति के लिए चलने वाली प्रतिद्वन्द्विता का निरन्तर तनाव है और इस तनाव में टूटने का दुःख है।

ऐसी स्थिति में अगर लेखक अपने अनुभव की प्रामाणिकता के प्रति सजग है, अपनी रचना के प्रति ईमानदार है, तो उसे अप्रीतिकर के चित्रण में ही व्यस्त होना

पडेगा। प्रेमचद के लिए यह सम्भव था कि उनकी कहानियो के अन्त सुखद हो सकें, उनमे सत्य की जीत दिखाई जा सके या प्रेम अथवा न्याय को ही अन्ततः स्थापित किया जा सके। वस्तुतः जीवन की मूल तक सगतता पर उनका गहरा ईमानदार विश्वास था। इसीलिए प्रेमचन्द की सुखान्त कहानिया, या न सत्य की विजय वाली कहानियाँ भी अप्रामाणिक अनुभव की कहानियाँ नही कही जा सकती। उन कहानियो मे न पलायन है और न विकृति कुरूपता से बच निकलने का रास्ता और न ही सदय समाज पर अच्छा प्रभाव डालने की आकाक्षा। उन कहानियो में एक प्रामाणिक विश्वास की सचाई भर है। पर जब से यह वास्तविक विश्वास हिला तब से सुखद अन्त वाली कहानियाँ फामूला बन गयी— व्यावसायिकता और मनोरजन के लिए उत्पन्न पलायनवादिता की नयी कहानी का सारा विद्रोह इस फामूलाबद्ध गैर इमानदारी के प्रति ही था। आज का औसत व्यक्ति भी यह विश्वास नही करता है कि समाज के साथ सब कुछ भला और ठीक है और न जिन्दगी के पास किसी विश्वास भरी आस्था से आता है। तब फिर लेखक से भी यह आशा नही की जा सकती कि वह इस ससार से शास्ता की वरदानी अनासक्त, सदानन्द मुद्रा धारण कर निकले। इसीलिए इस आरोप का कोई अर्थ नही होता कि आज के कहानीकार की दिलचस्पी सिर्फ गलाज, कुरूप या विकृत मे है। यह आरोप लगाने वालो का सबसे प्रत्यक्ष तर्क होता है कि ये नये कहानीकार देश के यथार्थ से कटे हुए हैं देश तो आस्था और विश्वास के साथ निर्माण मे लगा हुआ है, एक उज्ज्वल भविष्य वह देख रहा है [बल्कि यो कहे कि यह कहने वाले स्वय देश के इन निर्माणो को भुना रहे हैं, उनका वर्तमान सुखमय है और भविष्य के लिए काफी बैंक बैलेन्स है।] और ये लोग पश्चिम की कृत्रिम अनास्था, निराशा, कुण्ठा, मरणाकाक्षा, बुराई की महत्ता आदि को चित्रित कर रहे हैं। प्रारम्भ के उद्धरण इस स्थिति का उत्तर देने मे समर्थ है। आशा का यह भाव पहले दौर मे नयी कविता, नयी कहानी मे भी आया था, पर सन् ६० के आसपास पहुँचते पहुचते यह भासित होने लगा कि वह स्वप्न बिखर रहा है, यथार्थ अधिक भयावह होता जा रहा है।

अभी अगस्त १९६५ की 'नई कहानियाँ' मे महेन्द्र भल्ला की एक कहानी का विश्लेषण करते हुए मैंने लिखा था 'एक स्तर पर इस कहानी को पुराना आदर्शवादी [या पुरानी कहानियो का अभ्यस्त] पाठक विकृति, अनैतिकता अश्लीलता, असामाजिकता बुराई आदि की कहानी कहना चाहेगा। पर यही वह स्तर है जहा कहानी यथार्थ का उससे अधिक सच रूप मे उठा सती है। निश्चय ही यह कहानी इन दुष्कर्मों की है, पर आधुनिक सन्दर्भ मे 'बुराइ' की सिग्नीफिकेंस' ही कहानी का मूल भाव

प्रतीत होता है। बुराई की इस गणनीयता के पीछे एक अत्यन्त प्रश्नशील मस्तिष्क की आवश्यकता है और यह प्रश्नशीलता अनिवार्यत अनास्था निराशावादिता आदि की ओर ले जायगी। स्वतन्त्रता के बाद नवलेखन के आरम्भ में 'कल उगने' का जो एक आशावादी रोमान्टिक झोंका आया था, वह सन् ६० तक पहुँचते पहुँचते गुजर जाता है और जो एक अत्यन्त प्रबुद्ध जिज्ञासु मन सचाई में गहरे पैठना है वह निरन्तर निराशा अनास्था ऊब, बुराई अनैतिकता आदि की सिग्नीफिकेंस को स्पष्ट करता है।

महेन्द्र भल्ला की कहानी का संसार तो फिर भी बहुत सीमित है पर उसमें व्यक्ति और समाज के बीच जो बखरी आ गयी है वही बखरी' अनन्त भय आतंक या आततायीपन तक ले जाती है जिसमें कि समाज न व्यक्ति की रक्षा कर पाता है और न व्यक्ति को चोट से अपना बचाव।' वही अलगाव या बखरी अमरकान्त की 'हत्यारे' निर्मल वर्मा की 'लन्दन की एक रात' या मार्कण्डेय की 'एक काला गधरा' कहानियों में व्यक्त स्थितियों के लिए जिम्मेदार होती है। टाइम निर्माण या धर्मयुग के उद्धरणों में जिन भयावह स्थितियों की ओर संकेत किया है वही इन कहानियों का सन्दर्भ है। निर्मल का सन्दर्भ और अधिक व्यापक है वह अन्तर्राष्ट्रीय भय और आतंक की पकड़ का सूचक है। आरम्भ में गुलाबदास ब्रोकर का जो उद्धरण दिया गया है उसी में आगे यह भी कहा गया है 'हमारे लोग इतने भ्रष्टाचारी होंगे, हमारे राजकाजी इतने खुदगर्ज होंगे हमारे नेता लोग इतनी बड़ा बड़ी झूठी बातें कहने वाले होंगे और इन सबके भार से दबकर हमारा देश नीचे धँसता जायगा, इसकी कोई कल्पना भी हम कभी नहीं आ सकती थी। तब फिर हम यह आजादी किसलिए चाहिए थी ?' कहना न होगा कि यह कथन किसी विरोधी दल के नेता का वक्तव्य नहीं है यह है एक संवेदनशील लेखक की साक्षी। इस साक्षी को चाहे तो 'एक काला गधरा' से जोड़कर देख लें। ये खुदगर्ज नेता, कापका द्वारा परिकल्पित स्थितियों से कहीं अधिक दुर्गम नौकरशाही का जो मिला-जुला नंगा नाच होता है, उसका विस्तार बनता है एक कमजोर पर मेहनती व्यक्ति। हमारे सार्वजनिक जीवन की भयावहता टेरर इस कहानी का कच्चा माल है। कहानी जिस मानवीय यथार्थ को उठा रही थी अगर उसी के उपयुक्त शिल्प भी प्राप्त कर सकी होती तो शायद ऐसे उपेक्षित न चली जाती। एक रोमाण्टिक स्फीति (राजकपूर छाप ओवर टेकिंग या ओवर इट ग) और कामू के 'अजनबी' के ट्रायल वाले दृश्य का जो चित्रण कहानी के अन्त में हुआ है उससे बचने की आवश्यकता थी, पर लगता है कि मार्कण्डेय प्रभाव वृद्धि के लिए बहुत सी चीजें इकट्ठी कर देने में विश्वास करते हैं। बहरहाल यहाँ पर इन कहानियों का कलाशिल्प हमारा विवेच्य नहीं है। मैं केवल यथार्थ के उस प्रतीति

पडेगा। प्रेमचद के लिए यह सम्भव था कि उनकी कहानियो के अन्त सुखद हो सकें उसमे सत्य की जीत दिखाई जा सके या प्रेम अथवा न्याय को ही अन्तत स्थापित किया जा सके। वस्तुत जीवन की मूल तक सगतता पर उनका गहरा ईमानदार विश्वास था। इसीलिए प्रेमचन्द की सुखान्त कहानिया, काव्य सत्य की विजय वाली कहानियाँ भी अप्रामाणिक अनुभव की कहानियाँ नही कही जा सकती। उन कहानियो मे न पलायन है और न विकृति कुरूपता से बच निकलने का रास्ता और न ही सदय समाज पर अच्छा प्रभाव डालने की आकाक्षा। उन कहानियो मे एक प्रामाणिक विश्वास की सचाई भरी है। पर जब से यह वास्तविक विश्वास हिला तब से सुखद अन्त वाली कहानियाँ फार्मूला बन गया— व्यावसायिकता और मनोरजन के लिए उत्पन्न पलायन वादिता की नयी कहानी का सारा विद्रोह इस फार्मूलाबद्ध गैर ईमानदारी के प्रति ही था। आज का औसत व्यक्ति भी यह विश्वास नही करता है कि ससार के साथ सब कुछ भला और ठीक है और न जिन्दगी के पास किसी विश्वास भरी आस्था से आता है। तब फिर लेखक से भी यह आशा नही की जा सकती कि वह इस ससार से आस्था की वरदानी, अनासक्त, सदानन्द मुद्रा धारण कर निकले। इसलिए इस आरोप का कोई अर्थ नही होता कि आज के कहानीकार की दिलचस्पी सिर्फ गलीज, कुरूप या विकृत मे है। यह आरोप लगाने वालो का सबसे प्रत्यक्ष तर्क होता है कि ये नये कहानीकार देश के यथार्थ से कटे हुए हैं देश तो आस्था और विश्वास के साथ निर्माण मे लगा हुआ है, एक उज्ज्वल भविष्य वह देख रहा है [बल्कि यो कहे कि यह कहने वाले स्वय देश के इन निर्माणो का भुना रहे है, उनका वर्तमान सुखमय है और भविष्य के लिए काफी बैंक बैलेंस है।] और ये लोग पश्चिम की कृत्रिम अनास्था, निराशा, कुण्ठा, मरणाकाक्षा, बुराई की महत्ता आदि को चित्रित कर रहे हैं। प्रारम्भ के उद्धरण इस स्थिति का उत्तर देने मे समर्थ हैं। आशा का यह भाव पहले दौर मे नयी कविता, नयी कहानी मे भी आया था, पर सन् ६० के आसपास पहुँचते पहुचते यह भासित होने लगा कि वह स्वप्न बिखर रहा है, यथार्थ अधिक नया वह होता जा रहा है।

अभी अगस्त १९६५ की 'नई कहानियाँ' मे महेन्द्र भल्ला की एक कहानी का विश्लेषण करते हुए मैंने लिखा था 'एक स्तर पर इस कहानी को पुराना आदर्शवादी [या पुरानी कहानियो का अभ्यस्त] पाठक विकृति, अनैतिकता अश्लीलता, अमानवीयता, बुराई आदि की कहानी कहना चाहेगा। पर यही वह स्तर है जहाँ कहानी यथार्थ को उसके अधिक सच रूप मे उठा सकती है। निश्चय ही यह कहानी इन दुष्कर्मों की है, पर आधुनिक सदर्भ मे 'बुराई' की सिग्नीफिकेंस' ही कहानी का मूल भाव

प्रतीत होता है। बुराई की इस गणनीयता के पीछे एक अत्य त प्रश्नशील मस्तिष्क की आवश्यकता है और यह प्रश्नशीलता अनिवार्यत अनास्था निराशावादिता आदि की ओर ल जायगी। स्वतन्त्रता क बाद नवसृजन के प्रारम्भ मे कल उगन' का जो एक आशावादी रोमाण्टिक झोंका आया था, वह सन् ६० तक पहुचत पहुचते गुजर जाता है और जो एक अत्यन्त प्रबुद्ध जिज्ञासु मन सचाइ म गहर पठता है वह निरन्तर निराशा अनास्था, ऊब, बुराइ अनतिकता आदि की सिग्नीफिकेंस को स्पष्ट करता है।

महेन्द्र भला की कहानी का ससार तो फिर भी बहुत सीमित है पर उसम यक्त ससार म यक्ति और समाज क बाच जो बखबरी आ गयी है वही अनन्त भय आतक या आततायीपन तक ल जाती है, जिसम कि समाज न यक्ति की रक्षा कर पाता है और न यक्ति की चोट स अपना बचाव।' वही अलगाव या बखबरी अमरका त का 'हत्यारे निमल वर्मा की 'लन्दन की एक रात या मार्कण्डेय की 'एक काला दायरा' कहानियां म यक्त स्थितियो के लिए जिम्मेदार होती है। टाइम दिनमान या धर्मयुग क उद्धरणा म जिन भयावह स्थितिया का और सकेत किया है वही इन कहानिया का स दभ है। निर्मल का स दर्भ और अधिक यापक है वह अन्तर्राष्ट्रीय भय और आतक की पकड का सूचक है। प्रारम्भ म गुलाबदास ब्रोकर का जो उद्धरण दिया गया है उसी म आगे यह भी कहा गया है 'हमारे लोग इतने भ्रष्टाचारी होगे, हमारे राजकाजी इतन खुदगर्ज होगे हमारे नेता लोग इतनी बडी बडी झूठी बातें कहने वाल होगे, और इन सबक भार से दबकर हमारा देश नीचे धसता जायगा, इसकी कोई कल्पना भी हम कभी नही आ सकती थी। तब फिर हम यह आजादी किसलिए चाहिए थी ?' कहना न होगा कि यह कथन किसी विरोधी दल क नेता का वक्तव्य नही है, यह है एक सवदनशील लखक की साक्षी। इस साक्षी को चाहें तो एक काला दायरा से जोडकर देख लें। ये खुदगर्ज नेता, काफ्का द्वारा परिकल्पित स्थितिया से कही अधिक दुदम नौकरशाही का जो मिला-जुला नगा नाच होता है, उसका विस्तार बनता है एक कमजोर पर मेहनती व्यक्ति। हमारे सावजनिक जीवन की भयावहता टेरर' इस कहानी का कच्चा माल है। कहानी जिस मानवीय यथार्थ को उठा रही थी अगर उसी क उपयुक्त शिल्प भी प्राप्त कर सकी होती तो शायद ऐसे उपस्थित न चली जाती। एक रोमाण्टिक स्फीत (राजकपूर छाप ओवर ऐक्टिंग या ओवर ड्रइ ग) और कामू के 'अजनबी' के ट्रायल वाले दृश्य का जो मिश्रण कहानी के अन्त म हुआ है उसमे बचने की आवश्यकता थी, पर लगता है कि मार्कण्डेय प्रभाव वृद्धि क लिए बहुत सी चीजें इकट्ठी कर देन म विश्वास करते हैं। बहरहाल यहाँ पर इन कहानियां का मूल्यांकन हमारा विवेच्य नही है। मैं केवल यथाथ क उस अप्रीति

कर भयावह प्रश्न की ओर सकेत करना चाहता हू जो इन कहानियो म यक्त हो रहा है और जो नय सवको की मूल्य दृष्टि का द्योतक है।

अमरकान्त की कहानी 'हत्यारे' सामाजिक विशृखलता म उत्पन्न होन वाम त्राम और आतक का कलात्मक दस्तावेज है। किसी भी समाज से यह आरम्भिक प्रत्याशा होती है कि वह अपने सदस्यो का सुरक्षा दे सक। पर हत्यारे का जो ससार है उसम न तो समाज रक्षा देता है और न अपन इन सदस्यो म सम्मान पाता है। आजादी क बाद क सन्दर्भ म उपजी नयी पीढ़ी क लिए व तमाम शब्द और अवधारणाएँ अब कवल मजाक क लिए रह गयी हैं जिनको लकर तमाम चिन्तक, व्यवस्थापक, राष्ट्रनिर्माता आदि अब तक स्वप्न दखते आये थे। समाजवाद, दश की तरक्की, देश का बोझ, विश्वशाति ग्रामर आफ पालिटिक्स रूस अमरीका विवाद आदि उनक लिए हँस कर उडा देने की चीजें है। वस्तुत इन शब्दो का उनक लिए अर्थ ही खो गया है। पर इस खोये हुए अर्थों वाली भाषा से ही बात बात म वे कुछ चमक जात हैं जो उनकी आकाक्षा को भी सूचित करते हैं। वे प्रशासन क उच्चतम पदो के आकाक्षी हैं यह उनकी व्यक्त अनाकाक्षा से प्रकट होता है, आज म ब्रह्मचारी रहने की घोषणा क पीछ जो वासना झाँक रही है वह बगल स लडकियो के गुजरन पर हवा मे उछाल गये चुम्बनो या चन्द्रासिहा-प्रसङ्ग से ही प्रकट नही होती, बहुत जल्दी अपने निम्नतम रूप म आगे आती है। एक गरीब औरत को धोखा देकर अपनी दह की भूख बुझाते है और फिर लास्की की 'ग्रामर आफ पालिटिक्स" को दस दिनो म कृपापूवक डिक्टेट करा देने वाले, सतीसाध्वी चन्द्रा क शील का प्रोफेसर दीक्षित से बचा लेने वाले, जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रधानमन्त्री पद क लिए आमत्रित ये नवयुवक, उस गरीब औरत को पसा न देना पड इसलिए हाथो म जूते उठाकर भाग खड होते है। पूर्ण अहिंसात्मक तरीक से' नवयुवको का बुद्धिमानी, मौलिकता, साहस और कर्मठता' का पथप्रदर्शन इस प्रकार होता है कि उस औरत क शोर मचाने पर जो यक्ति उनके पीछ दौडते हैं उनम से एक के पेट म पथप्रदशक महोदय छुरा घुसेड देते है। इसके बाद दोनो पुन तेजी से भाग चले। जब बिजली का खम्भा आया तो रोशनी म उनके पसीने से लथपथ ताकतवर शरीर बहुत सुन्दर दिखाई देने लगे। फिर व न मालूम किधर अ धेरे म खो गये। इस कहानी को पढ़ कर कवि केदारनाथ सिंह की ये पक्तियाँ बहुत साफ हो जाती हैं।

> और शहर म होने वाली हत्या की खबर
> चौंकाती नही,
> न आघात देती है,

सिर्फ आदमी उठता है
और अपनी बची को उठाकर
नाक के और करीब रख देता है।

आश्चर्य न होना चाहिए कि सन् ६० के बाद की हिन्दी कविता को केदारनाथ सिंह ने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा 'हत्यारे और लन्दन की एक रात से जोड़ना चाहा है। २७ जून ६५ के 'जनयुग' में प्रकाशित इस कविता का शीर्षक है 'सम्पर्क भाषा'। ऊपर कहा जा चुका है कि जब सामाजिक जीवन के मध्य पारस्परिक सम्पर्क सूत्र टूट जाते हैं, जहाँ कोई एक दूसरे को समझ और सराह नहीं पाता, वहीं ऐसी भयावह स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। सम्पर्क भाषा का जो अभाव है वही शहर में होने वाली हत्या के प्रति किसी प्रकार का लगाव नहीं उत्पन्न होने देती। सुनने वाला प्रसाधन की बची का दर्पण (जिसमें प्रतिबिम्ब दिखता है।) के निकट खिसका देता है और हत्या करने वाला बिजली के खम्भे की निशानी में अपने स्वस्थ शरीर की सुन्दरता चमत्कार अँधेरे में गायब हो जाता है।

'लन्दन की एक रात' का संसार और अधिक भयावह है। वहाँ भय साकार हो उठता है। वह ऐसा भय है जो अन्तर्राष्ट्रीय संकट और आतंक से उत्पन्न हुआ है। नीग्रो छात्र, जार्ज, लन्दन में रहना चाहता है, अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक बन सकने की उसमें संभावना और क्षमता है और जब उसका साथी विली पूछता है—'क्या आप घर जाओगे?

'—घर? —नीग्रो छात्र जार्ज के स्वर में एक सूना-सा खोखलापन उभर आया, मानो 'घर' शब्द बहुत विचित्र हो, जैसे उसने पहली बार उसे सुना हो, मैं चाहता था यहाँ रहूँ। लेकिन वे हमें चाहते नहीं।

'—वे आह!—विली ने कहा।

'वे अनायास हमने चारों ओर देखा। कोई भी न था हालांकि वे हर जगह हर समय हमारे संग थे। हमारे बाहर उतने ही, जितने भीतर। और रंग भेद की यह असामाजिकता स्वयं विली की जिस विकृति की ओर ले गयी थी—सक्स 'ह्योर से बल्ला सते हुए, वह 'अश्लील' नहीं 'जुगुप्सामय' है। रंगभेद, लिंचिंग सामाजिक शक्तियों की इस अन्याय को रोक सकने में असमर्थता, फासिज्म के अंकुर आदि अन्तर्राष्ट्रीय 'टरर' को इस कहानी में मूर्तिमान करते हैं।

वस्तुतः आतंक और भय की कहानियों के द्वारा नया कहानीकार इस भय के

भीतर स्थित बुराई की शक्ति की नाप रहा है। इन स्थितियों का नर मात्र देखना वर्णन करना मुझे लगता है कि उनसे जूझना है। नया लेखक जिन स्तर पर उनसे जूझ रहा है वह उसके अपने मूल्यबोध का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इन कहानियों को मूल्यहीनता की कहानी कहना अपने मूल्यबोध को कुण्ठित बनाना है। चीजों को, स्थितियों को व्यक्तियों को देखने का ढंग देखने वाले के मूल्य का ही अंग होता है।

वस्तुतः जिन्हें बौद्धिक कहानी कहा जाता है वे दरअसल गहरे अर्थ में भावप्रवण या अनुभूत विचार की कहानियाँ होती हैं। इसका एक प्रमाण यह भी है कि पहले के लेखक जहाँ समस्या प्रधान कहानियाँ लिखा करते थे (उनमें कहा था या 'कफन' जैसी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ छोड़कर) वहाँ अब लेखकों ने समस्या प्रधान कहानियाँ छोड़ दी हैं—उनके स्थान पर अनुभव-धर्मा कहानियों पर बराबर जोर दिया गया है। अपने प्रथम संग्रह 'राजा निरबंसिया' की भूमिका में कमलेश्वर ने नयी भावनुभूतियों की चर्चा की है। यानी कि जो दायित्व केवल कविता के लिए छोड़ दिया गया था, उसे भी उन्होंने अपनाने की कोशिश की है। अगर पुरानी और नयी कहानियों के अन्तर को देखा जाय तो पहले का कहानी-लेखक एक ऊपरी बौद्धिक तरह से कुछ समस्याओं को लेता था और उनमें भावुकता या करुणाभास' का जल मिला कर स्पर्शी (मर्म या हृदय या सतही सनसनाहट।) कहानियाँ लिखता था। उसकी बजाय आज का कथाकार अपने अनुभव को पहले टटोलता है और उसके माध्यम से तमाम समस्याओं, प्रश्नों (या अप्रश्नों) को ढूँढता और झेलता है। एक का अभाव बौद्धिक और अन्त लिजलिजी भावुकता में और दूसरे का अभाव भावप्रवण पर अन्त एक शक्तिपूर्ण बौद्धिक सम्भावना में—साफ के कब शायद इन स्थिति के आसपास होंगे। (और यह अन्तर आज भी एक पीढ़ी के ही दो लेखकों में पाये जा सकते हैं।)

जहाँ तक 'जन जीवन' का प्रश्न है केवल इतना याद दिलाना चाहूँगा कि इस नारकी छाया के नीचे लिखा जानेवाला प्रगतिवादी रचनात्मक साहित्य कैसे फिसलकर बैठ गया और इसी नारे को अलग कर सामने आनेवाली नवलेखन की पीढ़ी ने कितना शक्तिशाली जीवन-बोध चित्रित किया है इसे दिखाने के लिए अलग एक लेख लिखने की आवश्यकता है। यही नहीं रचनात्मक लेखन से अलग समीक्षात्मक चिन्तन में जहाँ यह प्रगतिवादी नुस्खा लटका रह गया है वहाँ भी ग्रामकथा-नगर कथा दर्पी कथा विवाद क्या नया कविता बनाम नया कहानी आदि की विकृतियाँ नये लेखकों ने ना उपस्थित की हैं—वस्तुतः जन-जीवन को ज्यादातर लोग अपने परिचित जीवन का पर्याय मान लेते हैं। ये लोग यह भी भूल जाते हैं कि कला की दुनिया जीवन की

समाना तर होती है ।

वासना के नैतिक या अनैतिक पक्षों की बात और भी रपटीली है—इसलिए कि इस प्रकार की शब्दावली (जब तक कि एक विशिष्ट सन्दर्भ को लेकर न की जाय) समीक्षा के क्षेत्र से बाहर की है । इसलिए मैं इस प्रसंग की चर्चा न करना ही बेहतर समझूँगा ।

जहाँ तक पच्चीकारी की बात है, नयी कहानी ने अगर सबसे अधिक किसी चीज को तोड़ा तो इस पच्चीकारी को । पच्चीकारी का आरोप लगाने वाले लोग आँखों में पट्टी बाँधकर चलते हैं । कहानी ही क्या, पूरा आधुनिक भावबोध पच्चीकारी के विरुद्ध है । आधुनिक चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य, कविता कहानी आदि को ये लोग अगर नहीं समझ पाते तो कम से कम अपने घरों के दरवाजों और फर्नीचर को ही एक नजर निहार लेने का कष्ट करें—स्थिति बहुत साफ हो जायेगी । अगर ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो लगातार कहानी में इस पच्चीकारी को तोड़ने की चेष्टा की गयी है । उदाहरण के लिए राकेश को लिया जा सकता है । (इसलिए कि राकेश अन्तिम महत्वपूर्ण पुराने पच्चीकार कहानीकार हैं और प्रारम्भिक नये कहानीकारों में से एक हैं ।) राकेश की 'मलबे का मालिक' आदि कहानियाँ जहाँ कटी-छँटी पच्चीकारी की जड़ाऊ कहानियों के उदाहरण हैं वहाँ 'एक और जिन्दगी' में सारा शिल्प का जड़ाऊपन एक बड़ी सीमा तक बिखर जाता है । आदि मध्य और अन्त संघर्ष चरम सीमा और समाधान के नुस्खे इस कहानी तक आते आते टूट जाते हैं । इसी प्रकार मार्कण्डेय की कहानियाँ सन ५२ ५४ के आस पास (पानफूल में संगृहीत) जब आती हैं तो बहुत से लोगों को लगा था कि ये कहानियाँ नहीं हैं बल्कि कहानी और रेखा चित्र के बीच की चीजें हैं, बाद को बहुतेरे कहानीकारों की कहानियों को कहानी और निबन्ध के बीच की विधा भी कहा गया ।

पचास वर्ष के परिप्रेक्ष्य में देखने पर हिन्दी कहानी की प्रगति पर आश्चर्य होता है ।

आधुनिक भावबोध 'कहानी' या किसी एक माध्यम विधा से कहीं विराटतर है और विभिन्न कलाएँ तथा विभिन्न साहित्यिक विधाएँ इसे या इसके भिन्न भिन्न पक्षों को स्थापित करने की चेष्टा कर रही हैं । कहानी की सम्भावनाओं का भी लक्ष्य यही है । जहाँ तक 'अद्यतन शिल्प प्रयोग और नया कथ्य' का प्रश्न है 'आज के साहित्य से' नयी कविता को लेकर सर्वाधिक चर्चा की जा सकती है । इसे मिथ्या गर्व न माना जाय तो हिन्दी की नयी कविता' आज भारतीय भाषाओं में

ही अग्रणी नहीं है, अँगरजी के माध्यम से उपलब्ध संसार के समकालीन साहित्य में वह महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारिणी है। निश्चित ही यह बात मैं अपनी अत्यंत सीमित जानकारी के आधार पर कह रहा हूँ—इसलिये अगर कोई अतिशयोक्ति हो तो क्षमा चाहूँगा और अपनी रायको सुधारने के लिए भी तैयार रहूँगा। यह अवश्य है कि हिन्दी की 'नयी कहानी' भी विश्व के समसामयिक लेखन के समकक्ष सुविधापूर्वक रखी जा सकती है पर दोनों विधाओं के सापेक्षिक महत्व (पूरे संसार को ध्यान में रखकर ही) को दिमाग में रखकर इस बात को कहने में हिचक नहीं हो सकती कि आधुनिक भाव बोध का सबसे अधिक वहन कविता ने ही किया है। अन्य देशों में कविता के बाद उपन्यास ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया पर हमारे देश में शायद 'कहानी' का माध्यम कथाकारों को अधिक अनुकूल लगा उपन्यास के क्षेत्र में नये कथाकारों में रेणु को छोड़कर किसी अन्य को उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल सकी है।

हिन्दी में बहुत से मसीहा हैं जो एक शब्द में ही सब कुछ कह देने का हौसला रखते होंगे। मैं केवल इतना कहना चाहूँगा कि हमारे सम्पादकों आलोचकों तक को अभी यह बोध नहीं है कि समसामयिक कहानी का एक औसत परिनिष्ठित स्तर क्या है और परिणामस्वरूप बहुत अच्छी और बहुत बुरी कहानियाँ एक ही प्रतिष्ठा के साथ एक ही पत्र में छपती रहती हैं।

मेरे लेखे साहित्य की दृष्टि सम्पन्नता यथार्थ के प्रति प्रतिबद्धता है और यह रचना नयी कहानियों में है और इसीलिए मुझे ये तमाम नयी कहानियाँ प्रिय हैं। नाम गिनाना (इस सन्दर्भ में) उचित नहीं है। पर एक व्यक्ति जो मात्र अपनी कहानियों के बल पर सबसे ऊपर दिखायी देता है, वह है निर्मल वर्मा। गो कि यहीं यह भी कह दूँ कि इधर उनके लेखन से मुझे कुछ निराशा भी हुई है। इस प्रसंग में यह अभिमत भी कि कला माध्यम के रूप में कहानी के सामने सबसे बड़ा खतरा किस्सागोई का होता है। किस्सागोई जिस व्यावहारिकता की ओर ले जाती है। वहाँ दृष्टि को सबसे अधिक धुँधला करती है। 'नयी कहानी' जिस रूपबन्ध के अन्वेषण में रत है वह किस्सागोई के इस जाल से बचने का ही हो सकता है।

नई कहानी
नए पुरानों के बीच से
गुजरती हुई

सुरेन्द्र

होता कुछ ऐसा रहा है कि विश्व की श्रेष्ठ समृद्ध भाषाओं के साहित्य
मे हर युग मे या तो कविता प्रमुख रही है या फिर उसकी आलोचना।
नाटक, उपन्यास, कहानी तथा दूसरी साहित्यिक विधाओं में पर्याप्त कार्य
हुआ है लेकिन कविता और उसकी समीक्षा के सम्मुख ये विधाएं प्रमुख न हो सका,
वो नहीं ही हो सकी। कविता की प्रमुखता कुछ ऐसी रही कि काव्य' शब्द से सम्पूर्ण
साहित्य का ही बोध होता रहा और 'काव्य को साहित्य के पर्याय होने की अनजाने
ही स्वीकृति मिल गई।

स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी मे कविता को लेकर (आलोचना और सृजन पक्ष दोनों
को ही) बडी गहमागहमी रही। 'प्रयोगवाद से झडपें शुरू हुई और 'नई कविता' पर
आकर रुकी (रुकी व अभी भी नहीं है) इस तरह कविता साहित्य मे ठोस चिन्तन
का विषय बनी रही, बल्कि इस समय मे वह इतनी विवादास्पद और अति चर्चित रही
कि पिछले युगों मे वह और उस पर की आलोचनाएँ न कुछ लगने लगी।

लेकिन इसी समय बडे ही बेमालूम तरह साहित्य की एक ऐसी विधा जिसे
केवल मनोरंजन की सामग्री ही समझा जाता रहा था और जिसे अवकाश के क्षणों मे
तकिए के सहारे सिर टिकाये या फिर यात्राओं मे समय काटने के लिए ऊँघते ऊँघते
पढा जाता रहा था और जिसके सैद्धान्तिक पक्ष पर विचार के नाम—परस्पर मुस्काना
का आभास प्रदान होता रहा था या बहुत ही मसखरेपन के साथ बिल्कुल चलताऊ ढंग
से उस पर बातें होती रही थी कि वह एक मेढक के समान है (किसी साहित्य
विधा को ऐसी फूहड उपमाएँ देना और अगम्भीरता से बना मसखरापन नहीं है ?
साथ ही कुरुचि (?) का परिचायक भी) कि उसे आध घंटे मे समाप्त हो जाना
चाहिए कि वह एक गुलदस्ता है कि वह चरित्र प्रधान होती है कि वह घटना
प्रधान होती है कि उसे ऐसा होना चाहिए आदि आदि, यकायक महत्वपूर्ण हो उठी।
जागरूक पाठक कविता के साथ-साथ उस पर भी गम्भीरता से विचार करने को उत्सुक
दिखाई देने लगे और लेखकों ने उसे अत्यन्त गम्भीरता के साथ लेते हुए उसे साहित्य
की अत्यन्त शक्तिशाली और बौद्धिक विधा कहा। देखते देखते वह साहित्य की अन्य

विधाओं से अधिक महत्व ग्रहण करने लगी। इसके कुछ भी कारण हो सकते हैं हमारा विषम यथार्थ बढ़ती हुई बौद्धिकता, रिश्तों की जटिलता, भीतर का अधिकाधिक पथीलापन, मूल्यों का संघर्ष या विशुद्ध कहानी पत्रिकाओं का पर्याप्त संख्या में प्रकाशन या कहानी का व्यापारिक और पदार्थ रूप ग्रहण करना, जो भी हो। (कविता की विशुद्ध पत्रिकाएं प्रकाशित नहीं हुईं और हुईं भी तो उनमें गुटबंदी के आधार पर कुछ कूड़ा लदे निस्तेज नामों को उछाला गया जिससे कविता का कुछ भला नहीं हुआ भला उन नामों का भी नहीं हुआ, बुरा जरूर हुआ)।

इस तरह कहानी जिस बिंदु पर उभरी थी, वह बिंदु केन्द्र बनने लगा और साहित्य की दूसरी विधाएँ परिधिवत्। कहानी अब जीवन मूल्यों की हिमायती विधा हो गई उसकी रचना अधिक जटिल यानी कलात्मक और प्रच्छन्न रूप से अधिक मूल्य परक होगई। उसे पहली बार शिल्प और कथ्य की दृष्टि से गम्भीर और महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा स्वीकार किया गया। उसके सिद्धान्त पक्ष की समीक्षा गम्भीरता से होने लगी। किसी कोने से उसे एक सार्थक नाम भी मिल गया (नाम की सार्थकता पर यहां विवेचन के लिए अवसर नहीं) 'नयी कहानी' इसलिए कि अतीत कहानी से उसका अपना व्यक्तित्व अपना संसार और रूपबंध नया है यानी आज का है और कल अधिक निखर सकता है, इस तरह कल का भी कह आगत का भी हो सकता है।

'नई कहानी' यहां तक की यात्रा बड़े ही विवादास्पद ढंग से पार करती हुई आ पाई है। यह विवाद अभी भी चल रहा है। नयी कहानी' को 'पुराने' ही नहीं 'नए' भी अपने अपने कोणों से देख परख रहे हैं। कुछ उसके अस्तित्व को एकदम नकारते हैं, कुछ उसे युग का सच्चा माध्यम प्रतिनिधि मानते हुए उसकी सार्थकता स्वीकार करते हैं।

इस निबंध में लेखक का अपने कोण से 'नई कहानी' का विश्लेषण अभिप्रेत नहीं है। वह तो उन 'नए' पुराने' के विचारों को उद्धृत करके—जिन्होंने इस पर सोचा समझा है—पाठक तक उनके निर्णय पहुँचाना चाहता है, ताकि प्रबुद्ध पाठक उनके निर्णयों पर विचार करके किसी सही निर्णय पर पहुँच सके

(जैनेन्द्र) 

"मेरी यह प्रतीति है कि जितनी इस सम्बन्ध में चर्चा मीमांसा हुई है उतनी ही कथा के उत्कर्ष में बाधा पड़ी है। कथा सर्जक की अन्तरगता का मूर्त करती है। इस साधना का तत्व विश्लेषण से अधिक मूल्य है। कथा का स्वयं प्रतिष्ठ मानकर जब उसी का ऊहापोह हो चलता है तो बाहरी और आनुषंगिक तत्व प्रमुखता पकड़ते हैं और चर्चा

अनावश्यक के बीहड़ में भटक जाती है। शिल्प विन्यास, कथन, कथ्य युग बोध, वस्तु-बोध आदि आदि आदि की चर्चा काजिए बात भारी भरकम मालूम होगी। लेकिन मुझे उसमें रस नहीं है।

नयी कहानी का अस्तित्व मेरी समझ में नहीं आ रहा है। नये लिखने वाले अवश्य हैं और वे अनेक हैं। सभी अपने अपने तरह की कहानी लिखते हैं। कोई उनमें अच्छी होती है, कोई अधिक अच्छी कोई कम अच्छी। उन सभी को एक वर्ग में डालना जरूरी हो तो उसके लिए लक्षण के रूप में अन्तर की एक ही रेखा हो सकती है और वह समय की। जैसा कि सन्, ५० के बाद की कहानी या स्वातन्त्र्य-पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर कहानी इत्यादि। इसका भी सम्बन्ध कहानी से उतना न होगा जितना मात्र वर्गीकरण की सुविधा से होगा। यह सुविधा अक्सर समीक्षक और सर्वेक्षक के लिए उपयोगी हुआ करता है। बाद तो उनको नया कहानी को सत्ता दे दीजिए। पर उसका आशय अमुक सन् में लिखी हुई कहानी के अतिरिक्त दूसरा न होगा।

मान लिया जावे कि पांच सात दस लेखक, जो लिख रहे हैं उन सबको मिलाकर जो सामान्य नमूना निकलता है वह नयी कहानी है। तो अभिप्राय यह हो जायगा कि उन लेखकों का परस्पर विशिष्ट या विभिन्न व्यक्तित्व नहीं है। बल्कि वे एक कड़ी में पिरोये हुए हैं यदि उनका सजक व्यक्तित्व है तो ऐसा हो नहीं सकता है। फिर भी यदि ऐसा होता है तो मानना होगा कि उनको जोड़ने वाली कड़ी युग की नहीं लाभ की है।

जिस नैमित्तिक ज्ञान से हमारा काम चला करता है वह सत्य नहीं होता माना हुआ होता है। उसमें सत्य को स्थिर बना लिया जाता है, जबकि वह गतिशील है। यह विस्मय विकासशील जीवन सत्य संश्लिष्ट होता है और बौद्धिक विश्लेषण की प्रक्रिया अन्त में उसी अंश और मात्रा में सार्थक हो सकती है जितनी उस संश्लिष्ट जीवन तत्त्व पर कम कर ठहर पाता है।

इसलिए देखा जाता है कि अपने समय का गहरा तत्त्ववाद खो गया है, तरन साहित्य जीवित रहता चला गया है। कारण, तत्त्वता मन्तव्य-ग्रस्त होती है। अंतिम विश्लेषण में वह अहम् जड़ित होती है। परस्पर सम्बद्धता के क्षेत्र पर उनकी वास्तविकता घटित नहीं हो पाती। जीवन से वह अलग पड़ जाती है और मानव व्यक्ति को पुष्ट और घनिष्ठ बनाने की उसमें क्षमता नहीं रह जाती। एक शब्द में, दम उसमें नहीं रहता जो एक को दूसरे से मुक्त करता है। अहंकृत ज्ञान भर रह जाता है, जिससे स्वत्व मथना और समाजत्व क्षीण होता है।

कहानी अथवा इतर साहित्य इसी जगह तत्वज्ञान से अलग हो जाता है। विश्लेषण बौद्धिक होता है और ज्ञानोत्पादन में सहायक होता है। बल्कि इस ज्ञान का विज्ञान कहना चाहिए। किन्तु यदि उसी का जीवन सामर्थ्य में साधक होना हो तो आवश्यक है कि फिर लौटकर संश्लिष्ट सार से उसे संयुक्त किया जाये।

उस संश्लेषक तत्व को मैं आस्था का नाम देना चाहता हूँ। आस्था का रूप सुनिश्चित मन्तव्य का नहीं होता। आस्था प्रश्न से विरोधिनी भी नहीं होती, बल्कि प्रश्न आस्था के लिए खुराक जैसा जरूरी है। किन्तु आस्था प्रश्न को प्रखर बनाता है उसे केवल बौद्धिक जिज्ञासा का रूप देकर चुप नहीं रह जाती। आस्था में से व्यथा प्राप्त होती है, जिसमें से उठा प्रश्न बुद्धि का ही नहीं रह जाता, समूचे जीवन से जुड़ जाता है। अर्थात् विश्लेषण का उपयोग वहाँ स्वयं सिद्ध नहीं रहता, संश्लेषण में उसकी सिद्धि होती है। इस तरह कहानी में अवगाहन से अधिक सम्प्रेषण आवश्यक है आवश्यक है कि वह सहानुभूति के प्रवाह को खोल और बिखरी हुई मानवता में एक सूत्रता लाये।

इस वक्तव्य को नयी कहानी पर घटाने के प्रयास में मैं नहीं पड़ सकता। कारण, मैं नयी कहानी के अस्तित्व को ही नहीं जानता। लेकिन हर काल में कहानी को यही करना पड़ता है और करना पड़ेगा। उसकी सफलता और सार्थकता की भी यही कसौटी मानी जायेगी। आप कितने भी गहरे पते की बात क्या न कहानी में डाल रहे हों पर आवश्यक यह है कि वह पाठक के संवेदन को छूए, उसे छेड़े। इसीलिए बुद्धि का अमित शब्द-कौशल और ज्ञान का अमित प्रौढ़्य उस कार्य के लिए असंगत रह जाता है।

अतियथार्थता से मुझे विशेष मना-देना नहीं है कथा के प्रकारों की भी सीमा नहीं है। इसलिए मानी हुई विधा से भिन्न यदि कुछ अकथा-जैसी हो तो कथा में उसका भी स्थान है। प्रश्न यह नहीं है कि प्लाट कितना है या है भी। प्रश्न यह भी नहीं है कि सामग्री यथार्थ है, अतियथार्थ है, वास्तव, या अवास्तव या कल्पना जन्य है। वस्तु तथ्य की दृष्टि से कथा के लिए कुछ भी निर्दिष्ट और निषिद्ध नहीं है। जो आवश्यक है वह यह कि उसमें संवादिता हो और संवेदन का प्रभवन और प्रवहन हो। कहानियाँ लिखते लिखते मैं इस परिणाम पर आया हूँ कि इस सम्भाव्यता के लिए बौद्धिक विचक्षणता को जितना कम कष्ट दिया जाये उतना अच्छा है। अपेक्षा विशेष वहाँ हार्दिकता की है।

इधर पढ़ने में आने वाली कहानियाँ सब मुझे पसन्द या नापसन्द आती हैं, यह कहना कठिन है। कई पसन्द आती हैं, कुछ नापसन्द भी। उन सबको एकजुट 'नयी कहानी' कह देने से निर्णय का काम मेरे लिए असम्भव हो जाता है। 'नयी कहानी'

के अस्तित्व का मुझे पता नहीं है। फिर उसके बारे में अंतिम वक्तव्य का प्रश्न नहीं रहता? लेखक दल बंधकर नहीं रह सकते। सृजन दलीय कार्यक्रम के रूप में कभी सम्पन्न नहीं हो सकता। लेखक स्वयं का सृजन के साथ अभिन्न सम्बन्ध होता है। प्रत्येक (लेखक) की आन्तरिकता ही उसमें मूर्त होती है। इसलिए साहित्य के मामले में संघीय संस्थाओं के प्रवेश और प्रचलन का मैं कायल नहीं हो पाता। उसमें अनिष्ट ही घटित होगा इसकी सम्भावना मैं नहीं देखता।

समय के साथ कुछ परिवर्तन आना आवश्यक है। कारण जीवन विकासमान है और सम्पर्कों की व्यापकता बढ़ती ही जाने वाली है। आपसी लेन देन बहुविध होगा और हमारे सामाजिक व्यवहार की इकाई बड़ी होती जायेगी। इसमें भाषा के और भाव के रूप बदलेंगे। पर यह कालकी सतत प्रक्रिया है। उसके फल को विकास कहना ठीक है उस फलको विच्छिन्न करना ठीक नहीं है। साथ ही इस सब परिवर्तन की प्रक्रिया में ध्रुवताका सूत्र भी रहता है। मूल्य वहां है। अजस्र परिवर्तनायत्ता में उसका पूजन से बल चापल्य पर आता है, विकास खो जाता है।"

(गुलाबदास ब्रोकर) :

उसने कहा था' से लेकर यादव राकेश, कमलेश्वर तक की कहानी से मैं परिचित हूँ परन्तु इतने परिचय में लम्बे प्रश्न का उत्तर देने की योग्यता मैं नहीं रखता।

परम्परा से लगे रहने से कोई भी लेखक सामर्थ्यपूर्ण सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। साथ ही साथ यदि वह परम्परा से बिलकुल कट जाये तो भी उसकी कला नीरस हीन बन जायेगी। परम्परा तो व्यक्ति के रक्तस्रोत से जैसे जुड़ी हुई है। व्यक्ति यदि कलाकार रहा तो उस स्रोत के संगीत से अवश्य प्रभावित होगा। अतः कलाकार के लिए आदर्श स्थिति यही है कि परम्परा की शृंखला से जकड़ा भी न जाये, न ही परम्परा की ओर घृणा से देखे। आज के कथा साहित्य की ओर दृष्टिपात करने पर इस बात का तथ्य परिलक्षित होगा। आयोजन में, आविर्भाव में, अभिव्यक्ति में तथा और प्रज्ञा में आज की कहानी चाहे जितनी क्रांतिकारी हो उसके प्रतीकों की परम्परा को रखें अथवा कल्पना की सृष्टि देखें तो उनकी तह में हमारी परम्परा के स्वीकृत भावो, हमारे पुराण के देव-दानवों तथा वहां की वहीं में कहीं-कहीं हमारी भावनाओं के स्तर भी दृष्टिगोचर होंगे। अतः इससे चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। परम्परा का सत्व तो व्यक्ति की शिराओं में बह रहा है, उसका उत्तमांश साधारणतया नष्ट नहीं होता सम्भवतः कलाकार की शिराओं में तो कभी नहीं।

जनसाधारण के उत्कर्ष की, शापिता दलिता के उद्धार की, समाज सुधार की मंगल भावनाओं के प्रचार व प्रसार की, प्रगतिवाद को दृढ़मूल करने की आदि नाना प्रकार की भ्रामक मान्यताओं से रची जाने वाली कहानियों की बाढ़ के सामने नया कहानीकार जैसे प्रत्यंचा तानकर खड़ा है, उसने सारी मान्यताओं का अस्वीकार कर दिया है। और इस अस्वीकार की उत्तेजना में वह हर बात का अस्वीकार करने पर तुल गया है। यह उसका और स्वयं साहित्य का दुर्भाग्य है। किसी दूषण के प्रतिकार में लक्ष्य वस्तु भी तिरोहित हो जाये यह तो कोई आदर्श स्थिति नहीं है। जनजीवन नहीं, अपितु मानव जीवन, मानव हृदय, मानव प्राणी ही कहानी या अन्य साहित्य स्वरूप की बुनियाद है। उस मानव प्राणी को, मानव हृदय को साकार करने में अगर जनजीवन का भी चित्र बन जाता है तो बने। जनजीवन के प्रति अरुचि रखना ठीक नहीं। लेकिन कला को 'जनता की जुबान' बनना चाहिए कहने वाले का नारा भी सर्वथा स्वीकार्य नहीं हो सकता। और न ही यह कहना कोई अर्थ रखता है कि कला केवल कल्पनाओं एवं प्रतीकों की एक नवीन रूप सृष्टि है, कोई कुछ भी कहे।

यही बात वासना एवं नैतिकता के निरूपण के विषय में भी कही जा सकती है। कृष्ण के विषय में कहा जाता है कि रूप से वे इतने अधिक आवृत थे कि कुरूप कुब्जा का उन्हें आकर्षण हुआ। रूप ही उन्हें कुरूप की ओर खींच ले गया। साहित्य में भी केवल नैतिक नैतिक, उन्नत उन्नत, मुग्ध मुग्ध, सुंदर सुंदर इत्यादि का निरूपण ही जैसे कला का पर्याय बन गया था और इसके अतिरेक की प्रतिक्रिया अनिवार्य थी। वर्तमान जीवन की संकुलताओं ने कई मनाहियों (Taboos) को अर्थहीन बना डाला इस मस्ती ने भी वासना व अनैतिक पक्षके निरूपण को प्रेरित किया बड़ी मुक्तता से। अतिरेक हमेशा अनित्य रहता है, और इस अनैतिकता के चित्रण के अतिरेक का उत्थान भी अधिक नहीं टिक सकता, किसी भी स्वरूप में हम नव शिव सुंदर कलाकृति मिल जाय तो फिर विशेष चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं।

तो, यह नयी कहानी हमें ऐसी नव शिव सुंदर कलाकृति दे सकती है क्या ? या फिर वह केवल पत्रकारों का एक पण्य कला है ? 'पण्य' विशेषण कुछ उत्तेजक है। परन्तु इस आक्षेप के तथ्यांश को तोलने की तत्परता भी यदि नई कहानी में नहीं है, तब तो उसे आगे चलकर अधिक कष्ट झेलना पड़ेगा।

केवल नयी कहानी ही नहीं कला के आज के समान स्वरूपों के विकास में टेकनीक अति महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सौन्दर्य निर्माण में आयोजन का स्थान अत्यन्त उच्च है यह तो मानी हुई बात है—परन्तु अगर हम टेकनीक ही को कला का पर्याय समझने लगें अनुभूति का सुरचित आकृति प्रदान करने (Organisation of exprience)

की अपेक्षा, अनुभूति से भी अधिक आकृति प्रदान करने के कौशल को महत्व दें–आकृति रचना की पच्चीकारी में यदि अन्तस्तत्व का भी विस्मरण कर जायें तो फलस्वरूप जिस कलाकृति का जन्म होगा वह चाहे टेक्नीक, आर्गेनाइजेशन स्ट्रक्चर तथा पच्चीकारी में कितनी भी तेजस्वी क्यों न हो उसमें वर्तमान जीवन की कोई गम्भीर अनुभूति न होगी तो अशत व्यर्थता प्राप्त करेगी ही। कलाके decedent युगोंका अनेक कृतियाँ इसका प्रमाण बन सकता हैं। नये कहानीकार को इस भय स्थान की ओर सतर्क रहना होगा अनुभूति, अभिव्यक्ति और सवेदना यह कला मात्र के अपरिहार्य अग हैं। इन्ही के सुनियोजित त्रिभुज से कलाकृति का जन्म होता है। किन्तु, सम्पूर्ण आधुनिक भावबोध जिसे नया कहानी कहा जाता है उस स्वरूप के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि उसका शिल्प–प्रयोग अन्यतम है, और कथन समर्थ है यह दावा भी अशत भ्रान्तिपूर्ण है। असख्य नयी कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें शिल्प प्रयोग सिद्ध करने के स्पृहणीय प्रयत्न की व्यग्रता में जान लटके हुए दिखाई देते हैं। आधुनिक भावबोध को सवेन्द्रित करने की क्षमता अथवा योग्यता भी न हो ऐसी कई नयी कहानियाँ गिनायी जा सकती हैं। बड़े–बड़े दावे न करके इतना निःसकोच कहा जा सकता है कि जिस कहानी में अनुभूति अभिव्यक्ति और सवेदना का सुष्ठु त्रिभुज हो साथ भावबोध सवेन्द्रित हुआ हो और जिसका शिल्प प्रयोग अन्यतम हो, कथन समर्थ हो वह उत्तम कहानी है। ऐसी कहानी 'नयी' नहीं भी है तो क्या हुआ। ससार की उत्तम कहानियो ने भी यही किया है। आधुनिक भावबोध की बात की लिया जाय तो देखा जाता है कि जब जब भी वे उत्तम कहानियाँ लिखी गयी थी तब-तब उनमें सवेद्रित भावबोध अपने अपने समय में 'आधुनिक' ही था। परन्तु 'आधुनिक' कुछ वर्षों में 'अनाधुनिक' बन जाता है तथापि कलाकृति चिरजीव ही बनी रहती है।

प्रश्न यह है कि एक चाक्षुष कला जो सिद्ध करता है वह क्या शब्दों की कला उतनी ही सफलता से कर सकती है। उपादानों का प्रश्न सत्य महत्वपूर्ण है इस स्थान पर। वाङ्मय कला का उपादान शब्द है। शब्द के साथ साथ अर्थ जुटा रहता है। कला की सिद्धि यह है कि वह शब्दों के साधारण अर्थों का उल्लघन करके व्यजना द्वारा एक अद्भुत कार्य कर सकती है। फिर भी शब्द शब्द है, रंग रंग। सोचना यह है कि उपादान भेद से कला की अभिव्यक्ति के क्षेत्र में भी कोई अन्तर पड़ता है क्या ? रंगों का अपना–अपना व्यक्तित्व होता है, उनका सम्बन्ध सीधा हृदय से स्थापित हो जाता है। शब्दों का सम्बन्ध भी हृदय से स्थापित हो सकता है, परन्तु रंग की सी सहजता से नहीं। अतः शब्दों के माध्यम से रंगों की सिद्धि को प्राप्त करने की चेष्टा से कई असगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, और कलाकार धोबी के कुत्ते की तरह कहीं का नहीं रहता। यह प्रश्न केवल कहानी ही नहीं सम्पूर्ण वाङ्मय को स्पर्श करता है।

भिन्न भिन्न उपादानो से भिन्न भिन्न सौन्दर्यों की सृष्टि होती है। प्रत्येक की अपनी संभावनाएँ तथा मर्यादाएँ हैं। किसी एक कला के उपादानों से दूसरी कला की सिद्धि की चेष्टा करना, तथा उसके उच्चावच्च, अंशों को उसी दृष्टि से तौलना विशेष अर्थ नहीं रखता।

वैसे नयी-पुरानी आदि विभेद तो हम अपनी सुविधा के लिए बना सकते हैं, आलोचना आदि में इससे सुविधा रहती है। वस्तुतः कवि नरसिंह मेहता की एक पंक्ति प्रस्तुत प्रश्न के संदर्भ में भी सत्य है—जो उत्तम है वह चाहे नयी हो, पुरानी हो, त्रिकोण हो या आत्मभोग की हो, उत्तम कहानी उत्तम ही रहेगी—"नाम रूप जूजवाँ अंते तो हेमनु हेम होये' (सुवर्ण के विभिन्न अलंकारों के नाम भिन्न हैं, वस्तुतः सुवर्ण सुवर्ण ही है।)

नाहक वाग्जाल में फँसकर व्यर्थ मतमतान्तर-वाद-विवाद करके कटुता को जन्म देना उचित नहीं। अवश्य ही विचारों की स्पष्टता तथा तात्त्विक अन्वेषण के हेतु कुछ सीमा तक ऐसा वाद विवाद अनिवार्य है पर तु उन्हें पत्थर की लकीर मानकर परस्पर मतभेद की कटुता से भर देना योग्य नहीं।'

(चन्द्रगुप्त विद्यालंकार) :

"साहित्य की सबसे नयी विधा कहानी है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उसका जन्म माना जा सकता है। यह वह युग था, जब साहित्य की अन्य विधाएँ रीतिकालीन बन्धनों से मुक्त हो रही थीं पर आजादी के उस युग में जन्म लेकर भी कहानी क्रमशः अधिक अधिक बन्धनों में जकड़ती चली गयी। इतना कि एक अच्छी कहानी लिख सकना अत्यन्त दुस्साध्य कार्य बन गया।

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों के अन्त तक कहानी का जो विकास हो गया, उसे दृष्टि में रखकर कहानी की यह परिभाषा की जा सकती है—"किसी एक भाव के घटनात्मक, इकहरे, रसपूर्ण चित्रण का नाम कहानी है।"

उससे पूर्व या तबतक जो कहानियाँ लिखी गयी थीं उनमें से कितनी ही अत्यन्त मनोरंजक थीं, उनमें गहरा चिन्तन था और वे पाठक को न सिर्फ अभिभूत कर लेती थीं, अपितु वे उसके मन पर गहरी छाप छोड़ जाती थीं। पर या तो उनमें सिर्फ एक भाव नहीं बल्कि अनेक भाव रहते थे और या उन कहानियों का चित्रण इकहरा न होकर दोहरा, तिहरा बल्कि कभी कभी और भी अधिक तहोंवाला होता था। उदाहरण के लिए टामस हार्डी की 'डेम दि फर्स्ट', 'डेम दि सैकेण्ड' आदि कहानियाँ, जो अत्यन्त मनोरंजक हैं और बहुत अच्छी शैली में लिखी गयी हैं, पर आज उन्हें नावमेट

की श्रेणी में ही रखा जायेगा। हमारे देश में शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे महत्व कोटि के लेखक की कितनी ही कहानियाँ इसी ढंग की हैं। बहुत मनोरंजक होने पर भी उन्हें कहानी के स्वीकृत वर्तमान फार्म के अनुसार अच्छा कहना नहीं कहा जा सकता।

कहानी के इसी सतत बदलते रूप और एकसूत्र रूप के कारण बहुत से आलोचक कहानी को साहित्य की सबसे अधिक कठिन विधा मानने लगे। उनका कहना है कि अच्छी कहानी इस तरह की रचना है जैसे किसी से कहा जाये कि सिर्फ एक रेखा से अत्यन्त श्रेष्ठ कलाकृति का निर्माण करो। उनका यह भी कहना है कि संसार भर में प्रति वर्ष दस अच्छी कहानियाँ भी शायद ही लिखी जाती हैं। उनका यह भी विश्वास है कि एक लेखक एक भी अच्छी कहानी लिखकर अमर हो जायगा। उनकी यह भी मान्यता है कि एक अच्छी कहानी पढ़कर अनुभूतिशील पाठक उस कहानी को आजीवन भुला नहीं सकेगा। उस तरह की अच्छी कहानी पाठक के मन का ही एक अंग बन जाती है। राजाराव का तो विचार है कि भारत में अभी तक एक भी पूरी तरह निर्दोष कहानी नहीं लिखी गयी। उनका यह भी ख्याल है कि विश्व भर की आज तक की वास्तव में अच्छी कहानियों का पाँच सौ पृष्ठ से अधिक बड़ा संग्रह नहीं बन सकता।

ये सब बातें मैं यहाँ इस उद्देश्य से लिख रहा हूँ कि अच्छी और निर्दोष कहानी की कुछ कल्पना की जा सके। यह कितनी विचित्र स्थिति है कि साहित्य की जो विधा आज सबसे लोकप्रिय है जिस विधा में प्रति मास बहुत बड़ी संख्या में रचनाएँ की जा रही हैं (अनुमान है कि आज कल सिर्फ हिन्दी में लाख हजार और भारत में दो लाख से ऊपर कहानियाँ प्रति वर्ष लिखी जा रही हैं) वह विधा वास्तव में इतनी कठिन है। यह एक विचित्र विरोधाभास सा प्रतीत होता है कि कहानी नामक यह लोकप्रिय विधा एक ओर इतनी सरल है कि प्रत्येक मानसिक स्तर का व्यक्ति आज कलम पकड़ते ही कहानी लिखने लगता है और दूसरी ओर अच्छे से अच्छे माने जाने वाले लेखक जीवन भर में एक भी वास्तव में अच्छी और पूरी तरह निर्दोष कहानी नहीं लिख पाते।

इस विचित्र परिस्थिति के खिलाफ विद्रोह होना स्वाभाविक था। मुझे तो आश्चर्य इस बात का है कि यह विद्रोह इतनी देर बाद क्यों हुआ। हिन्दी में आज 'नयी कहानी' नाम का जो आन्दोलन जारी है, वह आंशिक रूप से उक्त स्थिति के खिलाफ विद्रोह भी है। अन्य देशों में इस स्थिति के परिणामस्वरूप कहानी के रूप और शैली में जो परिवर्तन आये हैं हिन्दी का 'नयी कहानी' आन्दोलन उनसे स्पष्टतः प्रभावित होते हुए भी जरा अधिक उग्र और कुछ अंशों तक फैनेटिक बन गया है।

सबसे पहले बात तो यह है कि उक्त आन्दोलन के वाहकों ने कहानी की उक्त

स्वीकृत रूप रेखा को अस्वीकृत कर दिया है। उन्नीसवी सदी के बहुत से कहानीकार कहानी में एक से अधिक भावो का गुथीला चित्रण करते थे और इसी कारण बाद में उनकी कहानियाँ दोषपूर्ण मानी जाने लगी थी। आज हिन्दी की 'नयी कहानी' बिना किसी भाव के भी लिखी जा सकती है। किसी भाव का चित्रण न होकर 'नयी कहानी' केवल किसी अस्थायी मनोदशा, परिस्थिति या वातावरण का घुमावदार, गुथीला या एकदम हलका चित्रण भी हो सकती है।

कहने को यह भी कहा जा सकता है कि इस तरह कहानी को बँधी हुई सीमाओ की कैद से छुटकारा दिया जा रहा है। पर वास्तविकता यह है कि कहानी नामक इस नये साहित्यिक माध्यम से जो बडी-बडी अपेक्षाएँ की जाने लगी थी, उन्हें 'वाद' देकर प्रचलित आन्दोलनो द्वारा इस माध्यम का सरलीकरण किया जा रहा है। आलोचक और पाठक कहानियो के रूप के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण बदल लें, तो उन्हें सभी तरह की कहानियाँ सन्तोषजनक प्रतीत होने लगेंगी।

दूसरे महायुद्ध के आसपास से कला और साहित्य पर एब्स्ट्रैक्ट प्रभाव भी पडे हैं। आज के विश्व को परेशान करने वाली परिस्थितियाँ उनके मूल में है। एटम शक्ति के इस युग मे एक तरफ मनुष्य के सम्मुख समृद्धि और ऐश्वर्य की असीम सम्भावनाएँ दिखाई दे रही हैं दूसरी तरफ इसी शक्ति से सम्पूर्ण मानव-जाति का विनाश भी सम्भव दिखाई दे रहा है। ये परिस्थितियाँ न सिर्फ कला, नृत्य, संगीत और साहित्य पर एब्स्ट्रैक्ट प्रभाव डाल रही हैं, अपितु मानव सम्बन्धो को भी प्रभावित कर रही हैं। पिछले कुछ समय से विश्व की कहानी पर भी एब्स्ट्रैक्ट प्रभाव पडे हैं। पर जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है ये प्रभाव सहज स्वाभाविक न होकर काफी अंशों तक आरोपित प्रतीत हो रहे हैं। हमारे देश में ये एब्स्ट्रैक्ट प्रभाव मुख्यतः अनुभूति द्वारा हृदय के भीतर से उद्भासित नही हो रहे हैं, वे बहुत अंशो तक बाह्य अध्ययन के आधार पर आरोपित से प्रतीत होते हैं। फिर भी मेरी राय में, वे निस्सन्देह उसी तरह ग्राह्य हैं, जिस तरह वैज्ञानिक आविष्कार मानव मात्र के लिए ग्राह्य होते हैं। पर यह भी स्पष्ट है कि एब्स्ट्रैक्ट कहानी की सम्प्रेषणीयता सीमित रहेगी।

जहाँ तक अच्छी कहानी का प्रश्न है, मैं व्यक्तिगत रूप से कहानी के उसी निर्दोष आदर्श को पसन्द करता हूँ, जिस आदर्श तक कहानी को एण्टन चेखव ने पहुँचाया था। मुझे अभी तक यही पसन्द है कि इन्सान सारी उम्र अच्छी कहानियाँ लिखने का प्रयास करे, और जितनी उसे सफलता मिले, उससे वह अनुप्रेरित और उत्साहित हो।

दूसरी ओर मैं कहानी के क्षेत्र मे पूरी आजादी और अधिक से अधिक विविधता लाने का भी हिमायती हूँ। इस दृष्टि से मैं उन सभी नये-नये परीक्षणो को पसन्द करता हूँ, जो कोई भी नया या पुराना कहानी-लेखक ईमानदारी से अपनी ताजा कहानिया मे करता है। मुझे विश्वास है कि नये प्रयोगो मे कहानी क्रमश अधिक समृद्ध बनेगी और उसकी ताजगी भी कायम रहेगी।

सन् १६२८ का वह दिन मुझे आज भी स्मरण है जब विद्यार्थियो की एक सभा मे मैंने प्रेमचन्दजी से पूछा था कि कहानी की विकासमान टकनीक के सम्बन्ध मे हमे कुछ बताइए। मेरे इस प्रश्न पर जी खोलकर हँस लेने के बाद प्रेमचन्द जी ने कहा था—'यह सवाल साहित्य के किसी प्रोफेसर से कहना। मैं तो भाई, कहानिया लिखता हूँ, जो पढने की चीज है। हा, मेरी किसी कहानी का नुक्ताचीनी करना चाहो, तो खुशी से कर सकते हो, और उस पर मैं अपना कफियत भी दे सकता हूँ।

बहुत समय तक हिन्दी में कहानी सम्बन्धी चरचाए सबसे कम हुई। सन् १९४५ मे हिन्दी के एक सम्मान्य प्रोफेसर (जो आज बहुत प्रमुख व्यक्ति हैं) से साहित्य सबधी चर्चा मे जब कहानी का जिक्र आया तो उन्होने कहा—"कहानी के बारे मे वादविवाद का सवाल ही नही उठता। यह तो मुख्यत रुचि का प्रश्न है। अच्छी और बुरी कहानी मे तो कोई साधारण पाठक भी विवेक कर सकता है। साहित्य की सभी विधाओ मे कहानी पर सबसे कम बहस की जा सकती है।"

आज सन् १९६४ मे स्थिति यह है कि कहानी पर आये दिन इतनी चर्चाए हो रही हैं कि साहित्य की किसी और विधा पर शायद ही इतनी तीव्र और इतनी अधिक बहस हुई हो। नयी कविता पर हिन्दी मे काफी वाग्विवाद हुआ था, पर वह चर्चा मुख्यत नई कविता के हामियो और उसके आलोचको तक ही सीमित रही थी। आज लगभग एक ही आयु के और प्राय सभी स्तरो के बहुत से कहानी लेखको मे परस्पर भारी मतभेद दिखाई दे रहा है। यह कहने मे भी शायद अतिशयोक्ति न हो कि पिछले १८ महीनो मे हिन्दी मे इतनी कहानिया नही लिखी गई जितने कहानी सम्बन्धी लेख या नोट लिख गए हैं। वह भी कहानी लेखको की कलम से।

जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा था कि जो व्यक्ति प्रतिभावान होता है, वह सृजनात्मक साहित्य लिखता है। जिस व्यक्ति मे मौलिक चिन्तन की प्रतिभा नही होती, वह आलोचक बन जाता है। अच्छा निर्माता बहस मे नही पडता, वह निर्माण करता है, जिसमे निर्माण करने की शक्ति नही है, वही बहस करता है।

पर बाद में स्वय बर्नार्ड शा साहब भी साहित्य सम्बन्धी चर्चाओ मे खासी दिलचस्पी लेने लगे थे।

मेरा ख्याल है कि कहानी सम्बन्धी ये चर्चाएं हिन्दी पाठकों के लिए साधारणत और हिन्दी कहानी लेखकों के लिए विशेषत उपयोगी सिद्ध होंगी। कहानी सम्बन्धी कितनी ही बातों के स्पष्टीकरण मे इस चर्चा से मूल्यवान सहायता मिलेगी। इस दृष्टि से ये चर्चाएं वाछनीय हैं।

पिछले तीन दशकों में हिन्दी कहानी पर बहुत से प्रभाव पड़े हैं। ऐसे प्रभाव जिन्होंने हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं को भी प्रभावित किया था। उन प्रभावों की चर्चा इस टिप्पणी में सम्भव नहीं है। पर यह अवश्य विचारणीय है कि प्रगतिवाद प्रयोगवाद आदि आन्दोलनों का हिन्दी कहानी पर किस तरह का प्रभाव पड़ा। आज के युग मे विश्व भर के साहित्य मे आदर्शवाद, भावुकता और रोमांस के दाम गिर गए है। जाहिर तौर से हिन्दी कहानी पर भी कुछ इस तरह के कम अधिक प्रभाव अवश्य पड़े है। पर यह बात बहस तलब है कि हिन्दी साहित्य मुख्यत और हिन्दी कहानी साधारणत किन्ही नये मूल्यों को (ऐसे मूल्यों को जो आज के पचीदा और परस्पर विरोधी शक्तियों से आक्रान्त जीवन से सीधे रूप मे सम्बद्ध हो) स्थापित करने में भी कामयाब हुई है या नहीं। दूसरे शब्दों मे उसका स्वर विनाशात्मक है, या निर्माणात्मक है, अथवा दोनो का अभिनन्दनीय समन्वय है।

कहानी में कथानक अनिवार्य है या नहीं—यह बात भी आज बहसतलब कही जा सकती है। इन अर्थों में, जिनमें कथानक को किसी घटना या घटनाओं का क्रमबद्ध चित्रण माना जाता था। यों आज भी कहानी मे एक या अधिक पात्र या कम अधिक परिस्थितियों अथवा दोनों का होना आवश्यक है और इन अर्थों में अभी तक कथानक को कहानी का अनिवार्य अंग अवश्य कहा जा सकता है।

वर्तमान कहानी का जन्म उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे हुआ, पर साहित्य की यह विधा जिन गाथा और कथाओं की वशज है उनकी आयु मानव इतिहास से कम लम्बी नही है। उन गाथा या कथाओं मे कथानक ही प्रमुख रहता था। सुनने वाले या पढ़ने वाले यह जानने को उत्सुक रहते थे कि 'आगे क्या हुआ ?' उन गाथा या कथाओं के मुख्यत दो उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य मनोरंजन और दूसरा उद्देश्य शिक्षा। कहते हैं कि आचार्य विष्णु शर्मा ने पचतन्त्र की नीतिमत्तापूर्ण कथाएं सुनाकर ही राजपुत्रों को राजनीति विशारद बना दिया था। उस युग मे केवल मनोरंजन के लिए भी बहुत बड़ी संख्या में कथाएं लिखी या कही जाती थी। पर समझदार पाठक या श्रोता उन कथाओं की अधिक कद्र करते थे, जिनमें मनोरंजन के साथ कुछ शिक्षा भी हो। उक्त दोनो उद्देश्योंकी दृष्टिसे गाथा में कथानक ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपादान माना जाता था। यह कथन भी अतिशयोक्ति न होगा कि ठीक ढंग से लिखा गया

कथानक ही गाथा या कथा का रूप धारण कर लेता था

कहानी नामक इस नयी साहित्यिक विधा में स्पष्टतः कथानक का उक्त एकाधिकार जाता रहा। यह ठीक है कि कहानी में भी कथानक एक अनिवार्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण उपादान बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक, बना रहा। पर वह एकमात्र उपादान नहीं रहा। कहानी में अन्य भी कुछ उपादान महत्वपूर्ण यहां तक कि अनिवार्य बन गये। उल्लेखनीय परिवर्तन तो यह आया कि कहानी में कथानक स्वयं लक्ष्य नहीं रहा वह कुछ अन्य बात कहने का साधन बन गया। बहुत समय तक कहानी में सिर्फ कोई एक केन्द्रीय भाव आवश्यक माना जाता रहा और कथानक उसके चित्रण का माध्यम बन गया। अच्छी कहानी की परख ही यह बन गयी कि उसका केन्द्रीय भाव कितना प्रभावशाली है, उसका स्वरूप कथानक कितना चमत्कारपूर्ण है और सारी कहानी में एक शब्द तक भी फालतू नहीं है, ऐसा नहीं है जो उक्त केन्द्रीय भाव के चित्रण में सीधे रूप से सहायक न हो।

इस तरह कहानी का केन्द्रीय भाव उसके कथानक से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बन गया। कहानी में घटनाओं का उलझन भरा ताना बाना उक्त मूल्य परिवर्तन के कारण धीरे धीरे छीजने लगा। थामस हार्डी से लेकर तुर्गनेव तक की कहानियां में जो लम्बे चौड़े अत्यन्त मनोरंजक घटनाक्रम चित्रित रहते थे, जिनके कारण उनकी कहानियां कभी बहुत लोकप्रिय रही थीं, वे अब कहानी के दोष प्रतीत होने लगे। मोपासां और एण्टन चेखव के इकहरे कथानकों वाली कहानियां कहीं अधिक लोकप्रिय हो गयीं। साहित्य और कला के क्षेत्र में जो रुचि परिवर्तन आ रहा था, उसने गहरे रंगों का स्थान हल्के रंगों को दे दिया। चित्रकला में जिस तरह शेड और अनुपात का महत्व कम हो गया, उसी तरह साहित्य में भी बिना आयास समझ में आने वाले घटनाक्रम और भाव प्रवणता दोनों का महत्व कम हो गया।

उक्त रुचि-परिवर्तन का सीधा प्रभाव कहानी के रूप पर तो पड़ा ही, सबसे अधिक इसने कथानक की कल्पना को प्रभावित किया। कथानक विरल कहानियां काफी बड़ी तादाद में लिखी जाने लगीं। ऐसी कहानियां, जिनमें काल और पात्र की स्पष्ट सृष्टि किये बिना किसी मूड या किन्हीं परिस्थितियों के सिलसिले का हल्का-सा, हल्की रेखाओं भर-सा चित्रण हो। इस हल्के चित्रण में बहुत जगह कथ्य भी काफी हल्का बन गया। होमियोपैथिक डोज सा चित्रण और होमियोपैथिक डोज सा ही कथ्य। हमें मानना चाहिए कि पत्रिकाओं सैन्सिटिव हृदयों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

यह ठीक है कि ये कथानक-विरल कहानियां विश्व भर में कहीं भी प्रभावक रूप से लोकप्रिय नहीं बन पायीं। पर इन कहानियों के प्रशंसकों की दलील है कि

एण्टन चेखव जसे श्रेष्ठ लेखक का कहानिया भी जासूसी कहानिया के समान लोक प्रिय नही हो पाया। इससे लोकप्रियता को साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी नही माना जा सकता।

व्यक्तिगत रूप से मैं रुचि की नवीनता को साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी नहीं मानता। हल्के रगो से लोग ऊब जाते है तो शोख और चमक दमक वाले रग पसन्द करने लगते हैं। उनसे ऊबते है तो पहले की अपेक्षा भी हल्के रगो की माग होने लगती है। यह तो वैसी ही बात हुई कि जैसी स्त्रियो के बालो की बनावट, उनकी साज सज्जा और उनके वस्त्रो में प्रति वर्ष परिवर्तन जरूर आता है, पर यदि आप पिछले ५० वर्षों के फैशनो को एक साथ देखें, तो पायेंगे कि वही फैशन थोडे बहुत रद्दो बदल के साथ पुन वापस आते रहते हैं। पिछले ४० वर्षों में पुरुषो के पतलूनो की मोरिया दो बार चौडाई की ओर गया हैं और चार बार तगी की ओर। आज कल वे इतनी तग हो गया है कि पतलून और तग पाजामे में भेद करना भी कठिन हो रहा है। साहित्य या कला को इस तथा कथित नवीनता के दृष्टिकोण से मापना एक भारी भूल होगी।

मेरी राय से कहानी मे कथानक का महत्व आज भी बहुत अधिक है। यह ठीक है कि कथानक स्वय लक्ष्य नही है, वह कुछ और बात कहने का माध्यम भर है। पर अच्छा कथानक कहानी को प्राणवान और शक्तिशाली बना देता है। आज भी—सन् १९६४ में भी। यह ठीक है कि कहानी के कथ्य (केन्द्रीय भाव), कथानक और रूप (फार्म) तीनो की श्रेष्ठता के बिना कोई कहानी प्रथम श्रेणी की नही बन सकेगी। और इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि किसी भी दशा में कथानक को उपेक्षणीय नही माना जा सकता। यह ठीक है कि मौलिक कथानको की कल्पना कर सकना भी कोई आसान काम नही है। एक तरफ कथानको में पुनरावृत्ति आने और दूसरी तरफ वास्तविकता पर आधारित नये कथानको के निर्माण में कमी इन दो कारणो से भी कथानक विरलता की प्रवृत्ति व्यापक बनी है। पर यदि कोई प्रतिभाशाली लेखक आज भी औचित्यपूर्ण मौलिक कथानको की कल्पना कर सकता है, उसके पास कहने को बहुत कुछ है, और कहानी के फार्म पर उसका प्रभुत्व है, तो उसकी कहानी न सिर्फ बहुत लोकप्रिय सिद्ध होगी, अपितु वह अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि की भी होगी।

विश्व साहित्य में कथातत्व की प्रधानता प्रारम्भ ही से रही है। नाटक तो कथानक के बिना चल ही नही सकता, प्राचीन धार्मिक साहित्य भी सभी देशो और सभी कालो में कथाओ का आश्रय लेता रहा है। महाकाव्यो में भी कथानक आधार के रूप में रहता आया है। यहा तक कि मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्य और सगीत भी विश्व के सभी देशो में कथानको का आश्रय लेकर पनपे। प्राचीन और मध्यकालीन

विश्व-साहित्य म जो किस्से और गाथाए बहुत बडी सख्या मे उपलब्ध होती है उ, उनका क्षेत्र और उनके प्रकार जैसे अनन्त हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, देवी देवता वृक्ष, परियां यहा तक कि ग्रह उपग्रह इन गाथाओ के पात्र हैं और उनके माध्यम से साहित्यकार चाहे जिस तरह के भावो की अभिव्यक्ति चिरन्तन काल से करता रहा है।

पर उन्नीसवी सदी म जब कहानी नामक एक नए साहित्यिक माध्यम का विकास हुआ तो उक्त गाथा और कथाओ को जसे तराशकर एक मान म बाधा जाने लगा। क्रमश कथानक के माध्यम स किसी एक भाव का इकहरा चित्रण ही 'कहानी' नामक इस नयी विधा का ध्येय बन गया। एक अच्छी कहानी म ऐसा एक वाक्य तो क्या, एक शब्द तक भी असह्य भार माना जाने लगा, जो कहानी के उक्त इकहरे केन्द्रीय भाव के चित्रण म सीधे तौर से सहायक न हो। इस तरह उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में, जब अन्य साहित्यिक विधाए क्रमश आजाद हो रही थी, छन्द, अलकार, अनुप्रास रस सगति आदि की परम्परागत मा यताओ से अधिकाधिक मुक्ति प्राप्त कर रही थी, कहानी नामक यह नई साहित्यिक विधा अपने लिए ऐसे बन्धनो का निर्माण कर रही थी, जो इसे एक दम बधा हुआ, नपा-तुला और एग्जैक्ट बना रहे थ। अच्छी कहानी खूब बारीकी और होशियारी से तराशे गए हीरे के समान बन गई थी।

यह स्थिति कुछ अ शो तक अस्वाभाविक थी। कहानी एक तरफ साहित्य की अत्यन्त लोकप्रिय विधा थी, दूसरी तरफ अच्छी कहानी लिख सकना एक दुस्साध्य काय बन गया था। इससे कहानी सम्बन्धी मान्यताओ म परिवर्तन आना अनिवार्य था। यों यह परिवर्तन न जाने किस तरह और कितने बरसो मे आता, पर बीसवी सदी म कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनाए हुई, जिन्होने सभी कुछ बदल दिया।

बीसवी सदी के दोनो विश्व युद्धो ने मानव जाति के पुराने मूल्यो को जसे तहस-नहस कर दिया। पिछली कुछ सदियो मे जो संस्थाए धीरे धीरे कमजोर हो रही थी, जो मान्यताए क्रमश कच्ची पडती जा रही थी, उन संस्थाओ और मान्यताओ को पहले विश्व युद्ध ने एक भारी धक्का दिया और विशेषत दूसरे विश्व युद्ध न जसे एक साथ जड से उखाडकर फेंक दिया। अधिकार, आचार, मर्यादा आदि के सम्बन्ध म पुराने जमाने से चली आ रही सभी धारणाए एकाएक बदल गई। ईश्वर, धर्म आदि प्रचलित मा यताओं का भय यदि पूरी तरह समाप्त नही हो गया तो वह बहुत हल्का जरूर हो गया।

इस सबका सीधा प्रभाव साहित्य पर भी पडा। मानवीय मूल्यों के परिवर्तन के साथ मानवीय चेतना मे परिवर्तन आना ही था। इस सबका एक प्रभाव यह भी हुआ कि साहित्य सही अर्थों मे जनसाधारण की वस्तु बन गया। (या साहित्य में

'बहुजन हिताय' का आदर्श एकदम नया नहीं है, पर आज भाग्य, धर्म और ईश्वर पर से आस्था कम हो जाने के कारण 'जनहित' का मूल अर्थ ही बदल गया है।) परिणाम यह हुआ कि साहित्य मात्र के आयाम बढ़ गए। साहित्य की महत्ता बढ़ी और उसका प्रभाव भी बढ़ा। *इस स्थिति के जो अन्य परिणाम हुए, उनका उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक है।*

कथा-साहित्य में उक्त परिवर्तनों को आत्मसात करने की सामर्थ्य अपेक्षाकृत अधिक थी। इससे परिवर्तित परिस्थितियों में कहानी का रूप स्पष्टतः बदला। वह पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गया। उपन्यास की टैकनीक में किसी तरह का परिवर्तन किए बिना उसके आयाम बढ़ाए जा सकते थे। पर कहानी के स्वीकृत स्वरूप को कुछ अंशों तक बदले बिना, उसके आयाम बढ़ाना आसान नहीं था। इससे दूसरे महायुद्ध के बाद कहानी का रूप बदला। केवल एक चमत्कारपूर्ण भाव के चमत्कारपूर्ण इकहरे चित्रण तक ही कहानी सीमित नहीं रही। (यद्यपि उस तरह की कहानी आज भी श्रेष्ठ, उपादेय और प्रभावशाली मानी जाएगी।) आज केवल एक मनःस्थिति या एक प्रतीक या एक व्यंग्यात्मक चित्रण के आधार पर भी कहानी लिखी जाने लगी है और सहृदय पाठक उससे रस ग्रहण करते हैं। केवल एक चरित्र चित्रण या मानवीय चिन्तन की एक झलक और यहाँ तक कि विचारात्मक रेखांकन भी किसी कहानी का उपादान स्वीकार किए जा सकते हैं। इसी तरह स्केच या रिपोर्ताज को आज कहानी के अन्तर्गत ही माना जाने लगा है। कहानी के इन बढ़ते हुए आयामों से, मेरी राय है कि, कहानी की सामर्थ्य और कहानी का गुरुत्व और भी अधिक बढ़ा है। वह कम नहीं हुआ।

जहाँ तक हिन्दी कहानी का सम्बन्ध है हिन्दी कहानी पर ये प्रभाव स्वाधीनता के उपरान्त पड़ने प्रारम्भ हुए। उस युग मे हिन्दी कहानी की तीसरी पीढ़ी सामने आ रही थी। इससे हिन्दी में कहानी के आयाम विस्तृत करने में तीसरी पीढ़ी का योगदान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। भीष्म साहनी मोहन राकेश रामकुमार, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा हरिशंकर परसाई कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्वदा आदि लेखकों ने हिन्दी *कहानी में इस सम्बन्ध में जो नये प्रयोग किए उनसे हिन्दी कहानी क्षेत्र निस्सन्देह* विस्तृत हुआ है।

यहाँ तक तो ठीक। पर साहित्य की शक्ति और उसके आयाम विस्तृत हो जाने पर भी उसके आधारभूत तत्व तो आज भी वही है। साहित्य का ध्येय भले ही बदल गया हो, पर रस आज भी उसका आवश्यक लक्षण है। रस के अतिरिक्त साहित्य में बुद्धितत्व का चमत्कार तथा संवेदनशीलता—ये दोनों आज भी उसी तरह आवश्यक

है जिस तरह आज से हजारों वर्ष पूर्व आवश्यक थे। कहानी की टैकनीक चाहे जितनी बदल जाए, उसके आयाम चाहे जितने विस्तृत हो जाए, पर यदि उसमें रस, बुद्धितत्व या संवेदनशीलता की न्यूनता आ गई, तो वह अच्छी कहानी किस तरह बन सकेगी ?

कहानी की बात करते हुए मैं पुनः इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि कहानी का परिवेश चाहे जो हो उसमें वस्तु की उपेक्षा कभी सहन नहीं की जा सकेगी। वस्तु या तत्व का अभाव या उसकी न्यूनता अच्छे से अच्छे रूप में लिखी गई कहानी को भी कमजोर बना देगी।

बहुत से प्रबुद्ध पाठकों की चिट्ठियाँ मुझे इस आशय की मिली हैं कि पिछले कुछ समय से हिन्दी कहानी का स्वर अश्लीलता की ओर जा रहा है। उनकी शिकायत है कि आज ऐसी कहानियाँ बहुत अधिक संख्या में लिखी जा रही हैं, जिनमें वासना के चित्रण के साथ साथ सेक्सुअल व्यवहार का विस्तृत या अति स्पष्ट वर्णन रहता है।

सच बात तो यह है कि सैक्स को प्रधानता देने की प्रवृत्ति केवल हिन्दी कहानी में ही नहीं है यह प्रवृत्ति आज प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की कहानियों में विद्यमान है। बल्कि आज की विश्व कहानी के सम्बन्ध में तो यह शिकायत और भी उग्र रूप में की जा सकती है। दूसरे विश्वयुद्ध के आस पास यह प्रवृत्ति सबसे पूर्व इटैलियन और फ्रेंच कहानियों में दिखाई दी। यों वासनापूर्ण और अश्लील कहानियाँ बहुत पहले से लिखी जा रही हैं पर उन्हें सस्ते ढंग की रचनाओं के रूप में ऐसे लोग लिखते थे, जिन्हें साहित्य में सम्मान का स्थान प्राप्त नहीं था। दूसरे महायुद्ध के आस पास फ्रांस और इटली के कुछ चोटी के लेखक मानव सेक्सुअल व्यवहारों का खुला चित्रण अपनी रचनाओं में करने लगे। शुरू शुरू में पाठकों को यह काफी अटपटा भी प्रतीत हुआ, क्योंकि उन रचनाओं पर अश्लीलता का आरोप कुछ आलोचकों ने किया था। पर बाद में यह जैसे एक नया फैशन-सा बन गया। काम क्रीडाओं का यह एनौटॉमिकल तथा फिजियोलॉजिकल चित्रण बहुत से पाठकों को उद्दीपनपूर्ण प्रतीत न होकर नीरस वैज्ञानिक चित्रण सा जान पड़ा। ऐसे भाव का स्थान, जिसको जहरीला दंश निकाल दी गई हो।

यह भी ठीक है कि पिछले २० वर्षों में सेक्स सम्बन्धी वर्णनों के मान या पैमाने बदल गए हैं। इसके अनेक कारण हैं। दूसरे महायुद्ध के दौरान में विशेषतः यूरोप के देशों के सामाजिक जीवन में भारी परिवर्तन आए थे। जिन दिनों इंग्लैण्ड पर जर्मन हवाई जहाज लगकर बमबारी कर रहे थे, लन्दन के हजारों-लाखों नागरिक भूमि के भीतर के रेलवे प्लेट फार्मों पर सोते थे। वहाँ निरन्तर प्रकाश रहता था और

किसी तरह का पर्दा नहा था। उन्हीं प्लेटफार्मों के खुले प्रकाश में युवक और युवतियो के रात्रि जीवन के सभी व्यवहार उन्मुक्त रूप से चलते थे। उन परिस्थितियों ने इंग्लैण्ड की सैक्स सम्बन्धी पुरानी परम्पराओं को जिस तेजी से तहस नहस किया, उससे वहा के जीवन और चितन पर सीधा प्रभाव पडा। इटली और फ्रांस की परिस्थितियाँ उससे भी अधिक विकट थी और मानव की सैक्स प्रवृत्ति उन दिनों बहुत नग्न रूप में उन तथा अन्य यूरोपियन देशों मे दिखायी दी थी। परिणाम यह हुआ कि इस सम्बन्ध के पुराने मियार बदल गए। साहित्य में जो बातें कुत्सित और अश्लील मानी जाती थीं, वे बातें अब साधारण दिखाई देने लगीं।

साहित्य मे सैक्स सम्बन्धी चित्रण के मियार चाहे जितने बदल जाए, हम यह नहीं भूलना चाहिए कि आखिर सैक्स मानव जीवन का एक अंग मात्र है। वही सम्पूर्ण जीवन नहीं है। फ्रायड के अनुसार मानव जीवन प्रारम्भ से ही सैक्स द्वारा परिचालित होता है। पर उसका यह अर्थ नहीं है कि मानव जीवन में सैक्स ही एकमात्र प्रेरणा है। जीवन की आधारभूत कितनी ही अन्य प्रेरणाएं भी हैं। मानव मन और मानव शरीर के कितने ही वेग और आवेग हैं। मन की भूख से पेट की भूख शायद कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। 'ईगो' तुष्टि शायद उक्त दोनों भूखों से भी अधिक तीव्र है, क्योंकि उसके लिए मनुष्य अपना जीवन तक कुरबान कर देता है।

फिर भारत जैसे विशाल देश की अपनी समस्याएं हैं, जिनकी जबर्दस्त प्रतिक्रिया किसी भी अनुभूतिशील मन और मस्तिष्क पर अवश्य होनी चाहिए। हमारा देश भारत आज सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण मे व्यस्त है, जिसके लिए भावनात्मक प्रेरणाएँ सबसे अधिक कीमती सिद्ध होंगी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इस विशाल देश की एकता पर कितने ही बड़े-बड़े प्रहार हुए है। भाषा, धर्म, जत्थेबन्दी आदि के उबालों ने भारत की आधारभूत एकता को कितनी ही बार खतरे मे डाला है। हमारे साहित्यकार को इन परिस्थितियों से गाफिल नहीं रहना चाहिए।

उक्त दोनों तथा अन्य भी कितनी ही दृष्टियों से यह आवश्यक है कि हमारे साहित्य में सभी तरह के स्वर सुनाई दें। विशेषत भारतीय कहानी में क्योंकि कहानी की विधा बहुत अधिक प्रभावशाली तथा सशक्त है। सैक्स सम्बन्धी अच्छी कहानियों का आदर करते हुए भी मैं यह कहना चाहता हूँ कि मानव जीवन तथा अमानव विकार केवल सैक्स तक ही सीमित नहीं हैं। इससे कहानी के विषय और कहानी की वस्तु की परिकल्पना अधिक व्यापक धरातल पर होनी चाहिए। तभी कहानी-साहित्य अधिक समृद्ध, शक्तिशाली और विविध बनेगा।

साथ ही यह भी आवश्यक है कि कहानी के पाठक अपना दृष्टिकोण अधिक

विशाल बनाएँ। आज के मानव जीवन में जो बड़े बड़े परिवर्तन एकाएक आ गए हैं, उन्हें और उनके कारणों को वे समझें और विश्व की बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों और तज्जन्य नई धारणाओं से अपने को अपरिचित न रखें। नारी को हीन समझने वाले पर्दा युग की सामाजिक तथा आचार सम्बन्धी मान्यताएँ आज के युग में काम नहीं देंगी, यह स्पष्ट है।

एक सुप्रसिद्ध लेखक के मेरे नाम हाल ही में आये पत्र का एक अंश इस प्रकार है—' आपने लिखा है 'पिछले कुछ वर्षों से भारतीय कहानियों में कितने ही नये प्रयोग हो रहे हैं। हिंदी में सम्भवतः सबसे अधिक मात्रा में हुए हैं। कहानी सम्बन्धी परिशीलन और चर्चाएं जिस मात्रा में हिंदी में हुई हैं, उस मात्रा में शायद ही संसार की किसी अन्य भाषा में हुई हों। यह ठीक है कि इन परिचर्चाओं में सभी कुछ उपादेय नहीं था। फिर भी सब मिलाकर उनमें ग्राह्य तत्व प्रचुर मात्रा में है।' पर क्या आप यह नहीं मानते कि पिछले कुछ वर्षों में कहानी के सम्बन्ध में सबसे अधिक धांधली भी हिन्दी में ही हुई है? अन्य भारतीय भाषाओं के साथ आपने हिन्दी का क्या मिला दिया? इस तरह की बेसिर पैर की नयी कहानी भारत की अन्य किसी भाषा में लिखी जा रही है? संसार की समृद्ध भाषाओं की बात जाने दीजिये। उनमें प्रयोगों का प्रयोग के रूप में ही लिया जाता है, क्रान्तिपूर्ण नारेबाजी के रूप में नहीं। फ्रेंच, इटैलियन, अंग्रेजी आदि में दूसरे महायुद्ध के बाद जो बुद्धि बोझिल है भी, नहीं भी वादी,' सिनिकल प्रयोग पूरी और कहीं कहीं अधूरी ईमानदारी से हुए हैं, उन्हें तथा उनके कारणों को समझे बिना, उनका गहरा विवेचन किये बिना, हमारे कुछ अपरिपक्व पर महत्वाकांक्षी युवक लेखक उन प्रयोगों की बेजान नकल आज हिंदी को दे रहे हैं। और इसी कूड़न के बल पर वे हिन्दी लेखन के पिछले ५० वर्षों के शानदार रिकार्ड की खिल्ली उड़ा रहे हैं। जो कुछ उन्होंने नहीं लिखा, या उनसे पहले लिखा जा चुका है उस सबको वे बचकाना, दकियानूसी, घिसा पिटा फारमूले पर आधारित बता रहे हैं। इस मूर्खतापूर्ण गुस्ताखी में आपको ग्राह्य तत्व, वह भी प्रचुर मात्रा में कहाँ दिखाई दे रहा है?"

इस पत्र में जो झुँझलाहट है, उस में आज के युग की एक बहुत बड़ी समस्या मानता हूँ। पिछली पीढ़ी के लेखकों में वर्तमान पीढ़ी की प्रवृत्तियों के प्रति जो झुंझलाहट है, वही आज की पीढ़ी में बुजुर्गों के प्रति क्रोध के रूप में परिणत हो गयी है हमें याद रखना चाहिए कि हिन्दी कहानी में आज चार पीढ़ियाँ एक साथ विद्यमान हैं। सुदर्शन, राय कृष्णदास और वृन्दावनलाल वर्मा आदि से लेकर मनहर चौहान, विजय चौहान और रमेश बक्षी तक चार पीढ़ियां साफ तौर से देखी जा सकती हैं।

इन सब पीढ़ियो की रचनाशैली मे, उनके दृष्टिकोण म उनकी एप्रोच मे साफ अन्तर है वह अ तर क्या है और क्यो है, इसे समझे बिना, इसके कारणो का विवेचन किये बिना यदि हमारे कुछ लब्धप्रतिष्ठ लेखक नयी पीढ़ी या अपने स बाद की पीढ़िया के प्रति झु भला उठते हैं, तो नये लेखक जवानी के जोश मे बुजुर्गों क प्रति आवेगपूर्ण क्रोध म भी आ सकते है। एक दूसरे क प्रति तीव्रतापूर्ण यह व्यापक गलत फहमी आज हि दी जगत की एक बडी समस्या बन गया है। पर यह हिन्दी-जगत तक ही कहाँ सीमित है ? यह भी तो शायद आज क युग की एक व्यापक रुग्‍ है। विश्व राजनीति से लेकर गाव की पचायता तक ये गलतफहमिया सभी क्षेत्रो म फैली हुई हैं।

हि दी कहानी-क्षेत्र की इन यापक गलतफहमिया क मूल कारण अनेक हैं। दृष्टिभेद और रुचिभेद से लेकर दुकानदारी चलाने क लिए सगठित विज्ञापनबाजी तक। दूसरे श दा म वाजिब और गैरवाजिब, दोनो तरह क कारण इन गलतफहमिया क हैं।

एच जी वेल्स का कथन है कि मानव इतिहास शुरू शुरू म एक लम्बी ऊ घ क समान था, उसक बाद वह रेंगने लगा। ईसा से ५ या ६ सदी पूर्व स वह चलने लगा, धीरे धीरे उसकी रफ्तार तेज होती गयी और बीसवी सदी से वह मानो भागने लगा। उक्त स्थापना मे यह जोडा जा सकता है कि दूसरे महायुद्ध मे मानव इतिहास एक तेज तूफान की चाल से उडने लगा है। एक तरफ विज्ञान न बहुत बडी मारक शक्तिया मनुष्य के हाथ म दे दी है, दूसरी तरफ मनुष्य के भीतर का स देह, स्वार्थ और ईर्ष्या आज भी नियन्त्रित नही हो पायी। यह एक अजीब तरह का सघर्ष है। इन परिस्थितियो मे स्पष्ट अन्तर्विरोध है। इस सघर्ष से मानव जाति का भविष्य एकदम अनिश्चित बना हुआ है। एक तरफ सम्पूर्ण विनाश और दूसरी तरफ भारी समृद्धि—य दोना सम्भाव नाए आज मानवजाति क सम्मुख विद्यमान हैं। भारी अन्तर्विरोधपूर्ण इन विचित्र परि स्थितियो ने एब्स्ट्रैक्ट प्रभावो का ज म दिया। चित्रकला सगीत, नृत्य आदि मे ये एब्स्ट्रैक्ट प्रभाव सबसे पहल दिखायी दिये। उसके बाद साहित्य पर भी इनका प्रभाव पडा। कविता पर सबसे पूर्व, तदनन्तर कुछ अन्य विधाओ पर और सबसे बाद मे कहानी पर। मैं यहा बहुत सक्षेप मे इन तथ्या का निर्देश मात्र इस उद्देश्य से कर रहा हू कि हिन्दी कहानी की चारो पीढ़ियो की मानसिक पृष्ठभूमि को समझा जा सके।

हमारी सबसे पुरानी पीढ़ी आदर्शवाद के युग की है। जब हमारा देश आजादी के लिए जद्दोजहद कर रहा था, अ ग्रेजी हुकूमत की नाराजगी और कई तरह के खतरे मोल लेकर इस पीढ़ी ने देश मे नया आदर्शवाद और नयी उमगें पैदा कर रहे थे। दूसरी पीढ़ी उस जमाने की है, जब स्वाधीनता का आ दोलन भारतीय जनजीवन

का अंग बन गया था जनता निराश हो गयी थी और हमारे नवयुवक आजादी से मोहभंग होने लगे थे। इस पीढ़ी ने एक ओर आदर्शवाद का पोषण किया, तो दूसरी ओर ठोस वास्तविकताओं को भी गहराई से देखने का प्रयास किया। तीसरी पीढ़ी आजादी प्राप्त होने के एकदम बाद की है—उन उत्साही नौजवानों की जो सभी क्षेत्रों में नये मूल्यों की स्थापना चाहते थे। स्वाधीनता प्राप्ति के दिनों की क्रूरताओं ने शायद इस पीढ़ी को कुछ हद तक निर्मम बनाने का काम भी किया। चौथी पीढ़ी आज की है—एकदम ताजी, बीसवीं सदी के सातवें दशक की। स्वाधीनता प्राप्ति से समृद्धि की जो बड़ी बड़ी आशाएं जनता ने लगायी थीं, वे पूरी नहीं हुई। इस नवीनतम पीढ़ी पर उस निराशा की स्पष्ट छाप है—उतावलापन और कुछ नया करने की चाह, जिसे रास्ता नहीं मिलता। परिणामतः एक प्यारी बगावत इस पीढ़ी में है। इस चौथी पीढ़ी में साधारणतः तीसरी श्रेणी के प्रति और भी अधिक रोष विद्यमान है। यह पीढ़ी साहित्य और कला के एब्स्ट्रैक्ट रूपों से सबसे अधिक प्रभावित हुई है।

हिंदी को समृद्ध करने में इन चारों पीढ़ियों का योगदान है। इन चारों पीढ़ियों की पारस्परिक तुलना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं यह भी नहीं कहता कि पहली पीढ़ी के सभी लेखक आदर्शवादी हैं या दूसरी पीढ़ी के कोई लेखक या उतावले नहीं हैं। फिर भी स्थूल रूप से यह श्रेणीकरण अशुद्ध नहीं होगा। मैं तो यह भी मानता हूं कि यह श्रेणीकरण व्यक्तिगत न होकर परिस्थितिगत है और पहली पीढ़ी का कोई भी समझदार और शक्तिशाली लेखक जरा अधिक जागरूक होकर वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल अत्यन्त श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण कर सकता है।

इस बीच कहानी के रूप (फार्म) में जो परिवर्तन आये हैं उनकी चर्चा मैं फिर कभी करूंगा। यहां इतना कहना ही काफी है कि फार्म के सम्बन्ध में भी कोई एक पीढ़ी किसी एक फार्म पर एकाधिकार का दावा नहीं कर सकती। हां यह ठीक है कि साधारणतः एक लेखक की रुचि और उसका दृष्टिकोण एक दिशा में ढलता चला जाता है और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकना आसान नहीं होता।

साहित्यिक विधाओं में कहानी सबसे अधिक सार्वभौम है। एक अच्छी कहानी संसार की किसी भी भाषा में अनुवादित होकर उस भाषा के पाठकों को भी अच्छी कहानी प्रतीत होगी। कहानी नामक इस नये साहित्यिक माध्यम का अनन्त विकास हो रहा है और उस विकास में संसार के बहुत-से देश भाग ले रहे हैं। हिन्दी कहानी को विश्व-कहानी से पृथक कोई अन्य विधा मान लेना अपने को गुमराह करने के समान है। हिन्दी कहानी का जो शानदार विकास पिछले पचास वर्षों में हुआ है उसमें इन चारों पीढ़ियों का योगदान है। अच्छा यही रहेगा कि इन चारों पीढ़ियों के लेखक अपने

दृष्टिकोण को अधिकाधिक विस्तृत करें, कहानी के बल्कि साहित्य के नये आयामों को पहचानें और इस तरह अपने सृजन को अधिक प्रभावशाली और परिपक्व बना सकें।

इस सम्बन्ध में एक बात पर मैं विशेष बल देना चाहता हूँ। गाल्सवर्दी ने एक जगह कहा है कि यदि तुम्हारे पास कहने को कुछ है, तो उसे चाहे जिस रूप में चित्रित करो, तुम्हारे पाठक उसे पसन्द करेंगे। तुम्हारा वह सृजन प्रभावशाली होगा। और यदि कहने को कोई ठोस वस्तु नहीं है, तो चाहे अपनी रचना के परिवेश को जितना अत्याधुनिक (अप टु डेट) या भड़कीला बना लो, उस रचना में तुम प्राण संचार नहीं कर पाओगे।

नये लेखकों का ध्यान मैं विशेष रूप से उक्त सत्य की ओर खींचना चाहता हूँ। आज का मानव जीवन बहुत पेचीदा है। मनुष्य का मन और मस्तिष्क आज की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों से न सिर्फ प्रभावित हैं, बल्कि परिचालित भी हो रहे हैं। इस तरह मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ केवल भावना के क्षेत्र तक सीमित नहीं रहतीं, वे बहुत पेचीदा बन जाती हैं। यह कहना कठिन हो जाता है कि मानव मन की किस क्रिया में कौन सा प्रभाव कहाँ तक है।

यदि लेखक ने इनमें से किसी भी शक्ति का गहरा अध्ययन नहीं किया, तो उसके पास अपना दृष्टिकोण कहाँ से आयेगा? जिस लेखक के पास अपना कोई दृष्टिकोण नहीं है सामाजिक समस्याओं के प्रति उसकी कोई एप्रोच कहाँ से बनेगी? इससे किसी तरह की फनवबाजी का शिकार बनने या स्वयं फनवबाजी करने से पहले यदि आप अपनी अन्तर्दृष्टि का ठोस और वैज्ञानिक धरातल पर समुचित विकास कर लेंगे, तो न स्वयं फनव देंगे और न फावेबाजी का शिकार बनेंगे।''

(प्रकाश चन्द्र गुप्त) :

पिछले वर्षों में हिन्दी नया-साहित्य का अपूर्व विकास हुआ है, यह बात सर्वमान्य है। 'झूठा सच' और 'मैला आँचल' जैसे उपन्यासों की सृष्टि और अनेक प्रतिभाओं का उदय इसका प्रमाण है। कुछ आलोचकों की राय में कहानी की प्रगति में सभी *अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक वेग और तीव्रता है।* हम नहीं समझते, कि हिन्दी उपन्यास की प्रगति किसी प्रकार भी कहानी से पीछे है।

कहानी की गति में हम एक विचित्र अन्तर्विरोध पाते हैं। जहाँ कहानी ने एक दिशा में अपूर्व प्रगति की है, वहाँ दूसरी दृष्टि से वह प्रेमचन्द की परम्परा से कई *कदम पीछे भी हटी है।* आज हिन्दी *कहानी में जीवन का अधिक संश्लिष्ट चित्रण है,*

जीवन और यक्तित्व की झलक म तर्पते उसने खोली है। फिर भी वह प्रेमचन्द की तुलना मे लोक जीवन से दूर हटी है, उसकी क्रांतिकारी चेतना म ह्रास हुआ है। इसका यह तात्पर्य नही, कि आज के कहानीकार की दृष्टि मे सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह नही है, वरन् यह कि सामाजिक तथ्य को दृष्टि म रखते हुए भी वह अधिक आत्म-लीन हो रहा है और व्यक्तिवाद के घेरे म अधिक बँध रहा है। 'झूठा सच' अथवा 'मैला अन्चल' म हम विकास क साथ साथ तीव्र क्रांतिकारी चेतना का सहवास भी पाते ह।

लोक चतना क ह्रास क क्या कारण हा सकत हैं? आज का लेखक बीच के वर्ग की ढुलमुल यकीनी का शिकार हो रहा है। वह अहवाद का उस हद तक पराजित नही कर सका, जितना प्रेमचद ने किया था। न आज दश के पास ऐसा केन्द्रीय ध्येय है, जैसा प्रेमचन्द की पीढ़ी क पास था। वह स्वतन्त्रता का ध्येय था, और उसन सपूर्ण राष्ट्रीय चेतना का अनुप्राणित किया था। समाजवाद का सिद्धान्त उस प्रकार अभी दश क प्राण मे व्याप्त नही हो पाया है। जब कोई सिद्धा त या विचार जनता की कल्पना मे बस जाता है, तो, मार्क्स के अनुसार, वह भौतिक शक्ति बन जाता है। पुरानी पीढ़ी क लखका म भी व्यक्तिगत दभ, असहिष्णुता, यश की लालसा और महत्वाकाक्षा आदि दुबलताएँ थी, किन्तु आज प्रतिभा की इन अन्तिम दुर्बलताओ का जैसे अतिक्रमण हो रहा है।

प्रेमचन्द की सबल परम्परा का अपनी पीढ़ी के अनेक कलाकारो न दृढ हाथा स सँभाला था। झूठा सच' म यशपाल आज की दुरावस्था का प्रभावशाली चित्र म चित करते हैं। इस चित्र मे आगे बढन की दिशा का भी स्पष्ट सकत है। महा क्रान्तिकारी दृष्टि हम राहुल, रागेय राघव, नागार्जुन और रेणु मे दखत है। कृष्णच द आदि उर्दू के अनेक लेखको की रचनाएँ, जा हिन्दी म छपती रही हैं, इसी चतना की समर्थक है। इन रचनाओ म तीव्र सामाजिक चेतना है। वे लोक-मानस क निकट हैं, और अहवादी व्यक्तिवादी भावनाओ को प्रश्रय नही दती। इसी काल म जैनेन्द्र, भग वती चरण वर्मा, 'अज्ञेय' आदि नागरिक, मध्यम-वर्गीय जीवन की ओर मुडे, और उन्हान हिन्दी के कथा-पट का नया विस्तार दिया।

हिन्दी कथा-साहित्य क इतिहास म आज की पीढ़ी की महत्वपूर्ण उपलब्धिया हैं। इस पीढ़ी के अनक लेखक ग्राम-जीवन की ओर फिर से मुड। उनक ग्राम चित्रण मे अद्भुत आत्मीयता है। उनका गाँव से बहुत अन्तरग परिचय है। शिक्षा दीक्षा से सम्पन्न हो कर, वे गाँव के जीवन का तीव्र और मार्मिक अनुभूति से अकन करत हैं। उनक मन म इस जीवन क प्रति माया ममता है, जिसक कारण व यहाँ क अन्य

विदग्रासा का भी सराहना करत प्रतीत होते है । यह हम माकण्डेय की सुप्रसिद्ध कहाना गुलरा क बाबा म दखने है । इन सबको न कला शिल्प का विशेष महत्त्व दिया, यहां तक कि कभी कभी य माना प्रेमचन्द को सहज सरलता क प्रति उपना का भाव प्रद शित करत है, भाषा का भी म यतम, शृगार और निखार हम इन लेखका का रचनाम्रो म पाते है । ये छाटे कस्बे के जीवन का म कन करते है, छोटे परिवारो की कुण्ठा और पराजय भावना उनकी ममन्व्यथा का वर्णन करत है, पहाडो या मजदूरो का जीवन म कित करते है । इनकी तीव सामाजिक चेतना क प्रति सशय रखना म याय है । यह 'अँधेरे ब द कमरे, भूदान' उस्ताद और बदबू' तथा दोपहर का भोजन,' जसी रचनाम्रो से स्प ट है ।

भ्राज की परिस्थिति म जो म्रन्तर्द्वन्द है, वह इसस स्प ट है कि 'भूदान' और 'पान फूल' का लेखक भ्राज 'माही' लिखता है । वह प्रयागवाद और कु ण्ठावाद का भ्रार भ्राकर्षित हो रहा है, जीवन क भ्र ध-कुहासे म उसे हाथ मारा नहा सूझता । भ्राज क जीवन म उसे कुछ भा भ्राशाप्रद नहा दिखाई देता । उसकी हृ टि नकारात्मक होती जा रही है ।

क्रा तकारी कला साधक प्रयाग करती है किन्तु वह विषय वस्तु के प्रति उपक्षा नही दिखाती । यह मायकोवस्की, भ्रारागा, एलुभ्रार, नेरूदा भ्रादि की कृतिया स स्पष्ट है । यहा हम मुक्तिबाध क काव्य म देखते हैं । मुक्तिबोध ने मुक्त छद को शक्ति बढ़ाई किन्तु भ्रपनी क्रान्तिकारी चेतना का कु ठित नहीं होने दिया । व तेजस्वी स्वर म भ्रपनी प्रतिभा को व्यक्त कर रहे थे क्योकि वे जीवन का यथा से पीडित थे, भ्रौर इस पीडा का बोध भ्रपने पाठक को कराना चाहते थे । यह व्यक्ति की पीडा भी था क्योकि यह समाज की पीडा था । भ्राज की कहानी म कभी कभी यह भ्राग्रह मिलता है, कि यह व्यक्ति की पीडा है, इसीलिए यह सपूर्ण समाज की पीडा भी है ।

भ्राज की कहानी भ्रधिकाधिक व्यक्ति के जीवन पर केन्द्रित हो रही है । व्यक्ति समाज का प्रतीक हो सकता है, भ्रौर समाज से विलग भी हो सकता है । उच्च कला की सृष्टि के लिए यह भ्रावश्यक नही कि वह कलाकार को भ्रात्मानुभूति से प्रेरित हो । टालसटाय का उपन्यास, युद्ध भ्रौर शान्ति' व्यक्ति पर केन्द्रित नहा है । नाटक, उपन्यास भ्रौर महाकाव्य म ही नहीं लिरिक' भ्रौर कहानी मे भी समाज का स्वर प्रकट होता है । यह हम कीटस की Ode to a Nightingale' भ्रौर शली की 'Ode to the west wind' ऐसी रचनाभ्रा में देख सकते हैं । यही पन्त की ग्राम्या' भ्रथवा 'सुमन' की कविताभ्रा म हम देखते हैं ।

भ्राज की कहानी में मनुष्य प्रगति के साथ कुछ चिन्ताप्रद वृत्तियाँ भी प्रकट हो

रही है। अकेलेपन की भावना निष्फलता का अनुभव, दृष्टि में धुंधलेपन का एहसास, मात्र नवीनता का आह्वान, ज्वालामुखी पाश्चात्य कला की पुनरावृत्ति, स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों का निरावरण अंकन, जैसे जीवन में कुछ भी ऐसा शेष न रहा हो, जिसके प्रति अनुराग हो सके, जिसमें मनुष्य आस्था रख सके। कलाकार को अनुभूति-सत्य के प्रति ईमानदार होना जरूरी है। किन्तु पाठक और आलोचक इस अनुभूति की परीक्षा और विवेचना करेंगे। यह भी साहित्य-सृजन की प्रक्रिया में एक कदम है।

नई कहानी में कुछ ऐसे लक्षण अवश्य प्रकट हो रहे हैं, जिनसे ऐसी आशंका हो सकती है, कि कहानी में भी नई कविता की कुछ पुनरावृत्ति हो रही है। किन्तु कुल मिला कर कहा जा सकता है, कि आज की हिन्दी कहानी स्वस्थ, सामाजिक दृष्टि अपना चुकी है, और उसके विकास की दिशा ठीक है। नई कविता की कुण्ठा और अहंवादिता कहानी की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। मार्कण्डेय, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, आदि अनेक प्रतिष्ठित कथाकार समाजचेता लेखक हैं, और लेखक के सामाजिक दायित्व को वे स्वीकार करते हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी की परम्परा में विकास की अनेक नई कड़ियां जोड़ी हैं। उन्होंने जीवन के नये, अछूते रूपों का उद्घाटन किया है, शिल्पगत प्रयोग किये हैं भाषा और कला में शृंगार की दृष्टि से अभिवृद्धि की है। फिर भी दिशा विभ्रम के लक्षण भी कभी कभी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। और इनके प्रति सावधानी रखना आवश्यक है।

नये कहानीकार जीवन की छोटी छोटी मजबूरियों पर कहानी आधारित करते हैं। ऐसे चित्र हमारे सामान्य जीवन के प्रतिनिधि चित्र हैं, और इन चित्रों का अंकन आज की कहानी की बड़ी विशेषता है। इस प्रकार जीवन मूर्त हो कर पाठक के सामने आता है, और जीवन की आलोचना अप्रत्यक्ष रहती है। हिन्दी कहानी के इतिहास पर जब हम एक दृष्टि डालते हैं, तो ऐसी कहानियाँ ही हमारी स्मृति में उभरती हैं।''

(अमृत राय) :

'नये' कहानीकारों ने जितना 'नयी' कहानियों के बारे में लिखा है, उसका दसवाँ हिस्सा अगर 'नयी' कहानियाँ लिखी होतीं, तो 'नयी कहानी' की चर्चा करते समय उन्हें महज दस पन्द्रह बरस पुरानी कहानियों का नाम न जपना पड़ता, और शायद अपनी बात को मनवाने में भी आसानी होती, यानी कि अगर उनके पास ऐसी कोई बात भी और है।

इस बात को, मैं समझता हूँ, इसी तरह कहना जरूरी है क्योंकि उन सैकड़ों हजारों पन्नों के बावजूद, जो 'नयी कहानी' के बारे में लिखे गये हैं, कोई बात सफाई से उभर कर सामने नहीं आती। बल्कि यह भी कह सकते हैं, कि हर नये भाष्य से इस अभिनव वदांत का सूत्र और उलझता ही गया है। एक भी जिज्ञासा का समाधान आपको नहीं मिल सकता। सब अपनी अपनी ढफली बजा रहे हैं। कोई किसी की बात सुनने को तैयार नहीं है। अब तो शोर कुछ मद्धिम हो गया है, शायद चिल्लाने वालों के गले बैठ गये, वर्ना एक वक्त वह भी गुजरा है, जब कान पड़ी आवाज नहीं सुनायी देती थी। उस वक्त तो कुछ ऐसा ही ढमाका था कि आसमान तक हिल उठा था और ऐसा ही मालूम होता था, कि किसी नये मसीहा का जन्म हुआ है। चलो, सब लोग चलो, उसके आगे सिजदा करो, वर्ना जहन्नुम रसीद होगे। लेकिन वह जो समय नाम का एक मसखरा है, न, उसके आगे किसी की नहीं चलती। वह सब की छाट-पछोर कर यथा-स्थान रख देता है। कनी अलग, भूसी अलग। 'नयी' कहानी के साथ भी यही हो रहा है। इसमें घबराने या चौंकने की कोई बात नहीं है। और न इस तरह का कोई डर ही मन में होने की जरूरत है, कि नयी कहानी' की जितनी और जो सचमुच नयी उपलब्धि है, वह भी कहीं अन्धे वक्त के हाथों फिंक न जाये। ऐसा न पहले कभी हुआ है और न अब होगा। पचास से ऊपर बरस से लेकर आज तक कहानी ने जितनी करवटें ली हैं, और आज जिस जगह पर आ कर ठहर गयी है, वह खुद इस बात का काफी सबूत है, कि समय और सब हो अन्धा नहीं है, और अचल भी नहीं है। थोड़ा कठोर जरूर है, जल्दी पसीजता नहीं, और तिकड़म खेलने वालों से, दावँदाजों से उसे सख्त नफरत है। जहाँ इस तरह का खेल खेलने वालों की दुनिया में कोई कमी न हो, इस तरह की एहतियात शायद जरूरी है। मगर जहाँ बात में खरापन है, सच्चाई है, दम है, और वक्त ने अपने ढंग से उसका इम्तहान ले लिया है, वहाँ फिर उसने नया असर कबूल भी किया है, वर्ना आदमी आज भी अपने वनमानुस पुरखों की तरह उन्हीं पुरानी कंदराओं में पड़ा होता। शायद इसके जवाब में कोई यह भी कह सकता है, कि 'क्या बुरा होता!' लेकिन वह एक अलग वहम है। यहाँ इतना ही कहना ईप्सित है, कि समय नया असर लेता है, लेकिन अपने सहज ढंग से लेता है, किसी के शोर मचाने से नहीं, काम के नयेपन को देखकर परखकर। जीवन के सभी क्षेत्रों में यही उसका ढंग है, और कृती साहित्यकारों ने भी इसी तरह साहित्य की सीमाओं का विस्तार दिया है, गहराई दी है। 'नये' कहानीकार के पास भी अगर समय को देने के लिए ऐसा ही कुछ नया है, तो वह भी उसी समय सहज भूमि पर, कठोर परीक्षण के बीच होकर, आत्म-बलिदान के द्वारा ही दिया जा सकता है।

दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जो शार्ट कट नजर आते हैं, वह सब भटक कर उन्हा सहराहा म जा निकलने क रास्ते हैं जहा की खाक इस वक्त 'नयी कहानी' छान रही है।

बडे दु ख क साथ कहना पडता है, कि जिन लागा ने सबसे पहले नयी कहानी की हाक लगायी उनक निकट अपने निवच से अधिक अपने आप को मनवाने का आग्रह ही बडा था। जहा निवच वडा होता है, वहा जाने अनजाने आदमी की निगाह अपने मे बाहर किसी समान धमा पर होती है, और इस तरह परिवार निरंतर बढता जाता है। जहाँ निवच छोटा या आनुषगिक और व्यक्ति का 'मैं' बडा होता है वहा पर वह स्थिति दखन म आती है, जो आज नयी कहानी' मे दिखायी दे रही है। तवस मे अच्छी खासी लताहुज मची है। जो इस नयी विधा के भाष्यकार हैं (और जो लिखने वाल हैं, वही उस लिव क भाष्यकार भी हैं !) उनके शास्त्रार्थ ने अब आपसी सिर फुडौवल का रूप म लिया है। सब एक दूसरे को गलत साबित करन म लगे हैं। 'नये कहानीकारा की टोली बढना तो दूर रहा, बराबर घटती ही जा रही है। मुझे पता नहा मैं तो बाहर का आदमी हूँ, पर मैंने सुना है कि पहल उसम अठारह बीस लाग थे, फिर वह घटकर दस बारह रह गये, फिर और छटनी हुई तो मालूम हुआ कि पाँच ही रह गये, फिर तीन और बस तीन। लकिन सुना है, कि उन तीन म से भी एक अब जल्दी ही बाहर जाने वाला है, और भगवान् ने चाहा, तो वह दिन भी आ ही जाएगा जब कि एक ब्रह्म के समान एक ही 'नया' कहानीकार होगा। वही किस्सा है, पाँच पून रामा बुढिया क अजीब हालत है। दूसरा को अपना गोत्र बढते देखकर खुशी होती है, खासकर उन जिनको अभी जाने कितना लडना भिडना है, मगर यहाँ तो हिन्दुओ की जाति प्रथा की तरह घेरा बराबर छोटा ही होता चला जाता है। कहने की जरूरत नहीं, कि यह जिन्दगी नहा मौत की अलामत है।

सब से पहल तो रचनाकार के भीतर बैठे हुए रचयिता का, सर्जक का डेरा वक्त तो उठा-पटक की इन्हा तदवारा म निकल जाता है। आदमी लिखे, तो कब लिख ? लकिन सिफ वक्त ही बात नहीं है मन की भी बात है। एक ही तो मन है। उस आप सर्जना में लगाइए तो सर्जना मे लगेगा, उखाड पछाड में लगाइए तो उखाड पछाड म लगेगा। और अगर बहुत दिना तक उससे यही उखाड-पछाड का काम लेत रहिए, और सजना को भूल जाइए, तो एक बडा भय देखा उसम इस बात का भी है कि मन की कडिशनिंग' मुस्तकिल या लगभग मुस्तकिल तौर पर उस उखाड-पछाड के लिए ही हो जाय और आप कभी लिखने बैठें भी, तो तबीयत हाजिर न हो, घिसते रह अपना अनुशासन का दिखावा और बिन प्रकट ही न हो! (जिन मैं इसलिए कह रहा हू,

कि सरस्वती और म्यूज ये सब प्रतीक पुराने पड गये।') यह कुछ अच्छी बात नहीं है, कि ऐसी-ऐसी अनूठी प्रतिभा के होते हुए बरसों गुजर जायँ, और कोई मार्के की नयी कहानी कलम से न निकले, और हर दम उन्हीं पुरानी 'नयी' कहानियों का तकिया करना पड़े। यह तो कुछ रचना स्रोत के सूख जाने की बात है। कुछ समझ में नहीं आता। अभी तो एक एक के पास जाने कितनी कितनी जबदस्त नयी, कहानियाँ बाहर आने को छटपटा रही होंगी। यही लिखने की उम्र है। फिर क्यों वह इस फिजूल की मार-धाड़ में अपना वक्त बर्बाद कर रहे हैं? यह ठीक है, कि इससे थोड़ा तत्काल लाभ मिलता है, यहाँ वहाँ अपनी कुछ चर्चा हो जाती है, मगर आखिरकार तो अपना लिखना ही बड़ी चीज है, उसी से तो और सब चीजें हैं, और उसी का दम घुटकर रह जाय, तो बात क्या बनी? हम पुरानों की कौन कहे, अब तो बहुत से नये कहानीकारों भी उम्र ढल चली, कनपटी के बाल सफेद हो चले। शायद अच्छा होगा कि इस सब दंद फंद से अपना ध्यान हटाकर वह अपने लिखने पढ़ने की ओर लगायें। मगर यह मैं क्या और किससे कह रहा हूँ? नये कथाकार के पास तो अपने इसे न लिख पाने या बहुत कम लिख पाने की भी दलील मौजूद है, वैसे ही जैसे अपने उलझे हुए, बेजान और फुसफुसे लिखने के लिए। बरसों से नयी कहानी की वकालत करते करते इस दलीलबाजी में अब वह बड़ा हातिम हो गया है। वह अगर ज्यादा लिखता है, तो यह उसकी सिफत है। उसके पास इतना कुछ कहने को है, एक ऐसी तड़प, एक ऐसा बलबला, जो किसी पुराने के पास नहीं। हो भी कहाँ से? सब चुक जो गये हैं। वह अगर बहुत कम लिख पाता है, तो यह भी उसकी सिफत है। नयी कहानी लिखना कोई दाल भात का कौर है? कोई पहले वाली कहानी तो है नहीं, कि जब मन में आया बैठ गये, और कहानी घसीट दी। भाव के पकने में, शिल्प का रूप पककर बनने में भी तो कुछ समय लगता है कि यों ही? कोई जानता है, समुंदर की तलहटी में एक मोती को मोती बनने में कितना वक्त लगता है? नयी कहानी भी ऐसी ही चीज है। उसकी चीज अगर पढ़ी जाती है, तो यह उसके लिखने का कमाल है, अगर नहीं पढ़ी जाती, तो यह पढ़ने वाले की जहालत है! आवाँ गार्ड (हरावल दस्ते) को आर्ट की दुनिया में हमेशा इस चीज का सामना करना पड़ा है। हमारी चीज का खास मजा लोगों की जबान पर चढ़ने में आखिर कुछ तो वक्त लगेगा ही।

इसी चीज को नये से अलग कहानीकार पर पलट दीजिए, तो यह शकल बनती है—

वह अगर खाने-पीने, सोने जागने की ही तरह निसर्ग की प्रेरणा से बराबर लिखता है, और नियम से लिखता है, तो यह आदमी कहानी लिखता है कि घास

चालता है। इसने तो आर्ट को भी मुंशीगीरी की शक्ल दे दी। आजमाये हुए पुराने नुस्खे पकड़ बैठ गया है, और वही एक रंग के पॉट-बॉयलर्स लिखता चला जाता है। कहा ताज्जुब नहीं। अगर बेचारा कम लिख पाता है, तो—देखा न? हम पहले ही कहते थे, चुक गया यह आत्मा—बिलकुल खलास। अगर उसकी चीजें पढ़ी जाती हैं, तो यह उसके घटिया लेखक होने की बहुत काफी दलील है। और अगर नहीं पढ़ी जातीं, तो देखिए जमाना कहाँ से कहाँ निकल गया, आप अब भी अपना वही पचड़ा गाये जा रहे हैं। आखिर कहाँ तक कोई बर्दाश्त करे? अब टके को नहीं पूछता कोई। मानी कि चित भी मेरी और पट भी मेरी, हैड्स आइ विन टेल्स यू लूज।

अपनी इस स्थिति को बनाये रखने के लिए एक जगह पर आकर यह भी जरूरी हो जाता है, कि यह नया कहानीकार अपनी रचना के बारे में साफ-साफ कोई बात कहने से सयत्न बचे, एक खास तरह की सन्ध्या भाषा में गोल माल बातें करे, अपनी उसी कुहरे में लिपटी हुई शब्दावली के सहारे अपनी कला के इर्द-गिर्द एक ऐन्द्रजालिक-सी रहस्यलोक की सृष्टि करे। और शायद इसीलिए अभी ज्यादा दिन नहीं हुए, एक प्रमुख नये कहानीकार ने, जो उतने ही प्रमुख भाष्यकार भी हैं, नयी कहानी के एक जाने माने और शायद पहले भाष्यकार की इस बात को लेकर बड़ी लानत मलामत की है, कि उसने नयी कहानी की परिभाषा करनी चाही और अपनी इस कोशिश में दस बरस में दस परिभाषाएं दीं। मेरे इस यार ने कहा, कौन इस चक्कर में पड़े, हर बार एक नयी परिभाषा देना पड़ेगी, झगड़ा जड़ ही से काट दूँ न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। जब मैं कोई बात साफ-साफ कहूँगा ही नहीं, तो कोई मुझे पकड़ेगा कैसे? इसीलिए तो लोग अपने सैकड़ों हजारों रुपये देकर बड़े बड़े वकीलों-मुख्तारों से अपने कानूनी दस्तावेज लिखवाते हैं, ताकि कोई पकड़ न सके।

कानून की बुद्धि और साहित्य-सर्जक की बुद्धि एक नहीं होती। दोनों में निश्चय ही कुछ मौलिक अन्तर है, इस बात का ध्यान रखना शायद अच्छा होगा। साहित्य की प्रकृत भूमि सहजता है। उसमें बनावट के लिए जगह नहीं है और वहाँ बनावट के लिए जगह नहीं है, और जहाँ बनावट का सहारा लिया जाता है वहाँ उसका उघड़ने में भी बहुत देर नहीं लगती।

जो हो छोड़िए उसको। फिर भी इन तमाम नयी कहानियों और इनके (उलझे-पुलझे ही सही) भाष्यों से कुछ तो एक तस्वीर उस चीज की हमारी आँखों के आगे बनती ही है। उसी के सहारे हम पूरी सद्भावना से समझने का यत्न करें, कि यह नयी कहानी क्या कहना चाहती है, और नहीं कह पाती, या नहीं कहना चाहती, और अनजान रह जाता है?

पहली बात तो यह, कि अगर 'नयी कहानी' कहानी से इतर कोई बिलकुल भिन्न विधा नही है, तो यह नया विशेषण बिल्कुल निरर्थक है। जिस नयेपन को अपने नयेपन का बिल्ला लगाकर घूमना पड़े, वह कोई नयापन नही है। साहित्य में कृति ही प्रमाण होती है। 'नये' कहानीकारों को अगर इस बात का विश्वास था, कि वह एक ऐसी कहानी साहित्य को दे रहे हैं, जैसी पहले कभी नहीं लिखी गयी, तो उनके अन्दर यह आत्म विश्वास भी होना चाहिए था, कि वह अपनी कहानियों के ही जरिये, बगैर अपने नयेपन का ढिंढोरा पीटे लोगों पर अपना सिक्का जमा देंगे कि यह एक बिलकुल नयी और अछूती चीज है। 'नयी' का साइनबोर्ड टांगने में जो मुस्तैदी दिखायी गयी, उससे आदमी निश्चय ही सोचने को प्रेरित होता है, कि शायद यह कोई नयी दूकान जमायी जा रही है, और यह भी कि इस नामकरण की प्रेरणा हो न हो नयी कविता से मिली है। कोई कितना ही बगलें झांके, इस बात से बच पाना शायद मुश्किल है, कि 'नयी' कविता के वजन पर ही 'नयी कहानी' को यह नाम मिला है। इतना ही नहीं, जैसा कि मैं आगे चलकर दिखाने का यत्न करूँगा, नयी कहानी और नयी कविता में निश्चय ही किसी जगह पर कुछ भावगत साम्य है।

दूसरी बात यह कि अपने सहज अर्थ में हर अच्छी और खूबसूरत कहानी नयी होती है, क्योंकि वह अपना एक नया भावलोक लेकर आती है, और हमको एक नयी सी अछूती सी संवेदना देती है। और इसलिए देती है या दे पाती है, कि उसने लिखे जाने से पहले सर्जक के मर्म को भी कुछ कुछ उसी तरह छुआ था। वही कथा बीज अंकुरित-पल्लवित होकर कहानी के रूप में पाठक के पास पहुंचता है, और अगर उसका एक नया सा स्वाद कहानी में न मिले, तो शायद वह उसको पढ़ भी न सके। इतना ही नहीं, एक और अर्थ में भी उसमें सहज ही एक नयापन होता है—कथ्य और शिल्प दोनों में। वह ओढ़ा हुआ नयापन नहीं होता, न विज्ञापित नयापन होता है, यहाँ तक कि ऐच्छिक नयापन भी नहीं होता। वह सहज नयापन होता है, और इस लिए होता है, कि जीवन और समाज और व्यक्ति (जो भी कहानी के उपजीव्य हैं) या सब गतिशील हैं, यानी बराबर बदलते और नये होते जा रहे हैं, और अगर इस बद लते हुए जीवन यथार्थ के सत्य को सार मर्म को पकड़ना है, रूपायित करना है, तो कहानी का कथ्य और शिल्प भी उसके अनुरूप बराबर बदलने और नये होने जाने के लिए बाध्य है। यह कोरे सिद्धांत की बात नहीं है। यही होता है। रचना के स्तर पर यही वह चुनौती है, जिसका सामना हर सजग और गंभीर कहानीकार को करना पड़ता है। हर बार जब वह कोई नयी कहानी हाथ में उठाता है, और जिस सीमा तक वह इस चुनौती को निबाहने में खुद अपनी कसौटी पर खरा उतरता है, उसी

सीमा तक उसको अपनी रचना मे सुख होता है। सृजन के स्तर पर वही उसकी सबसे बडी उपलब्धि होती है। और यह कहना जरूरी है कि अपने युग के सत्य का बदलता हुआ जीवन परिवेश के नये राग और उसकी नयी संवेदनाओ को अपनी कला मे रूपायित करने का सर्जनात्मक आग्रह कोई ऐसा आग्रह नही है, जिससे आज पहली बार नये कहानीकार को दो चार होना पड रहा है। यह बहुत पुरानी बात है और देश काल के लिए सही है। इसी नाते क्या साहित्य का इतिहास, अपने विशिष्ट स्तर पर और अपनी विशिष्ट शैली मे बदलते हुए जीवन और समाज का इतिहास भी बन जाता है। इसीलिए हम देखते है, कि, दूर क्या जाइये, प्रेमचन्द के यहाँ जहा आपको एक तरफ बिल्कुल पुरानी दकियानूसी तिलस्म और ऐयारी की कहानियाँ भी मिलती हैं, वहाँ दूसरी तरफ 'कफन' और 'पूस की रात' और 'बडे भाई साहब' और 'गुल्लो डंडा' और 'नया विवाह' और 'कश्मीरी सेब' जैसी ढेरो कहानिया भी मिलती है, जो अपने कथ्य और शिल्प दोनो मे बिल्कुल नयी हैं। अभी हाल मे 'नयी कहानी' के एक प्रमुख प्रवक्ता ने अपने एक लेख मे कहा है कि 'कफन' नयी कहानी है जब कि महीनो हुए वाद विवाद के बावजूद 'वापसी' नयी कहानी नही है मैं समझता हूँ, कि उन्होने समझ-बूझकर काफी जिम्मेदारी के साथ यह स्थापना की होगी और उससे सहज ही निकलने वाले निष्कर्षों पर भी यथेष्ट ध्यान दिया होगा। जो हो मुझे स्मरण है कि अब से सात आठ बरस पहले नयी कहानी चर्चा गोष्ठी मे जब मैंने तथाकथित 'नयी कहानी' को हिन्दी कहानी की परपरा से जोडने का यत्न करते हुए उदाहरण के रूप मे प्रेमचन्द की कुछ कहानियों का उल्लेख किया था, तो इन बधु को मेरी बात बहुत रुचिकर नही लगी थी। उस गोष्ठी मे विषय का प्रवर्त्तन इन्ही बधु ने किया था, और प्राय सभी जाने माने नये कहानीकार उसमे उपस्थित थे। मगर खैर, अब मैं इन बधु से इतना ही कहना चाहूगा कि वह 'कफन' को प्रेमचन्द की एक 'फ्रीक' कहानी मानने की गलती न करें, तो अच्छा होगा, क्योकि प्रेमचन्द के पास ऐसी ही और भी बहुत-सी कहानियाँ हैं जिन वह इन बधु के आगे से न गुजरी हो। और प्रेमचन्द के ही यहाँ नही, औरो के यहाँ भी उनको ऐसी कहानियाँ मिल जायेंगी जिनकी परपरा से अपना योग स्थापित करने मे उनको अपनी 'नयी कहानी' की मानहानि का भय न होना चाहिए। यशपाल के सपूर्ण कहानी साहित्य का उन्होने जितना आसानी से डिसमिस कर दिया है यह उन्ही के साहस की बात है। यह ठीक है कि यशपाल ने कमजोर फार्मूलावादी कहानियाँ भी लिखी हैं, जैसा कि हर कोई लिखता है मगर उसी ने 'पर्दा' और 'गॅडरी और साग' जैसी कम-से कम दो दर्जन ऐसी जबर्दस्त कहानियाँ भी लिखी हैं जो सदा उतनी ही नयी और ताजा रहेंगी। यशपाल से जुडी हुइ और उसके तत्काल बाद की

पाड़ी में चंद्रकिरण के यहाँ, अमृत के यहाँ रागेय राघव के यहाँ और बहुत-से लिखनवालों के यहाँ जिन सब के नाम यहाँ पर गिनाने की जरूरत नहीं, उनको बहुत सी ऐसी कहानियाँ मिल सकती हैं, जिनसे आज की कहानी अंगांगि रूप मे जुड़ी हुई है। प्रेमचन्द से शुरू करके यशपाल के रास्ते होते हुए अज्ञेय की 'राज', राधाकृष्ण की 'अवलब' और 'एक लाख सत्तावन हजार', चंद्रकिरण की 'वेजुबाँ' और आदमखोर' अमृत की 'कठघरे' और लोग' और रागेय राघव की मदल' जैसी कहानियो तक चली आती हुई हिंदी कहानी की अविच्छिन्न जीवन्त परपरा से अपना नाता तोड कर इस तथाकथित 'नयी कहानी' ने किसी और का नहीं अपना ही अकल्याण किया है। जिस तरह अपनी चर्चाओं में वह अपने से पहले की कहानी की चर्चा से बराबर बचते रहे हैं, उससे यह नतीजा निकालना बहुत गलत न होगा, कि वह अपने से पहले के किसी कहानीकार का अस्तित्व नहीं मानते। न प्रेमचद को, न जनेन्द्र को, न अज्ञेय को, न यशपाल को, न और किसी को। यह उनकी अपनी खुशी की बात है, पर जो देखने में आता है, वह यही कि इस तरह अपनी परंपरा से समूल अपना नाता तोड़ने का अभिनय करके (क्योंकि नाता वह तोड नहीं सके हैं, वह तो है, इसी तरह जैसे उनकी रगों मे खून बह रहा है), इन्होंने खामखाह अपने को एक आकाशबेल बना लिया है, जिसमे और सब हो स्थायित्व तो नहीं होता, क्योंकि उसकी जड धरती में नहीं होती।

'नये' *कहानीकारों के लिए यह बात बहुत गंभीरता से सोचने की है। रूढि से* नाता तोडना एक बात है, परपरा से नाता तोडना बिल्कुल दूसरी। रूढ़ियो से नाता हर समय साहित्यकार तोडता है, इसलिए कि रूढ़ियाँ उसको आगे बढ़ने से रोकती है, उसकी कला का, अभिव्यक्ति को कुंठित करती हैं। मुर्दा अतीत का ही रूढ़ि कहते है। मगर उसी अतीत का ही एक जीवन्त तत्व ऐसा भी होता है, जो हमारे साथ चलता है, बराबर चलता आया है। उसी को परपरा कहते हैं। चिंतन की उन रूढ गलियों को, जो वक्त के तकाजों का जवाब न दे सकने के ही कारण मर गयी और रूढ़ियाँ बन गयी, बदलते हुए जीवन परिवेश मे, उन्हीं जीवन संघर्षों में होकर निकलती हुई अग्निपूत रक्ताक्त चिंतन संपदा से, जो समय की धारा के साथ बराबर होती चलती हैं पुरानी मुर्दा चीजें छोडती और नयी जानदार चीजें जो अपने में जोडती चलती है और जिसका ही नाम परपरा है, ऐसी उन मुर्दा रूढ़ियो का उस जीवन परंपरा से अलग करके देख सकने में ही हर सोचनेवाले और लिखने वाले का सबसे बडा इम्तहान होता है। इसी में उसकी सूझ-बूझ की अन्तर्दृष्टि की सबसे कठिन परीक्षा होती है। यकीनन यह मुश्किल काम है, मगर यह कब किसने कहा कि साहित्य

'नयी कहानी' की भावधारा क्या है ? मैं सोचता हूँ, कि उसके भीतर कोई एकदाय भावधारा ढूँढना गलत होगा। यानी कि अगर बहस के लिए मान लें, कि 'नयी कहानी' नाम की कोई चीज है। अभी तो वह नये लिखनेवालों की बस एक टोली है, जिसमें कई रंगों के लिखनेवाले हैं, और जिनका अपना अपना रंग ढंग भी अलग अलग कहानियों में अलग अलग दिखायी पड़ता है। जहाँ तक पढ़नेवाले की बात है, उसको उनकी बहुत सी कहानियाँ या तो पल्ले नहीं पड़तीं, या बहुत उबानेवाली मालूम होती हैं और कुछ जो बहुत अच्छी मालूम होती हैं (और ऐसी कुछ कहानियाँ सभी के पास हैं) उनका स्वाद उसको किसी तरह पहले की कहानियों से अलग नहीं मालूम होता। बहरहाल जिस तरह इस नाम की कहानियों में अक्सर यौन-कुण्ठा का उलझा उलझाया ताना-बाना बुना जाता है, उसको देखकर ऐसा जरूर मालूम होता है, कि जिस भी वजह से हो उन्होंने अपने से बाहर अपनी आँखों के आगे फैली हुई रंग-बिरंगी दुनिया के साथ अपने को मिलाकर जीवन का एक समग्र चित्र देने के बजाय अपने भीतर सिमटकर मकड़ी के जाले बुनना अधिक श्रेयस्कर या निरापद समझा है। इस नाते मेरे देखने में निश्चय ही नयी कहानी में रुग्ण व्यक्तिपरकता का स्वर उभरा और समाज-परकता का स्वर दबा है। ऐसी बात न होती, तो 'नयी कहानियों में हमारा बहुमुखी जीवन बोलता, हमेशा वही कुण्ठा और वासना की ढोली या कड़ी चाशनी न मिलती। वही ऊब, वही थकन जो सब उसी रुग्ण मानसिकता के प्रतिफल हैं, जिसमें आदमी ने बाहर की दुनिया पर, जो अच्छी भी है बुरी भी है, काली भी है, सफेद भी है आँखें मूँद ली हैं, और अपने अवचेतन की मानसिक ग्रंथियों में खो गया है। इसीलिए जहाँ सीधे-सीधे यौन कुण्ठा नहीं भी है, वहाँ भी समाज में और किसी भी प्रकार के सामाजिक क्रम में और मनुष्य के भविष्य में अनास्था का स्वर जरूर है जिसको उभारने के लिए आदमी की पशुता पर, नीचता पर, क्षुद्रता पर विशेष बल है, और इसका कोई भी मंगल रूप भूल से भी नहीं आने पाता, क्योंकि आँखों पर गलत चश्मे लगे होने की वजह से उसको उच्छल भावुकता या पोची आदर्शवादिता मान लिया गया है जब कि सच बात यह है कि वह बौद्धिकता ही पोची है, रुग्ण है, एकांगी है जो आदमी को, समाज को, दुनिया को उसके द्वंद्व में नहीं देख पाती, जहाँ दोनों तत्व बराबर संघर्ष करते रहते हैं। वह कोई प्रौढ़ दृष्टि नहीं, रोगी की दृष्टि है। प्रौढ़ दृष्टि वह है, जो जीवन को खुली आँखों देखती है, और उसके समग्र रूप में देखती है। और तल तक देखती है। यह ठीक है कि आज हमारे इस

पूँजी-सचालित समाज म (समाज की तमाम उद्घोषणाओं के बावजूद जो निरा पाखंड है) समाज का स्वस्थ निर्माण की ओर ले जाने वाले विधायक तत्व बड़े ही कमजोर हैं, भविष्य मे बहुत ही अँधेरा है, विदेशी पूँजी और देशी पूँजी की साँठ-गाँठ से जो उद्योगीकरण हो रहा है, उसने हमारे पुराने समाज की, उसके नैतिक सस्कारों की, मानव-मूल्यों की चूलें हिला दी हैं, और उनकी जगह पर रातोरात लाकर बिठाल दिया है महाजनी समाज की तमाम विकृतियों को। आप चाहें तो इसे एक मौन क्रान्ति कह सकते हैं, जैसा कि नेतागण अक्सर बड़े गर्व से कहा भी करते हैं, लेकिन क्रान्ति हो चाहे प्रति क्रान्ति, चाहे उत्क्रान्ति, स्थिति निश्चय ही अत्यन्त भयावह है, और हम उसके साथी हैं। गहरे मथन का युग है, जो एक चुनौती की तरह हमारे सामने खड़ा है, और हमसे उतने ही गहरे आत्म मथन की माँग करता है। जीवन का सारा रग-रूप हमारी आँखों के आगे बदल रहा है और दुर्भाग्यवश एक बुरी दिशा में बदल रहा है और एक विचित्र सी असहायता की स्थिति है। हम भी उसी स्थिति के अग हैं, और वह जहर हमारे अन्दर भी पैठा है, और अपनी इस मन स्थिति में हमारी भी सहज प्रवृत्ति ऐसी जीवन-दृष्टि की ओर होती है, जो आदमी की पशुता को ही उभार कर हमारे सामने रखती है (क्योंकि यही तो हम अपनी आँखों के आगे होते भी देख रहे हैं), और मनुष्य की नियति को एक अधी गली में जाकर खत्म होते देखती है (क्योंकि अपने आसपास देखकर हमको भी तो बहुत बार ऐसा ही लगता है) लेकिन यहीं पर हमारे साहस धैर्य और जीवट की परीक्षा होती है। पुराने की भी, नया की भी। हमारे सामने दो ही विकल्प हैं—या तो हम अपनी साहसपूर्ण, प्रखर निर्मम वस्तु-दृष्टि से और गहरी आत्म मजन प्र तर्दृष्टि से आज के समाज के बदलने, हुए यथार्थ का देखने, समझने और पहचानने का यत्न करें, और फिर उसको अपने मानस चित्र के अनुसार दिशा या सस्कार देने का यत्न करें, ढहते हुए जीवन मूल्यों की इस घड़ी म सत्य के न्याय के सौन्दर्य के नये मूल्यों की सृष्टि करें या फिर आत्यतिक पराजय की मन स्थिति मे इन सबसे पराङ्मुख हो कर अपनी कोठरी मे जा बैठें, और कोरे सौन्दर्यवादी यानी ईस्थीट की तरह बियर और काफी की चुस्कियाँ भरते हुए अपनी आत्मरति की परतें खोलें—मगर युग की प्रकृति को ध्यान म रखते हुए अपने को या दूसरे को छलने के लिए कहे कि यह हमारी विशिष्ट सामाजिकता है, जो निरी सामाजिक दृष्टि से अच्छी है, क्योंकि इसको हमने अपने भीतर से पाया है। साहित्य हमेशा जो कुछ पाता है, अपने भीतर से ही पाता है, और जो कुछ देता है, वह भी अपने भीतर से ही देता है, लेकिन बुनियादी सवाल यह है, कि आपने पहले उसके भीतर डाला क्या है, जिसकी पुन सृष्टि करके आप बाहर ला रहे हैं? और यह एक

ऐसा सवाल है, जैसे सवालों का जवाब दूसरे को देने के बदले अपने आप को देना ज्यादा अच्छा रहता है, क्योंकि उसमें आदमी ज्यादा सच्चा जवाब देता है। वर्ना बहस तो कयामत तक चल सकती है!"

(चन्द्रभूषण तिवारी) :

"इतना तो प्राय सभी स्वीकार करते हैं, कि एक सर्वथा आधुनिक स्थिति इस सम्पूर्ण युग-रचना की विशेषता है, जिसने आज के साहित्य को 'नया अर्थ' दिया है। लेकिन यह 'नया अर्थ' सिर्फ कला या साहित्य का ही प्राप्त नहीं है, उसकी अभिव्यक्ति परिवर्तित जीवन स्थितियों के बीच में हुई है, और आज का मनुष्य उससे एक नया सम्बन्ध स्थापित करते हुए ही उसे ग्रहण कर सका है। समकालीन हिन्दी कहानी में आधुनिक बोध के प्रतिफलन की बात इसी संदर्भ में विचारणीय है।

अब तक की कहानी विषयक चर्चा कतिपय लेखकीय विशेषताओं के ही संदर्भ में की गयी है। सचेतिकता' के माध्यमों से लेकर पारकीय तत्वों तक का इसमें समाहार हुआ है (नयी कहानी सम्बन्धी प्रारम्भिक चर्चाओं में जिन प्रयोगों का उल्लेख किया गया है, इनका दायित्व विशेष अनुभूति खण्डों के परोक्ष समाधान तक ही सीमित है, यह प्रक्रिया किस हद तक काव्य की प्रक्रिया से भिन्न है, यह बात अभी तक स्पष्ट नहीं हुई है।) जिससे कहानी के नयेपन को तथा परंपरा से उसके बिलगाव की समस्या अभी तक बनी हुई है। और यह शायद परिवर्तित परिस्थितियों में आधुनिक रचना-दृष्टि तथा उसके वस्तुगत आधार को न ग्रहण कर पा सकने के कारण है। परिवर्तित परिस्थितियों में भी कविता की विधा किंचित् काल के लिये तटस्थ रह सकती है, एक प्रकार की दूर वर्तिता (mode of distance) उसे निरंतर नियत भी करती है। इसीलिये इसमें आत्मगत प्रवाह की विशेष गुंजाइश है। कहानी इसके विपरीत जीवन स्थितियों के समानान्तर प्रवाह की अपेक्षा रखती है और अनुभवों के माध्यम से ही प्रकाशित होती है। इसलिये उसकी कल्पित योजनायें भी (मिथ इत्यादि तक) अनुभवों के स्तर पर ही नियोजित की जा सकती हैं।

पिछले दशक की कहानियाँ इसी अर्थ में नयी हैं चूँकि परिवर्तित वास्तविकता से लेखक के नये सम्बन्ध-स्तर को उसकी रचना-दृष्टि द्वारा गृहीत अनुभवों के माध्यम से व्यक्त करती है। रूप रचना के स्तर पर इसीलिये उनमें एक असाधारण मूर्तता है, जो प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी लेखकों की विशेषता न थी। वास्तविकता उनके लिये काफी हद तक कल्पित और वैयक्तिक थी, जिसे वे इन्द्रिय-बोध तथा अनुभव के स्तर पर नहीं ग्रहण कर सके थे। इसीलिये उनकी अधिकांश रचनायें अवास्तविक, अमूर्त और गढ़ी

हुई प्रतीत होती हैं। नये लेखकों ने इसके विपरीत, वास्तविकता के प्रमुख सूत्रों को बड़ी ही सजगता और सूक्ष्मता के साथ ग्रहण किया है, और कल्पित सामंजस्य अथवा फ्यूजन के बदले उसकी असंगतियों को ही प्रकाशित किया है। आज़ादी के बाद सामाजिक जीवन में एक विशेष प्रकार का तनाव लक्षित हुआ है। एक ख़ास तरह की व्यवस्था गाँवों में, उनकी संपूर्ण इनर्शिया और अनिच्छा के बावजूद, पहले-पहल टूटती नज़र आई है (इसलिये भी कि गाँवों के जीवन में अधिक पारदर्शिता है) शहरों में इसके विपरीत असंलक्ष्य क्रमिकता अधिक रहती है। फिर भी वहाँ इसकी अभिव्यक्ति मध्यवर्गीय जीवन के बढ़ते हुए विक्षोभ और स्वप्न भंग में हुई है। इसीलिये उसकी प्रतिक्रिया अधिक निजी है। इस समय की लिखी गयी अधिकांश प्रतिनिधि रचनाओं में जो नयापन है, उसमें सामान्य मानवीय जीवन के बदलते संदर्भों तथा उसकी असंगति अधिक करीब खींच ले जाने की क्षमता है। अपने संपूर्ण प्रतीकात्मक संगठन के साथ वे जीवन की गत्वरता तथा मूल्यों के संघर्ष के अधिक समीप हैं, जहाँ किनारे के प्रसंग बड़ी तेजी के साथ केन्द्र की ओर बढ़ते नज़र आते हैं। हिन्दी कहानी में यह एक नयी प्रवृत्ति का आविर्भाव है, जिसे मार्कण्डेय, अमरकान्त, कमलेश्वर, शेखर जोशी, भीष्म साहनी आदि की प्रतिनिधि रचनाओं में देखा जा सकता है।

इसी बीच या उससे कुछ ही बाद, हिन्दी कहानी में वास्तविकता का एक और पक्ष उभरा है—व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष, सुरक्षा आदि के प्रश्न सम्बन्धी जो सामाजिक संदर्भ अथवा बदलती जीवन स्थितियों से जिन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। ऐसे समय में ये प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो उठते हैं, जब सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक व्यापक आशंका अथवा अनास्था के भाव हों। इसीलिये उन्हें 'असामाजिक' कहकर टाला नहीं जा सकता। अप्रत्यक्ष रूप से उनके बीज इस सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही विद्यमान हैं, जिसकी असंगतियाँ आज़ादी के बाद विशेष लक्षित हुई हैं। यद्किंचित् वे उस युद्धोत्तर प्रतिक्रिया में भी हैं, जिसने व्यक्ति को केन्द्र में रखकर उसकी सार्थकता तथा सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नों का दार्शनिक समाधान (साहित्य के अन्तर्गत भी) प्रस्तुत किया है। एकमात्र उससे ही प्रेरित होकर, बिना किसी सही उद्वेग के, कृत्रिम और कल्पित आधार पर हिन्दी की नयी कविता भी विकसित हुई है, जिसकी संवेदना आज तक सक्रिय है, और जिसकी अमूर्तता रचनाकार के दायित्व की ओर आज भी सचेत करती है। साहित्य के इतिहास में दायित्वहीनता के ऐसे कम उदाहरण मिलेंगे। हिन्दी कहानी में व्यक्ति-चेतना की शुरुआत भी एक सामाजिक अथवा वर्गीय स्तर से हुई है। शेखर जोशी की 'बदबू' में इसके सही संकेत हैं—जिनमें रचनाकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, उसके निकट के सम्बन्ध, उसके भावात्मक आधार उसके दृष्टिकोण एक साथ संयुक्त हैं, और इन सब के साथ सारी असंगतियों से गुजर

कर भी उनमें तटस्थ होने की बौद्धिक क्षमता (बौद्धिक विरक्ति नहीं) विद्यमान है। और जहाँ इसकी कमी दीखती है, वहाँ भी एक विद्रूप वेदना अवश्य है। 'लंदन की एक रात' एक ऐसी ही सृष्टि है।

यहाँ सवाल सिर्फ वास्तविकता का नहीं है न उसके बदलते सन्दर्भों तक ही वह सीमित है, बल्कि रचनाकार के उस रुख का है जो वास्तविकता के प्रति वह अख्तियार करता है, अथवा जिसके प्रकाश में वह वास्तविकता के प्रमुख सूत्रों को, उसके बीच से उभरती सच्चाइयों को ग्रहण करता है। और यह बात केवल कहानियों के सम्बन्ध में ही नहीं, किसी कलाकृति के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। रचनाकार का यह रुख ही (जो उसकी रचना-दृष्टि का आवश्यक अंग होता है, बल्कि उसी से वह निर्धारित भी होता है) उसकी सम्पूर्ण रचना दिशा को प्रभावित करता है। बल्कि यह कहें सकते हैं, कि कहानी के अंत में यही उसका मूल स्वर बनकर ध्वनित होता है। 'नयी कहानियाँ' के पिछले परिसंवाद में प्रकारान्तर से नामवर जी ने इसी तथ्य पर बल दिया है। इसी बिन्दु पर उन्होंने कहानी की आधुनिकता अथवा उसके नयेपन को अलग किया है। यद्यपि इस प्रयत्न में भ्रम के लिए भी कुछ गुंजाइश रही है। जिस 'तल्खी लिये तटस्थता' को उन्होंने कहानी की आधुनिकता अथवा नयेपन से जोड़ा है, नया जीवन बोध वहीं तक सीमित नहीं है। इसके साथ रचनाकार का रागात्मक रुख भी अपेक्षित है। तभी 'तल्खी लिये तटस्थता' भी सार्थक है। इसके बावजूद इस तथ्य को स्वीकार करने की आवश्यकता है, कि वास्तविकता के सही ट्रीटमेन्ट को, उसकी आधुनिकता तथा नयेपन को रचनाकार के दृष्टिकोण से जोड़कर तथा उस पर बल देकर नामवर जी ने हिन्दी कहानी को एक बौद्धिक दिशा और कलात्मक परिणति दी है।

'६० के बाद की हिन्दी कहानी में रचनाकार का रुख अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। यही कारण है, कि उसमें अतिरिक्त सजगता मात्र कलात्मक स्तर पर नहीं व्यक्त हुई है। वास्तविकता को ही ट्रीट करने का यह आवश्यक परिणाम हो सकता है। इस बीच वास्तविकता के भी नये पैटर्न्स उभरे हैं जो आजादी के तीन बाद की या उसके निर्माण-स्वप्नों के साथ व्यक्त हुई, उन सम्भावनाओं से पर्याप्त भिन्न हैं, जिनकी परा चिका पिछले दशक के अंत तक समाप्त हो जाती है। ग्राम तथा शहर के सामाजिक, आर्थिक जीवन में कहीं कोई बुनियादी फर्क नहीं आता। फर्क आता है वास्तविकता के प्रति रचनाकार के उस आलोचनात्मक रुख में, जिसकी शुरुआत मार्कण्डेय की परवर्ती रचनाओं में ही हो जाती है 'भूदान' की कहानियों के उस व्यंग्यपरक ट्रीटमेंट में, जिसके कारण क्षेत्रीय प्रसंग व्यापक जीवन स्थिति से पुनः आ जुड़ते हैं। फर्क आया है कमी के जमींदार बाबू राजा सिंह की इस विद्रूप परिणति के हास्यपरक नियोजन में।

' मेरी आँखों में बाबू राजासिंह की वह नाक तैर गयी, जिसे वे बार-बार कपड़े से ढँकने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन कम्बख्त लहू था कि टपका आता था—टप टप टप। (जोतसी ने कहा था, काशीनाथ सिंह) गाँव के किसी दूसरे छोर पर एक आदिम औत्सुक्य तथा स्नेह के साथ अजन्मे संतान के वयस्क होने के उत्कट प्रतीक्षा करना नीलकांत का 'दूसरा आदमी' भी कहीं-न-कहीं से भिन्न अवश्य पड़ गया है। वह भिन्नता जो परिवेश के निरंतर परिवर्तित होने तक ही सीमित न होकर रचनाकार की दृष्टि तथा उसके आलोचनात्मक रुख से जुड़ा है, ६० के बाद की ग्राम जीवन पर आधारित कहानियों का, यद्यपि वे संख्या में बहुत ही कम हैं केन्द्रीय विशेषता है। उनमें कहीं वह रूमानी आर्द्रता नहीं है, जो शिवप्रसाद सिंह केशव प्रसाद मिश्र तथा लक्ष्मीनारायण लाल आदि की रचनाओं में व्यक्त हुई है। प्रसंग भार से अधिक उनमें आंतरिक तनाव की रेखायें हैं, जिसमें रचनाकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व समाहित दीखता है।

नये रचनाकार की प्रक्रिया वस्तुतः उस आलोचनात्मक स्तर पर तटस्थ होने की नहीं है, जिसका आभास कभी कभी अमरकांत की कहानियों में मिलता है। उनकी अधिकांश कहानियाँ अपनी सम्पूर्ण कलात्मक विशेषता के बावजूद कहीं-न-कहीं से रिक्त हैं। वह बहुत कुछ रागात्मक स्तर के अनभिव्यक्त रह जाने अथवा सूक्ष्म स्तर पर ध्वनित होने के कारण है। इसके बावजूद उनकी रचनाओं में पर्सपेक्टिव इतना साफ रहता है, कि पलकीय स्थिति का संकट कहीं से प्राप्त नहीं होता। अमरकांत और अ... के घिराव को अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ महसूस करते हुए, नये जीवन मूल्यों का संकट, वास्तविकता की खोज और उपलब्धि के स्वप्न नये लेखकों में पूरी तीव्रता के साथ इसराइल ने व्यक्त किये हैं। आलोचनात्मक स्तर पर अपेक्षित तटस्थता बरतते हुए भी काशीनाथ सिंह की कहानियाँ, विशेषतया 'सुख' और 'चाय घर में मृत्यु' तो अधिक समग्र हैं। अवश्य ही इसके मूल में एक सुनिश्चित दृष्टिकोण की सक्रियता है, और वह दृष्टिकोण आड़ी हुई समस्याओं के निषेध का है।

नयी संवेदना को भी दो स्तरों पर विभक्त किया जा सकता है, और यह विभक्तता आज की कहानी चर्चा में अपेक्षित ही नहीं, आवश्यक भी है—वास्तविक जीवन स्थितियों से कट कर, सैद्धांतिक वास्तविकता को संवेदन का आधार बनाकर लिखी जाने वाली कहानियों की दृष्टि से और भी, जिनमें नये जीवन-बोध के बदले उसका छद्मवेशी स्वरूप ही अधिक व्यक्त हुआ है।

सैद्धान्तिक वास्तविकता को आधार बनाकर लिखी जाने वाली रचनायें, कवितायें और कहानियाँ आजादी के बाद या उसके पहले हिन्दी में आयी हैं। बाह्य जीवन

के अनुभवों से अथवा परिवर्तित वास्तविकता से इनका सामंजस्य न होने के कारण ये अमूर्त ही बनी रहीं। उनकी दुरूहता तथा अग्राह्यता का कारण भी सम्भवतः यही है, वैयक्तिक सम्मूर्तनों तथा प्रतीकों से कहीं अधिक। अवचेतनावाद अथवा अस्तित्ववाद के नाम पर, उनके सैद्धान्तिक सूत्रों द्वारा वास्तविकता के एक नये धरातल की कल्पना करते हुये अब तक जो कुछ लिखा गया है, इसीलिये इतना अधिक अमूर्त और अवास्तविक है, चूँकि उसमें सामान्य पाठक के अनुभव की कोई वस्तु नहीं है। निर्मल वर्मा की रचना 'पराये शहर में' की वास्तविकता धारणात्मक नहीं तो, और क्या है? '५० के आस-पास मनोविश्लेषण के निष्कर्षों को आधार बनाकर कुछ ऐसी ही कहानियाँ लिखी गयी थीं। वास्तविकता का दूसरा छद्मवेशी स्वरूप वह है, जो सूचनाओं के माध्यम से रचनाकार को प्राप्त है, विशेषतया साहित्यिक सूचनाओं के माध्यम से। किसी एक ही थीम को लेकर यत्किंचित् परिवर्तनों के साथ उसी रचना का रूप देना हिन्दी कहानियों में इधर अक्सर देखा गया है। 'अकेलापन' की समस्या को लेकर जो कुछ जितने प्रकार से लिखा गया है, उससे हम परिचित हैं। यही बात आत्म हत्या, मृत्यु व्यक्ति के व्यापक आतंरिक हारर को लेकर भी कही जा सकती है। नये लेखकों की यह एक बहुत बड़ी सीमा है, जिसमें अनुभव की वास्तविकता न होकर उसका सूचना धर्मी परिवेश ही प्रकाशित हुआ है। वास्तविक जीवन स्थितियों की तरह इसी लिये वह अधिक तीव्र और सार्थक नहीं है। मार्कण्डेय के शब्दों में कहें तो सूचना धर्मी परिवेश में यह वास्तविकताओं की बुभौवल' है। राजेन्द्र यादव पर लिखते हुए उन्होंने यह बात उठायी है इससे कुछ भिन्न सन्दर्भ में। लेकिन बात यहाँ भी वही है, कि 'व्यक्ति पात्रों को जिन्दगी के भीतर से जानता है, और उनका सहभोक्ता है या उसकी जानकारी सूचनाओं पर आधारित है—सैद्धान्तिक सूचनाओं से लेकर साहित्यिक सूचनाओं तक। स्वयं में यह एक ह्रासशीलता है, जिसकी क्षति पूर्ति की जाती है सूचना धर्मी परिवेश के विस्तार अथवा अतिरेक द्वारा 'छोटे-छोटे ताजमहल' की भीड़ लगाकर या भावुकता, निषेध, तटस्थता, अकेलापन आदि के जितने सम्भावित प्रसंग हो सकते हैं, इनसे जिस प्रकार की कृत्रिम, कल्पित स्थितियाँ निर्मित हो सकती हैं, सब के प्रयोग द्वारा।

प्रयोग के ही स्तर पर इधर अ-कहानी (Anti Story) के पैटर्न की भी कुछ रचनायें आयी हैं। सिर्फ प्रयोग के ही स्तर पर। यूरोप में वास्तविकता के विशिष्ट नियोजन की दृष्टि से इसके साथ जो सार्थकता व्यक्त हुई है, हिन्दी में उसे ग्रहण नहीं किया जा सका है। इधर की कहानी विषयक चर्चा में अ-कहानी की जो व्याख्या हुई है (द्रष्टव्य, 'कहानी—नववर्षांक '६४, के ख ग –८) वह बहुत ही भ्रामक और सामान्य है। अ-कहानी का अर्थ उनके अनुसार है व्यंजना-मूलक अर्थात् दुहरी, तिहरी, अन्त

कथाओं से युक्त कहानी, और इस क्रम में कतिपय ऐसी कहानियों को उद्धृत किया गया है जिनमें सतही कथा के समानांतर किसी न किसी भाव कथा अथवा विचार कथा या दोनों का प्रवाह है। इस व्याख्या के आधार पर आज की अधिकांश थामेटिक कहानियों का समाहार अ-कहानी के अन्तर्गत किया गया है, और अधिकांश कहानीकार अ-कहानीकार हैं—श्रीकांत वर्मा से लेकर प्रयाग शुक्ल, प्रबोध कुमार रवीन्द्र कालिया, परेश और दूधनाथ सिंह तक। जब कि वास्तविकता यह है, कि इनमें से अधिकांश की रचनायें अ-कहानी के तत्वों से अपरिचित हैं। नये कहानीकार रवीन्द्र कालिया ने सायास अपनी रचनाओं के अ-कहानी होने का दावा किया है—अक्टूबर के 'ज्ञानोदय' में इसी नाम से उनकी एक कहानी भी आयी है—उसमें किसी भी पूर्व निर्धारित प्रसंग अथवा ऐसी घटनाओं की जो समसामयिक सम्बन्ध-सूत्रों से विकसित कही जा सकती है योजना नहीं है। बल्कि यत्नपूर्वक उनका निषेध किया गया है। इसके बावजूद, उसमें अ-कहानी की उन प्रक्रिया का अभाव है जो वास्तविकता का निषेध करते हुए उसके सूक्ष्म तंतुओं से नयी वास्तविकता के स्वतः उभरने अथवा विकसित होने का संकेत देती है। उनकी 'नौ साल छोटी पत्नी' भी, जिसे इस कारण अ-कहानी माना गया है, 'चूँकि पति संदेह के आक्रामक रूप में स्थिर नहीं होता' वस्तुतः अ-कहानी के बदले डिटेक्टिव किस्म की कहानी बन गयी है, और अन्त में सारी स्थिति बड़े ही भोंडे ढंग से घटना का रूप धारण कर लेती है। रवीन्द्र कालिया की यह बहुत बड़ी सीमा है, कि उनमें उस रचना-दृष्टि का अभाव है, जिसने पश्चिम के अ-कहानी आंदोलन को विकसित किया है। पश्चिम में अ-कहानी का आंदोलन टेकनीक से अधिक वस्तुतत्व की सर्वथा नूतन धारणा का परिणाम है, जो पूर्वनिर्धारित प्रसंगों तथा घटनाओं का निषेध करते हुए, खायी हुई वास्तविकता के मूलभूत उपकरणों तथा तंतुओं से स्वतः विकसित नयी वास्तविकता को अपनी रचनाओं में उपलब्ध करने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में कहानी का वस्तुतत्व (अथवा थीम) सर्वथा नये सम्बन्ध स्तरों पर स्वतः प्रकाशित होने की क्षमता रखता है। अ-कहानी की इस प्रक्रिया को पश्चिमी देशों में विकसित साइबरनेटिक्स' अथवा स्वतः-निर्धारित गति नियमों से सम्बद्ध माना गया है। काफ्का, नथालिया सरात आदि की रचना शैली में यह स्वतः विकास स्पष्ट रूप से लक्षित होता है जिसकी प्रक्रिया एक साथ उभय स्तरों पर व्यक्त होती है—वास्तविकता के निषेध के साथ नयी वास्तविकता के निर्माण पर भी। हिन्दी के नये कहानीकारों में या विशेषतया एक खास हद तक (और वह भी अ-कहानी की सीमा में नहीं) प्रबोध की कहानियों में लक्षित होती है। एक सर्वथा नये सिचुएशन को जो प्रसंगों के पूर्ववर्ती सम्बन्ध स्तरों पर कहीं से विभक्त नहीं किया जा सकता, रचने की प्रबोध में असाधारण क्षमता है। महेन्द्र भल्ला ने भी ऐसे प्रयोग किये हैं। लेकिन उनकी रचनायें थीम ही

एक कृत्रिम तनाव मे गुजरने लगनी हैं, जो समवत मेखकीय जडता (श्रायाम वढ जाने से) के कारण है। परिणामत उनकी रचनाम्रो म स्थितियाँ ही नही टूटती, भाषा भी बार बार टूटती है। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओ मे उस पसपेक्टिव का अभाव है जो रचना की सम्पूर्ण दिशा को, उसकी वस्तु और प्रक्रिया को भी एक साथ प्रभावित करता है। '६० क वाद काशीनाथ सिंह, इसराइल नीलकात प्रवधनारायण सिंह, मधुकर सिंह, रमाकात आदि की प्रतिनिधि रचनाओ म उनकी पृथक उपलब्धियो के साथ इस पसपेक्टिव को अथवा रचना दिशा को ही देखा जा सकता है जिनम बदलते सदर्भों क प्रति असाधारण जागरूकता है, और सामाजिक असगतियो के प्रति सही आलोचनात्मक रुख।"

(मार्कण्डेय) :

"सवाल कहानी का नही, कहानी के समय का है, और समय की भी अर्थवत्ता तभी है जब वह इतिहास की अबाध गति म प्रवाहित हो रहा हो। ध्यान से देखें तो निरतर विकासमान मनुष्य की चेतना ही इतिहास की चेतना है। इसलिए इतिहास भी और कुछ नही मनुष्य की वह कहानी है, जो उसके और उत्पादन की शक्तियो क आपसी सम्बन्धो क निरतर परिवर्तित होने के कारण निरतर परिवर्तित मानवीय चेतना की सृष्टि करती रहती है, और हम लगता है जैसे कुछ बीत चुका है कुछ बीत रहा है, और कुछ बीतन वाला है। उसी कहानी को हम अतीत, वर्तमान और भविष्य कह कर समय के भिन्न स्तरो का बोध प्राप्त करते हैं। वस्तुत समय अपन म अलग से कुछ नही महज एक सत्ता है। समय को रूपायित करन का काम तो आदमी करता है। इस लिए सारी बात आकर आदमी पर टूटती है।

सवाल समय का भी नही, वरन् उस आदमी का है जो आज के अपन सामाजिक आर्थिक सन्दर्भ की सही उपज है। विचार की सही दिशा तो यह होगी, कि इस सही उपज का देखकर ही सदर्भ का विश्लेषण किया जाए, क्योकि मिट्टी और पौधे क समान समाज और व्यक्ति दो भिन्न तत्व नहीं हैं। प्रयोगशाला म मिट्टी का विश्लेषण करके पौधे की हालत बताई जा सकती है, लेकिन समाज के विश्लेषण का मतलब ही है, मनुष्य का विश्लेषण।

इसलिए समकालीन कहानी म चित्रित उस सही आदमी की तलाश ही मुख्य है जिसका विश्लेषण हमारे आज क समाज के सामने आईना बन जाय। असल म वह सही आदमी ही एक ऐसा सुराग है जिससे हमारे चारों ओर फैले रहस्य क फदे का पता चल सकता है। अ यथा हम यही कहते जीते रहगे कि, "भाई, बडा अनथ है।

यह हा क्या गया है लागा को ? कहत कुछ हैं, करते कुछ हैं। आज के आदमी का विश्वास नही। क्या जमाना था, क्या हा गया ? " आप भ्रम पदा करन वाली उक्तियाँ बोलत हुए कि हा मा"यताओ म उलझ रहेगे और आपक पास ही रहने वाला यथाथ आप.ी आखा मे हमेशा ओझल ही नही बना रहगा, बल्कि धार धीरे आपकी उक्तिया ही रुढ हाकर अपना अथ खो बैठेंगी

"मैं जानता था यही हाल हागा। मैंने कहा भी था इमिरती बाई इलाज करा ल। अब भी बच जाओगी। मगर कम्बख्त जिन्दगी भर सारी दुनिया का बीमारी बाटता फिरी। अब मरी तो कोई उठाने वाला भी नहा। मगर कुछ भी कहो इमिरती बाइ साफ साफ रडी थी। मुझ उसकी बातें मालूम हैं।"

लकिन यही इमिरती बाई जब मरघट पर ल जाई गया ता 'चौकीदार ने अपना निगाह उठाते हुए उस उत्साह से भरे मेहतर बसी की ओर इसलिए दखा कि उसन मरने वाला की उम्र एक मटर से बत्तास वप बताइ थी और 'सवाल किया, ' पति का नाम ?"

"बसीलाल बाल्मीक।" उसने हाथ बढा कर दस्तखत कर दिये।

'बाहर आकर, सँभाल कर उसने शव उतारा। धोती उस पर पूरी तरह ढँक दी। फावडा उठाया और गड्ढा खोदने लगा।'

कहानी के इन दो स्थला की साधारण सूचनाएँ कहा यह भ्रम न पैदा कर कि रडी तो रडी, कहो ऐसा न हो कि बसीलाल छिपे छिपे उसस सम्ब ध रखता रहा हो। इसलिए एक न हा सा उद्धरण और लें, जब बसालाल सहसा सडक पर अपनी मला गाडा स जाते हुए पुलिस द्वारा पकड लिया गया था और इमिरता बाई की लाश को रफा दफा करने की जिम्मेवारी उसक सिर मढ दी गया थी। शायद इमिरती बाइ क मरने क बाद वह पहला आदमी था जिसने इस कोठरी मे प र रखा था। लकिन इतना हा नही, 'बसी इस कोठरी म पहली बार आया था और अ दर घुसत हुए उसे हल्की-सी कचोट भी हुई।'

'इमिरती का उसने बहुत बार देखा था, एक न एक दिन वहाँ जाएगा। गोरी, गुलाबी देह और बदन, जा इतना चल चुकन के बाद भी कसा हुआ लगता था। मगर वह जा कभा नही सका। इतने पैसे ही नही आये। लकिन शायद जि दगी म पहली बार बसीलाल शव स जान से पहल गाडा धाता है। लाश का जिस अ दाज म गाडी पर रखता है और जिस तरह अपन सिर क गमछ स उसका सिरहाना बनाता है, फिर जितनी अल्हड चिन्ता और मनायाग से अपना पसाने का कमाई क सात रुपया का रेजगारी जुगाता, फूल माला तक का ध्यान रखना और बाजा बजवाना जब शव का स

जाता है और घाट पर इमिरती का पति वन देखना है तो वह महा मान म हिंदी कहानी म एक नये मानवीय सम्बन्ध की शुरुआत का संकेत देता है।

इसलिए नही कि श्रीकात अपनी इस 'धवयात्रा' नामक कहानी म कोई ऐसा विचित्र जीवन खड चुनते हैं अथवा किसी नये सदर्भ क सवथा अपरिचित चित्र देते हैं अथवा उदासी, अपरिचय तथा एकाकीपन की तथाकथित आधुनिक शब्दावली म नये भाव-बोध का तम्बू खडा करत हैं, बल्कि इसलिए कि वे परिवतन क वास्तविक मूल को—एक अत्यत उलझे हुए, गुम्फित और अमूत भाव-बोध का सही दिशा म विनित कर सकन की क्षमता का प्रदशन करते हैं।

अभिप्राय यह कि जीवन की बाहरी गतिविधि म परिवर्तन की दिशा का चित्रण करना जहाँ लेखक की अन्वेषण अथवा उद्घाटन की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देता है वही यह भी स्पष्ट करता है कि जीवन को रचना में समेटन का यह तरीका नया नही है और इसकी सीमा रेखायें हमारे यहा प्रेमचन्द और यशपाल तथा विदेश म मोपासा, ओ' हनरी जैसे विश्वविख्यात कथाकारो न खीच रखी हैं। साथ ही जीवन की निरतर परिवर्तनशील सवदना को रूपायित करन म यह तरीका सिर्फ प्रयाग और अवसर की अँगुलियो में फँस कर दूसरा कार्टि क यात्रिक माग से अधिक कुछ नही रह गया है, क्योकि यह सच्चाइयो का रूप देने वाली मानवीय प्रकृति म नही वरन् उनके बाह्य क्रिया कलापो से जुडा हुआ है, जिस पर पूरी निश्चितता के साथ भरोसा नही किया जा सकता। एक ही परिस्थिति और एक ही जावन परिवेश मे हम दो भिन्न व्यक्तियो को दो दिशाओं म विकसित होने हुए देखन हैं तो यह स्पष्ट हुए बिना नही रहता कि भूमि और जलवायु से अलग दिशा में विकसित होने की क्षमता के कारण आदमी का विकास जहा व्यक्तिगत रूप से उसके ऐतिहासिक परिदृश्य का एक नक्श उपस्थित करता है, वही यह भी सूचित करता है कि सम्पूर्ण ऐतिहासिक परिवश के नकार का भी अद्भुत चेतना आदमी ही म होती है। इसलिए शायद यह कहना गलत होगा कि 'वसी' का अपना कोई परिवार नही होगा अथवा वह किसी औरत का पति नही होगा। लेकिन नये मानवीय सम्बन्धो की सरचना के समय वह अपन व्यक्तिगत जीवन परिवेश का सपूर्णत इनकार करक सच्चाइयो के चित्रण का एक सवथा नया प्रतिमान उपस्थित करता है।

तनिक रुक कर विचार करने पर किसी के लिए यह स्पष्ट हो सकता है कि नयी परिवर्तित परिस्थितियो मे '६० के बाद क कई महत्त्वपूर्ण रचनाकारो म भी दृष्टि मानवीय सम्बन्धो के इसी परिवतन पर केन्द्रित है। पति-पत्नी क नये सम्बन्ध की तलाश म जहा रवीन्द्र कालिया 'नौ साल छोटी पत्नी' की रचना करत हैं वहीं दो पुरान दोस्तो के नये सम्बन्ध को सुरेन्द्र वर्मा और नीलकात अपनी कहानी 'मेहमान'

और 'पहचान' मे दो भिन्न स्तरो पर, दो भिन्न परिवेश मे रख कर देखते हैं। प्रयाग शुक्ल का 'सामान' और 'सडक का दोस्त' रामनारायण शुक्ल की 'पास बुक', प्रबोध कुमार का 'आलेट इसराइल की नये मकान का खँडहर', विजय चौहान की 'रजाई' तथा ज्ञानरंजन की 'शेष होते हुए', जैसी कुछ ऐसी कहानिया है जो स्पष्ट करती है कि भारतीय समाज के नये आर्थिक विकास ने आदमी ने परस्पर सम्बन्धो का सूत्र खो दिया है। जो सम्बन्धो के पुराने ढांचे अब भी खडे है लेकिन वे हाथी के दांत बन गये है। इसलिए आदमी की सही पहचान विरल हो गयी है। ऐसे समाज मे आपका हर अगला कदम किसी ऐसे गड्ढे मे पड सकता है, जिसका आपको तनिक भी अन्दाज न हो, और इसका बहुत कुछ श्रेय नये सम्बन्धो के निर्माण को नही वरन् पुराने मुर्दा सम्बन्धो को जीवित रख कर धोखे की टट्टी खडा किये रहने का है, जो किसी भी समाज की अपरिवर्तन शीलता एवं पुरातन के प्रति व्यामोह का परिचायक है और ऐसा नहीं कि इन लेखको ने इस व्यामोह से नाता तोड लिया है। जीवन के व्यापक अनुक्रम मे नाता टूटता भी नही शिथिल पड जाता है। धार मे कटे पानी की तरह धीरे धीरे मर जाता है और नये रिश्ते उसका स्थान ले लेते हैं। लेकिन इन नये पैदा होने वाले सम्बन्धो मे भी कई बार भयंकर धोखे आ मिलते है और जरा सा रगड लगने पर पालिश छूटते ही पुराना रंग उभर आता है। इसलिए यही यह स्पष्ट कर देना भी जरूरी है कि नये मानवीय सम्बन्धो की तलाश वही वास्तविक हो सकती है, जहा पात्र अपने आर्थिक एवं ऐतिहासिक परिदृश्य से जुड़ते हैं क्योकि उसकी चेतना का सम्यक विकास उन्हे नये रिश्तो तक स्वयं पहुचा देता है।

कहना न होगा कि कई नये लेखको मे परिदृश्य की इस चेतना का अभाव है। जहाँ उन्हे नयी वास्तविकता के आकलन से दूर करता रहा है, वहा उनका रचना शिल्प भी कमजोर एवं उबाऊ हो उठा है। कई लोग तो जीवन मे कहानी के स्थल की पहचान ही नहा देते और प्रेमचन्द कालीन कमजोर लेखको के शिल्प मे नये भाव-बोध की उक्तिया भर कर ऐसे नकली चरित्रो की सृष्टि करते हैं जो न तो नये है न वास्तविक। इस दृष्टि से दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात' और काशीनाथ सिंह की 'सुख' जैसी कहानिया द्रष्टव्य हैं। 'रक्तपात' का शिल्प वही पुराना 'वर्तमान' वाला है। कहानी कहा बीच से शुरू होकर सहसा वर्णनात्मक धरातल पर मुड जाती है तो फिर वही बीच से पानी उलीच कर लेखक कहानी की गंगा बहाता है। ध्यान न रखें तो समय की चेतना लेखक मे ठीक वैसी ही है जैसी रोमानी लेखको मे होती है, और ठीक उसी तरह लेखक प्रकृति मे मनोभावो का प्रक्षेपण करता है। कहानी वर्षो के समय विस्तार में नाहक दौडती फिरती है। वस्तुत कहानी के पहले दो हिस्से बेकार हैं। लेखक विघटन का जो

रूप प्रस्तुत करना चाहता है उसम वह खुद ही विघटित हो जाता है, क्योकि दस बारह साल के प्रवास म उसके नायक म कुछ भी ऐसा निर्मित नही होता जिससे टूटने की अर्थवत्ता मिल सके।

'सुख' की परिकल्पना ही आधिभौतिक है जिसस जीवन के भौतिक परिवेश से दूर का भी सम्बन्ध नही। चमत्कार की तरह सूरज की किरण 'भोला बाबू' की खोपडी पर उतर आती है और वे सहसा बिना किसी आधार के सुख की हवा मे उडने लगत है। कामू के 'आउट साइडर' का नायक भी इसी तरह तेज रोशनी को कोर्ट म बार बार जिक्र करता है और शायद 'कामू' इस तरह हत्या को अकारण इसलिए सिद्ध करना चाहते है कि वे आदमी म कुछ ऐसा भी मानते हैं जो बाहर के तर्को से नही समझा जा सकता। अ तत यही चेतना ईश्वर जैसे महान झूठ का निर्माण कराती है और प्रकृति को मनुष्य के ऊपर स्थापित करने म ऐसी ही विचार धारा से मदद ली जाने लगी है। वस्तुत यह माग कहानी को एक 'आइडिया' के नजदीक ले जाने वाला है जहा पात्र और पात्र के समाज के प्रति लेखक की कोई प्रतिबद्धता नही रहती और लेखक कल्पना की पराग से कहानी उडाया करता है। यह वास्तविकताओ के नजदीक पहुचने के बजाए, उन पर पर्दा डालने वाला का रास्ता है।

वस्तुत जीवन की व्यापक वास्तविकता से इस तरह मुँह मोड लेने का कारण रचनाकार नही होता न वह हो ही सकता है। यदि होता है तो वह अपनी रचना शक्ति की खुद ही हत्या करता है। इसलिए हम जब 'नवयात्रा' और 'ठड' जैसी कहानियो के बाद श्रीकात की 'घर' जैसी कहानी पढते है अथवा 'नौ साल छोटी पत्नी' तथा 'पत्नी' के बाद रवीन्द्र कालिया की 'अकहानी' पढते है अथवा इन लेखको द्वारा व्यक्त विचार और इसकी रचनाओ म तारतम्य ढूढने की कोशिश करते ह अथवा इनकी पसद की रचनाओ का इनके द्वारा नाम सुनते हैं तो सहसा लगता है जैसे हम अपने आज के सही सामाजिक सदर्भ के बीच आ खडे हुए हो, जहा निश्चयपूर्वक कुछ कह पाना उतना ही मुश्किल है जैसे कभी अनिश्चयपूर्वक कुछ कह पाना हुआ करता था। आज जैसे जैसे बाहरी दुनिया से उभय सभव अभि यक्ति का लोप हो रहा है वैसे-वैसे हमारी परस्पर अभि यक्ति की भाषा नाकाफी सिद्ध हो रही है, क्योकि आदमी सिर्फ सम्बन्धो मे आदमी को जानता है या जान सकता है। यदि सम्बन्धो के आ तरिक सूत्र टूट चुके है तो यह मानना चाहिए कि भाषा की अर्थवत्ता कही भग हो चुकी है और इन लेखको की असम्बद्ध भावाभिव्यक्ति कभी कभी सहज लगने लगती है। आप इसे चीख कहे कराह कहे, आवाज कहे तो इसकी अभि यक्ति के ये सही नाम हो सकते है, क्योकि स्वय इनका एक कथन दूसरे के विपरीत जा पडता है। स्पष्ट है कि इन्ह एक नयी

भाषा की खोज है लेकिन वह भाषा अवसरवाद की नही होगी, न वह विदेशो से आन वाले साहित्य क नवीनता सम्बन्धी कुछ सेट शब्दो म निर्मित हो सकेगी वरन् उसके लिए नये लेखको को एक स्पष्ट सामाजिक दृष्टि अपनानी होगी जिससे उनके शब्दो को सामूहिक अथवा सामाजिक अर्थ मिल सके। अपनी सम्पूर्ण विच्छिन्नता एव बिखराव के बावजूद समाज एक अर्थ से अलकृत है । कोई साधारण समझ का आदमी भी वह कह सकता है कि नयी पूजीवादी अर्थ व्यवस्था ने हमारे समाज क पुराने सम्बन्ध सूत्रो को जजर कर दिया है, पर क्या इतनी अथवत्ता नये लेखन को प्राप्त है ? फिल हाल यही एक सवाल है, जिसके उत्तर की अपेक्षा हमे ही नही वरन् नये लेखन को भी होनी चाहिए।"

(निर्मल वर्मा) :

"बीसवी शताब्दी म साहित्य की जो विधा सबसे पहले अपने अन्तिम छोर पर आकर खत्म हो गयी वह कहानी थी। चेखव की कहानी 'कहानी' का अन्त है—या दूसरे शब्दो म कह, उसके बाद कहानी वह नही रह सकेगी, जिसे आज तक हम कहानी की सज्ञा देत आये हैं। आज प्रश्न चेखव की परम्परा को (इस अर्थ म प्रेमचन्द जी की 'परम्परा' सिर्फ एक छाया है—वह अप्रासगिक है) आगे बढाने का नही है उससे मुक्ति पाने का है। सौभाग्यवश हिन्दी कहानी के सामने ऐसी समस्या नही है—वह अभी चेखव से भी बहुत पीछे है।

इसी लिए जब हम 'नयी कहानी' की बात करते हैं, तो हमे 'कहानी' की मृत्यु से चर्चा प्रारम्भ करनी चाहिए। हमे इससे मदद मिल सकती है—कहानी को पुनर्जीवित करने के लिए नही, बल्कि उसको अन्तिम रूप से छोडने के लिए। किसी ने कहानीकार के लिए कहा है आत्मा का डिटेक्टिव। डिटेक्टिव की यह विशेषता है कि वह सन्दिग्ध व्यक्तियो का पीछा करता है, ताकि उनका भेद मालूम कर सके। वह हमेशा पीछे है और बाहर है। जिस व्यक्ति का भेद वह जानना चाहता है उसे वह छू नही सकता। उसके निकट नही आ सकता। जिस क्षण हम एक कथाकार की हैसियत से अपने इस 'बाहरीपन' का समझ लेते हैं कहानी की पुरानी विधा हमारे लिए निरर्थक हो जाती है। हम परिचित भूमि से हट कर एक 'न्यूट्रल ग्राउन्ड' म आ जाते हैं जहा हर स्थिति गोपनीय है, हर पात्र सन्दिग्ध है।

इस लिए कोई फायदा नही 'पुराने' मसलो से आगे बढने का। डॉन क्विक्जोट की तरह हम उन पवन-चक्कियो को राक्षस समझ के गिरा भी दें, तो भी हम वही रहेंगे, जहां पहले थे। जिस भूमि पर नयी कहानी को जन्म लेना है वहा उनकी

'पुरानी' कहानी का महत्व काफी कम है, हम जिसे नयी कहानी कहते आये हैं–उसका महत्व और भी कम।

क्योंकि अगर हम ध्यान से देखें–नयी 'कहानी' अपने मे ही एक विरोधाभास है। जिस हद तक वह कहानी है उस हद तक नयी' नहीं है, जिस सीमा तक वह 'नयी' है, उस सीमा तक वह 'कहानी' नहीं है–जैसा आज तक हम उसे समझते आये हैं। यह जरा भी आकस्मिक नहीं है कि चेखव के बाद हर महत्वपूर्ण 'कहानी' कहानी एज सच' से बहुत दूर हट गई है।

बीसवी शताब्दी की सबसे महान् कहानी 'डेथ इन वनिस' सिर्फ एक कवल है–या फाकनर की कोई भी कहानी गद्य के टेक्चर पर एक काव्य–खण्ड, चट्टान पर खीच गये भित्ति चित्रो सी जादुई है। या फिर सबसे नयी कथाकार नातालिये साख्त की लम्बी कहानिया, जिनमे पहली बार पाठक कहानी मे कहानी न होने के अजीब–'टरर' को महसूस करता है। अगर वे कहानिया हैं तो कवल 'आत्मघाती' अर्थ मे–एक कवल है, दूसरी कविता, तीसरी 'एण्टी कहानी'–उन्होने स्वय बड़ी निममता से अपनी ही विधा को तोड़ा है, उसके चौखटो से मुक्त होकर उन सूखो और कठोर और नाम हीन चीजो को छूने की कोशिश की है, जो पकड़ के बाहर है।

कोशिश–क्योंकि अततोगत्वा कहानी सिर्फ एक कोशिश है–एक डिस्क्रिप्शन का सिर्फ उन सूराखो पर ही निर्भर रहना पडता है जो उसके पात्र पीछे छोड गये है। उसे एक ऐसे यथार्थ की ओर ले जासकते हैं जो महज मरीचिका हो सकती है, एक ऐसी मरिचिका से हटा सकते है, जहा अगर वह जाने का साहस करता, तो शायद कोई उपलब्धि हो सकती थी।

विलियम बटलर यीट्स की पक्तिया हैं—

> अब, मेरी कोई सीढी शेष नहा रहा।
> अब मैं वहा लौट जाऊ गा,
> जहा से सब सीढिया शुरू होती हैं,
> अपने दिल की उस दुर्गन्धमयी दुकान म
> जहा सिर्फ चिथडे है, हड्डिया हैं।

नयी कहानी का जन्म इसी दुकान म होगा सिर्फ चिथडो और हड्डियो के अलावा वहा कुछ नहा होगा कुछ भी नहीं मिलेगा।

जब कोई कहानी मे 'यथार्थ की चर्चा करता है, तो हमेशा दुविधा होती है–वह एक पक्षी की तरह झाड़ी म छिपा रहता है। उसे वहा से जावित निकाल पाना

उतना ही दुलभ है, जितना उसके बारे म निश्चित रूप से कुछ कह पाना, जब तक वह वहा छिपा है। अंग्रेजी म एक मुहावरा है-"बीटिंग एराउट दी बुश।" कहानीकार सिर्फ यही कर सकता है-उससे अधिक कुछ करना असभव है। तुम अगर झाडी पर ज्यादा दबाव डालोगे तो वह मर जायेगा या उड जायेगा। हम सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते है कभी कभार झाडी को इधर उधर कुरेद सकते हैं।

किसी अनजान क्षण म जब वह हमारे प्रति उदासीन हो, उससे सम्पृक्त हो सकते है-लेकिन हमेशा बाहर से। यह अभिशाप हर उस लेखक के लिए है, जो कलाकार भी है। जो सही मान म यथार्थवादी है उसके लिए यथार्थ सदा 'झाडी मे छिपा' रहता है।

हेमिंग्वे इस बात को जितनी मार्मिकता से जान पाये थे-शायद हमारी सदी का कोई कथाकार नही। 'क्योकि कहानी लिखना बहुत कुछ 'बुल-फाइटिंग' की तरह है-उसके बहुत नजदीक है। हर कथाकार अखाड म साड के सामने रहता है-और हर बार उसके भयावह सीग-उन्हे तुम चाहे जिन्दगी कहलो, या सत्य या यथार्थ-उसे छीलते हुए, छूते हुए निकल जाते हैं।

इस अखाडे के बीच रहना शोर मचाती हुई खून के लिए आतुर भीड मे घिरे रहने के बावजूद अपने म अवश रह सकना ... निज पाना, एक अनिवार्य नियति है जिससे भागा नही जा सकता। एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति के लिए यह राजनीति है। मुझे समझ म नही आता हम अगर अपने समय के महज दर्शक नही बल्कि भोक्ता रहने का साहस रखते है तो राजनीति से हम पल्ला झाड सकते हैं। हमारी शताब्दी के लिए और उसकी संस्कृति के लिए राजनीति उतना ही जीवित सदर्भ है जितना कि बायजण्टीन संस्कृति के लिए धर्म, पुनरुत्थानयुगीन इटली के लिए क्लासिक, ग्रीक सभ्यता। आप बायजण्टीन से धर्म निकाल दीजिए बाकी कुछ भी नही रह जायेगा। जिन लेखकों के लिए फासिज्म या कम्यूनिज्म कोई अर्थ नही रखता उनके लिए साहित्य भी कोई अर्थ रखता है। मुझे गहरा सन्देह है।

राजनीति एक व्यवसाय या आदर्श या प्रेरणा के रूप में नही बल्कि एक जीवन्त निमम स्थिति के रूप म-जिसम कान्सनट्रेशन कैम्प है, नीग्रो सैग्रीगेशन है, तिल तिल कर मार देने वाली खास हिन्दुस्तानी गरीबी है।

यह स्थिति है-समस्या नही। जरूरी नहीं लेखक इनके बारे मे लिखे (लेखक की क्रियटिव प्रोसेस का इन से कोई सम्बन्ध नही) लेकिन वह इनके सदर्भ से अलग होकर नही लिख सकता। पिछले पाच सौ वर्षों म यह सदर्भ तेजी से बदलता गया है-हर परिवर्तन कहानी साहित्य म (और कविता म भी) नये प्रतीकों के लिए एक अजानी भूमि प्रस्तुत करता रहा है। फॉस्टर का जो प्रतीक गोल्ड (मेटे) के लिए था,

वही फाउस्ट टामस मान के लिए एक नये संदर्भ में (जर्मन फासिज्म) बिल्कुल एक नये प्रतीक के रूप में उपस्थित हुआ है हम इन प्रतीको से बच नही सकते। वे उस अन्धे की लकड़ी की तरह हैं, जिसे भूमि पर टेकता हुआ वह अपना रास्ता खोजता है। 'अगर हम अपने युग के सही और सच्चे प्रतीको को नही खोज पाते तो हमें फासिज्म जैसे गलत और झूठे प्रतीकों को झेलना पड़ेगा' (जान लेहमान)

और कलात्मक सौंदर्य ? हमारे समय के सबसे सुन्दर और कलात्मक वे लैम्प शेड हैं, जिन्हे यहूदियों की खाल से बनाया गया है। उन्हें देखकर कौन एस्थीट आल्हादित नही होगा ?

यह 'टोटल टेरर' की स्थिति है। — ऐसी स्थिति में अगर नयी कहानी कुछ हो सकती है तो सिर्फ अंधेरे में एक चीख। मदद मांगने के लिए नहीं—बल्कि मदद की हर संभावना को, हर गिलगिले समझौते का झुठलाने के लिए। अपने को पूर्ण रूप से इस 'टेरर' से सम्पृक्त कर पाना—यहां से लेखक का कमिटमेंट आरंभ होता है।

लेकिन—मैं दुहरा कर कहता हूँ—कि यह सिर्फ संदर्भ है—कहानी का विषय नही। विषय कुछ भी हो सकता है—ड्राइंग रूम के प्रेम से लेकर अपनी चहार दीवारी में फर्श पर रेंगती हुई धूप को देखने तक। जहां तक सृजनात्मक प्रेरणा का प्रश्न है, वह हर विषय के पीछे छोटी या बड़ी हो सकती है, वह विषय स्वयं में न छोटा होता है और न बड़ा। यह बात अलग है कि आज की कोई भी कृति—यदि वह महत्वपूर्ण है—अपने को इस 'टेरर' से, उसकी मंडराती हुई छाया से मुक्त नही रख सकती।

एक शब्द अपनी कहानियों के बारे में। मैं जो कुछ चाहता रहा हूँ, वह मेरी कहानियों में नहीं आ सका है—मैंने हमेशा उसे दूसरों में ही पाया है—इस लिए जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है वह आने वाली नयी कहानी के बारे में है। अपनी कहानी के बारे में नही। मैं अक्सर कहानियों में वही चीज सबसे अधिक चाहता रहा हूँ—जो मुझ में या मेरी कहानियों में नही है।

लेकिन जो 'चीज' दुर्भाग्य वश मुझ में नही है, या जिसे प्राप्त करने में मैं असफल रहा हूँ। उसमें वह कम महत्वपूर्ण तो नही हो जाती।"

(रमेश बक्षी) :

"मुझे इस बात का दुख है कि नयी कहानियों के बारे में सोचते विचारते मैं मजाक के मूड में नहीं रह पाता। वैसा करूँ तो वह जोकि मुझे दो रूपा लगेगा जैसे से मुझे घृणा है। मेरा लेखक मेरे अपने आप से कभी अलग नहीं रहा इसलिए मुखौटे लगाने में हर जगह असफलता मिली है। क्षमा याचना इस ऐसी भूमिका के लिए। अस्तु।

कहानी तो कहानी है पर वक्त ने उसे जो तब्दीली दी इस कारण वह पुरानी से अलग 'नया कहानी' बन गयी है। 'नयी कहानी' हिन्दी कहानी के समुन्नत अधुनातन स्वरूप के लिए एक सर्वथा उपयुक्त संज्ञा है। उड़ता तो है तिनका भी, हेलीकाप्टर भी, फोन भी जेट भी, स्पुतनिक भी। फिर ये जुदा जुदा नाम क्या? इसीलिए न कि उड़नवाली चीजें काम करने से नये नाम पा गईं। एक आदमी चपरासी था मास्टर बना, फिर प्रोफेसर, फिर कलेक्टर वह चपरासी था यह विगत है उसका, पर अगर आज कलेक्टर है तो क्या उसे भूतपूर्व चपरासी' के नाम से ही पुकारियेगा? नहीं न? तो फिर आज की कहानी को 'नयी कहानी' के नाम से अभिहित किये जाने पर व्यर्थ आपत्ति क्यों? पुरानी कहानी में सब कुछ था नयी दिशा की सम्भावना भी थी पर वह बंध गई थी। यूँ कहूँ कि तत्वों की वेशभूषा में वह रीति रूढ़ हो गई थी। 'नयी कहानी' ने बंधन तोड़े, उसे हायों की सकीर्णता से मुक्त किया, स्थूल से वह सूक्ष्म की ओर बढ़ी, वह मनोरंजन भर ही नहीं रह गई। भावों का कोई स्पंदन ऐसा नहीं जो नयी कहानी में न आ सके, शिल्प का ऐसी कोई दिशा नहीं जो उससे अनदेखा रही हो।

निश्चित ही 'नयी कहानी ने जो प्रयोग किये उससे बन्द पानी वह निकला है। उसने भाषागत विभिन्नताओं से सारे गद्य को एक नयी मधुरता प्रदान की है। कथानक के त्रिभुज शिकंजों से दूर वह मनचीती पगडंडियों पर चली है। स्थानीय रंग अगर आंखों को प्रकाशित करता है तो वातावरण मन को, परन्तु क्षण प्रभाव का चित्रण तो सारे मूल को झकझोर देने की क्षमता रखता है। हाँ, उसके लिए पाठक की संवेदनशीलता सहज ही उपलब्ध होना आवश्यक है। ईमानदारी से नयी कहानी' को रूप देने वाले शिल्पियों के साथ कुछ नक्काल भी भीड़ में आये ही हैं। उनकी नकली काम धन्धा को भी बदनाम करने में नहीं चूकता। पर वे नौकिया फैशन परस्त हैं पैराशूट के कपड़ों की तरह थोड़े समय में अपने आप ही आउट आफ डेट हो जाएँगे। नयी बात चौंकाती है पर समय की हवा से अपने आप ही "बुम' उड़ जाता है।

हां मुझे तो हिंदी की नयी कहानी से संतोष है और उसके लेखकों के प्रति मेरी बहद श्रद्धा है। मेरा विश्वास है कि यह सब प्रयास एक दिन रंग लाएगा। इन कहानियों में युग का प्रतिबिम्ब तो है ही, परन्तु अब वह भी सपाट हो गया है। ऊपरी रेखाओं को देखकर आज का पाठक अन्दर तक गया है। 'नयी कहानी' का लेखक स्प दन यत्र सा हो गया है, उसकी ध्वनि का सुन वायुवेग की शक्ति को अन्दाजा जा सकता है। उसके भावों में सागर-तल के थोथे सीप शंख भी हैं और अनमोल मोती भी।

मैं तो उम्र के साथ सीखने सीखते प्रभाव ग्रहण का एक छायापट भर रह गया हूँ। वक्त की परेशानियों में उलझने उलझने जो भी मिलती के क्षण चिर चमक कर रह जाते हैं उन्हें ही सूक्ष्म संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से अंकित करने की कोशिशें करता रहता हूँ। पात्रों और घटनाओं का विरूप स्वतः इतना विरल हो जाता है कि मात्र लकीरों से ही उनका आभास मिल पाता है। लेकिन मेरी भवन दिशा का यह अंत नहीं अपने प्रयोगों के दौर में बहुत कुछ नया मिलता है। और उस सबको अप नाना मुझे ठीक लगता है, क्योंकि ईसा ने उन लोगों में रक्खा है मुझे, जिनके हक में रास्ते हैं, मंजिल नहीं।

मैं निवेदन कर देना चाहता हूं कि आधुनिक कथा साहित्य की शैली से संबंधित मेरा यह वक्तव्य निबंध या लेख की शक्ल में नहीं है यह असंबद्धित लेकिन सापेक्ष ढंग से विषय के आसपास घूमता है। नए कथा साहित्य के पाठक और लेखक होने का अहसास मुझे हमेशा बना रहा है, शायद इसी कारण अपनी बात कहने के लिए यह अनात्मीय शैली उपयुक्त लगी।

"आधुनिक कथा साहित्य" बोलते ही पाठक जिस आशय को ग्रहण करते हैं वह स्पष्ट ही नई कहानी, अथवा नया उपन्यास और एण्टी नावेल है। नए बोधवाले ये नाम स्वाधीनता के बाद हिंदी में आए हैं। यह भी कहा जा सकता है कि ये नाम परम्परा के विरोध स्वरूप प्रचलित हुए और हिन्दी कथा साहित्य की विकास दिशा के नए मील स्तम्भ बने। यूं हिन्दी कथा साहित्य की उम्र बहुत बड़ी नहीं है। जिन सुविधा के लिये हम लोग पुरानी कहानी कहते हैं वह हिंदी कथा-साहित्य का बचपन था और बचपन से आई वयःसंधि वाली उम्र। प्रेमचन्द प्रसाद और उनके बाद यशपाल अज्ञेय जैनेन्द्र की कहानियाँ आज की नई कहानी के लिए बेनकम भर थीं। स्वाधीनता से पहले भी अच्छी कहानियां लिखी गई हैं लेकिन उनमें से अधिकांश उस वक्त के अनुसार अच्छी थीं या कहानी नाम की कोई 'एस्टब्लिश्ड चीज हिन्दी में नहीं थी इसलिए प्रसिद्ध हो गई। नई कहानी की बात करते समय पुरानी कहानी का मतक

नकारना मेरी भूमिका है क्योंकि उस सारे कथा साहित्य मे न तो देश की रूपरेखा देखता हू न मुझे वे काल सम्यक लगती है, वातावरण और मन स्थिति तो काफी दूर की बातें है। किसी आलोचक ने विदेशी समीक्षा से उधार लेकर, उन्हे बगर समझ बूझे, कहानी उप यास क छ शास्त्रीय तत्व बना दिये-यह सब उसी तरह का कार्य है जैसे मात्रा और वर्णों की गिनती लगा लगाकर कोई छ द रचना करे। समीक्षा इस तरह होती थी कि जैने द्र की कहानिया चरित्र प्रधान है यशपाल की वस्तु प्रधान या हायर सैकण्डरी स्तर पर यू कहे कि प्रेमच द की कहानिया गाय प्रधान, गुलेरी की त्याग प्रधान और कौशिक की ताई प्रधान । आप किसी की मृत्यु पर थोडा सा राइए, किसी के अचानक हृदय परिवतन पर चौंकिए, किसी की नुस्खेदार उदासी पर सामने रखी चाय को ठन्डा कीजिए, किसी के बेमतलब नगे होने मे रुचि दिखाइए और 'भारत महान् देश है'-जसा कोई उद्‌बोधन सुनकर अपनी अक्ल पर ही तरस खाइए बस, इतना कीजिए और आप हि दी के प्राचीन कथा साहित्य की यात्रा पूरी कर चुक होगे। मुझ यह बिल्कुल समझ मे नही आता कि हम लोग साहित्य क मामले मे ऐसे दिवालिया क्या थे क्या उस गुलामी को पूरी तेजी के साथ म हमने महसूस नही किया। जब राजनीतिक सामाजिक आर्थिक रूप से हम त्रस्त थे जब हमारी गर्दन किसी के जूतो तले दबी हुई थी तब क्या नही हममे फ्रस्ट्रेशन आया क्या नही हममे कु ठाए पैदा हुई, क्या नही विद्रोह और विरोध के बात्याचक्र हमम उठे ? जहा मेरा यह प्रश्न समाप्त होता है वही मैं नई पीढी की तथा कथित बुराइयो की वकालत करने लगता हू। आज के कथा साहित्य का शिल्प क्या है! मेरा तत्काल उत्तर है इन्द्रिय सचेतना। अब मुझे आप इसी शिल्प शैली के विश्लेषण की आज्ञा दें तो मैं कहू गा कि नई कहानी एक ओर यदि सही सही अनुभूति को सही सही ढग से ग्रहण करना है तो दूसरी ओर सार्थक अभि यक्ति को कलात्मक मोड देना भी है। नई कहानी ने सबसे पहले जैनेन्द्र यशपाल छाप ढाचो को अस्वीकारा है इसलिए उसका स्वरूप परम्परा का विकास नही, परम्परा का विरोध है। विकास उस परम्परा का किया जाता है जिसमे प्रजनन की शक्ति हो, उस परम्परा का विकास नही किया जाता जो अपने ही हाथो बधिया गई हो। स्वाधीनता के ठीक बाद की कहानिया आप देखें तो ऐसा लगेगा कि शिल्प क हजार मोड उनमे हैं—बारीकी है, बलिया है, कसीदा है, फुनकारी है। यहा तक सन्देह होने लगा था कि कथ्य की बजाय इनमे शिल्प है—राजे द्र यादव की एक कमजोर लडका' हो या कमलेश्वर की 'राजा निरबसिया' या निर्मल वर्मा की परिन्दे' या मोहन राकेश की 'मिस पाल' या रेणु की 'मारे गये गुल फाम अर्थात् तीसरी कसम शिल्प के प्रति एक छटपटाहट आप देखेंगे—इन नए मसकों का प्रयास यह रहा है कि उन्हे अपने का ठीक ठाक अभि यक्त करने की बजाय लोटा

देन की चिन्ता ज्यादा रहती थी—ऐसे किस्से भी हुए हैं कि ब्याज सिर ऊपर चढ़ जाने से अनुभूति उधार देने वाला डिग्री ले आया हो—नई-कहानी फ्लेटनेस या सपाटपा के प्रति विरोधी भी रही है इसलिए शिल्प-शैली के कर्व उसमें अधिक दिखाई देते हैं। राजेन्द्र यादव, और स्वयं मैंने विषय को ठीक ठीक सम्प्रेषित करने के लिए जरूरत से ज्यादा प्रयोग किये हैं मैं तो यह कह सकता हूँ कि मैं स्वभाव से प्रयोग धर्मा रहा हूँ। कथा चरित्र वातावरण पुरुष देशकाल और उद्देश्य तक में प्रयोग। प्रयोग की हमेशा दो दिशाएँ रहा करती थी एक दिशा वह जो उसे प्राचीन से अलग करती है और दूसरी दिशा वह जो उसे नई जमीन तोड़ने को कहती है।

मैं सोचता हूँ अब अंचल और नागर को लेकर विभाजन नहीं किया जा सकता। रेणु ठेठ आंचलिक होकर भी नये हैं और जैनेन्द्रजी देशातीत कहानियाँ लिख कर भी पुराने। नयापन दृष्टि का है। इस दृष्टि को पकड़ा और ग्रहण किया जा सकता है यदि कुछ नये कथा संग्रहों का पाठ ईमानदारी के साथ किया जाये। फणीश्वर नाथ रेणु का 'ठुमरी', मोहन राकेश का 'एक और जिन्दगी', राजेन्द्र यादव का 'किनारे से किनारे तक' कमलेश्वर का 'खोई हुई दिशाएँ' उषा प्रियम्वदा का 'जिन्दगी और गुलाब के फूल'' मन्नू भण्डारी का 'तीन निगाहों की तस्वीर' कृष्णबलदेव वैद का 'बीच का दरवाजा', श्री नरेश का तथापि रामकुमार का एक चेहरा निर्मल वर्मा का परिन्दे', हरिशंकर परसाई का 'जैसे उनके दिन फिरे' शानी का 'छोटे घेरे का विद्रोह' प्रयाग शुक्ल का 'अकेली आकृतियाँ, और मेरा संग्रह मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ'—ऐसे संग्रह हैं जो अलग अलग भाव स्तरों पर नए हैं। किसी में संवेदना की तीव्रता, किसी में युगबोध का संस्पर्श किसी में तीक्ष्ण व्यंग किसी में चित्रकला का सूक्ष्म शिल्प और किसी में जीवन से काटे गये किसी एक समय के दर्शन किये जा सकते हैं। कहानी कभी समानान्तर होकर उभरती है, कभी विरोध रूप होकर फैलती है। रूपक और प्रतीक कथा के माध्यम से सम्प्रेषित ही नहीं होते, ध्वनित और प्रतिध्वनित भी होते है। इस सारे शिल्प सौष्ठव के बीच एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि कथाकार युग के साथ सम्पृक्त और रागात्मकता के प्रति असम्पृक्त एक साथ है। आज के कहानीकार की संवेदना सान पर चढ़ी हुई है, वह दिन-ब-दिन पैनी और गहरी होती जा रही है लेकिन इसके साथ ही वह भावुक और टची नहीं रह गया है इन मामलों में वह रूड और रफ की कोटि तक पहुँच गया है। वह स्वभाव से किसी भी गलत विश्वास को ओढ़ नहीं सकता मैं यह कह सकता हूँ कि समाज के वस्त्र नैतिकता के किसी टेलर ने सीये है—वे ऊटपटांग ढंग से काटे गये हैं और उनकी सिलाई आउट आफ डेट है मैं कहानी लिखने से पहले समाज का आऊट फिटर होना चाहता हूँ। देखता हूँ कि वस्त्रों पर परम्परा का

गद जमी है मैं पहले डायक्टोनर होना चाहता हूँ। यहा तक कि बीमरी सदी के राज पथ पर मैं प द्रहवी शताब्दा के दकियानूस हिन्दुस्तानी को चहलकदमी करते देखता हू तो उस पर ढेला फेंकना को मैं अपने ज म का पहला कत्तव्य समझने लगता हूँ। नई पीढ़ी का व्यापार किसी न किसी स्तर पर किसी न किसी बात का 'एन्टी' अवश्य है। यह सब आधुनिकता की देन है और नई कहानी के शिल्प का इसमे निकट सम्बध है।

अब एन्टी कहानी या अकथा का बात सामन आती है। जो अयत्र विदेश म है उसस हि दी की अकथा का विरूप थाडा भिन्न होगा। भिन्न इसलिए कि जिन साहित्य का कहानी कहानी उस विरल या ईश्वरीय स्वरूप को वहा प्राप्त कर चुकी है—वहा तक पहुँचन के लिए हिन्दी की कहानी का अभी कुछ सीढ़िया पार करनी हैं। यह सवथा वक्तिगत दृष्टिकोण है कि हि दी की कहानी पहल एण्टी इन्सिडेण्ट, फिर एण्टी-कम्पोजीशन पहल एण्टी रोमेण्टिक पहल एण्टी पायट्री होगी फिर बाद मे एण्टी-स्टोरी।

इसी बात लघु उप यास दजना मे सफलता को स मा म पहुँच रहे हैं उनम मे अधिकाश साधारण तथा घटिया हैं। बडे उपन्यास लिखे तो कुछ गये लेकिन कोई भी उनका ठीक ठीक निर्वाह नही कर सका है। 'उखडे हुए लोग' 'अ धेरे ब द कमरे' 'बीज', 'भूले बिसरे चित्र' 'झूठा सच', 'जय वधन', 'धूमकेतु एक श्रुति' सभी कहा न कहा कोई न कोई कमी लिए हुए हैं। जब उप यास ही नही लिखे गये तो एण्टी नावेल की बात करना निरर्थक है। लेकिन यह सही है कि अच्छे उपन्यास लिखे जाएगे क्योकि उनकी जरूरत स्वय लेखक महसूस कर रहे हैं—साथ ही यह भी सही है कि अच्छे उपन्यासो का रूप 'गोदान' या 'मैला आचल' मे नहीं लिया जाएगा। उप यास कहानी के विराट कनवस का ही नाम नही है, सृजन की सम्पूर्णता का भी नाम है। सारे के सारे समाज बोध और काल बोध को दे देने की उसमे क्षमता होनी चाहिए, साथ ही उसे तात्कालिक तत्वों मे सवथा मुक्त होना चाहिए।

अब तक प्रकाशित सारे आधुनिक कथा साहित्य का सर्वेक्षण किया जाए तो यह लगेगा कि सारा साहित्य अनिवाय रूप से यथार्थवादी है, इस सारे साहित्य म व्यक्ति-व्यक्ति के घेरे कुण्ठाए उदासीनता, टूटन और ऊब प्रकृति म ऊब वस्तुएँ है—ऐसा कहा नहा लगता कि आत्मा सौ पचास साल की उम्र पकर हो आया है और सामाजिक-असामाजिक तक ही उसकी जरूरतें परिमित हैं। एक जमाने में जो किस्से कहानी लडके लडकियो को भ्रष्ट करने वाले समझे जाते थे आज उनका ही नया रूप आधुनिक बोध सिखाने वाला माना जाता है। मेरा एक और अध्ययन यह भी है कि अपनी मिट्टी के देशकाल का जितनी बेहतर तसवीर नई कहानी म बनती है, साहित्य की अ य

किसी विधा में नहीं बनता। नई कहानी का शिल्प म टू और अमरका त की कहानिया सा कभी सा-ा सादा हो जाता है, कभी सर्वेश्वर और रघुवीर सहाय की कहानिया सा बिम्बभाषायुक्त कभी निमल वर्मा की कहानिया सा सर्वथा त्रिदशी, कभी रेणु की कहानिया सा सर्वथा देसी, कभा श्रीका त वर्मा की कहानियो सा शैलीहीन तो कभी राजकमल की कहानिया मा शैना प्रमित।—इसक बाद भी नई कहानी एक रास्ता है, एक दिशा है—मजिल या ध्रुवतारा नहीं।"

(राजकमल चौधरी) :

समकालीन कथा साहित्य क बारे मे इतने लोग इतनी तरह की बातें कह रहे हैं कि मुझे यह सोचने को मजबूर होना पडता है कि फिलहाल और कुछ कहने की जरूरत नहा है। आज की कहानी को नये आयाम, और नयी भावभूमि, और नया सामाजिकता, और नये दृष्टिबोध, और नये टेक्सचर, और नयी वैयक्तिक्ता, और नये सत्यो म इस तरह बाधा जकडा जा रहा है, कि पाठक की बात तो बहुत दूर की है, आज के कहानी लखक का ही दिशा नहीं मिलती है कि कहानी क्या चीज है। वह नी लेखक इन तथाकथित सैद्धा तिक आलोचना प्रत्यालोचनाओ के यूह मे अभिम-यु की तरह घिर गया है, और अभिम-यु की हत्या नहीं की गयी, ता कभी कभी वह आत्महत्या भी कर लेता है। यह अत्युक्ति नहीं है कि पशेदार समालोचको समाक्षका क निहि त स्वार्थो (Vested interests) क कारण, सहयोगी लखको द्वारा दिये गये गलत नारा और गलत स्टडीज क कारण, और मुनाफाखोरी के नानाविध हथकण्डा मे आत्मलीन प्रकाशक की व्यवसाय बुद्धि के कारण धीरे धीरे नयी पीढ़ी के कहाना लेखक आत्महत्या करन पर विवश हो, रह हैं। एक उदाहरण है, कमल जोशा। दूसरा उदाहरण है मार्कण्डेय। ताजा उदाहरण है, फणीश्वरनाथ रेणु। इनम से किसा का सहयोगी लेखको द्वारा लगाया गयी झूठी लाछनाओ न पराजित किया है। किसा का इस खयाल ने मारा है कि नामवर कहानी लखक बनने क लिए जरूरा नहीं है कि अच्छी कहानी लिखी जाय, जरूरी यह है कि च द फामू ल च द उसूल च द पब्लिसिटी स्ट ट अपनाये जाय। किसी का प्रकाशक ने मारा है। किसी को किसा और भ्रम या मायाजाल या गलतफहमी न।

कहानिया लाग अस रही हैं। कहाना लेखक खुदकशा कर रह हैं। और इन लाशा का बड़ा ही शानदार जुलूस निकाला जा रहा है। किसी भी मासिक पत्रिका का कोई भा अक उठा लीजिए। स्वतन्त्र लखा मे, टिप्पणिया मे, स्तम्भा मे समा क्षाओ म, यहा तक कि प्रकाशित पत्रा मे हो, कहीं न कहीं पर ऐसी बात जरूर

मिल जाएगी जो किसी लेखक को ऊंचा और किसी लेखक को नीचा करने के लिए, आज की कहानी को किसी न किसी भूषण या दुर्गुण से मंडित या लांछित करती है। हर दूसरा आलोचक, और हर तीसरा लेखक आज की कहानी के दर्द, का, सिर दर्द का मसीहा बन रहा है

एक बंधु लेखक ने अपने एक लेख में कथा साहित्य की परिभाषाएं या दी हैं, 'मूलत व्यक्तित्व और परिवेश के सार्थक सम्बन्धों में जीवन के स्वरूप और उसकी गति को समझने की सचेत प्रक्रिया का नाम ही कथा साहित्य है।' यह परिभाषा मेरे पल्ले नहीं पडती है। कथा साहित्य क्या जीवन के स्वरूप और उसकी गति को समझाने की सचेत प्रक्रिया ही है? कथा-साहित्य 'गति को समझाने की प्रक्रिया' है या प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है? क्या कोई उदाहरण लेकर इस व्यक्तित्व और परिवेश' के रिश्ते और 'स्वरूप और गति की समझदारी और इन सबकी 'प्रक्रिया' को समझा जा सकता है?

क्या इस प्रक्रिया' को अर्थ और व्याख्या देने वाली कहानियां लिखी गयी हैं, या लिखी जा रही हैं? क्या कहानी की सीमा में (क्योंकि, कहानी अर्थशास्त्र या समाजशास्त्र मनोविज्ञान या दर्शन की थीसिस नहीं है।) ऐसा करना सम्भव है? और इस परिभाषा को आदर दिया भी जाय तो यह परिभाषा केवल कहानी के साथ ही नहीं, साहित्य की किसी भी विधा के साथ लागू हो सकती है।

बात दरअसल यह है कि नयी पीढी के लेखक और आलोचक बातों को उलझाना चाहते हैं। इस कदर उलझाना चाहते है, इस तरह स्थितियां और परिभाषाएं और सिद्धांत गढ कर पेश करना चाहते है कि जो कुछ भी वे लिखें और अपने बन्धुओं से लिखवाएं वह सारा कुछ साहित्य के दायरे में मान लिया जाय—मान लिया जाय कि वह शिल्प का एक नयी विधि है, वस्तु की एक नयी धानी है, भाव का एक नया कोण है।

मैं इस पुरानी बहस पर उतरना नहीं चाहूंगा कि साहित्य मानव-जीवन और समाज की उन्नति प्रगति का एक सहायक यन्त्र है, अथवा साहित्य मानव जीवन और समाज को अपने विषय के रूप में अंकित करके भी उनसे सर्वथा स्वतन्त्र है। इस बहस में पडने से फायदा नहीं है, क्योंकि दोनों एकदम दो बातें हैं। मैं जीवन और समाज को साहित्य, विशेषत कथा साहित्य के विषय (Subject Matter) से अधिक कुछ नहीं मानता। यह नहीं मानता कि किसी मतवाद का प्रचार किसी सिद्धान्त का प्रचार, किसी नैतिकता या किसी जीवन शैली का प्रचार कथा साहित्य का उद्देश्य है। जो लोग ऐसा मानते हैं उनसे मुझे कोई स्पर्धा नहीं है। इतना अवश्य है कि सामा

जिक और राजनीतिक तन्त्र से, और इसकी उथल पुथल से कथा साहित्य दामन बचा नही सकता है, अपने को बेदाग नही रख सकता। किंतु साहित्य के सौन्दर्य मूल्य और जीवन के उपयोग मूल्य म कोई एकता नही है।
युद्ध अकाल राजतन्त्र, बेकारी महगी, दूसरे देशो से सम्बन्ध, गृहकलह, आम चुनाव इन सभी बातों का असर कथा साहित्य पर पडता है, सामान्यत कथा के विषय और स्वरूप पर पडता है। मगर इसका यह अर्थ कदापि नही है कि कथा-साहित्य को *जीवन और संस्कृति की कलात्मक अभिव्यक्तियो के क्षेत्र स हटाकर, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्र म डाल दिया जाय।*

कहानी के बारे में तरह तरह की परिभाषाएँ गढी जा रही हैं। नामवरसिंह जैसे नवोदित आलोचको ने आज की कहानी का एक बार ही 'नयी कहानी' बना दिया है। 'नई कहानिया' (वपगाठ विशेषाक, मई १६६१) म राजेन्द्र यादव *का एक लेख छपा था,* 'आज की कहानी परिभाषा के नये सूत्र।' इसी एक लेख के पर्यवेक्षण से पता चल जा सकता है कि आज की तथाकथित 'नयी कहानी' के लेखक और आलोचक क्या *सोच रहे हैं, और यह सोच विचार किस हद तक उचित–अनुचित है।*
आठ कालमा का यह लेख परस्पर विरोधी बाता, आत्म खण्डन और गलत निष्कर्षों से भरा है। पहले कुछ उदाहरण पेश करता हूँ—

(१) इन दस वर्षो मे कहानी का एक ऐसा व्यक्तित्व जरूर सवरा और निखरा है, जो उसकी परम्परा से एकदम भिन्न है।' और (२) *कहानी के इस नये रूप ने* परम्परा को ज्यो–का–त्यो ग्रहण कर लिया हो, ऐसा नही है। हाँ, कुछ सूत्र सामान्य हो तो हो।' और (३) इस दशक की कहानी, जिसे हम आज की कहानी कहेगे, ने *इस समूहगत सामाजिकता के वातावरण मे आखें* खोली। चाहे तो इसे ही पिछली पीढी की विरासत मान सकते हैं।' और, (४) 'बात आरोप के रूप म कही जाती है, लेकिन अनजाने ही यह भी सिद्ध करती है कि आज के कथाकार *ने उन्ही (प्रेमचन्द, यशपाल या समकालीन उर्दू कथाकारो—मन्टो, बेदी,* अश्क, कृष्णचन्दर इत्यादि') की परम्परा का विकास करने की कोशिश की।'—ये चारो परस्पर विरोधी versions राजेन्द्र यादव ने अपने इसी एक लेख म दिये हैं। *अर्थात, यादव के अनुसार आज की कहानी (यानी नयी कहानी)' पिछली परम्परा* से एकदम भिन्न' भी है और फिर पिछली परम्परा से इसके कुछ सूत्रा मे समानता भी है, और फिर इसके पास (समूहगत सामाजिकता का वातावरण') पिछली पीढी की विरासत' भी है, और अन्त म, *नयी कहानी' के कथाकारा ने प्रेमचन्द* आदि की परम्परा का विकास करने की कोशिश' भी की है।

जी हाँ, आज की 'नयी कहानी' के ये उद्भट कथाकार और दिग्भट आलोचक परम्परा के बारे में इसी तरह बातें करते हैं। वे सोचते हैं कि अगर वे परम्परा का स्वीकार करेंगे, तो उन्हें 'नयी कहानी' का मौलिक स्रष्टा नहीं माना जाएगा। मगर साथ ही उन्हें अपने को स्वयं का 'आत्मज' कहने का साहस भी नहीं है।

मैं इस बात का विरोधी हूँ कि आज की कहानी पिछली परम्पराओं से सर्वथा स्वतन्त्र है। मैं यही मानता हूँ कि हमने चण्डीप्रसाद हृदयेश, प्रेमचन्द, गुलेरी कौशिक, सुदर्शन, शिवपूजनसहाय की परम्परा को ही आगे बढ़ाया है, उससे एकदम टूट नहीं गये हैं। जहाँ तक कहानी की शिल्प शैली का प्रश्न है हम बहुत तेजी से बहुत आगे बढ़े हैं। मुद्राराक्षस, रमेश बक्षी निर्मल वर्मा और राजकमल चौधरी की कतिपय कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से फ्रांसीसी, ब्रिटिश, और अमरीकी कथा साहित्य के आधुनिकतम शिल्प की बराबरी करती हैं। मगर, ये कहानियाँ किसी प्रकार भी विदेशी कहानियों का अनुकरण या 'नकल' नहीं हैं, क्योंकि इनकी समस्या, इनका विषय, इनका परिवेश सम्पूर्णतः भारतीय है।

परम्परा से भिन्न होकर, परम्परा से टूट बिखर कर अपना अस्तित्व और अपना व्यक्तित्व कायम रखना कठिन ही नहीं, असंभव जैसा है। आधुनिकता के आधुनिकतम पुजारी जो 'ट्रेडिशन' से सर्वथा स्वाधीन होने की बात नहीं करते हैं। वे 'ट्रेडिशन' के टूटने की बात करते हैं। हर युग, हर काल, हर दशक क्या, हर क्षण पुरानी और पिछली परम्परा का कोई न कोई अंश टूटता रहता है। हमारा हर कदम सिद्ध करता है कि हम पिछले स्थान से थोड़ा आगे जरूर बढ़े हैं। साहित्य और जीवन, दोनों ही क्षेत्रों में रुक जाना, परम्परा से बंधे बंधाए रहना ही अगति और दुर्गति की निशानी है। मृत्यु का आभास है। मृत्यु है।

आज की कहानी में (जिसे मैं 'नयी कहानी' की संज्ञा नहीं देना चाहता हूँ) हम साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही परम्परागत तौर तरीकों और रीति को छोड़कर आगे आ रहे हैं। पहले कहानी की निश्चित सीमाएँ थीं, घटना की सीमा, चरित्र की सीमा कथानक की सीमा क्लाइमेक्स की सीमा। तरह तरह की सीमाएँ। आज हम इन सीमाओं में बंधे रहना जरूरी नहीं समझते हैं। हम जरूरी नहीं समझते हैं कि हर कहानी से कोई न कोई नतीजा (moral) निकलना ही चाहिए। कहानी खत्म हो जाती है, और अक्सर कोई नतीजा नहीं निकलता है। साहित्य और कला की अन्य अभिव्यक्तियों की तरह ही कहानी भी हमारी नैतिकता या हमारे जीवन मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं डालती है, हमें कोई 'हितोपदेशीय' सीख नहीं देती है (हल्के क्षणों में) सिर्फ हमारा मनोरंजन करती है और (भारी भरकम क्षणों में)

मारे रसबोध, सौन्दय बोध को अपने शिल्प, अपनी कलात्मकता द्वारा तृप्त करती है।

इस युग में आकर कविता और कहानी बहुत हद तक चित्रकला और सगीत के निकट आ गयी हैं। कविता में सगीत और चित्रकला का प्रभाव मिलता है। कहानी में भी मिलता है। कला के सभी फार्म्स पास खिचे आ रहे हैं। अभिव्यक्ति के माध्यम (medium) अलग अलग हैं, अभिव्यक्ति का उद्देश्य एक ही है। और, यह उद्देश्य हमें मजबूर करता है कि हम परम्परा से एकदम 'भिन्न' नहीं हो जाएँ परम्परा को ध्यान में और ज्ञान में रखकर ही आगे बढ़ते जाएँ। कविता और कहानी का पाठक, सगीत का श्रोता, कला चित्रों और मूर्तियों का दर्शक परम्परा के मार्ग पर चलकर ही इन कलासृष्टियों को समझ पाता है, इनके सौन्दर्य का सुख प्राप्त कर पाता है। और अगर ये सृष्टियाँ अगर रचनाएँ शिल्प शैली और वस्तु की दृष्टि से एक बार हो नयी' हैं, 'ट्रेडीशन' में इनकी कोई जड नहीं है तो पाठक, श्रोता और दर्शक का तनिक भी सहानुभूति इन्हें नहीं मिल सकता।

आज की हिन्दी कहानी को पाठकवर्ग की सहानुभूति मिली है मिल रही है। यह जरूर है कि जितनी तेजी से कथा शिल्प का विकास हो रहा है अपनी कला के प्रति कथाकार जितना सजग है, सामान्य पाठक की समझदारी का विकास और सजगता उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही है। किन्तु ऐसा तो हर युग में होता आया है। लेखक नयी दिशाओं और नयी उपलब्धियों की खोज में आगे बढ़ता है, और पाठकवर्ग उसके पीछे-पीछे वहा तक पहुचता है। हा, 'कमर्शियल' लेखक के साथ ऐसी बात नहीं होती क्योंकि वह अपनी कला और अपने शिल्प पर जरा भी ध्यान नहीं देता है, अपने पाठक की रुचि और विषय बोध का ही खयाल रखता है।

दूसरी बात यह है कि आज के एक कथाकार अपनी महत्ता सिद्ध करने के लिए यह शिकायत करते हैं कि पिछली पीढ़ी के कथाकारों से उन्हें विरासत में कोई चीज नहीं मिली है।

फतवबाजी से धन्धा (सो भी थोड़े दिनों तक) चल सकता है, साहित्य-सृजन और साहित्यालोचन नहीं चलता है। किसी एक लेखक की बात तो दूर की है, पूरी की पूरी पीढ़ी आत्म विज्ञापन और पर निन्दा के कारण समाप्त हो जाती है। आज की पीढ़ी के नयी कहानी' लिखने वालों का भी यही हाल होगा, अगर वे विज्ञापन और व्यवसाय के 'नये मूना' से प्राण नहीं बचाएँगे। नयी पीढ़ी को विज्ञापन की आवश्यकता नहीं है, नामवरसिंह की तरह नित नये नारे लगाने वाले आलोचकों की भी आवश्यकता नहीं है। 'नया भाव भूमि', 'नयी सामाजिकता' 'व्यक्तिगत सामू-

ट्टिकता', निर्वैयक्तिक वैयक्तिकता के तथाकथित 'सदर्भो और परिप्रेक्ष्य' से अलग हट कर, अगर हम 'नयी कहानी' नहीं, सिर्फ कहानी लिखें, निर्मल वर्मा के 'परिन्दे' और कमलेश्वर की 'नीली झील', और रामकुमार का 'डेरा' और धर्मवीर भारती का 'गुल की बन्नो', और रेणु की 'तीसरी कसम' और शैलेश मटियानी की एक कप चा, और उषा प्रियम्वदा की 'माहवरा' और मुद्राराक्षस की सहति' और रमेश बक्षी की 'उसका न देखना' और कृष्णा सोबती की 'भोले बादशाह,' शिवप्रसाद सिंह की 'बिन्दा महाराज', (यह सब लिखते समय जो नाम याद आ गये, वही लिख दिये हैं, वैसे और भी बहुत सारे लेखक अच्छी से अच्छी कहानियाँ लिख रहे हैं।) जैसी कहानियाँ। अच्छी कहानियाँ लिखना ही कहानीकार के लिए पर्याप्त उपलब्धि है, 'परिभाषा के नये सूत्रों' के ताने बाने में लिपट कर वह ज्यादा दूर तक आगे नहीं जा सकता है।

राजेन्द्र यादव भी अपने इस लेख में थोड़ा भी आगे नहीं जा सके हैं, अपने ही बनाये दौव-पेचों में उलझ कर रह गये हैं। कभी कहते है, 'सारी साहित्यिक चेतना कविता से हटकर कहानी पर केन्द्रित हो रही है' और कभी कहते हैं, 'इस प्रकार युग की समानता को पाने का प्रयत्न आज के कहानीकार को कविता की ओर मोड़ता है।' और फिर यह भी कहते हैं 'इन दस वर्षों की कोई भी अच्छी कहानी उठा लीजिए। उसका प्रभाव या परिणति एक झलक के साथ देखा या पाया हुआ सत्य नहीं होता ... वह तो कुहासे या चन्दन-गन्ध की तरह समस्त चेतना पर छा जाती है, उसका अंग बन जाती है और अनजाने ही आत्मा को संस्कार और दृष्टि देती है।' वाह, क्या कविताई है!' देखा आपने, 'नयी कहानी के इस पारखी के विचार से कहानी का 'प्रभाव और परिणति' कुहासे' और चन्दन गन्ध' में हो रही है। उठा लीजिए, आज की कोई भी अच्छी कहानी। और, कहानी नहीं मिले तो 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' या 'अभिमन्यु की आत्महत्या' या 'खुशबू' या 'पुराने नाले पर नया फ्लैट' की इन क्लाइमेक्स की पंक्तियों पर गौर फरमाइये। 'यह घुटन, यह बदबू सब मेरे ही कारण है। अगर 'मैं' वहाँ होती तो सभी कुछ कितना साफसुथरा होता! ... आज शायद हवा इधर की ही है बड़ी बदबू आ रही है ... यह बदबू भी बड़ी अजीब-सी है, बसी सड़ी-सड़ी सी जैसे सन्दूक के पीछे कभी चूहा मर जाता है तो बदबू आती रहती है न, वैसी ही गन्ध है।'

जी हाँ, वैसी ही गन्ध है, और इसे भाई राजेन्द्र जी (जो अपनी इस कहानी के लेखक भी हैं) चन्दन गन्ध कह कर बेचना चाहते हैं। पुराने नाले की सड़ी हुई बदबू को आप चन्दन गन्ध मान कर खरीदना चाहेंगे?

सारा अपराध राजेन्द्र यादव का नहीं है। बात ऐसी है कि कहानी लिखना पडता है, और उसे बाजार में बिक्री करना पडता है। अपनी कहानियों की दुर्गन्ध के बारे में 'चन्दनगन्ध' का भ्रम फैलाना पडता है। तभी सम्पादक और प्रकाशक कहानी खरीदते हैं। अच्छी कीमत देकर खरीदते हैं। यह भ्रम नहीं रहता तो कहानी नहीं बिकेगी। और, कहानी नहीं बिक सकी तो लिखी ही क्यों गयी।

बात घूम फिर कर सृजन और व्यावसायिक सृजन पर आ जाती है। कहानी लेखन का उद्देश्य जब तक कहानी बेचना ही रहेगा, कभी अच्छी कहानी नहीं लिखी जाएगी कभी पाठकों को सच्ची बात नहीं बतायी जाएगी। केवल सिद्धान्त गढे जाएँगे, और केवल भ्रम फैलाये जाएँगे।

भ्रम फैलाये जा रहे हैं। विनोद मासिक (अगस्त १९६१) के अपने लेख 'आज की कहानी नयी चुनौतियाँ और कथाकार और कुछ नाटक' में राजेन्द्र यादव ने लिखा है, चाहे इस दशक के प्रारम्भ का 'नदी के द्वीप' हो या इस दशकान्त का 'झूठा सच' —इधर जो भी उपन्यास आये हैं, वे 'नये कथाकारों' के नहीं 'पुरानों' के ही हैं। अपने को नयी संवेदनाओं की निर्मिति और नये बोध का वाहक कहने वाले कथाकार के पास उसको अपनी पीढी का प्रतिनिधित्व कर सकने वाला 'नया उपन्यास' कहाँ है?' राजेन्द्र यादव के इस शिशु प्रश्न का उत्तर दिया जाना आवश्यक नहीं है, क्योंकि मैं समझ नहीं पाता हूँ कि 'नयी कहानी' और 'नया कथाकार' और 'नया उपन्यास आदि नयी नयी' विशेषण से भूषित इन शब्दों से उनका मतलब क्या है। 'नया कथाकार' क्या हम उसे कहेंगे जिसने इसी दशक में लिखना शुरू किया है, या जो अपनी कहानी में आधुनिक शिल्प और शैली का उपयोग प्रयोग करता है? 'रसप्रिया' का कथाकार रेणु 'नया कथाकार' है (क्योंकि, 'रसप्रिया' शिल्प की दृष्टि से आधुनिकतम कहानी है) या वह 'पुराना कथाकार' है (क्योंकि वह लगभग १९४४-४५ से ही हिन्दी में कहानियाँ लिख रहा है?)

जहाँ तक हिन्दी के वर्तमान सृजन का प्रतिनिधित्व करने वाले कथाकारों का प्रश्न है उनमें से कितनों ने ही अपनी पीढी का प्रतिनिधित्व कर सकने वाले उपन्यास लिखे हैं। उदाहरण के लिए कुछ नाम सामने हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा' सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' कृष्णा सोबती का 'डार से बिछुडी', हरिशंकर परसाई का 'ज्वाला और जल' ओमप्रकाश दीपक का 'मानवी' हिमांशु श्रीवास्तव का 'लोहे के पंख' कमलेश्वर का 'एक सडक सत्तावन गलियाँ', 'कमल के फूल', अमरकान्त का 'सूखा पत्ता', मुद्राराक्षस का 'मैडलीन' शैलेश मटियानी का 'हौलदार' यानी का 'कस्तूरी' राजेन्द्र यादव

का 'कुलटा'। और भी कितने ही नये कथाकारों के नये उपन्यासों का नाम लिया जा सकता है। और, इतने नामों के बाद क्या यादव का उपरोक्त प्रश्न हवा में उड़ नहीं जाता है कि 'नया उपन्यास' कहाँ है?

राजेन्द्र यादव जैसे एक ही नहीं हैं, कई हैं जिनसे हिन्दी के समकालीन सृजन का अहित ही हो रहा है। क्योंकि जब कि आज की हिन्दी कहानी शिल्प में, शैली में, कथानक में, विषय वस्तु में, घटना निर्वाह में, कथन में, कथ्य में, बहुविध हो रही है, विविधता प्रधान हो रही है, नये नये कनवस और नये नये रंग अपना रहा है, जब कि कोई कथाकार कुमायूं और गढ़वाल के पहाड़ी अंचलों में घूम रहा है, कोई महानगरों के बड़े बड़े दफ्तरों और क्लबों होटलों बारहाउसों की जिन्दगी में डूब रहा है, कोई ग्राम जीवन की सुख सुविधाओं और दुख-दुविधाओं में कहानियों के मोती निकाल रहा है कोई प्रणय का चक्कर व्यस्त है, कोई हिंसा और घृणा में लीन है, कोई आधुनिक शहरी जिन्दगी, मध्यवर्गीय जिन्दगी के खोखलेपन को चित्रित कर रहा है, कोई यौन विकृतियों और कुण्ठाओं के प्रदर्शन में लगा है कोई कल कारखानों और खानों का 'मशीनी' जन जीवन देख रहा है कोई पूंजीपतियों के व्यावसायिक हथकण्डों का परख रहा है। ऐसी स्थिति में राजेन्द्र यादव कहते हैं, (एकाध अपवाद जो शायद, स्वयं उनकी कहानियाँ हैं।) छोड़ दीजिये, तो आज की सारी 'नयी कहानी' अपनी विषयवस्तु और उसके निर्वाह में आश्चर्यजनक रूप में एक दूसरी से मिलती है।

और इस निर्णय के बाद वह और भी मनगढ़ंत निर्णय देते हैं, 'नयी कहानी का नायक अतीत में जीता है, वह सपनों से नहीं स्मृतियों से आक्रान्त है ... जब कभी भी वह वर्तमान में आता है तो ऐसे रिरियाते हुए निरीह कबूतर (आपने कभी कबूतर को रिरियाते हुए सुना है?) के रूप में आता है, मानो काल अपने क्षणों की अंगुलियों से उसके एक-एक पंख नोच रहा हो ...।' पढ़ कर आश्चर्य होता है कहानी सम्बन्धी आलोचनात्मक निबन्ध में 'नयी कविता' नुमा ये पंक्तियां लिखने का साहस लोगों में है। राजेन्द्र यादव से मैं पूछना चाहूंगा कि क्या उन्हें समकालीन अन्य कथाकारों की रचनाएं पढ़ने का अवकाश मिलता है? आज की कहानी के कितने नायकों से उनका परिचय है? या, उनका परिचय मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, और मन्नू भंडारी के नायकों तक ही समाप्त हो जाता है?

अतीतजीवी और स्मृति भोगी हर आदमी होता है, चाहे वह किसी कारखाने का कुली मजदूर हो, चाहे कोई कवि दार्शनिक। लेकिन आदमी अगर समाज में रहता

है, और उसे जीने के लिए, सुख सतोष के लिए मिहनत मजदूरी करनी पडती है, तो वह हर वक्त 'अतीत म जीता हुआ' और स्मृतियो स आक्रा त' नही रह सकता है, नही रहता है। और आज की हि दी कहानी ऐसे ही आदमी की कहानी है। आज की कहानी का नायक दफ्तर का मालिक होता है, किरानी, होता है, प्यार करने वाली बीबी का पति होता है, आवारा लडकी का आशिक होता है, रिक्शा चलाता है, टैक्सी चलाता है शराब पीता है, जुआ खेलता है, अपने बच्चो को प्यार करता है, बेटी के ब्याह के लिए रुपये जमा करता है, पडोसी की मदद करता है, चोरी करता है, बेरोजगारी म मुब्तिला रहता है, शादी करता है, डाइवर्स लेता है नये मकान बनाता है, किराये के मकान म रहता है, खेत म ट्रैक्टर चलाता है, चुनाव लडता है। हारता है जीतता है, हँसता है, रोता है आज की कहानी का नायक वह हर कुछ करता है, जो आज का आदमी करता है।

आज का आदमी कहानी भी लिखता है, और कहानी के बारे म आत्मावलोकन और कुछ नोट्स' भी लिखता है—मगर, वह लेखको और पाठको के सामने गलत तथ्य और गलत सिद्धा त पेश नहीं करता है। उस नही पेश करना चाहिए। जीवन और साहित्य के प्रति ईमानदारी यही कहती है, यही मागती है।

आज की हि दी कहानी का नाम आप 'नयी कहानी' रखले या 'पुरानी कहानी' रखें या उसे सिर्फ 'कहानी' कह, कोई फर्क नहीं पडता है। फर्क तब पडता है जब आप आज की कहानी पर ऐसी बातें, ऐसे गुण या दुर्गु ण आरोपित करते हैं जो उसम नही हैं, और उसकी ऐसी परिभाषाए घोषित करत हैं जो आपका पाठक तो क्या स्वय आप भी नहीं समझ पाते हैं। नासमझी की यह आदत अच्छी आदत नहीं है, और लेखक की सेहत पर बुरे असर डालती है।"

(दूधनाथ सिंह) :

"लेखन की व्याख्या स्वय लेखक के लिए (कम अज कम मेरे खयाल से) उतनी सहज नही होती। 'सम्पूर्ण वस्तु' को रचनात्मक तनाव के दौर म 'पुन-पुन जीने' म रचनाकार की काफी शक्ति खर्च हो जाती है। फिर उस 'पुन पुन जीने' को पृथक् से व्याख्यायित कर पाना कठिन लगता है। एक बात और है—इस प्रकार की व्याख्या या जाँच-परख अपने रचनात्मक अनुशासन के लिए तो की जा सकती है, हर लेखक करता है, लेकिन यह इतनी अप्रत्यक्ष होती है, लेकिन प्रक्रिया के साथ कुछ इस तरह घुली मिली होती है कि उसे पृथक करना शीघ्र सम्भव नहीं हो पाता।—ऐसा सम्भव होता

तो ससार के सभी उच्चकोटि के कलाकार उच्चकोटि के आलोचक भी होते।

नई कहानी और पुरानी कहानी का अन्तर क्या है? केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं सारी दुनिया में। अन्तर कुछ इस प्रकार है पुरानी कहानी मनुष्य की जीवन की, समाज की इतिहास और व्यक्तित्व की एक 'व्याख्या' प्रस्तुत करता है एक 'इन्टरप्रिटेशन' देती है। चाहे वह चेखव हो या मोपासाँ ओ' हेनरी हो या माम या यो अथवा कथरीन मेंसफील्ड या बाल्जाक, प्रेमचन्द हो या शरत ताराशकर, गगाधर गाडगिल या जैनेन्द्र कुमार और यशपाल।

नई कहानी मनुष्य को जीवन को, समाज को और ऐतिहासिक सन्दर्भ को 'झेलती' और 'महसूस' करती है। यह अन्तर इतना सूक्ष्म है (गो कि घटित हो चुका है) कि साधारणतया हमारे पुराने या बहुत से उन कहानीकारो की समझ मे नही आता, जिनके सामने 'व्याख्या' वाला रूप उतना स्पष्ट और आसान रहा है। (मूलत ये लोग भी पुराने ही है।)

इसे एक और तरह से कहा जा सकता है। 'कहानी बनाने' और कहानी का अपने आप कथाकार के हाथो से घटित होने' का अन्तर ही पुराने और नये का अन्तर है। चेखव भी कहानी बनाते हैं, मोपासाँ भी, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और यशपाल भी। बहुतो ने उनसे कहानी बनाना सीखा भी है और बखूबी सीखा है। किन्तु एक बहुत लम्बे अर्से के बाद आज हमे पता लगता है कि 'कहानी का घटित होना' (एक तरह से ससार की सारी कलाओं में यह प्रवृत्ति आज मिलती है) किस तरह हमे इतिहास, समाज युग और मनुष्य के निकट सच्चे अर्थों मे ला देता है! किस तरह रचनाकार और रची जाने वाली वस्तु के बीच की दूरी लोप हो गई है! और उसकी जगह एक सहज आत्मीयता और भागीदारी की भावना ने ले ली है। शताब्दियो से सारे कथाशिल्प का 'प्रयोग' या उसकी उन्मुखता इसी निकटता के अहसास' की ओर रही है। यह निकटता का अहसास चमत्कारिक नहीं हैं, बल्कि एक सच्चा बोध है। सामाजिकता इतिहास और मनुष्य की यह सापेक्षता पहली बार अपनी सम्पूर्ण तीव्रता के साथ आज रचनाकार के सामने प्रकट हुई है। इसीलिए 'कहानी बनाने' की आवश्यकता उसे नही पड़ती। वह कहानी के घटित होने' का माध्यम होता चलता है। इसके बाद भी जो मानसिक ऊहापोह, एक आरोपित मनोदर्शन, विज्ञान के रटे रटाए सिद्धान्तो या मात्र शिल्प की चतुराइयों में विश्वास रखते हैं, और सामाजिक-ऐतिहासिक आवश्यकताओ की ओर से आँखें मूँद लेते हैं, वे पुराने ही कहलायेंगे।

नये कहानीकार के लिए 'फर्स्ट हैण्ड-एक्सपीरियन्स' पहली शर्त है। यहाँ कुछ भी चुराया नही जा सकता। न जोड़-बटोरकर या गूँथकर ही कुछ किया जा सकता

है। ऐसा जोड-बटोरकर बनाया हुआ सारा लेखन पुराना है—चाहे वह नयी या आधुनिकतमो का ही क्या न हो। रचनात्मक स्तर पर सदियों बाद यह तथ्य सामने आया है कि कथाकार को स्वयं और सदा रचना के प्रति एक पार्टी, रचनात्मक स्तर पर, होना पडेगा। यह तथ्य शिल्प और वस्तु की धारणा सम्बन्धी बहुत-से प्रश्न उठायेगा या शायद उठा रहा है, लेकिन जब तक लेखन-कर्म मनुष्य के पास है— किसी जानवर या देवता या अतिमानव के पास नहीं—तब तक आज से और आज से आगे की ऐतिहासिक माग—समाज और समाज निर्माता मनुष्य की विवशताओ को सहन और उसका 'निकटतम अहसास' दिलाने के लिए यह शर्त एक अनिवार्य आवश्यकता बनी रहेगी। इसे अस्वीकार करना आधुनिक और सच्चे लेखन की दिशा छोडना होगा।

पहले का कहानीकार कहता था—'यह आदमी सुखी लग रहा है। इसे सुखी दिखाया जा सकता है। यह आदमी बीमार लग रहा है, इसे बीमार बनाया जा सकता है।' आज का कहानीकार कहता है—'यह आदमी सुखी है, यह आदमी बीमार है।'

उस जादू की छडी का आज हमारे लिए कोई अर्थ नहीं, जिससे किसी लडके का गला काट कर, खून दिखाकर जादूगर दर्शकों को चकित कर देता था। हम आँखें बाधने मे नही, आँखें खोलने मे विश्वास रखते हैं। वैसी जादूगरी आज कितनी उपहासास्पद लगती है।

सच्चा लेखक आज पहले की अपेक्षा और भी अधिक अभागा हो गया है, क्योंकि उसे उन लोगो के प्रति अपने लेखकीय कर्म मे (अनुभव की तीव्रता मे) उत्तरदायी होना पडता है, जिन्हे सुविधापूर्वक जीने की आदत पड गयी है, जो एक बिस्तर और रजाई के लिए दुनिया का बडे-से बडा गुनाह कर सकते हैं और उनके कानो पर अपराध की जूँ तक नही रेंगती, जो भाषा को तो तर्क-जाल मे उलझा सकते हैं लेकिन सम्पूर्ण जीवन की कठिन यन्त्रणाओ को न तो सह सकते हैं न यह बात उनकी समझ मे आती है, बल्कि जिनके लिए यह सब कुछ एक मजाक है। आज का रचनाकार ऐसे लोगो की क्रूरताओ से भी अपने को पृथक नही रख सकता। फिर इससे बडा नरक और क्या हो सकता है। जीवन की क्रूरताएँ झेलने की बात इस सन्दर्भ मे समझी जा सकती है।

नई कहानी की यह झेलन और महसूस करने की वास्तविकता—मनुष्य और उसकी सामाजिक परिवाध्यता, उसके आचरण, व्यवहार और संघर्ष को रचना के लिए प्रथम अनिवार्य वस्तु मानती है। इसीलिए 'वस्तु' के यथार्थ के परे आज लेखन का

कोई दर्शन नही हो सकता। न ही कहानी का। एक गहरे स्तर पर छोटी से छोटी घटना या सवत, व्यवहार या अनुशोचना—पूरे मानव समाज को पुनर्निर्मित करती चलती है। जब तक आज का कहानीकार इस पुनर्निर्मित की ऐतिहासिक आवश्यकता को नही समझेगा, वह अपने लेखन मे स्वय एक पार्टी नही हो सकता। इस तरह वह मूल रूप मे आधुनिक जीवन की अव्यवस्था का समझने से इन्कार करेगा और मूलत उसका सम्पूर्ण सृजन छद्मसृजन होगा, जिसका इतिहास और मानव-समाज की गतिशील धारा से प्रत्यक्ष और अन्तिम सम्बन्ध कभी भी स्थापित नही हो सकेगा।

वस्तु को महसूस करने की यही वास्तविकता नई कहानी को एक अनिवार्य शिल्प देती है। इस शिल्प के कई रूप हो सकते है। लेकिन उसमे कुछ बाते निश्चय ही नही होती—जैसे चमत्कारिक प्रदर्शन, वस्तु से विच्छिन्नता, अविश्वसनीयता और मनोवैज्ञानिक ऊहापोह। इसके विपरीत यह शिल्प प्रशान्त तीव्र और अन्तर स नि सृत होता है। आज छोटी से-छोटी घटना के भीतर एक 'क्लेसिकल टाइप ट्रैजेडी छिपी है। जीवन जितना ही छोटा हो गया है—जितना ही विवश और क्रूर—अपनी गरिमा मे उतना ही प्रशान्त और गहन। नई कहानी का असली शिल्प इसी नई क्लेसिक्ल ट्रैजेडी' का शिल्प है—होगा। 'वस्तु' के भीतर से उद्भूत, उसको प्रथम मान्यता देता हुआ और साथ ही उसके अन्धकार को उजागर करने का प्रयत्न करता हुआ।"

(अश्विनी कुमार) :

आज की कहानी यानी नई कहानी ने साहित्य मे इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है कि एक बारगी ही पाठको और आलोचको का ध्यान इसकी ओर गया है। आलोचक जहाँ नई कहानी को समझाने के लिए पूरी तरह उसकी पृष्ठ भूमि और उपलब्धियो या विशेषताओ को पर्त दर पर्त स्पष्ट करना चाहते हैं, वहाँ प्रबुद्ध पाठक भी उसे पूरी तरह समझने के लिए उत्सुक है।

पाठक निश्चय ही आज की कहानी मे ताजगी महसूस करता है, पुरानी कहानी के मुकाबले उसे आज की कहानी अपनी समस्याओ और उलझनो का सच्चा प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है। नई कहानी पुरानी कहानी की तरह हमारे लिए मनोरजन का साधन नही है, बल्कि हमारे जीवन के सत्यो को गम्भीरता से प्रस्तुत करने वाली है, वह हम पर समाधान नही लादती, हमे उपदेश नही देती हमारे परिवेश और हमको जस का तस प्रस्तुत कर देती है, अब यह हमारा

काम है कि हम स्वय पर और अब भी परिस्थितिया पर सोचें और जीवन को बेहतर बनाने के लिए मार्ग तलाशें।

छायावादी कविता म जो स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह परिलक्षित होता था, वही आज की कहानी मे है। नया कहानीकार जीवन की बारीकिया पर विचार करता है। आज वह घटना प्रधान या चरित्र प्रधान कहानिया लिखना पसद नही करता, वह कहानी के मध्यम से पसद करता है किसी जीवन मूल्य का उद्घाटन और इस उद्घाटन म वह बँधी बँधाई शैली से काम नही लेता है, यानी उसका शिल्प बदला है। हम यह स्वीकार करते हैं कि पुरानी कहानी की शिल्प की पृष्ठ भूमि रही है, लेकिन वह है पृष्ठ भूमि भर ही।

शिल्प के अतिरिक्त नए कहानीकार की दृष्टि म भी बदलाव आया है, वह स्थितिया, घटनाओ, समस्याओ तथा व्यक्तिया क प्रति वैसी पहल नही करता जैसा पुराने कहानीकार करते थे, वह अब कहानी म हृदय से उतना काम नही लेता जितना कि मस्तिष्क से लेता है। इसीलिए नई कहानी आज के बौद्धिक युग का प्रतिनिधित्व कर पाती है। भविष्य की विकसित कहानी क लिए हमें नई कहानी को एक सोपान मानना चाहिए, कहानी के इतिहास मे एक उपलब्धि।"

इन सार उद्धृत मता स एक बात बहुत साफ हो जाती है कि नई कहानी पर अलग अलग कोणो से गम्भीरता पूर्वक विचार हुआ है। नए पुराने लखका न साफ तौर पर अपनी अपनी बातें कहा हैं। व्यक्तिगत आक्षेपा और ममीहाई भरी तकरीरा (दोना ही लखक को कमजोर साबित करती हैं और कमजोर लखक की अपनी विप ताऐ हैं) को छोड कर नई कहानी पर अब तक की बहस काफी विचारोत्तेजक रही है ऐसा हम मान सकते हैं। मान हम यह भी सकते हैं कि इस बहस मे कहानी को वर्तमान कहानी से भिन्न आलोचना क क्षेत्र म वैचारिक स्तर पर एक नया सदभ मिला है। यह नया सदभ (यदि हम चाह ता) समूचे कथा साहित्य को समझने म हमे मदद दे सकता है और कथा साहित्य क पुनर्मूल्यांकन की अहमियत हमे महसूस कराता है। इतना और भी कि अब तक न अपनाई गई एक नई दिशा से हम कहानी की समीक्षा कर सकते हैं। हम चाहते हैं कि कहानी पर यह बहस हिन्दी कथा साहित्य का एक नया आयाम हो और कथा की मूल्यगत आगत सम्भावना को परत दर परत प्रस्तुत करने के लिए शक्तिशाली पृष्ठ भूमि बहरहाल।

नयी कहानी
सम्भावनाओ की खोज

रवीन्द्र कालिया

यह सच है कि किसी प्रामाणिक समीक्षा-पद्धति तथा किसी स्पष्ट विचार रेखा का अभाव ही कथा-समीक्षा की दरिद्रता का सबसे बडा कारण है, परन्तु यह उससे भी बहुत बडा तथ्य है कि कहानी क्या, जीवन की किसी भी जीवत प्रक्रिया को किसी भी परिधि के सकोच म रखना मुश्किल हो जाता है। यही कारण है कि कहानी की मुक्ति, समीक्षा के लिए बन्धन बन जाती है। इस मुक्ति-बन्धन का एहसास नई कहानी और उसकी समीक्षा के सन्दर्भ मे सहज ही हो जाता है। समीक्षा के किसी अनुकूल आधार को उन्विकसित कर पाना तो दर किनार, विश्व मे कहानी का स्वतन्त्र विधा के रूप में अध्ययन ही नही किया गया था। इधर फ्रेंक ओ कूनर नैंसी हेल एडविन मोचे,, लुम्बाक, मास्टिन राइट स्यामा' फाउलेन, थर्स्टन आदि ने इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण काय किया है।

सम्भ्रान्ति की इस स्थिति म कहानी का मूल्यांकन आलोचको की निजी रुचि-अरुचि के आधार पर होता रहा है। कहानी का मूल्यांकन कभी नैतिक अनैतिक, श्लील अश्लील, स्वस्थ अस्वस्थ अच्छी-बुरी यक्तिपरक समाजपरक आदि विभाजन खण्डो म रखकर किया गया, जो कहानी के बाह्य एव सतही धरातल का ही स्पश कर पाता है, कहानी की अन्तरात्मा और उसके वास्तविक अर्थ का सम्प्रेषण करने म असमर्थ रहता है, और कभी कहानी के मूल्यांकन क लिए रीतियुगीन निर्जीव फार्मूले पुन आविष्कृत किये गए। कहानी का 'नख से शिख तक दुरुस्त कहानी भी एक ऐसा ही फार्मूला है, जो कथा-समीक्षा क सन्दभ म कोई अर्थ नहीं रखता। सुगठित, मजी हुई, सुनियोजित दरिया हो सकती हैं, कहानियां नहीं। नख शिख से दुरुस्त नायिकाएं होती हैं, कहानियां नहीं।

यदि कहानी के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए, तो लगता है कि कहानी अपनी सफलता क चरम बिन्दु का स्पर्श करके कई बार निःशेष हुई है। यदि ओ हेनरी एक शिखर था तो मोपासा दूसरा चेखव तीसरा, फिर माम, हेमिंग्वे, फाकनर टॉमस मान, काफ्का इत्यादि कई अपनी अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं। ये शिखर कहानी के प्रति आस्था तो उत्पन्न करते हैं पथ प्रदर्शन नहीं। आज का नया कहानीकार

ऐसी जमीन का अन्वेषण कर रहा है, जो कविता न गीत से अपहृत की है, या अमूर्त कला ने यथार्थवादी कला से या सधे हाथों न पेंसिल के 'रफ स्केच' से। कला और विज्ञान नई कहानी म रूपायित हो रहे हैं। निर्मल वर्मा ने यदि कहानी क लिए संगीत की जमीन तोडी, तो मोहन राकेश ने नाटक की, रमेश बक्षी न चित्रकला की। रेणु, मार्कण्डेय, शैलेश की कहानियों मे यदि लोक कलाएं मूर्त्त हो जाती हैं तो रामकुमार, विमल, प्रयाग की कहानियों में यांत्रिक और प्राविधिक सभ्यता का अभिशाप देखा जा सकता है। अमरकांत और शेखर जोशी की कहानियां यथार्थ के मानवीय और जटिलतर रूप की गवाह हैं।

इस विरोधाभास का कारण ढूढने मे मैं प्राय असमर्थ रहा हूँ कि जिन कथाकारो में कहानी का कहानीपन मे किस्सागोई से, वास्तविक सीमाओ से मुक्त करने का आभास मिलता है, वे अपनी पहुँच मे छायावादी होते चले गए हैं, तथा उन्होंने उस उर्वरा भूमि का भी परित्याग किया है, जिससे कहानी ने अब तक खुराक ग्रहण की थी, जिसकी वजह से प्रतिष्ठा अर्जित की थी। ऐसे कथाकार या तो घावो में कुनमुनाते रहे हैं या अपने अत्यंत निजी दुखो, कष्टो, व्यथा, सनकों और कभी कभी अपनी बीमारियों को 'ग्लोरीफाई' करके एक मायावी अथवा हीरोइक या रोमैंटिक जगत् की रचना म व्यस्त। इस वर्ग के कथाकार पाठकों को करुणार्द्र करने या उनकी सहानुभूति अर्जित करने म अपनी कुशलता का परिचय भी देते हैं।

अपनी धारणा भी व्यक्त करूं, तो कहूंगा कि झूठ, फरेब धोखादेही प्रवचना, हिपोक्रेसी, डिप्लामेसी, दुहरे व्यक्तित्व भी मुझ परेशान नहीं करते और न ही इन पर व्यग करना मुझे अभीष्ट है, क्योकि मैं समझता हू कि ये यान्त्रिक और प्राविधिक सभ्यता की समस्त यन्त्रणा और विसंगतियों का शव अपने कंधे पर ढो रहे हैं। इनका अत्यन्त आत्मीयता से उद्घाटन करना मुझे अधिक प्रिय है। पाठकों का विश्वासभाजन बनने की अपेक्षा उनमे शामिल हो जाने में अधिक आकर्षण है। फाउलर की यह बात मुझे पसंद आती है कि,

द कन्टम्पुरेरी आडियेंस फारगिव्स द लायर इन आर्ट, ईविन एडूमेटस हिम।

इट नोज ही इज लायग, बट इट नीडस हिज लाइज। इफ हैपीनेस इज द फकल्टी आफ बीइंग वैल डिसीव्ड, मोस्ट मैन कैन नो लागर एचीव इट आन दियर ओन। दे मस्ट बी लाइड टु एवेरी डे, एण्ड दे आर विलिंग टु पे वैल फार द सर्विस।,

यह इतिहास की सहज परिणति है कि जब तक किसी बात का विचार और

चिंतन, ज्ञान और विज्ञान की ठोस भूमि नहीं मिलगी, वह मनोरंजन और क्षणिक प्रभाव की नियति से ऊपर नहीं उठ पाएगी। गुरु गम्भीर आत्मान्वेषण और सत्यान्वेषण के स्वप्न इस ठोस आधार से वंचित होकर निस्तेज हो जाते हैं और छोटी छोटी खुशियों और छोटे छोटे गमों की काल परिधि से ऊपर नहीं उठ पाते। व्यापक मानवीय संवेदना का भार वहन करने को हमारे दैनंदिन जीवन के बीसियों प्रसंग कहानी के लिए निरन्तर अनुपयोगी होते जा रहे हैं। बसें वक्त पर नहीं मिलती, तो इसका सीधा ताल्लुक शिकायत की किताब से है जो कण्डक्टर के पास हर वक्त रहती है। पड़ोस के बच्चे शरीर हैं या मुझे किसी लड़की से प्रेम हो गया है, तो इसका आज की कहानी से क्या ताल्लुक ? बाजार में चीनी की किल्लत है या कालिज में एडमिशन की, तो इसका महत्व सम्पादक के नाम या मंत्री के नाम पत्र से अधिक नहीं है, क्योंकि इन कठिनाइयों के निवारण का कार्य पत्रकारिता अधिक कुशलता से सम्पन्न कर सकती है। पारिवारिक झगड़ा, गली मुहल्ले तथा म्युनिसिपलिटी की समस्याओं, भाभी-ननद के झगड़ों, काली-कुँवारी लड़कियों के हृदयविदारक चित्रण, या सामाजिक जीवन की ऐसी समस्याएँ आज स्थानीय राजनीति ईवनिंग न्यूज से अधिक महत्व नहीं रखतीं। महत्व है उस मानवीय संवेदना का, उस वृहत्तर काल प्रवाह का जो इनके स्पर्श से जब जब और जहाँ जहाँ खण्डित, आन्दोलित और विचलित होता है। कहानी जब तक पत्रकारिता से ऊपर उठ कर किसी वृहत्तर मानवीय संवेदन का वहन करने की सामर्थ्य नहीं रखती तब तक वह 'भाव कहानी' है नाना द्वारा सुनी कहानी के समान तर। ऐसी ही छटपटाहट का आभास रिल्के की कुछ प्रारम्भिक कविताओं में मिलता है, जैसे एक बार उसने कहा था

> ओह, दैट आई एम वैनिश्ड
>
> फ्राम आल टु थ
>
> मियर फूल ! मियर पाइट !

रिल्के का सारा संघर्ष कविता को विचार या चिंतन की भूमि प्रदान करना था। इस प्रक्रिया में वह कवि से चिंतक नहीं हो गया बल्कि आज भी कवि रूप में उसकी प्रतिष्ठा है। यह उसकी सफलता थी। उसका संकल्प आज के कथाकार का भी संकल्प है जो रियाज मार कर निर्धारित परिभाषाओं और रेखाओं में रंग भर कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने में असमर्थ पाता है

> आइ बिलीव इन एवरीथिंग दैट हैज नेवर बीन सेड बिफोर
>
> माई मोस्ट डेडीकेटेड फीलिंग्स माई डिजायर टु सेट फ्री

एण्ड वन डे देयर शैल कम टु मी स्पोन्टेनियसली
दैट हिच नोबडी हैज एवर डेयर्ड टु विल।

रिल्क की सफलता के नीचे ऐसे बीसियों प्रश्न दब जाते हैं जो हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में बार-बार उठाए जाते हैं।

जैसे कमिटमैंट का प्रश्न। मेरा कहने का अभिप्राय है कि कमिटमैंट का सीधा सम्बन्ध लेखक के चिन्तन पक्ष से है। चिन्तन और लेखन में विरोध की स्थिति केवल 'मात्र कहानीकारों' के यहां मिल सकती है।

अक्सर यह भी सुनने में आ रहा है कि साहित्य जीवन से दूर हटता जा रहा है। वस्तुतः यह स्थिति वहीं उत्पन्न होती है जहाँ जीवन का प्रवाह इतिहास का दायित्वपूर्ण और विद्युतगामी प्रक्रिया से तालमेल नहीं बिठा पाता, जहां वह मानव की उस व्यापक उपलब्धि के समानान्तर नहीं आ पाता, जो उसने जीवन के अन्य अनेक क्षेत्रों में अर्जित की होती है। यही कारण है कि प्रकटतः साहित्य जनसाधारण के जीवन के चित्रण से दूर हटता हुआ दिखाई देता है परन्तु मूलतः वह एक नव धरातल से संवेदना का स्पर्श करता है, जिसकी छायामात्र का आभास जनसाधारण को हो सकता है। आधुनिक साहित्य उस वर्ग का उपजीव्य हो रहा है जो एक ही लीक पर चलने वाले जनसाधारण का संचालन करता है। जो समय का पूर्व ज्ञान रखने में सक्षम है। जो जीवन की मूढ़ आवृत्तियों से पशु नहीं हो जाता, बल्कि जीवन की स्थूल वस्तु चेतना तथा संवेदना धारा में एक नया अध्याय जोड़ता है। जो मानसिक रूप में ज्ञान, विज्ञान तथा दर्शन द्वारा उत्पन्न 'क्राइसिस' से सम्बद्ध है, जो वैज्ञानिक प्रगति तथा प्राविधिक विशिष्टीकरण से सामाजिक संरचना में निरन्तर अकेला होता जा रहा है। कहानी की स्थूल वस्तु चेतना तथा आन्तरिक प्रौढ़ता एवं विन्यास का सृजन करने वाले ये अनुभवजन्य परिवर्तन कहानी के शिल्प तथा शैली पक्ष को भी आन्दोलित कर रहे हैं। कला-सृजन के पुराने अभ्यास निस्तेज हो रहे हैं। वह युग समाप्तप्राय है जब कोई 'ओल्ड मास्टर' दसियों वर्ष एक ही कलाकृति में व्यस्त रहता था। पहले उसकी विचक्षणता या कार्यक्षमता अभ्यास सिद्ध होती थी, अब अनुभव सिद्ध। जो कलाकार पहले पैंसिल स्केच' फिर वाटरकलर' और अन्त में आयल कलर' का उपयोग करता था आज अपने सधे हाथों की कुछ ही रेखाओं द्वारा अभिप्रेत सिद्धि में समर्थ है। यही कारण है कि आज कला के सभी क्षेत्रों में विस्तारप्रियता के स्थान पर मित कथन के सार्थक प्रयोगों की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है। उसकी यह मित कथन प्रणाली अल्प कथन मात्र अथवा उसकी कार्य भीरुता का प्रमाण

नही है बल्कि समय तथा 'स्पेस' पर अधिकार प्राप्त करने की वैज्ञानिक पहुँच का परिचय बोधक है।

मेरी दृष्टि में कहानी का जो सहज रूप कभी-कभी प्रतिभासित होता है, वह मलबे के अव्यवस्थित ढेर की तरह है, जिस पर घास उग आई है, डिब्बे में क्रमहीन बिखरे आलपिनों की तरह या लान पर बेतरतीब उगी घास की तरह (मेरा कदापि यह कहने का अभिप्राय नहीं कि सहृदय कथाकार घास काटते रहे हैं)। मैं अव्यवस्था या विशृंखलता का समर्थक नहीं हूँ, परन्तु कहानी के बाह्य अनुशासन की अपेक्षा उस आन्तरिक हारमनी का अधिक प्रशंसक हूँ, जो कहानी के हर रेशे में गन्ध की तरह मिली रहती है और जो बिखराव में भी भावस्थितियों में संघटनात्मक एकता स्थापित करती है।

आधुनिक मनुष्य का जो स्वरूप मेरे मस्तिष्क में उभरता है, वह लघुमानव, महामानव, बोहीमियन, यू बोहीमियन यानी बीटनिक्स, आउटसाइडर अस्तित्ववादी आदि का मिला-जुला और कहीं कहीं परस्पर विरोधी संस्करण है। परन्तु अक्सर यह भी महसूस होता है कि मन में कुछ ऐसा है, जो कई बार इस रूप से सामंजस्य नहीं बिठा पाता, बल्कि कई बार इस रूप के प्रति जुगुप्सा का गहरा भाव भी उत्पन्न कर देता है। शायद ये इतिहास सम्मत संस्कार हैं, जिनका एहसास तब तब हुआ है जब *जब हमने अपने को जिन्दगी की मजबूत गिरफ्त में पाया है शायद जिन्दगी के ये दबाव* ही हमें अधिक सतर्क अधिक सिनसियर, और अधिक संवेदनशील कर जमीन पर फेंक देते हैं। हम जिन्दगी के इन दबावों और तज्जनित विसंगतियों एवं यन्त्रणाओं से सदैव कतराते हैं। लेकिन यह उतना ही सच है कि इन दबावों के तहत ही अच्छा लिखा जा सकता है, या यों कहूँ कि लिखने की पहली शर्त ये दबाव ही हैं। ये दबाव भौतिक भी हैं और ज्ञान विज्ञान तथा दर्शनादि के विस्तार से उत्पन्न भी, जो पूर्व और पश्चिम की व्यापक, कला चेतना और अस्तित्व दर्शन की सार्वभौमिक बौद्धिक दृष्टि के प्रति जागरूक करते हैं।

कहानी की चर्चा को 'नई कहानी', 'पुरानी कहानी', चार पीढ़ियाँ, भाषा टैक्सचर, आयाम, उपलब्धि, ग्राम, कस्बा, नगर, महानगर के स्तर से ऊपर उठाकर कहानी के पाठकों को एक नये रचनात्मक वैचारिक और अपेक्षित स्तर पर ले जाने *का प्रयत्न है। आज नई कहानी की चर्चा वे लोग कर रहे हैं, जो अचानक गहरी नींद* में उठे हैं, और सम्पूर्ण नये साहित्य को अजनबी निगाहों से देखते हुए बौखला रहे हैं। जिन गलियों से पाठक गुजर आए हैं, वे दुबारा उन्हें उसी तरह हाँक रहे हैं। पिछले तीन चार वर्षों से हिन्दी कहानी के आलोचकों ने पाठकों की जो दुर्गति की है, जिस

ृद तक वार किया है, उसका एकमात्र उपचार ऐसी ही विचारोत्तेजक चर्चाएँ हैं।

'नई कहानी' और 'नई कविता' कहाँ तक समानान्तर भावभूमियों से उपजी, इसकी चर्चा बकलम खुद में राकेशजी ने भी की थी, मेरा खयाल है, इस पर और धिक चर्चा अपेक्षित है।

प्रेम के संदर्भ में कुछ कहानियों का तटस्थ विश्लेषण डॉ० अवस्थी और हुषा ंग ने ही किया है (यद्यपि डा० अवस्थी का अध्यापक अधिक जागरूक रहा है)। ोकान्त ने प्रेम के बदल हुए स्वरूप की व्याख्या तो बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की ', परन्तु कहानियों की चर्चा में लगमगा गए हैं। कहीं कहीं उन्होंने अपने सिद्धान्तों ो गलत चौखट में फिट करके अपनी बात को पुष्ट करना चाहा है। उनके अपने क्त य के संदर्भ में यदि रेणु की 'रसप्रिया' को देखा जाए तो 'रसप्रिया' को महान् ्रेम कथा नहीं कहा जा सकता, जैसा कि उन्होंने अपने लेख के अंत में सहसा निष्कर्ष रूप लिख दिया है। प्रबोध कुमार को 'ब्रावेद' कहानी को प्रेम कथाओं के संदर्भ र 'महत्वपूर्ण' कहानी नहीं कहा जा सकता। (कहानी अन्य कारणों से महत्वपूर्ण है प्रौर न ही वह प्रेम कहानी है।) उदाहरणार्थ उनका एक और वक्तव्य द्रष्टव्य है नेमल वर्मा की कहानियों को पढ़ते हुए दहशत होती है, और पहली बार यह अनुभव होता है कि प्रेम एक दहशत से भरा हुआ अनुभव है। सारे पात्र निष्क्रिय हैं इस लिए निष्क्रिय हैं कि हर कुछ करने की अंतिम परिणति निरर्थकता है। इन कहानियों के तमाम स्त्री पुरुष निरर्थकता के अनुभव और पूर्वानुभव में जी रहे हैं।

मैं निर्मल वर्मा का बहुत पुराना पाठक रहा हूँ। एक जमाना था, निर्मल वर्मा की कहानियों का अवसाद दिमाग़ पर छाया रहता था लेकिन यूनिवर्सिटी से निकलते ही महसूस किया कि इस अवसाद, इस चिपचिपाहट और इस लिजलिजी अनुभूति का सीधा और स्पष्ट सम्बन्ध शरत् से है। निर्मल वर्मा की कहानियाँ दहशत नहीं देतीं बल्कि लिजलिजी अनुभूति देती हैं। लतिका जिस तरह अतीत से चिपकी रहती है बरस के फूलों की याद से दबी रहती है ठीक उसी मनःस्थिति में पाठक है। निर्मल वर्मा के अधिकांश पात्र निष्क्रिय भी इसलिए नहीं हैं कि कुछ करने की अन्तिम परिणति निरर्थकता है, बल्कि इसलिए निष्क्रिय हैं कि वह प्रेम की या जीवन की प्रगतियों को सहज रूप से स्वीकार नहीं करते बल्कि छायावादोचित कैशोरीय और भावुकता से आक्रान्त हैं। भावुकता को जग ने उन्हें निष्क्रिय कर दिया है, उनकी क्रिया को डस लिया है। उनकी कहानियों के तमाम स्त्री-पुरुष निरर्थकता के अनुभव और पूर्वानुभव में भी नहीं जीते, बल्कि प्रेम और भावुकता ने उन्हें, सुहावने और सीमित दायरे के अनुभव खण्डों में रिरियाते और कुलबुलाते हैं।

इसके बावजूद इस बात को फिर भी नहीं भूला जा सकता कि इन दायरों से निकलने की कसमसाहट भी उनकी कहानियों में दिखाई देती है। मैं यह भी सोचता हूं कि निर्मल वर्मा की कहानियों का खूबी यह नहीं है कि उन्हें पढ़ते हुए दहशत होती है (खूबी इसलिए नहीं मानता कि मैं समझता हूं पाठक को दहशतग्रस्त करने का अधिकार लेखक को नहीं है), बल्कि खूबी यह है कि भावुकता के गहरे से निकलने का एक प्रयास भी उनकी कहानियों में लक्षित होता है, जिसकी ओर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया है। उदाहरणार्थ डा० मुकर्जी (परिंदे) को प्रस्तुत किया जा सकता है। डाक्टर कहीं भी जीवन से प्रेम का उन्मूलन करने के पक्ष में नहीं है लेकिन चिपचिपाहट का भी विरोधी है। वह लतिका से कहता है, "किसी चीज को न जानना यदि गलत है तो जान बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह उससे चिपके रहना—यह भी गलत है। बरमा से आते हुए जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी, मुझे अपना जिन्दगी बेकार सी लगी थी। आज इस बात को अर्सा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं, उम्मीद है कि काफी अर्सा और जिऊंगा। जिन्दगी काफी दिलचस्प लगती है और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था—आज भी करता हूं।"

डाक्टर की उदासीनता या असम्पृक्तता को न तो निष्क्रियता ही कहा जा सकता है और न ही नादानी। वह डॉक्टर के जीवन का प्रौढ़ अनुभव है। वह जीवन में विडम्बना और अप्रत्याशा का अस्तित्व का धर्म मानकर चलता है, यही कारण है कि वह अतीत को लेकर परेशान नहीं होता और बहुत सहज रूप से वर्तमान को भी स्वीकार कर लेता है। वह कभी-कभी विनोद में कहा करता है, 'लगता है मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती है। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम प्रसंग कम्बख्त इस नाक के कारण अधूरे रह गए।"

मेरा खयाल है, निर्मल के सही रूप को डाक्टर के माध्यम से ही जाना जा सकता है। उनके विकास की रेखा स्पष्ट है। देखना यह है कि निर्मल अपने लिए कौनसा मार्ग चुनते हैं।

प्रेम-कथाओं के सन्दर्भ में डॉ० अवस्थी ने श्रीकान्त वर्मा की भी कुछ कहानियों की चर्चा की है। वस्तुतः श्रीकान्त के पात्र प्रेम करना नहीं जानते, प्रेम की अनुभूति से अपरिचित हैं। वे प्रेम नहीं करते, प्रेम से पलायन करते हैं। उनकी कहानियों को प्रेम कहानियों की सज्ञा भी नहीं दी जा सकती। वे आधुनिक जीवन की जटिलताओं और प्रक्रिया के सन्दर्भ में स्त्री-पुरुषों के विकृत सम्बन्धों (प्रेम नहीं) का

अवस्था करता है। श्रीकान्त ने एक स्थान पर लिखा है प्रेम अनिश्चित है और
म से पैदा होने वाला सम्बन्ध भी। सबसे बड़ा संकट यही है इस संकट को भी
ानव-परिणति के रूप मे झेलना ही नहा होगा, स्वीकार करना होगा।

इस संकट को अपनी कहानियों म श्रीकान्त स्वय ही नही झेल पाए हैं, आत्म-
यत्रणा स्वीकार करना तो दरकिनार। उनके पात्र इस संकट को सहज रूप से स्वी
कार नही करते, बल्कि हाहाकार मचाते हैं, आत्म यत्रणा, आत्म-पीडन से गुजरकर
घावे की तरह आत्मरति मे लीन हो जाते हैं। वह चूं कि देवदास की तरह धनी नहा,
इसलिए गम गलत करनेके लिए शराब एफार्ड नहीं कर पाते (देवदास अभ्यागी ने लिए
नहा, आत्मपीडन के लिए ही शराब पीता था) दफ्तर से छुट्टी लेकर दाढी बढा लेते हैं
और स्वय को कमरे म ब द करके थप्पड मारते है और घोर यत्रणा के दर्दनाक मार्ग
से गुजरते हुए पाठको से सहानुभूति की भीख मागते हैं। ये कुठाएँ रूप बदल-बदलकर
हमारे सामने आती रही हैं कभी शराब में घुल देवदास के रूप मे, कभी आत्मरतिलीन
नन्दकिशोर के रूप मे, कभी गलियारे म खडी घोर अन्धेरे मे मोडोज के भरने के
मुतफे स्वर सुन रही ललिका के रूप म। आज ये छोटे-छोटे ताजमहल, ये छोटी छोटी
यत्रणाए बहुत हल्की लगती हैं और आधुनिक युग मे इनकी अपेक्षा नहीं की जा
सकती और न ही इसे 'नए' विशेषण से युक्त किया जा सकता है। इस युग म छोटी
बातो बातो मे उद्विग्न और परेशान पात्रो के लिए सहानुभूति या सवदना उत्पन्न नही
हो सकती, केवल हसी आ सकती है।

इससे आगे एक स्थान पर श्रीका त लिखते हैं 'सारी कोशिश यत्रणा से पला
यन कर एक आसान सुख प्राप्त करने की है।' श्रीका त के अपने पात्र और निर्मल के
पात्र (डाक्टर का चरित्र अपवाद-स्वरूप है) इस आत्म यत्रणा और आत्मरति मे इतनी
बुरी तरह पग चुके हैं कि इस यत्रणा से निकलना नहा चाहते बल्कि इसे ओढकर
अपार सुख का अनुभव करते हैं। डा० अवस्थी के स्वर म वे सिमटे, कुण्ठित और नपु
सक हैं।

इसका उत्तर भी श्रीका त ने दिया है 'कहानी मे सेक्स का अर्थ अनिवार्य
नहीं कि सहवास हो हा। सहवास के बावजूद कहानी सेक्स-विहीन हो सकती है।'
और 'स्त्री की उपस्थिति से सारे वातावरण मे उष्णता आ जाती है।' स्त्री की उप
स्थिति से ही वातावरण की उष्णता पाने वाला व्यक्ति वाकई सेक्स को अनिवार्य नहीं
समझ सकता। अवस्थीजी के शब्दों म (ऐसा व्यक्ति) पु सत्व के क्षरण म मानता है।

इसका एक मात्र कारण यही लगता है कि वह नारी का खुले स्पष्ट और सहज
रूप म नहीं झेल पाए हैं।

एक स्थान पर जहाँ श्रीकान्त सैक्स के स दर्भ म किसी प्रकार की नतिकता अनतिकता, इलीलता अश्लीलता को कोई परिणति नही स्वीकार करते, जनेन्द्र कुमार की कहानियो म सेक्स के प्रति एक अस्वस्थ दृष्टिकोण देखते है।

अन्त मे मैं यह कहना चाहूगा कि कहानी कभी न्यूरोटिक पात्रो का अजायब घर नही रही है। आज से बोमिया वष पूव यूरोप मे ऐसे पात्रो की रचना हुई थी नये अजायबघर सजाने क चक्कर म आज किसी भी समृद्ध भाषा क लेखक नहा है। यह कहना सवथा गलत होगा कि प्रेम मे एक न्यूरासिस है। आधुनिक प्रेम कथाओ क प्रमुख पात्रो क सम्बन्ध मे डा० डविड स्टीवेन्सन का प्रस्तुत कथन विचारणीय है

'They do not linger with used up friendship or used up lov^ They do not hang on to their comitments When circumstances become too uncomfortable, they clutch boldly at the next propiti ous moment in time in the hopes of new excitements in the end less stretch of a consnatly recurring present

समकालीन कथा साहित्य मुझे स तोष देता है, क्योकि उसे पढ कर मैंने कभी नही सोचा कि मुझे लिखना छोड देना चाहिए। समय क साथ साथ स तोष की मात्रा (जिसे मैं पूर्वाग्रह भी कह सकता हूँ) बढ़ती जा रही है। बढ़ती नही जा रही है तो उसम सन्तुलन अवश्य कायम है। सन्तुलन इस तरह कि यूनिवर्सिटी क दिनो कृ णा सोबती और निर्मल वर्मा की जिन कहानियो का हम सामूहिक पाठ किया करते थे, आज उनम कुछ नहा टटाल पाता या कुछ ऐसा जो मुझे आज भी प्रिय हो। उन कहानियो की जगह उन्हा लेखको की दूसरी कहानियो 'मित्रो मरजानी' और 'अन्तर' 'पराये शहर म, 'लन्दन की एक रात' आदि न ले ली है। कुछ वष पूव जो कहानियाँ मुझे बहुत प्रिय थी, आज प्रिय नहा हैं। इसको विपरीत करके देखूँ तो यह भी सच है कि बहुत सी अप्रिय कहानियाँ दुबारा पढ़न पर प्रिय हो गयी हैं जस 'नये बादल' 'भूखे और नगे लाग,' दोपहर का भोजन आदि। मगर ऐसी कहानियो की सख्या अधिक है, जिन्ह दुबारा तिबारा पढ़ने पर भी राय नहा बदलती। ऐसी कहानियाँ ही मेरे निकट पुरानी कहानियाँ हैं, जो समय की गति का वहन नहा कर पाती। ऐसी कहानियाँ कहानियाँ ही रहती हैं, यानी कि पुरानी कहानियाँ, चाहे वे दूधनाथ, परेश, विमल, ज्ञानरजन, प्रयाग, या प्रबोध ने ही क्यो न लिखी हो।

एक पाठक की दृष्टि मे कहूँ तो नयी कहानी ने निश्चय ही कथा-साहित्य को

न दिया है आगे के कथाकारो के लिए नयी जमीन तैयार की है। नया कहानी को र्ला य निर्विवाद है। यह दूसरी बात है कि यह उपलब्धि किमीको सन्ताप देती है ग्रोर कोइ उसे देख कर चिढ जाता है।

परन्तु यह तथ्य है कि मुझे कहानी के उस स्वीकृत रूप से घोर वितृष्णा है जिस अर्थ मे वह आज कहानी के नाम से जानी जाती है। (इस तथ्य को भोगने का गौरव भी शायद मेरी पीढी को ही प्राप्त है)। कहानी मे कहानीपन मुझे अपने म बहुत ही नगण्य और हास्यास्पद लगता है, जो असख्य आवृत्तियो से निरन्तर नि शेष होता जा रही इस विधा की सम्भावना के प्रति अविश्वास का और अधिक गहरा रा है। आज प्रश्न शायद उप एकान्विति को भग करने का है जो कहानीकारो के भावात्मक स्तर, उनके मनरिज्म, उनके फारमूला और उनकी व्यावसायिक दृष्टि के रूप मे निरन्तर विकसित हो रही है। ये सामाएँ ही भावी कहानी की सम्भावनाएँ है, अगले दशक की पीढ़ी, कहानी की शाभायात्रा की पाथेय।

विश्व कथा के साथ रखकर हिन्दी की कहानी का मूल्याकन कदाचित् वे लोग अधिक कुशलता मे कर सकते हैं, जो हिन्दी कहानी को विश्व कथा से असम्पृक्त करके देखते हैं, मेरे निकट हिन्दी कहानी विश्व कथा का एक अविभाज्य अग है। कहानी के विकास के लिए जिस उर्वरा भूमि की आवश्यकता होती है, वह भारत मे उपन्न र है। उपन्यास साहित्य मे अग्रणी बरतानिया, कहानी मे शायद इसीलिए पिछड गया कि वहा की रूढिया और अनुशासन ने कहानी को भी बाँधना चाहा था। भारत मे स्थिति अधिक अनुकूल है और फलस्वरूप साहित्य की अपेक्षाकृत नयी विधाओ का बल मिला है। जिन जटिल सवेदनाओ और द्वन्दो का सम्प्रेषण करने मे कविता कभी कभी असमर्थ हो जाती है, कहानी मे वह सहज ही रूपायित हो रहा है।

आज की कहानी और प्रतिबद्धता का प्रश्न

ज्ञान रंजन

आज कहानी-रचना बहुत कठिन हो गई है और अपने दयनीय, अभावपूर्ण और व्यंग्यात्मक जीवन से असम्पृक्त होकर कहानी निर्मित करना अब हमारे लिए सम्भव नहीं रहा। सुविधाओं अथवा 'इस्टेब्लिशमेंट' को स्वीकार करके ईमानदार और सच्चा लेखन लम्बे समय तक कर सकना काफी कठिन है, इसलिए सुविधाओं के अभाव में और 'इस्टेब्लिशमेंट' के प्रति विद्रोही भाव के साथ अपने कम लिखने का मेरे मन में किंचित् भी विचलन नहीं है।

पुराने अधिकांश लेखकों को साहित्य से यथेष्ट प्रतिदान मिलता रहा है— विभिन्न रूपों में। कतिपय श्रेष्ठ लेखक सुविधाओं के शिकार हुए हैं और उनका रचनात्मक लेखन कुण्ठित हो आया है। ईमानदार नया लेखक यह मानकर चलता है कि उसे साहित्य से कुछ मिलना नहीं है। साहित्य उसके दर्द की आवृत्ति पुनरावृत्ति है या निर्माण के लिए दी जाती हुई आहुति। अभी तक हमारे देश में स्वतन्त्रता का संघर्ष करने वाले अपने को 'पालिटिकल सफरर' घोषित करके अपने धर्म को भी भुनाते रहे हैं। साहित्य में भी कमोबेश यह हुआ है। नए साहित्यकार के लिए साहित्य की समस्त रचनात्मक प्रक्रिया जीवन का मृत्योन्मुख भोग है और रचना का पुरस्कार हमें महज क्षय में मिलता है। फिर भी इसका एक आत्मसुख है, जीवन के प्रति अपने दाय के निर्वाह का सुख।

नई कहानी, इस प्रकार केवल एक सामान्य शब्द नहीं है। उसका जो रूढ़ अर्थ है, वह हमारे लिए बेमतलब है। नई कहानी केवल उस सर्वथा भिन्न जीवन और जीवन-दृष्टि की तस्वीर है, जिसे अपूर्व कहा जा सकता है और जो हमारे लम्बे इतिहास में पहली बार निर्मित हो रही है। हम कहानी की शुरुआत भी यहीं से मान सकते हैं और नई' शब्द की सार्थकता के एक अभूतपूर्व नवीन मार्ग का प्रारम्भ भी।

आज हमारा वर्तमान बीते हुए अत्याचारों के मार्ग में है। हमारी असफल तकलीफें पुराने जमाने की हजारों असफलता का दुष्परिणाम हैं। अध्यात्मवाद ने हमें पिछली शताब्दियों में जड़ बनाया है। आज नई कहानी जीवन की भौतिक और वैज्ञानिक आकांक्षाओं की एक स्वस्थ परम्परा प्रारम्भ करने को आकुल है। वह एक

विराट सघर्ष का एक खण्ड चित्र बन गई है। जो लोग नई कहानी अथवा जीवन क वर्तमान को नही समझना चाहते, उनक लिए हमारे पास कोई इलाज नही है और न उनक जो अपनी समझ म असहाय हैं अथवा जो पिछड़ेपन पर अडे हुए हैं, उनसे काल निपटगा। हमारे मन म महज उनके शीघ्र शान्तिपूर्ण अन्त की प्रार्थना है, क्योकि आन वाली पीढ़िया उनक प्रति अधिक क्रूर होगी।

नई कहानी किसी एक बिन्दु पर नही स्थित है। वह जीवन और कला क अनिवाय तकाजा और स्वप्नो से सम्बद्ध है और उनसे ही जीवित है, इसलिए गतिशील है। य स्वप्न किसी की निजी महत्वाकाक्षा नही हो सकत। आगे की अनेकानक पीढ़िया इन स्वप्नो को पूर्णता की ओर ले जाएँगी। इसका यह भी तात्पय है कि हम कभी भी सम्पूर्ण स तुष्ट और आश्वस्त नही हैं और सामान्य ज्ञान बताता है कि आत्मचेतनाओ को कभी भी सचेतका की जरूरत नही रहती।

नई कहानी ने पशु जीवन को अपने कधा पर उठाया है। वह अपने रचना माग से पलायन करके केवल तटस्थ नही करना चाहती, वरन वह जीवन चक्र की आदि से अन्त होने वाली यात्रा म एक स्वस्थ चेतना की तरह उपस्थित है। मैं समझता हूँ कि नए कहानीकारो ने कहानी की इस आधुनिक स्थिति का तीक्ष्णता से महसूस करना शुरू कर दिया है।

एक तरफ कहानी जीवन से आत्मीयता स्थापित करने की ओर प्रवृत्त है और दूसरी ओर कहानी म घटिया, कलाहीन सुधारवादियो ने गुलगपाडा मचाया है। वे यह समझते हैं कि अभी तक आन्दोलना से ही लोग प्रतिष्ठित हो रहे हैं, अच्छी कहानियाँ लिख कर नहीं। यह आश्चर्यजनक नही है कि वे अपने बूढे चेहरा पर (नई पीढ़ी भी कम बूढ़ी नही है) प्रसाधन पोतकर दावा कर रह हैं कि हम भी नये हैं, या महज हम ही युवा हैं। वे यह जानते हैं कि उनके पैर क नीच से धरती खिसक चुकी है जीवन और कला की क्षमताएँ छुट चुकी हैं लेकिन इस सचाई को स्वीकार करना काफी कठिन है, इसलिए वे अधिक चिल्लाकर नई कहानी को मूर्छित घोषित करते हैं। इतिहास की धारा स कटे हुए लोगा का 'स्ट्रेटजी' का शिलाजीत कब तक जीवित रखेगा, ईश्वर जाने!

प्रतिबद्धता।

आज हमारी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और वैयक्तिक परिस्थितिया बड़ी हास्यास्पद हैं। हम कहानी लिखत हैं और वह स्वयमेव व्यग्यात्मक हो जाती है। हम सम्पूर्णता के साथ प्रेम करते हैं और वह हास्यास्पद अन्त म बिखर जाता

है। अखबारों में छपे मंत्रियों के भाषणों को पढ़ते पढ़ते हमारे होठों से एक करुण हँसी फूट पड़ती है—हमारे परिवार के सदस्य हमारे लिए चुनौतियाँ बन गए हैं शिक्षा संस्थाओं में हम यन्त्र की तरह मनहूस मृत संस्कारों वाली पुस्तकों को चाट रहे हैं और अपमानित भूख पेट में तड़ियों में दर्द लिये करवटें बदलते रहते हैं। हमारे चारों तरफ एक बीभत्स संक्रान्ति है। पिछले कुछ दशकों के कहानीकारों में अधिकांश का रचना काल बहुत संक्षिप्त रहा है और जीवन संक्रान्ति के हावी हो जाने का प्रमाणित करता है।

कहानी न तो 'विण्डो ड्रेसिंग' है और न राजदूतों द्वारा विदेशों में देश का सम्मान बचाने वाला झूठा वक्तव्य, इसलिए कहानी में स्वस्थ जिन्दगी का ही चित्रण आज की परिस्थितियों में असम्भव है। चूँकि जिन्दगी वैसी नहीं रही है। फिर हाल असत्य यथार्थ में हमारा जीवन है। नया कहानीकार अपनी निराशा से ऊपर आकर इसे स्वीकार करता है। किसी भी प्रतिबद्धता के लिए यह स्वीकारोक्ति आवश्यक है। अगर हम सूर्यास्त को नहीं स्वीकार कर सकते, तो सूर्योदय भी हमारे लिए व्यर्थ रहेगा। हमें पराजय की परिस्थितियाँ और समस्त भ्रष्ट मुखाकृतियों को पहचानना होगा, जो बीमार हैं और जिन पर छद्म का गहरा मेकअप है।

लेखक की प्रतिबद्धता किसी घोषणापत्र की तरह नहीं हो सकती। उसकी रचना ही उसको कमिट कराती है। मैं समझता हूँ कि आज का नया कहानीकार तेजी से प्रतिबद्ध होता जा रहा है, जो प्रतिबद्ध नहीं है, उसकी घुसपैठ का खोटा सिक्का साहित्य में अब आगे चलने से रहा।

अक्सर यह भय बना रहता है कि 'डिकेडेन्स' या पराभव को स्वीकार कर लेने से नव निर्माण की दिशा अवरुद्ध होती है। यह भय सर्वथा निर्मूल है। पराभव को स्वीकार करना निर्माण के प्रति रचनाकार की वास्तविक तलफलाहट का चिह्न है। इस पराभव से संघर्ष करने से बढ़कर कोई प्रतिबद्धता और समसामाजिकता नहीं हो सकती।

कहानी के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करनी है। वस्तुतः कहानी के नाम पर हमें सूचनाएँ जोड़नी हैं और प्रदर्शन करना है। पिछले दिनों कहानी सम्बन्ध में होने वाले तमाम सतही चर्चाओं और साथ साथ हिन्दी की प्राय हर पत्रिका द्वारा हेर फेर कहानी विशेषांकों की घोषणाओं के बाद, कहानीकारों के लिए 'स्ट्रेटजी' में व रचनात्मक दायित्वों के निर्वाह की सम्भावनाएँ काफी हद तक टूटी हैं।

अगले वर्षों में हमारा जीवन क्या होगा, नहीं कहा जा सकता। एक अनिश्च

ग्रामद जीवन प्रतीक्षित है। फिर लिखना छूट सकता है, बहुधा का छूट सकता है। अथवा लम्बा व्यवधान ही हो सकता है। मुझे नही लगता कि अपने चतुर्दिक विषम वर्तमान को अनुभव करने वाला, भोगने वाला, ईमानदार लेखक अपने भावी लेखन के सम्बन्ध मे आज कोई निश्चित घोषणा कर सकता है।

ऐसी स्थितियां भी आ सकती हैं जब कहानियां स्थगित करना इसलिए जरूरी हो जाये कि उससे अधिक आवश्यक रचनाकार के लिए दूसरी जिम्मेदारियां को उठाना हो। इन जिम्मेदारियों का विशेष रूप मे राजनीतिक सन्दर्भों मे कल्पित किया जा सकता है।

चैतन्य भारतीय कहानी-लेखक और कवि और सभी के लिए आज भावी योजनाएँ बना कर लेखन कर सकना बहुत मुश्किल होता जा रहा है। आश्चर्य नहीं कि भूख और अपमान की बढती तीव्रता और उससे उत्पन्न निराशा मे वह कल तक असम्भव भी हो जाये।

' आज आश्चर्य होता है, कैसे एक-एक बैठक में मैंने कहानियाँ लिखी हैं और यम बाधकर महीनों रोज उपन्यास को आगे बढाया है। अब तो दोपहर एक बजे बाद कुछ भी लिखना सम्भव नही लगता। वह एक बजे तक बैठना भी महीने मे न चार पांच दिन हो पाता है जब बैठे बिना निस्तार न हो।" राजेन्द्र यादव

वस्तुत स्वतन्त्रता के बाद के अनेक कथाकारों को जो नियम से नियो लेखन करते रहे हैं, आज ईमानदारी से अपने रचनात्मक लेखन की मृत्यु घोषणा करनी चाहिए, (या कम से कम चुप्पी मार लेनी चाहिए)। वैसे मुझे उम्मीद नहीं कि ऐसा कुछ ईमान दिखा सकेंगे, सिवाय अपने डिक्स' के।

स्पष्ट है, हम अनिश्चित ही लिख सकते हैं। योजनाबद्ध नहीं। बहुत संक्षिप्त अवस्थाओं के साथ। हम हमारे काल ने इतनी ही सुविधा दी है। इस स्थिति का मैं पायी नहीं मान रहा हूं। मात्र सामयिक। नयी पीढी के लेखकों का रचनाकाल पिछली पीढी के लेखकों की अपेक्षा निश्चित रूप से अल्पकालिक होगा। वह अधिक ईमानदार और श्रेष्ठ भूमिकाओं वाला हो सकेगा, इसमे सन्देह नहीं।

केवल कहानी, कहानी के बारे मे उसे शेष (जो महत्वपूर्ण है) से असम्पृक्त करके जिस तरह से सोचा जा रहा है वह बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। कहानी राजनीति युद्ध और कविता सभी मे जीवन के मूलभूत प्रश्न अविभाजित हैं।

कहानी में हमारे पिछले और वर्तमान झगड़े बड़े घटिया रहे हैं शहरी और ग्राम जीवन की कहानियाँ, आंचलिक कहानियों का तूफान, साहित्यिक, सचेतन और

सक्रिय कहानी। कहानी का उद्धार (?) करने वाले कहानी को केवल कहानी नहीं रहने देना चाहते। वे नये टुकडे बना रहे हैं, नये नाम खोज रहे हैं, और अपने स्वर्ण हस्ताक्षरों वाले इतिहास के लिए बेचैन हैं।

मुझे आज की कहानी बहुत प्रारम्भिक लगकर भी क्षुब्ध इसलिए नहीं करती क्योंकि यह तय है कि फिलहाल एक कुतरन वाले धैर्य क बीच से हम गुजरना है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि हर जगह हम डेड स्लो' हैं। क्षिप्र होन के लिए हमारे अ दर उत्तेजनाएँ भी हैं, हम बेसहारा और अजनबीपन भी अनुभव करते हैं लेकिन कहीं एक खटखटाता हुआ दायित्व भी है जिसके लिए हम आत्महत्याएँ नहीं कर सकते।

फिर भी समसामयिक कहानी काफी अप्रिय स्थितियों म खिंच गया है—खींचा गया है। सचेतन और साहित्यिक कहानी—कुछ नयी बातें हैं। सचेतन के सम्बन्ध म मैं यहाँ अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। सचेतन कहानी का रोल' शायद वैसा ही है जैसा कि 'रोमन्स' की नगर सभ्यता म कभी बुरे लोगों को ठीक करने के लिए करेक्शन हाउसज' का हुआ करता था। हम इन्हें कैसे बरदाश्त कर सकते हैं ? अगर मेरी उत्तेजना क्षण भर के लिए क्षमा कर दी जाये तो मैं कहना चाहूँगा कि ऐसी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध मे हमे फासिस्ट तरीके से विचार करना चाहिए।

यह माना जा सकता है कि हमारी कहानी कम साहित्यिक है या बिलकुल नहीं-के बराबर है, फिर भी 'साहित्यिक कहानी' कहकर एक नया नामकरण करना और उसे आ दोलित करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। वस्तुत यह एक भ्रान्ति और निरर्थकता है जिसने, लगता है, कला-क्षमताओं के आगे घुटने टेक दिये हैं।

इस प्रकार के सभी प्रयत्नों के पीछे स्वाद की प्रवृत्ति होती है। श्रीकान्त वर्मा की कहानी दूसरे पर' (झाडी पृ० ३४) का मैं' सोचता है इससे बडी मिडियाक्रिटी और क्या हो सकती है कि आदमी काफी भी स्वाद लेकर पिये। यह जिन्दगी को भी स्वाद बनाकर जाता है। घिन !'

स्वाद और व्यवसाय—ये दोनों बडे खतरे हैं। साहित्यिक कहानी भी एक नये जायके-की पसन्दगी का प्रारम्भ है। उसमें लोग 'एनजायड' अनुभव करते हैं। शायद यह एक इनवस्टमण्ट है, जिसके रिटर्न की उम्मीदें भी होंगी। इस रास्ते पर अनुकरण करने वालों के नये नाम पैदा होंगे और आकर्षक तत्वों के प्रति सच्चे महत्वाकांक्षी लोग सक्रिय सचेतन साहित्यिक और नयी' और विविध नाम-करणों वाली कहानियाँ लिखते रहेंगे।

'नई कहानी' और आलोचक

गोपाल कृष्ण कौल

आज सबका म अघोषित प्रतियोगिता का भाव है। पर' की अस्वीकृति और स्व' की स्वीकृति के द्वन्द्व के रूप म भी प्रतियोगिता का यह भाव कई प्रकार से अभिव्यक्त होता रहता है। प्रतियोगिता का प्रच्छन्न भाव लेखक को रचना प्रक्रिया म जहा कुछ नया करने की सतकता पैदा करता है वहा उसमे प्रतिष्ठा की प्रतिद्वन्दिता भी पदा करता है और वह इतना स्वार्थी हो जाता है कि उसे जिस 'पर' म 'स्व' की कुछ भी झलक नहा दिखाई देती उसका तिरस्कार करन के लिए नए नए साहित्यिक नारे गढ़ता है। परिणामतः समीक्षा भी पूर्वाग्रह ग्रस्त हो जाती है—चाहे वह विरोध म हो या पक्ष में, क्योकि जो समीक्षा न विरोध म हो और न पक्ष म उसको असंगत मान कर उपेक्षा-योग्य बताने का प्रयत्न किया जाता है।

कहानी क सन्दर्भ म भी आज यही स्थिति है। हिन्दी के नये कुछ कहानी लेखकों ने अपने स्व' की प्रतिष्ठा के लिए ऐसी सगतियो का खोजना शुरू किया है, जो उनको एकान्त इतना नया साबित कर सकें जिससे वे अपने साहित्यिक अस्तित्व को कहानी क कलागत विकास से बिल्कुल स्वतन्त्र और अतीत से विच्छिन्न जाहिर कर सकें। इस प्रवृत्ति को सबसे बडा सहारा 'नई कहानी' शब्द से मिला। यह शब्द अच्छा है यदि यह कहानी की नई उपलब्धियो का वास्तविक परिचायक हो सकता किन्तु इसका अतिशय प्रयोग 'नई कहानियां' पत्रिका क नाम का मायक बनाने क लिए किया गया। यह गनीमत है कि एक पत्रिका ही क सम्पादकों और सौजन्य-सहयोगियो ने इस शब्द को उछाला, यदि कहीं 'माया' और 'मनोहर कहानियां' क सम्पादक माया' और 'मनोहर कहानी' का आन्दोलन छेड़ देते तो कहानीकारो को अपना रास्ता खोजने म बडी कठिनाई होती। 'नई कहानियां' क तीन प्रत्यक्ष सम्पादक सामने आए हैं, कुछ प्रच्छन्न भी रहे होगे। सबने नई कहानी क प्रतिपादन म कुछ न कुछ लिखा और लिखवाया है लकिन नई कहानी' की स्वतन्त्र उपलब्धियो और उनके मूल्यनिर्धारण म एकमत सफलता उनको नहीं मिली। इसके लिए उनक मतभेद और विरोधाभास स्वय प्रमाण हैं।

विरोधाभास और मतभेद मानव स्वभाव है, इसलिए आपत्तिजनक नहीं है किन्तु किसी साहित्यिक आन्दोलन का आधार केवल मानव-स्वभाव की कमजोरी नहीं

बन सकती। कहानी लेखकों में मतभेद पहले भी थे आज भी हैं कुछ साल पहले ही एक ने कहा कि कहानी वह है जो ग्रामीण वातावरण को उजागर कर सके क्योंकि भारतीय आत्मा गांवों में बसती है। दूसरे ने कहा—नहीं, नगरों की संस्कृति में ही आधुनिकता निवास करती है, इसलिए कहानी वह है जो नगरों की आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है। तीसरे ने कहा—गांव और नगर तो देश में बहुत हैं, असली चीज है—आंचलिकता। कहानी वह है जो आंचलिक हो। चौथे से नहीं रहा गया बोला—कहानी वह, जो व्यक्ति की सामाजिकता के सूक्ष्म संदर्भों को झलकाती है। पांचवें ने कहा—यह नहीं, बल्कि समाज से व्यक्ति के संबंधों की सूक्ष्मता को स्पष्ट करने वाली ही कहानी है।

छठे बोले—आज की कहानी वह है जो पुराने ढांचे से आज़ाद है, वह मात्र एक केन्द्रीय 'आइडिया' को क्लाइमेक्स तक पहुंचाने के लिए नहीं लिखी जाती।

सातवें ने कहा—आज की कहानी, कहानी के नए शिल्प की कहानी है, नई अभिव्यक्ति की कहानी है।

बीच में आ टपककर एक आलोचक ने कहा—आप सब ठीक कहते हैं किंतु आपको समझने के लिए पाठकों के स्तर और पाठकों की रुचि में परिवर्तन होना चाहिए। यह पाठकों की कमी है, जो वे आपके स्तर तक नहीं पहुंच पाते।

इस प्रकार जब कहानीकार स्वयं ही अपने आलोचक बन गए, तब आलोचक या तो चुप हो गए या इन लेखकों की सहमति के अनुसार ही अपनी मति प्रगट कर सके। और यदि किसी ने स्वतन्त्र रूप से आलोचक धर्म को निभाने की कोशिश की तो उसे इन लेखकों ने अपने 'स्व' पर आक्रमण समझ कर सुरक्षा के युद्धस्तरीय प्रयत्न शुरू कर दिए। कुछ तो समीक्षा को प्रेतबाधा समझ कर मृत्युभय से चीखने लगे। ये सारी बातें बड़ी दिलचस्प और लेखकों की जाग्रत हलचल की निशानी हैं और इसलिए महत्वपूर्ण भी हैं क्योंकि ये लेखक अच्छी कहानियां भी लिखते हैं।

मुश्किल तो तब दरपेश होती है जब साहित्यकार अपने कृतित्व की वास्तविक उपलब्धियों पर ध्यान न देकर एक नया आन्दोलन छेड़ने का प्रयत्न करता है जिसका उसके कृतित्व से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। यह लेखकों के कृति धर्म के हित में है कि वे अपनी उपलब्धियों के मूल्यांकन का काम आलोचकों पर ही छोड़ दें। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। लेखक का 'स्व' उसका कृतित्व होता है, लेखक का मूल्य भी उसका कृतित्व होता है और आलोचना 'पर धर्म' जिसको अपना कर वह सिर्फ भयावह स्थिति पैदा करता है। कृतित्व की उपलब्धियों का मूल्यांकन करने की स्वाधीनता आलोचक को देनी चाहिए, लेखक स्वयं अपने कृतित्व के प्रति समीक्षक के नाते तटस्थ

नही रह सकता। बहुत से नये कृतित्व का उचित मूल्यांकन इसीलिए नही हो पाता है और साहित्य नई उपलब्धियो के मूल्यांकन से वंचित रह जाता है। कृतिकार जब अपने कृतित्व का स्वयं मूल्यांकन शुरू कर देता है तब न तो वह पूरी तरह से कृतिकार होता है और न पूरी तरह आलोचक हो, उसका अपने कृतित्व के प्रति प्रच्छन्न मोह हर समय सक्रिय रहता है। परिणामत प्रतिष्ठाजन्य कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याए खडी हो जाती हैं। नये और पुराने की सीमा रेखाए इतना संकीर्णता से खीचा जाती हैं कि हद तक दूसरे से भिडने तक पहुच जाती है और नयेपन एव पुरानेपन का केवल उम्र के आधार पर पीढियो के संघर्ष के रूपमे पेश किया जाता है जो उस कुत्सित समाजशास्त्रीयता का ही एक नमूना है जिसने एक समय प्रगतिशील साहित्य के मूल्यो को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया था और आज आधुनिकता के मूल्यो को भ्रष्ट करने का प्रयत्न कर रही है। कभी कभी कुत्सित समाजशास्त्रीयता के कारण कृतिकार अवसरवादी मनोवृत्ति का शिकार हो जाता है और जिन नये मूल्यो की वह बातें करता है उनके प्रति स्वयं ईमानदार नही रह पाता।

यदि इरादे साहित्येतर न हो तो संभवत हर ईमानदार कृतिकार अपने कृतित्व में जीवन के नये यथार्थ को, नये कला स्तरो पर अभिव्यक्त करने में सहज रूप से ज्यादा व्यस्त रहेगा। उसे अपने कृतित्व का स्वयं मूल्यांकनकार बनने का अवकाश ही नही हो सकता।

नए कहानीकारो के कहानी लेखन की उपलब्धियो का मूल्यांकन आलोचको का करना ही चाहिए। वे न तो नए रचनाकारो के चारण बनें और न ही उनके विरोधी। प्रथम द समीक्षा के प्रति केवल रचनाकार का सहिष्णु बनने का प्रश्न नही है, बल्कि आलोचक समीक्षाओ म छिपी हुई उस दिशा और दृष्टि को भी देखना चाहिए जो नई उपलब्धियो का मूल्यांकन करने पर मजबूर हो जाती हैं। कहानी के नवमूल्यांकन मे एक बाधा आलोचक की वह-मनोवृत्ति भी है जो उनको नव रचनाकारो की जी हुजूरी करने पर इसलिए बाध्य करती है ताकि उनको नव रचनाकार सिर्फ व्यक्तिगत पसंदगी के आधार पर नया आलोचक कहने लगें। ऐसी मनोवृत्ति साहित्य म जाति बिरादरी वाद की संकीर्णता पैदा करती है। जिससे एक दूसरे को ठीक समझना मुश्किल हो जाता है। या नए आलोचको के प्रभाव का नारा लगाया जाता है या फिर लेखक और पाठक के बीच से आलोचक को सदा के लिए हटाने की वकालत की जाती है।

परिणामत नए और पुराने लेखक लेखक और आलोचक एव आलोचक और पाठक के बीच विग्रह का ऐसा प्रच्छन्न वातावरण बन जाता है जिसमे साहित्य की

नई उपलब्धियो की गहराई तक पहु चने का किसी को अवकाश नही रहता। अगर अव काश रहता है तो सिर्फ चिटी हुई प्रतिक्रियाओ के माध्यम से एक दूसरे को अप्रतिष्ठित करने का। इससे आधुनिक कथा साहित्य की नवीन उपलब्धियो की पहिचान से वचित पाठक की नजर म हर कहानी का मूल्य मात्र मनोरजन बनकर रह जाता है।

ऐसी स्थिति म 'नई कविता' की नकल में सिफ 'नई कहानी' के नामकरण से कहानी की नई गरिमा नही आकी जा सकती। 'नई कविता' के पीछे प्रयाग और प्रगति की समन्वयात्मक शक्ति के आधुनिक कला मूल्यो और नए जीवन सदर्भो क नये यथाथ का चिन्तनशील ऐतिहासिक आधार है किन्तु 'नई कहानी' सभी अभी आधार नहा खोज पाई है। यदि इसके आधार को खोजना है तो नव लेखन की साहित्यिक उपलब्धियो के मूल्याकन स ही खोजा जा सकता है। इसके लिए नव कथाकारो और आलोचको क बीच सहानुभूति पूर्ण समझ के साथ साथ आलोचक को अभिव्यक्ति की स्वाधीनता लेखको की ओर स होना आवश्यक है।

आज की हिन्दी कहानी

डॉ० रामदरश मिश्र

कुछ दिन पूर्व कुछ कहानीकारों की ओर से यह वितंडावाद शुरू किया गया था कि आज की कहानी यानी नयी कहानी नयी कविता से अधिक सक्षम विधा है आज के बोध को चित्रित करने के लिए या कि आधुनिक भाव बोध को स्वर देने में नयी कविता नयी कहानी से पिछड़ी हुई रचना है। यह एक तूफान था समाप्त हो गया इस प्रश्न के कृत्रिम विभाजन रचना या विधा की सृजन धर्मिता के प्रति न्याय करने के लिए नहीं बल्कि कुछ लेखकों का मिथ्या गौरव स्थापित करने के लिए होते हैं। मैं तो मानता हूं कि आज का कहानीकार आज के कवि के समान ही जीवन को उसकी संश्लिष्टता और जटिलता में पकड़ पाने और आकार देने के लिए आकुल है। वह यथार्थ जीवन का कलाकार होना चाहता है। वह मिथ्या आदर्शों और नैतिकताओं में विश्वास करना छोड़ चुका है क्योंकि वह उसके महत्त्वपूर्ण परिणामों से अवगत हो गया है। ऐसा भी नहीं है कि आज का कहानीकार सुन्दर जीवन या उच्च कोटि के मानव मूल्यों को नहीं चाहता, वह चाहता है परन्तु वह यथार्थ जीवन के आधार पर प्रतिष्ठित मानव-मूल्यों या सुन्दर जीवन की खोज में है। यदि वह नहीं मिल पाता तो वह सुन्दर ताशगृह नहीं तैयार करना चाहता जो एक हलकी सी आंच से ही पिघल जाय और अपने बीच निवास करने वालों को भस्म कर बैठे।

कल्पना से सुन्दर जीवन या मूल्य की प्रतिष्ठा करने से क्या हो जायगा? वह तो कोई भी कर सकता है और सामान्य व्यक्ति भी तो जानता है कि सच बोलना चाहिए, परोपकार करना चाहिए वगैरह-वगैरह। लेकिन कलाकार का दायित्व बड़ा होता है और दुहरा होता है—जीवन के प्रति और कला के प्रति। वह जीवन का सपाट सुन्दर स्वर में अंकित करके न तो जीवन को शक्ति दे सकता है न कला को। अच्छे कलाकार को जीवन के भीतर प्रविष्ट होकर अन्तर्ग्रथित सत्य-सूत्रों को पकड़ना होता है उसकी जटिलताओं का उद्घाटित करना होता है मनुष्य की सारी अच्छाइयों बुराइयों को भोगने वाले उसके मन की बनावट को ठीक से समझना होता है। मानव मन ऐसी कोई बेजान चीज तो नहीं कि उस पर आपने अच्छा बुरा लाद दिया और वह स्वीकार कर बैठा। आज का कहानीकार सत्य को उसकी आंतरिकता और जटिलता में पाने के लिए प्रयत्नशील है।

नई उपलब्धियो की गहराई तक पहुचने का किसी को प्रवकाश नही रहता। अगर प्रव काश रहता है तो सिर्फ चिन्ही हुई प्रतिक्रियाप्रा के माध्यम से एक दूसरे को प्रप्रतिष्ठित करने का। इससे प्राधुनिक कथा साहित्य की नवीन उपलब्धिया की पहिचान से वचित पाठक की नजर म हर कहानी का मूल्य मात्र मनोरजन बनकर रह जाता है।

ऐसी स्थिति मे 'नई कविता' की नकल में सिफ 'नई कहानी' के नामकरण से कहानी की नई गरिमा नही प्राका जा मकती। नई कविता' के पीछे प्रयोग और प्रगति की समन्वयात्मक शक्ति के प्राधुनिक कला मूल्या और नए जीवन सदर्भो क नये ययाथ का चिन्तनशील ऐतिहासिक प्राधार है किन्तु 'नई कहानी' सना प्रभी आधार नहा खाज पाई है। यदि इसका प्राधार को खोजना है तो नव सृजन की साहित्यिक उपलब्धिया क मूल्याकन स हा खोजा जा सकता है। इसके लिए नव कथाकारो और प्रालोचका के बीच सहानुभूति पूर्ण समझ के साथ साथ प्रालोचक को प्रभिव्यक्ति की स्वाधीनता लेखका की प्रार से होना प्रावश्यक है।

आज की हिन्दी कहानी

डा० रामदरश मिश्र

कुछ दिन पूर्व कुछ कहानीकारों की ओर से यह विवाद शुरू किया [illegible] था कि आज की कहानी यानी नयी कहानी नयी कविता से अधिक [illegible] है आज के बोध को चित्रित करने के लिए या कि आधुनिक भाव बोध को [illegible] नयी कविता नयी कहानी से पिछड़ी हुई रचना है। यह एक तूफान सा [illegible] गया इस प्रश्न के कृत्रिम विभाजन रचना या विधा की सृजन धर्मिता के [illegible] करने के लिए नहीं बल्कि कुछ लेखकों का मिथ्या गौरव स्थापित करने के लिए [illegible] है। मैं तो मानता हूँ कि आज का कहानीकार आज के कवि के समान ही [illegible] उसकी संश्लिष्टता और जटिलता में पकड़ पाने और आकार देने के लिए [illegible]। वह यथार्थ जीवन का कलाकार होना चाहता है। वह मिथ्या आदर्शों और [illegible] में विश्वास करना छोड़ चुका है क्योंकि वह उसके सतत् शून्य परिणामों से [illegible] हो गया है। ऐसा भी नहीं है कि आज का कहानीकार सुन्दर जीवन या उच्च [illegible] के मानव मूल्यों को नहीं चाहता, वह चाहता है परन्तु वह यथार्थ जीवन के [illegible] पर प्रतिष्ठित मानव-मूल्यों या सुन्दर जीवन की खोज में है। यदि वह [illegible] तो वह सुन्दर ताशगृह नहीं तैयार करना चाहता जो एक हलकी सी [illegible] पिघल जाय और अपने बीच निवास करने वालों को भस्म कर बैठे।

कल्पना से सुन्दर जीवन या मूल्य की प्रतिष्ठा करने से क्या [illegible] जायगा? वह तो कोई भी कर सकता है और सामान्य व्यक्ति भी [illegible] है कि सच बोलना चाहिए परोपकार करना चाहिए वगैरह-वगैरह। [illegible] कलाकार का दायित्व बड़ा होता है और दुहरा होता है—[illegible] और कला के प्रति। वह जीवन को यथार्थ सुन्दर रूप में अंकित करके न [illegible] को शक्ति दे सकता है न कला को। अच्छे कलाकार को जीवन के [illegible] होकर अन्तर्व्याप्त सत्य-सूत्रों को पकड़ना होता है उसकी जटिलताओं को [illegible] करना होता है मनुष्य की सारी अच्छाइयों बुराइयों को जानना [illegible] मन की बनावट को ठीक से समझना होता है। मानव मन ऐसी कोई [illegible] नहीं कि उस पर आपने अच्छा बुरा लाद दिया और वह स्वीकार कर बैठा। [illegible] कहानीकार सत्य को उसकी वास्तविकता और जटिलता में पाने के लिए प्रयत्नशील [illegible]

जो लोग प्रेमचन्द के पहले की या प्रेमचन्द की या प्रेमचन्दोत्तर प्रेमचन्द परम्परा की कहानियों की स्वच्छ सरल शैली और स्वच्छ कथ्य के कायल हैं वे जरूर आज कहानियों को सहपाठ में कुछ कठिनाई अनुभव करते हैं किन्तु आज का कहानीकार आज के पाठकों के लिए लिखता है जो स्वयं सजक के साथ जीवन की जटिलताओं को समझने और सुलझाने में सचेष्ट हैं, जो कला के गहन दायित्व को समझते हैं जो समझते हैं कि कला जीवन के बुनियादी सत्यों को उद्घाटित कर जीवन को सही ढंग से समझनेवाली दृष्टि का विकास करती है। वह केवल आनन्द नहीं देती, वरन् हमारी जीवन चेतना, हमारे जीवन बोध को जाग्रत करती है, आधुनिक बनाती है, मनोविश्लेषण ने हमारे मन के अनेक अज्ञात सत्यों का विश्लेषण कर उनसे हमें परिचित कराया है। मन के ये उलझे हुए अनक सत्य हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के निर्माण में कितने सहायक होते हैं इसे आज के कलाकारों ने पहचाना है।

या बाहर भी जो हमारे सामाजिक सम्बन्ध हैं वे बहुत कुछ बने बिगड़े हैं। पुराने मूल्य टूटे हैं, पुराने सम्बन्ध उजड़े हैं, पुराने ढंग से रहने सहने और जीने की पद्धतियों में बहुत फेरफार हुए हैं, नये मूल्य बनने की प्रक्रिया में हैं जीवन पुराने आधारों को तोड़ चुका है या यों कहिए कि आधार टूट चुके हैं क्योंकि उन्हें नयी परिस्थितियों से टूटना था और नये आधार अभी बन नहीं पाये हैं, बन रहे हैं किन्तु बार बार बाढ़ का पानी उन्हें गिरा दे रहा है। विश्व का जीवन शांति और हिंसा, सह अस्तित्व और संदेहमय की मिली जुली घाटियों से गुजर रहा है। शांति और सह अस्तित्व का थोड़ा सा प्रकाश उभरता है तो हिंसा और मद का अन्धकार उसे निगल लेता है। ऐसे युग में कलाकार एक वृहत्तर पैमाने पर जीवन की अखण्ड और अशेष ज्योति की बात कैसे कहेगा? और यह अन्धकार कब नहीं था? भिन्न भिन्न युगों में वह अन्धकार रहा ही होगा किन्तु आदर्शवादी कलाकारों ने अखण्ड ज्योति के इस व्यापक अन्धकार के ऊपर लाद दिया। लादने से क्या होता है? अन्धकार ने ज्योति के लबादे को जब चाहा झटक कर फेंक दिया। इसलिए आज का कलाकार अन्धकार को चीर कर उसके भीतर से जो ज्योति निकलती है, उसीको सत्य मानता है वही स्थायी है, वही हमारी आशा और विश्वास का केन्द्र है। अतः यह कहना कि आज का कहानीकार मूलतः मानव मूल्यों में आस्था नहीं रखता, सत्य नहीं है वह जीवन के खोखलेपन की रिक्तता को दिखाता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह ऐसा ही जीवन पसंद करता है बल्कि वह ऐसे जीवन की निस्सारता को खोलकर खोखले जीवन मूल्यों पर आघात करता है और संकेत करता है कि उसे किसी अन्य मूल्य की तलाश है जो अधिक भीतरी है, गहरा है। और सच पूछिए तो आज का कहानीकार किसी मूल में

निष्कर्ष पर पहुँचने की अपेक्षा आज के बाहरी भीतरी जीवन के तनाव, द्वंद्व, ट्रेजिक स्थितयो के पास पाठक को पहुँचा कर उसे कुछ गहरे महसूस करने को उद्यत करता है। चाहे मोहन राकेश का 'मलबे का मालिक' हो, चाहे कमलेश्वर का 'राजा निरबंसिया' या राजेन्द्र यादव का जहां लक्ष्मी कैद है' हो, चाहे अमरकांत की 'डिप्टी कलक्टरी' या 'जाक' हो, चाहे शिवप्रसाद सिंह का 'बिन्दा महाराज' हो, चाहे अन्य कहानीकारो की अन्य कहानियां सब मे जीवन का तनाव और ट्रेजिक स्थितियों का उद्घाटन मिलेगा।

जीवन की सहजता स्वयं एक मूल्य है। हमारी सभ्यता ने हमारे ऊपर इतने कृत्रिम आवरण डाल रखे है कि हम मनुष्य की तरह जिन्दगी न जीकर यंत्र की तरह जीते है। हमारे पाप पुण्य दोनो बहुत बनावटी हो गये हैं। किसी चीज को सही समझ कर भी हम उसे सही नही कह पाते। धीरे धीरे बनावटी जीवन मूल्यो और पद्धतियो को हम ओढ बैठे हैं। आज का कहानीकार कभी कभी सहज संवेदन, सहज मस्ती की ओर हमे ले जाकर कृत्रिम जीवन मूल्यो से मुक्ति का अहसास कराता है। कभी इन सहज संवेदनाओ और मस्ती के ऊपर बैठी हुई पर्त की पर्त विवशताओ द्वंद्व चेतनाओ का विश्लेषण कर मूल संवेदना की झलक दिखाता है। कभी यंत्र युग को संक्रांत, सभ्यता का उद्घाटन करता है। कुल मिला कर आज की कहानी आज के जीवन की बडी ही तीखी यथार्थ-चेतना है। हर कहानीकार अपने अपने अनुभव के अनुसार शहर, कस्बा, गांव, पिछड़े हुए वन्य या पहाडी अंचल के जीवन के सत्यों को और टूटते बनते जीवन मूल्यो का रूपायन कर रहा है। कहा जा सकता है कि आज का कहानीकार अपने प्रति और जीवन के प्रति बेहद ईमानदार है। वह अनुभवहीन क्षेत्र दार्शनिक मुद्रा धारण कर प्रविष्ट नही होता, वह अनुभव क्षेत्र की तीखी चेतना को कभी तल्खी के साथ कभी मृदुता के साथ कभी सहजता से, कभी अनेक संकेत सूत्रों से निर्दिष्ट करना चाहता है। अपने अपने ढंग से रेणु शिव प्रसादसिंह, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी, लक्ष्मीनारायण लाल आदि गांव की जिंदगी के संक्रांत बोधों को उजागर कर रहे हैं तो निर्मल वर्मा आज के व्यक्ति की घुटन, परायेपन और ट्रेजेडी का अति आधुनिक परिवेश मे, कही कही पाश्चात्य परिवेश मे चित्रित करते हैं जैसे लन्दनकी एक रात' 'पराये शहर मे'। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर अपने अपने ढंग से मुख्यतया शहर और कस्बे के जीवन को सामाजिक संदर्भ मे प्रस्तुत कर उसके वैषम्य, रिक्तता और संत्रास को चित्रित करते हैं। मन्नू भंडारी उषा प्रियम्वदा, शिवानी आदि महिला कहानीकार आज के नारी जीवन के भीतर उफनती कसमसाती नयी चेतना को उसकी पीडा के संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं। भरती, भीष्म साहनी और उमाकांत न

कर नये अर्थों में जोड़ती है या पुरानी कथा के साथ उसी प्रकार की नयी कथा समानान्तर से चलकर आज का मानव चेतना को जटिलता या उसकी विवशता को व्यक्त करती है। भारती की 'सावित्री न० दो' ठाकुर प्रसादसिंह की 'आदमी एक खुला किताब' और कमलेश्वर का 'राजा निरबसिया' जैसी कहानियां नयी कहानी के इस शिल्प का अच्छा नमूना पेश करती हैं। इसी संदर्भ में वे कहानियां भी ली जा सकती हैं जिनमें लोक कथाओं के परिवेश में या उनके रूप में आधुनिक जीवन सत्यों को उभारा गया है। हरिशंकर परसाई की अनेक व्यंग्य कथाएं (भेड़े और भेड़िये जैसे उनके दिन फिरे आदि) इस शैली की उत्कृष्ट कहानियां हैं। आज की कहानियां कथ्य की क्षेत्रगत विशेषताओं के अनुसार भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करती हैं। गांव और शहर की कहानी का सामान्य शिक्षित या अशिक्षित किसान–मजदूर वर्ग और शिक्षित मध्यम वर्ग की कहानी का स्वरूप एक सा कैसे होगा? गांव के जीवनमें भी यांत्रिकता का दौर शुरू हुआ है, वहां भी गंदी राजनीति और विषाक्त सत्ता बोध की स्पर्धा चल रही है। फिर भी वहां के लोग शहरी पात्र की अपेक्षा सहज गति से चलने वाले होते हैं, वे कुंठाओं और अन्तर्द्वन्द्वों के शिकार उतने नहीं होते जितने कि शहरी पात्र। इसके अलावा गांवों में अभी भी आत्मीयता शेष है यद्यपि वह बड़ी तेजी से खंडित हो रही है। इसलिए वहां के पात्रों का स्वरूप अंकित करने और उनका विश्लेषण करने का ढंग वही नहीं होगा जो पढ़े लिखे शहरी पात्रों के अंकन और विश्लेषण का हो सकता है। शहर के जीवन का आर्थिक आधार है यंत्र और गांव के जीवन का आधार खेत। शहर के पात्रों का सम्बन्ध मूलतः अपने आफिस और घर से होता है लेकिन देहाती पात्रों का सम्बन्ध चाहे अनचाहे अपने पूरे गांव, प्रकृति और पूरे रीति रिवाजों तथा जीवन मान्यताओं से होता है। आंचलिकता पर आधारित कहानी में प्रकृति और परिवेश उतनी सूक्ष्मता से नहीं आ सकते जितना कि शहरी कहानियों में। देहाती क्षेत्रों में प्रकृति जीवन का अनिवार्य अंग है, उसका सौंदर्य हमारे जीवन-व्यापारों के साथ गहराई से जुड़ा होता है। शहरी क्षेत्रों में प्रकृति पालतू होती है उनके साथ हमारे जीवन-व्यापारों का गहरा या अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता। अतः शहरी कहानियों में प्रकृति बहुत ही अल्प मात्रा में आती है और वह भी बिम्ब बनकर। शहरी जीवन में विमान, रेडियो प्याले प्लेट, सोफासेट संगीत के साज सामान, आफिस टेबुल, कुर्सी, काफी हाउस टाइम पीस आदि आते हैं परिवेश बनकर भी और बिम्ब बनकर भी। निर्मल वर्मा की कहानियां तथा रेणु की कहानियों के शहरी और देहाती परिवेश और बिम्बों से यह बात समझी जा सकती है।

मैं इसे अच्छा मानता हूं कि आज के कहानीकार अपने अपने अनुभव के अनुसार

जीवन-क्षेत्रों का चुन रहे हैं। अमुक प्रकार की कहानी श्रेष्ठ है, अमुक प्रकार की हीन, इस प्रकार का फैसला देने का मैं पक्षपाती नहीं। व्यापक गहन अनुभव, गहरी दृष्टि और नवीन शिल्प सो दर्द पर जो भी कहानी आधारित होगी वह उच्चकोटि की होगी ओढ़ी हुई आधुनिकता यांत्रिक बौद्धिकता और निरुद्देश्य नया शिल्प भगिमा से कहानी श्रेष्ठ नहीं बनती। उसके भीतर जीवन का गहरा दर्द होना चाहिए वह जीवन चाहे किसी क्षेत्र का हो। यह आकस्मिक नहीं है कि 'धर्मयुग' के कथा दशक की पूरी शृंखला में सबसे प्रभावशाली कहानियों में से एक लगी भीष्म साहनी की 'सिर के सदके' जिसमें कोई तथाकथित आधुनिकता या बौद्धिक भगिमा या शिल्प चातुर्य नहीं था एक गहरा जीवन बोध था जबकि पराये शहर में, जैसी अति आधुनिक कही जा सकने वाली कहानी निहायत प्रभावहीन लगी। इसी प्रकार 'नयी कहानियों' के विशेषांक में छपी कहानियों में भारती की कहानी 'यह मेरे लिए नहीं' अपने बोध की गहराई और संवेदना की तीव्रता तथा गृहीत जीवन के संश्लिष्ट सम्बन्ध सूत्रों की पहचान के कारण बड़ी प्रभावशाली है हो सकता है कि उसका बोध उतना आधुनिक न हो जितना कि महेन्द्र भल्ला की स्वच्छन्द नागरिक यौनाचार, गुप्त मौन रहस्यों तथा अश्लील चेष्टाओं के दायरे में घूमने वाली कहानियों का। इसी प्रकार हो सकता है कि रेणु की 'रस पिरिया' कहानी का बोध उतना आधुनिक न कहा जाय जितना कि राजेन्द्र यादव की कहानी 'प्रतीक्षा' का बोध। किन्तु रस पिरिया एक बहुत ही मर्म स्पर्शी कहानी है क्योंकि उसमें संवेदना का प्रवाह गहराई है और जीवन की सहजता कृत्रिम बौद्धिकता से आवृत्त नहीं की गयी है। शिल्प अपने कथ्य के अनुसार नया होकर भी खुला हुआ है। इसलिए क्षेत्रीय आधार पर कहानी की श्रेष्ठता अश्रेष्ठता का निर्णय नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि पहले की कहानी की सपाट या सीधी शैली की जगह सांकेतिक चित्रात्मक शैली अपना कर नयी कहानी ने कहानी को समृद्ध किया है किन्तु एक खतरा बार बार सामने से गुजर जाता है वह है अनुभूतिहीन, कथ्यहीन, संवेगहीन निरा तन्त्र–कौशल। पहले के कहानीकार की शैली सीधी और सपाट थी इसलिए उसे आकर्षक, प्रभावशाली जीवन–व्यापार चुनना पड़ता था आज कभी कभी उलटा दीखने लगता है। कुछ नये कहानीकार नये कवियों की तरह विचित्र विचित्र प्रकार के कथन–कौशल अपना कर कहानी के कथ्य सम्बन्धी खोखलेपन या रिक्तता को छिपाते हैं—एक तो कहानी की प्राण रिक्तता दूसरे उलझाव, एक अजीब खीझ होती है इस नवीनता की भगिमा पर। कहानी में प्राण हो तो वह कौशल–वक्रता के बिना भी प्रभाव जमा सकेगी और प्राणहीन कहानी या कुत्सित व्यापारों से खलबलाती कहानी लाख 'पोज' देने पर भी अशक्त और प्रभावहीन ही रहेगी। किस्सा ऊपर किस्सा मारते रहिए लेकिन कोई किस्सा बन नहीं

पाता ।

आज की कहानी को किसी एक नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता 'नयी कहानी' नाम अपर्याप्त सिद्ध हो रहा है इसीलिए 'सचेतन कहानी' का आन्दोलन शुरू हो गया। इसके अतिरिक्त जो नवीनतम कहानीकार आ रहे हैं वे भी अपने को किसी पूर्व दल से बाधना नहीं चाहते। सचेतन कहानी तो नयी कहानी' का सिद्धान्ततः विरोध करती हुई खड़ी हुई है। सच पूछिये तो यह विरोध गुटबन्दी का गुटबन्दी से है। सचेतन कहानीकार पहले से लिखते आ रहे हैं यानी सचेतन दल बनाकर उन्होंने लिखना प्रारम्भ नहीं किया किन्तु उन्हें ऐसा लगा कि 'नयी कहानी' के नाम पर कुछ ही नामों को स्वीकृति प्रदान की जा रही है कुछ लोग घूम फिर कर के ही महत्ता प्राप्त कर रहे हैं तो शेष कहानीकारों ने स्वीकृति प्राप्त करने के लिए कहानी का एक नया सैद्धातिक आधार खड़ा किया और उनका मुख्य स्वर यह था कि नयी कहानी व्यक्तिगत कुंठा, पराजय, निराशा और यौन विकृतियों की कहानी है जबकि सचेतन कहानी सामाजिक संवेदना की, उमका शक्ति और विजय की, आस्था की कहानी है। वास्तव में इस प्रकार की सीमा रेखा खोंच पाना मुश्किल है किन्तु यह सत्य है कि नयी कहानी में अनेक कहानीकारों ने यौन विकृतियों, मानसिक तनावों और व्यक्ति की एकांत कुंठाओं का आधार बनाकर कहानियां लिखी हैं जिनमें जीवन को उन्मेष देने वाला कोई स्वर नहीं। किन्तु सचेतन कहानी के स्वर वाहकों में से एक जगदीश चतुर्वेदी की लिज लिजी कहानियों को (यदि उन्हें कहानी कहा जाय) क्या कहा जायगा ? सामाजिक संवेदना का अभाव नयी कहानी में भी नहीं है फिर भी यह कहा जा सकता है कि सचेतन कहानीकारों में महीपसिंह, मनहर चौहान धर्मेन्द्र जैसे कुछ ऐसे कहानीकार हैं जिनमें शक्ति है और जो व्यक्ति केन्द्रित संवेदना के दायरे से निकल कर सामाजिक संवेदना के क्षेत्र में अपने को फैला रहे हैं और आ दोलनों की व्यग्रता अव्यग्रता के बावजूद ऐसी कहानियां लिख रहे हैं जो प्रेरक तथा शक्ति सम्पन्न हैं। इनकी हिमांशु श्रीवास्तव की तथा रामकुमार की कुछ कहानियों का महत्व इस अर्थ में और बढ़ जाता है कि ये उस समय सामाजिक संवेदना और शक्ति की आवाज ऊंची कर रहे हैं जबकि 'नयी कहानी' की तथाकथित नयी पीढ़ी निरंतर यौन विकृति और व्यक्ति की एकांत आत्म केन्द्रिता के रस में डूब रही है इसके साथ ही साथ इन नव विकसित नयी कहानियों में एक बात और लक्षित होती है वह है फार्मूलाबद्धता। ये कहानियां घटना, चरित्र तो छोड़ ही चुकी हैं, ये आधुनिक जीवन के कुछ सत्य सूत्रों को चुन लेती हैं और उनके इर्द गिर्द बुनती जाती हैं। इसलिए आज का कहानी समीक्षक प्रायः कहानी की समीक्षा करते समय उनमें से एक फार्मूला या कारण खोज लेता है। उसको मानव संवेदना के विश्लेषण पर जोर न देकर वह यह कहता

है कि इस कहानी ने माधुनिक जीवन के इस सत्य को पकडा है और फिर वह उसी मत्य पर जोर देता है। माधुनिक जीवन के सदर्भ मे उसकी प्राथमिकता अप्राथमिकता सिद्ध करता है। व कहानिया जो किसी जीवन-व्यथा की कथा हैं या सघष की आवाज हैं और जिनसे आधुनिक जीवन का कोई फामूला नही निकल पाता। वे आलोचको की निगाह पर नही चढ पाती। कहानी के क्षत्र म जो नयी पीढी उग रही है उसमे कुछ नाम ऐसे उभर रहे हैं जिनकी कुछ कहानिया आशा जगाती हैं। वे हैं 'नौ साल छोटी पत्नी,' क रवीन्द्रकालिया 'धूप' क उदयभानमिश्र 'मैंने विदा दी या' के दूधनाथसिंह और 'पिता' क ज्ञानरजन। आज की कहानी को परखन क लिए अलग अलग कहानियो की प्रवृत्तियो और उपलब्धियो को देखना भी अधिक उपयोगी होगा। और इस तरह यह प्रतीत होगा कि अच्छे मान गये कहानीकार भी कभी कभी कितनी हल्की और नाट काय कहानिया लिखत हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ स्वस्थ सामाजिक (किन्तु शिल्प क लिहाज मे ढीलो) कहानिया लिखन वाल अमरकान्त न 'काली छाया' और 'वे हसती आखें' जैसी टिकी कहानिया भी लिखी हैं। किन्तु यह एक अलग निबंध का विषय है।

नई कहानी
एक विचार

ओमप्रकाश निमल

कथा जगत म भी इधर काफी अखाडवाजी और आ दोलन जार पकडते जा रहे हैं। नयी कहानी, सचेतन कहानी फिर अकहानी के पक्षधर आये दिन अपने-अपने पक्ष की दलीलें दते रहते हैं, वक्त य और घापणाए प्रकाशित करते हैं और कुछ पत्रिकाए उनक मुखपत्र का काम करती हैं। कुछ यावसायिक सस्याए भी अपनी यवसाय सिद्धि क लिए इस तरह क आन्दोलनो को साधन-सम्पन्न बना रही हैं ताकि किसी नये नाम की चकाचौंध मे वे खूब चादी कूट सकें। और नारो की इस ठेलमठेल मे कुछ लोग तो प्रतिष्ठित हो भी गये हैं और कुछ अभी नारबाजा मे जुटे हुए हैं और एक से एक बढकर नये नारे ईजाद कर रहे हैं या फिर नारे लगाना भूल कर जो प्रतिष्ठित हो गये हैं उनकी टागें खीचने की जब तब कोशिश कर भते हैं।

असल म, यह कहानी का नही कहानी क विशेषणो का समय है इस समय कहानी नही लिखी जा रही, विशेषण लिखे जा रहे हैं। कहानी म से अगर हम बाकी तत्वो को निकाल भी दें तो भी, दो तत्व तो हमे खास तौर पर रखने ही पडेंगे एक कथानक, दूसरा चरित्र। या तो चरित्रो के अनुसार कथानक की रचना होगी या कथा नक के अनुसार चरित्रो का निर्माण। और आज की कहानी के नाम पर जो कुछ लिखा जा रहा है, उसमे ये दोनो ही तत्व निर्जीवप्राय हैं न कथानक सबन बन पाता है न पात्र। और जो कुछ बन पाता है वह या तो अति बौद्धिक होता है या शाब्दिक कलाबाजी।

या, अगर हम देखें तो आज जितना गद्य हिन्दी साहित्य मे कभी नहा लिखा गया और अभी खूब लिखा जा रहा है। आज कहानी की कितनी पत्रिकाए निकलने लगी हैं, और कहानी पत्रिकाओ से हट कर भी, हर पत्रिका म कुछ कहानिया जरूर रहती हैं। लकिन इन छोटी-बडी सभी पत्रिकाओ म प्रकाशित कहानियो को हम छाटने बठें तो उनमे से सम्भवत एक भी कहानी ऐसी नही निकलेगी जिसे हम विश्व साहित्य की धराहर के रूप म रखने का गौरव प्राप्त कर सकें। कितने 'श्रेष्ठ' कहानी सकलन इधर नहा छपे हैं, कितने नही छप रहे हैं, कितने नही छपेंगे लकिन जिस पर हम गर्व कर सकें ऐसी कितनी कहानिया उनमे होंगी यह कौन कह सकता है ?

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसका यह अर्थ तो कतई नहीं लिया जाना चाहिए कि जो कुछ लिखा गया है वह कूड़ा करकट है। ऐसा तो कोई ना समझ ही कह सकता है। इसमे भी अच्छा है उल्लेखनीय भी है और इसीसे भविष्य के प्रति यह आशा भी बधती है कि कुछ न कुछ जरूर निकलगा भी, लकिन कितनी मात्रा मे ? जाहिर बिलकुल कम, करीब-करीब नही क बराबर। कहानी की जो प्रतिनिधि पत्रिकाए हैं- कहानी, सारिका और नई कहानिया, और अन्य बहुत से नये-नये कथा मासिक, उनमे इतन साला में क्या छपा है ? सिवा कुछ इनीगिनी अच्छी कहानिया के ही, बाकी सब नही क बराबर है। असल म, अगर हम एक ही जुमल मे कह तो आज की कहानी क लिए यह कहना ज यादा उपयुक्त होगा कि वह प्रयोग का स्थिति म है। एक नारा पूरी तरह से प्रतिष्ठित भी नही हो पाता कि तभी उसक विरोध मे बिलकुल उसके पास से ही जोर का विरोधी नारा उठता है।

नयी कहानी, सचतन कहानी अकहानी—ये सब नारे इतन जोर शोर के साथ लगाये जा रहे हैं कि आज की कहानी न जमीन को छू पा रही है और न किसी दिशा को ग्रहण कर सक रही है।

कुछ लोग हैं, जो इन नारो और प्रचारों से बच कर लिख रहे हैं उनका कहीं नाम सुनाई नही देता, कुछ हैं जो एक-दो कहानिया लिख कर प्रतिनिधि कहानीकारो की पक्ति मे दाखिल हो गये हैं और कथा चर्चाओ और इन्टर यूज गोष्ठियो म गदनें निकाल कर फोटो खिचवा रहे हैं। वक्तव्यो और अपने-अपने ढग की टिप्पणियो की तो भरमार हो रही है। हर कहानी प्रतिनिधित्व करने वाली है और हर कहानीकार प्रतिनिधि कहानीकार बना बैठा है। एक गुट ने एक आलोचक को सरपरस्त बना रखा है, तो दूसरे ने दूसरे को और चल रही है धक्कमपल।

इस सब अराजकता और धक्कमपल म कहा कहीं कुछ श्रेष्ठ भी पढन को मिल जाता है—क्या वस्तु, पात्र शिल्प और भाषा के नये प्रयोग भी देखने म आ जात हैं यहाँ जरूरी नही कि उन सब कथाओ और कथाकारो के नाम भी गिनाए जाए परन्तु उदाहरण क लिए रघुवीर सहाय की एक ऐसी ही लघु कहानी 'कल्पना' में पढ़न को मिली थी—'मेरे और नगी औरत के बीच।' फिर एक कहानी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की पागल कुत्तों का मसीहा' पढने को मिली। लक्ष्मीकान्त वर्मा की 'टूटी चूडिया की कनिया' रेणु की आचलिक कहानी 'तबे एकला चलो रे' और 'नई कहानिया' म धर्मवीर भारती की एक सुन्दर और सशक्त लम्बी कहानी 'यह मेरे लिए नहीं है' को पिछले वर्षो की उपलब्धियाँ माना जा सकता है। रामकुमार, अमरकान्त, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, दूधनाथ सिंह, राजेन्द्र यादव, रावेन्द्र तथा बहुत से अन्य नये कथाकारों ने भी

एकाधिक अच्छी कहानियां लिखी हैं। लेकिन फिर भी सवाल अभी वही का वही है। कहानी के क्षेत्र में नामों की इतनी बड़ी भीड़ और लम्बी कतार है, उसमें उसका कहीं अतापता भी नहीं है। बस, 'परस्परम् प्रशसन्ति अहो रूपम् अहो ध्वनि, ऊष्ट्रा नाम विवाहेषु गीतं गायन्ति गदभा।' वाली बात ही चारों ओर दृष्टिगत हो रही है।

आज की कहानी के सम्बन्ध में चाहे वह नयी के विशेषण के साथ हो चाहे सचेतन या अचेतन या अ के साथ—एक बात मुझे सदैव ही परिलक्षित होती रही है और वह है कि इस भीड़ भाड़ और आपाधापी में कहानी कहीं खो गयी है और कहानी के नाम पर जो कुछ छप रहा है वह इतना निजी और इतना क्षणिक प्रभावकारी होता है कि जैसे-जैसे हम उसे पढ़ते हुए आगे बढ़ते जाते हैं पीछे का कुछ भी याद नहीं रहता न पात्रों के नाम न घटनाएं। कोई कोई शब्द चित्र या वाक्य कुछ क्षण के लिए चौंकाता है, एक क्षण का ठिठका देता है लेकिन दूसरे ही क्षण प्रभावहीन हो जाता है। इसके विपरीत उदाहरण के लिए हम बहुत पहले लिखी गयी उन कहानियों को ले सकते हैं जो हमें वर्षों के बाद भी ज्यों की त्यों याद हैं और जिनका प्रभाव रंचमात्र भी कम नहीं हो सका है। महादेवी वर्मा की 'घीसा' प्रेमचन्द की 'कफन' अज्ञेय की 'रोज,' चतुर सेन शास्त्री की 'दुखवा मैं का से कहूँ' और अन्य कुछ कहानियां। इधर कुछ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के कहानी विशेषांक देखने में आये हैं (ज्ञानोदय, लहर, नई कहानियां, कहानी आदि के) उनमें कोई ऐसी बात नहीं जिसका उल्लेख किया जा सके 'धर्म युग' के कथा-युग का उल्लेख भी नहीं। इन सब में कहानी पर चर्चा न होकर कहानीकार के अपने व्यक्तित्व पर ही अधिक ध्यान दिया गया है।

आज की कहानी में सस्ते किस्म के रोमांस, मांसलता का आकर्षण या छिछली भावुकता या व्यक्ति कुण्ठा का ही प्राधान्य है। येन-केन प्रकारेण हर कहानी में यही यही कहा जाता है। असल में, आज की कहानी शहर के मध्यमवर्गीय व्यक्ति विशेष की कुण्ठा की प्रतीक मात्र बनकर रह गयी है और उससे आगे नहीं बढ़ पा रही है। भारत के जो अन्य करोड़ों लोग गांवों में बसते हैं, उनकी स्थितियां परिस्थितियों और मन स्थापों का चित्र तो आज का कहानीकार दे ही नहीं रहा है। आज जो कुछ लिखा जा रहा है, वह शहर के एक वर्ग विशेष के भी एक व्यक्ति विशेष की स्थिति का बड़ा ही छिछला और सतही चित्रण-सा होता है। उसमें अधिकतर तो लेखक ही नायक होता है और उसकी अपनी कुण्ठा, अभाव और अतृप्त इच्छाएं ही कहानी की विषय वस्तु बन जाती हैं। अब सवाल यह है कि अगर आज का कथाकार इस स्थिति से उबर, कुण्ठा और व्यक्तिवाद के घेरे को तोड़कर समष्टि की ओर नजरें उठाए तो सम्भव है कि वह अपने समाज, देश और उसकी मिट्टी की गन्ध में सनी चीजें दे

जिसका दर्द युगो युगो तक भी अपनी टीस को बरकरार रख सकेगा। रेणु और मटियानी ने इस ओर ध्यान दिया है तो उनका अपना स्थान भी है और अपना दर्द भी। जो उनका न होकर समष्टि का, या यूं कह लें कि एक अंचल का दर्द हो गया है, वैसे सारे देश की भी स्थिति वैसी ही है। आज के कहानीकार की दृष्टि चतुर्मुखी नही है। वह बहुत ही सीमित दायरे म सिमट कर रह गया है लेकिन दावे इस तरह के किये जा रहे हैं कि जैसे जो कुछ लिखा जा रहा है वह अद्भुत है, मार्ग दर्शक है।

असल मे इसे मैं तो भ्रम ही कहूंगा। या तो फिर यह मानने मे क्या हर्ज है कि हम से पहले जो लिखा गया वह भी हमारा मार्ग दर्शक रहा है फिर हमने नया क्या किया ?

तो आज एक धुंध मे हम लोग जी रहे हैं और यह धुंध भी हमी ने फैलायी है। अगर हम सचमुच कहानी के क्षेत्र मे कुछ करना चाहते हैं कुछ देना चाहते हैं तो पहले हमे इस धुंध को दूर करने का उपाय करना चाहिए ताकि हम अपने आस-पास और दूर का साफ-साफ दीख सकें और हम स्वयम् भी अपने को स्पष्ट व साफ दीखने की स्थिति म खडा कर सकें।

आज की कहानी की स्थिति तो यही है कि वह नारा, व्यक्ति प्रतिष्ठा और प्रकाशन लिप्सा और आत्म प्रचार की धुंध मे खोकर रह गयी है।

आज जब कि कहानी की माग पाठक और प्रकाशक की ओर से निरन्तर बढ़ती जा रही है, पत्रिकाएं मोटी मोटी पारिश्रमिक की रकमे देकर कहानिया छाप रही हैं तो ऐसे समय भी अगर अच्छी कहानियां और अच्छा साहित्य नही लिखा जाएगा तो फिर कब लिखा जाएगा। जब हम बाजार म कोई चीज खरीदने जाते हैं और दूकानदार को मुंह मागा दाम देते हैं तो जाहिर है कि हम खराब या सेकेंडहेंड या नकली चीज क्या लेंगे। हम फर्स्ट क्लास' चीज लेंगे। और कहानी की जो कीमत आज चुकायी जा रही है वह ज्यादा पैसे मे घटिया चीज खरीदने जैसी है। अत इस स्थिति स अब छुटकारा मिलना चाहिए। प्रकाशकों और सम्पादकों को चाहिए वे प्रतिष्ठित या नामधारी के चक्कर मे न पडकर चोखा माल और चोखा दाम वाली बात को प्रमुखता दें ताकि कहानी का उद्धार हो और यह धुंध छंटे, और फिर सब कुछ स्पष्ट और साफ-साफ सुझाई देने लगे।

नई कहानी
कथा मानों की एक हद

सुरेन्द्र

बात नई कहानी' के नाम करण वाले झगड़े को छोड़कर भी शुरू की जा सकती है, इस तरह कि—

'नई कहानी आज तक के विकसित कथामानों की एक हद है,

उसका शिल्प बदला हुआ है कि जीवन सत्य उसमें अधिक सार्थकता से उभर कर आए हैं कि उसने तीखे सवेदन से जीवन के उपेक्षित जीवन्त सदर्भों को परसा है कि बदलती हुई जीवन स्थितियाँ और आदमी आदमी के बीच के रिश्ते ही उसमें अभिव्यक्त नहीं हुए हैं, बल्कि इन रिश्तों की प्रक्रिया भी उसकी पकड़ से छूटी नहीं है कि वह गीली और सस्ती भावुकता से ऊपर उठी है, उसमें आज के वैज्ञानिक युग की बौद्धिकता का सही दर्जा मिला है कि उसका रूप और ससार पिछली हिन्दी कहानी से आश्चर्यजनक रूप से भिन्न है कि उसमें जीवन सत्यों और जीवन स्थितियों को लेकर जो नकार उभरा है वह किसी स्तर पर वास्तव स्वीकार का कहीं गहरे समझने की समझ से उपजा है, कह कि उसने हमारे समीप-जीवन-सत्यों को सही माइने में प्रस्तुत किया है और यह भी कि वह 'चाहिए' वाली बात को वहन नहीं करती कि इस बात को वह सांकेतिक तौर पर ही अभिव्यक्ति देती है। उसके निर्णय थोपे हुए नहीं होते उसके अपने निर्णय ही नहीं होते। कहानी निर्णय नहीं देती निर्णय होती भी नहीं क्योंकि वह नीतिशास्त्र नहीं है कि वह विधिशास्त्र नहीं है, उसे पढ़कर निर्णय पाठक लेता है या निर्णय लेने की दिशा में सोचता है, या बस सोचता भर है, जिसका निर्णय से सम्बन्ध नहीं भी हो सकता (वर्म निर्णय न ले पाना आज उसकी नियति भी है) इस दिशा में कहानी उसको उकसाती भर है और यही वह लेखकीय प्रतिबद्धता के सवाल को उत्तरित भी करती है। कहानीकार इसी के लिए प्रतिबद्ध हो सकता है, क्योंकि यहाँ वस्तु और शिल्प दोनों ही एक बिन्दु पर हैं, प्रकारान्तर से उसकी यह प्रतिबद्धता अपनी रचना के प्रति है। यहाँ उसे अनायास वह स्तर मिल जाता है जहाँ से वह जीवन सत्यों का सवहन करते हुए, कहानी तन्त्र और उसकी प्रयोग-सम्भावनाओं उसकी बारीकियों की हिमायत भी कर सकता है बल्कि तन्त्र को वही हैसियत दे सकता है, जो रचना की वस्तु को दी गई है। प्रतिबद्धता अलग अलग लेखकों की अलग अलग नियति नहीं, है लेकिन यह बात

भी सही है और महत्वपूर्ण भी कि लेखक को अपनी नियति अकेले ही अपनी तरह से तलाशनी होगी। वह युग का सम्पूर्ण मूल्यवद्धता के साथ जुड़ी हुई है। यह बात अलग है, और यह बात एक भी है कि लेखक अपने अपने कथ्य व भिन्न आग्रहों से कुछ अलग अलग बातें, अलग अलग तरह कहें, लेकिन सम्प्रेषण होगा उसी भार।

नई कहानी' साहित्य का आलंकारिक गद्य रूप नहीं है (व्यतीत कहानी एक हद तक ऐसी थी इस अर्थ में कि अलंकार कृत्रिम होता है) वह एक स्वाभाविक विधा है, कि अब वह स्वाभाविक हो रहा है और निखार भी। उसमें शिल्प और वस्तु के लिहाज से वह सतुलन दिखाई देता है जो अब से पहले की कहानी में नहीं देखा जा सकता था। नई कहानी' की यह 'उपलब्धि' व्यतीत कहानी से तात्विक रूप में भिन्न है। युग का तनाव और उसमें जीते हुए आदमी की आन्तरिक विवशता और घिराव, जो बाहरी घटना और चरित्र में शायद उतना प्रतिस्थापित नहीं होता, जितना कि वह महसूस करता रहता है। सही मानों में 'नई कहानी' महसूस करने की लगातार प्रक्रिया की कहानी है, इस अर्थ में वह आज के आदमी की नियति से एकमएक हो गई है, क्योंकि आज के आदमी की नियति दबावों को झेलते हुए उन्हें लगातार महसूस करने की नियति से जुड़ी हुई है और यह जुड़ना सही मानों में जुड़ना नहीं है, बल्कि लगातार टूटते जाना है, लेकिन नई कहानी' के आयाम और उसकी अनेक दिशाओं सम्भावनाएं यहीं नहीं चुक जातीं इसलिए नई कहानी' इतनी भर ही नहीं है, बल्कि वह इतना सब होते हुए, इतने से भी आगे की भी कहानी है और दिशाओं की नयी दिशाएं उसमें आयाम पा रही हैं।

नई कहानी' चरित्र और घटना विरल होती जा रही है यह विरलता आन्तरिकता के बढ़ते हुए दबाव के कारण विकसित हुई है। यह आन्तरिक दबाव आत्मा को भीतर से तोड़ता और खोखला करता रहता है इसे अभिव्यक्ति देना जरूरी इसलिए भी है जिससे कि तनाव पूर्ण स्थितियों में आदमी कुछ सहज हो सके और इसलिए भी कि उसकी आन्तरिक दशा को उसके सामने रखा जाय। (अपने आन्तरिक दबावों के प्रति उसका द्रष्टा भाव जरूरी है) ताकि वह उस पर विचार कर सके और शायद कोई हल भी खोज सके, लेकिन यह खोजा हुआ हल उसका अपना होगा और अपने तरह से होगा क्योंकि अपने समाधानों में आज वह नितान्त अकेला है, उसे अपना सलीब खुद ही ढोना है।

दरअसल आन्तरिकता को अभिव्यक्ति देने का सवाल सही यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के सवाल से जुड़ा हुआ है, बल्कि ज्यादा सही होकि इसे यथार्थ की अभिव्यक्ति

का सही सवाल माना जाय। यह सही है कि आन्तरिकता वाला यथार्थ एक भिन्न स्तर का यथार्थ है और कहीं ज्यादा महीन भी है लेकिन सही यह भी है कि वह किसी न किसी स्तर पर जुड़ा हमारे स्थूल यथार्थ से ही है क्योंकि हमारा भीतर हमारे बाह्य यथार्थ से जाने अनजाने सम्बन्धित तो है ही यानी हम अपने भीतर को निरपेक्ष नहीं मान सकते और यदि हम उसे निरपेक्ष मानते हैं तो उसकी सहूलियतें जिन्दगी में पैदा करते हैं।

इस आन्तरिक यथार्थ और युग तनाव को लेकर (जो हम अन्तर में ही महसूस होता है) नया कहानीकार अनुभूति की गहराइयों में पैठा है, उसने अपनी अनुभूति पर खास किसी रोपित कोण से रचनात्मक दृष्टि नहीं डाली है। (उसने वादों और दर्शनों से अलग रहने का यत्न किया है कुछ कहानीकारों की कुछ कहानियों को छोड़कर) उसने भोगी हुई शुद्ध अनुभूति का मानवीय धरातल पर ही जायजा लिया है (जिसमें पूर्वग्रहों से भी खुद को अलग रखना चाहा है और रचना प्रक्रिया में भी स्वयं को निस्संग रखने की कोशिश की है जहां जितना वह ऐसा नहीं कर पाया है वहां वह उतना चुकता भी है) इसलिए भी ऐसा हुआ कि उसे उपेक्षित अनुभूत सत्य को प्रकाशन मिला जो समाजशास्त्री की दृष्टि में समाज विरोधी और घिनौना हो सकता है नीतिशास्त्री की दृष्टि से अनैतिक और अश्लील, मसलन-वर्जनाएं यौन कुंठाएं और विकृतियां, युगनद्ध स्थितियों के ब्योरे अनिर्णय, असहायपन, अकेलापन, रुग्ण मन स्थिति त्रास, सन्देह, असन्तोष मृत्युबोध असुरक्षा अपरिचय अनस्तित्व होते जाना जीवन की यान्त्रिकता और सावना की सीमितता आदि। यह सच है कि जिन्दगी में यह आज है, हम चाह कर भी इससे इन्कार नहीं कर सकते यों इन्कार न कर पाने की हमारी विवशता भी हो सकती है, लेकिन यह हमारी नियति नहीं हो सकती।

कुछ कृती समीक्षकों और रचनाकारों का यह दावा है कि यौन सम्बन्ध उनकी प्रक्रिया और उनकी विकृतियों का चित्रण जीवन निरर्थकता बोध का परिणाम है। बात सही है, लेकिन पूरी नहीं बल्कि अपने एक निहायत बेमालूम अंश में, इसलिए कि इस यौन चित्रण में सही यत्न उतने नहीं हैं जितने कि फैशन परक यत्न, बाजार की मांग, छद्म स्वान्त और अपने अनुभूत की सीमितता या चुकते जाने की खतरनाक स्थिति, लेकिन इस दावे के साथ हम इस बात को भुला देते हैं या भूल जाते हैं। भूल हम और-और बातें भी जाते हैं बल्कि वे सब जिन्हें हम याद रख सकते हैं या जो हमें याद रखनी चाहिए। लेकिन होता ऐसा है कि जिन्हें हम भूल सकते हैं या कम से कम जिन बातों को हम भूल

जाना चाहिये, वे हमे याद रह जाती हैं या हम उन्हें याद रखते हैं, यह मिडियाक्रिटी नही है और न ही ट्रेजेडी बल्कि यह आज की जिन्दगी को 'एब्सर्डिटी है और कुछ कहानीकार बडे चाव से इसका चित्रण भी कर रहे है रमेश बक्षी की चहल कदमी का कुछ कुछ मिसाल के तौर पर पेश किया जा सकता है। सक्स का रुग्ण वृत्त चित्रण जान अनजाने नयी कथा का एक माना' ही बन गया है। सवाल रुग्ण स्वादन और 'एब्सर्डिटी चित्रण का भी उतना नही है जितना उसके अनविन न होने का है।

नई कहानी म एक स्तर पर प्रामाणिक अनुभूतियो और उपेक्षित सस्थितियो और परिवेशगत बारीकियो के चित्रण से पाठक को लगा कि व्यतीत कहानी योजित यानी अनिवायत कृत्रिम अधिक थी। उसम जो आदमी चित्रित किया गया था वह पाखण्डी और बलिदानी मुद्रावाला अधिक था जिसके पीछे उसकी मन स्थितियां की कोई सार्थकता नही थी और यदि थी भी तो कम से कम। उसम का भीतरी, आदमी तो सामने आया ही नही था, वह उसे हमेशा छिपाता रहा और जिन स्तरो पर उसके चित्रण का सवाल उठ सकता था उन से कतराता रहा, इतना ही नही वह उसे गलत तरह और गलत रूपो म पेश भी करता रहा वह उसे सामने लाने से कुछ आरोपित सत्यो (?) के कारण बराबर बचता रहा। इस तरह वह आदमी समाज शास्त्र, नीति शास्त्र और धमशास्त्र का श्लोक और सूक्ति तो था लेकिन वह वैसा नही था, जैसा कि वह होता है या अपने वतमान सदर्भो म हो सकता है।

नई कहानी म इस बदले हुए आदमी ने स्वय को अभिव्यक्त करने के लिए नए नए और अनजाने रास्ते खोजे, इसलिए भी नई कहानी म शिल्प के नए नए प्रयोग हुए, जिनका होना अभिव्यक्ति की सहज माग थी। लेकिन कुछ लेखको ने शिल्प प्रयोग को ही कथा का लक्ष्य मान लिया और नए नए प्रयोगो की तरन्नुम म सूखती हुई अनुभूति की नदी की परवाह नही की। नतीजा यह हुआ कि वे रेत मे नाव चलाते रहे और उसी को पार जाने का सही पराक्रम भी घोषित करते रहे। यह भी हुआ कि इन नए नए प्रयोग धर्मा लेखको के हाथ से कभी-कभी गफलत म कोई अपेक्षाकृत दुरुस्त कहानी भी निकल गई, ऐसा इनकी सामर्थ्य के कारण हुआ या सयोगवश यह विवाद का विषय हो सकता है लेकिन इस पर यहाँ क्या बहस ? बहरहाल

पिछले दिनो एक बुजुर्ग कथाकार ने कहानी का निकष याद कहानी' माना यानी उनके लिए श्रेष्ठ कहानी वह है जो याद रह जाय, बात कुछ बनी नहीं (हालाकि वे इस बात से भी खुश होंगे कि कोई यही कहे कि बात बिगड गई)

क्योंकि बहुत बार बल्कि अक्सर फूहड कहानियां याद रह जाती हैं। (अच्छी कहानियां भी याद रह जाती है, लेकिन यह एक अलग बात है) और अनेक महत्वपूर्ण कहानियां बिल्कुल भूल जाती हैं। याद का कहानी से ताल्लुक नहीं है वह तो व्यक्ति विशेष की धारण सामर्थ्य से सम्बन्धित है इसलिए याद कहानी कथा मान के रूप में स्वीकृत नहीं की जा सकती, फिर अलग अलग तरह की रुचि वालों को अलग अलग तरह की कहानियां याद रह जाती हैं और फिर आज इतनी अधिक कहानियां लिखी जा रही है कि युग तनाव और जीवन के जटिल असमंजस से गुजरते हुए आदमी के लिए अच्छी कहानी को याद रख पाना (और न अच्छी को भी) उसके तनाव संकुल मस्तिष्क में उसका याद रह जाना अतिरिक्त मानसिक व्यायाम होगा, जिसके लिए वह प्रस्तुत नहीं है।

नई कहानी विचार नहीं है (वह किसी स्तर पर विचार भी हो सकती है) विचार की प्रक्रिया है और यह आश्चर्य करने की बात नहीं कि सामयिक समीक्षा में भी विचार उतने नहीं जितनी विचार की प्रक्रिया अभिव्यक्ति पा रही है।

कुछ मित्र क्या माना के नाम पर नख शिख दुरुस्त कहानी की मांग करते हैं। कहानी नायिका नहीं है कि जूडे के फूल से लेकर लिपिस्टिक और नेल पालिश तक का हम मुआइना कर सकें फिर नख शिख दुरुस्त माने जाने की प्रक्रिया में जो काल खण्ड उसे झेलना पडता है उसकी वजह से नख शिख दुरुस्ती तक पहुंचने में वह अपने रूप रंग आकार और प्रकार में बदली हुई होती है यानी उसके प्रति नजरिए में फर्क आ जाता है। यही कारण है कि दुनिया के किसी भी साहित्य में आज तक कोई ,नख शिख दुरुस्त कहानी नहीं है और न ही हो सकती है। जो लोग नख शिख दुरुस्त कहानी की मांग करते हैं वे दरअसल कहानी के अन्त की मांग करते है, क्योंकि उस दुरुस्त कहानी की खोज में ही लगातार कहानियां लिखी जा रही हैं, जिस दिन दुरुस्त कहानी लिख जायगी उस दिन कहानी लेखन की आवश्यकता ही मर जायगी, इसलिए जब तक आदमी जिन्दा है तब तक दुरुस्त कहानी लिखे जाने का सवाल ही नहीं उठता, यह जानते हुए भी सच्ची कहानी की नियति यही है कि वह दुरुस्त कहानी की लगातार तलाश में लिखी जाती रहे।

पिछले दिनों कहानी को खेमों में बांटने की प्रवृति चली है, कुछ मित्र अभी भी ऐसा मानते हैं। इसलिए कहानियत को महत्वपूर्ण न माना जाकर खेमों को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है, प्रतिष्ठा का आधार भी उन्हीं को समझा जाने लगा है और जोडरी का आलम यह है कि कस्बा कथाकार (या किसी वस्तु विशेष को खास मानने वाला कोई भी कथाकार)

अपनी कथा नगरपालिका का स्वय घोषित चयरमन है, उसे कहानी के नाम पर अपना विषय महत्वपूर्ण लगता है, कहानी नही । शहराती, कस्वाती, देहाती और पर्वतीय वस्तु हमारे लिए महत्वपूर्ण नही है, (यदि है भी तो एक निश्चित दायरे म) और न तो वह कहानी होने का कोई निर्णायक मान हो सकती है सवाल उसके कहानी होन का और न होने का है । वस्तु उसकी कही की भी हो सकती है । उपेक्षित वस्तु का कथा कथ्य बनाना लेखक की अतिरिक्त जागरूकता तो है लेकिन वह प्रतिष्ठा का आधार नही हो सकती, आधार है लेखक की अपनी प्रतिभा और अप्रोच, साथ ही एक बात और वह नई कहानी है अथवा नही क्योकि यह बिलकुल जरूरी नही है कि एक नए लेखक की सारी कहानिया नयी ही हो ।

जन कहानी और कला मूल्यो को लेकर लिखी जाने वाली कहानिया म हमेशा अन्तर रहा है । पैसे को बरकरार बनाए रखने के लिए आपको ट्रिटी फामूलाबद्ध और मांस अपील वाली कहानिया लिखनी पडेगी । यहा पर जनविन, चतुर न पापुलर लेखक का निर्णय भी हो जाना है । आम फम को ध्यान म रखकर आप बडे कथा मानो को सवहन करने वाली कहानी नही दे सकते (जन रुचि और कला मूल्या का साथ साथ निर्वाह कर पाने वाले लखको की सख्या नितात कम होती है) यदि जन रुचि की उपेक्षा कर ऐसा कर पाते हैं तो आपका पशा खत्म होता है, इसलिए पापूलर लेखक वह होता है जो कथा माना के लिहाज मे हेच कहानिया लिखता है । हो सकता है, जेनविन लखक को जन विरोध भी सहना पडे उसकी कहानियो पर दुरूहता, जटिलता या उलझाव के आरोप भी लगाए जायें इन्ह हम आरोप नही भा मान सकते हैं क्योकि अक्सर एसा भी होता है कि समकालीन स्थितियाम उनका सही मूल्याकन नही भी हो पाता है । अक्सर अपन समकालीनो और समकालीन कृतिया के प्रति हमारी बडी अजीबोगरीब राय रहती है ।

एक वक्त था जब कहानी को जीवन की व्याख्या माना जाता था, लेकिन आज कहानी जीवन की व्याख्या नही, स्वय जीवन है, जीवन के एक सदभ की कहानी है और जीवन के सारे सदभ उसमे वन खुल रहे हैं । कथा–माना के इस परिवतन न कहानी को किस्सागोई स उठा कर गम्भीर साहित्यिक गद्य–रूप म प्रतिष्ठित किया है । पहली बार कहानी कविता के साथ साथ साहित्य म एक गम्भीर सजनात्मक विधा के रूप म समादत हुई है, न केवल कहानी बल्कि उसकी आलोचना भी । यानी कहानी की आलोचना ने कहानी को जहा गम्भीरता से लन का प्रशिक्षण दिया है वहा वह स्वय भी प्रतिष्ठित हुई है । कहानी के तत्वो वाले अध्यापकीय विश्लेषण को छोडकर नए नए कोणो स कहानी को समझने के यत्न

क्योंकि बहुत बार बल्कि अक्सर फूहड कहानियां याद रह जाती हैं। (अच्छी कहानियां भी याद रह जाती हैं लेकिन यह एक अलग बात है) और अनेक महत्वपूर्ण कहानियां बिलकुल भूल जाती हैं। याद का कहानी से ताल्लुक नहीं है वह तो व्यक्ति विशेष की धारण सामर्थ्य से सम्बन्धित है इसलिए याद कहानी कथा मान के रूप में स्वीकृत नहीं की जा सकती, फिर अलग अलग तरह की रुचि वाला को अलग अलग तरह की कहानियां याद रह जाती हैं और फिर आज इतनी अधिक कहानियां लिखी जा रही हैं कि युग तनाव और जीवन के जटिल असमंजस से गुजरते हुए आदमी के लिए अच्छी कहानी को याद रख पाना (और न अच्छी को भी) उसके तनाव सकुल मस्तिष्क में उसका याद रह जाना अतिरिक्त मानसिक व्यायाम होगा जिसके लिए वह प्रस्तुत नहीं है।

नई कहानी विचार नहीं है (वह किसी स्तर पर विचार भी हो सकती है) विचार की प्रक्रिया है और यह आश्चर्य करने की बात नहीं कि सामयिक समीक्षा में भी विचार उतने नहीं जितनी विचार की प्रक्रिया अभिव्यक्ति पा रही है।

कुछ मित्र कथा माना के नाम पर नख शिख दुरुस्त कहानी की माग करते हैं। कहानी नायिका नहीं है कि जूडे के फूल से लेकर लिपस्टिक और नल पालिश तक का हम मुआइना कर सकें फिर नख शिख दुरुस्त मान जाने की प्रक्रिया में जो काल खण्ड उस झेलना पडता है उसकी वजह से नख शिख दुरुस्ती तक पहुचने में वह अपने रूप रग आकार और प्रकार में बदली हुई होती है यानी उसके प्रति नजरिए में फर्क आ जाता है। यही कारण है कि दुनिया के किसी भी साहित्य में आज तक कोई ,नख शिख दुरुस्त कहानी नहा है और न ही हो सकती है। जो लोग नख शिख दुरुस्त कहानी की माग करते हैं वे दरअसल कहानी के अन्त की माग करते हैं क्योंकि उस दुरुस्त कहानी की खोज में ही लगातार कहानियां लिखी जा रही हैं, जिस दिन दुरुस्त कहानी लिख जायगी उस दिन कहानी लेखन की आवश्यकता ही मर जायगी, इसलिए जब तक आदमी जिन्दा है तब तक दुरुस्त कहानी लिख जान का सवाल ही नहीं उठता, यह जानते हुए भी सच्ची कहानी की नियति यही है कि वह दुरुस्त कहानी की लगातार तलाश में लिखी जाती रहे।

पिछले दिनों कहानी को समा में बाटने की प्रवृति चली है कुछ मित्र अभी भी ऐसा मानते हैं। इसलिए कहानियत को महत्वपूर्ण न माना जाकर समो को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है प्रतिष्ठा का आधार भी उन्हीं को समझा जाने लगा है और सीढ़ी का आलम यह है कि कस्बा क्याकार (या किसी वस्तु विशेष को खास मानने वाला कोई भी कथाकार)

अपनी कथा नगरपालिका का स्वयं घोषित चेयरमैन है, उसे कहानी के नाम पर अपना विषय महत्वपूर्ण लगता है, कहानी नहीं। शहराती, कस्बाती, देहाती और यवनीय वस्तु हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है (यदि है भी तो एक निश्चित दायरे में) और न तो वह कहानी होने का कोई निर्णायक मान हो सकती है सवाल उसके कहानी होने का और न होने का है। वस्तु उसकी कहीं की भी हो सकती है। उपेक्षित वस्तु का कथा कथ्य बनाना लेखक की अतिरिक्त जागरूकता तो है लेकिन वह प्रतिष्ठा का आधार नहीं हो सकती, आधार है लेखक की अपनी प्रतिभा और अप्रोच, साथ ही एक बात और वह नई कहानी है अथवा नहीं क्योंकि यह बिलकुल जरूरी नहीं है कि एक नए लेखक की सारी कहानियां नयी ही हों।

जन कहानी और कला मूल्यों को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों में हमेशा अन्तर रहा है। पेश को बरकरार बनाए रखने के लिए आपको ट्रिकी फार्मूला बद्ध और मास अपील वाली कहानियां लिखनी पड़ेगी। यहीं पर जनविन, चतुर व पापुलर लेखक का निर्णय भी हो जाता है। आम फन्म को ध्यान में रखकर आप बड़े कथा मानों को सवहन करने वाली कहानी नहीं ल सकते (जन रुचि और कला मूल्यों का साथ साथ निर्वाह कर पाने वाले लेखकों की संख्या नितान्त कम होती है) यदि जन रुचि की उपेक्षा कर ऐसा कर पाते हैं तो आपका पक्षा पतन होता है, इसलिए पापुलर लेखक वह होता है जो कथा-मानों के लिहाज से हल्की कहानियां लिखता है। हो सकता है जेनविन लेखक को जन विरोध भी सहना पड़, उसकी कृतियों पर दुरूहता जटिलता या उलझाव के आरोप भी लगाए जायें, इन्हें हम दाग नहीं मान सकते हैं क्योंकि अक्सर ऐसा भी होता है कि समकालीन स्थितियों में उनका सही मूल्यांकन नहीं भी हो पाता है। अक्सर अपने समकालीनों द्वारा उनकी कृतियों के प्रति उपेक्षा बड़ी अजीबोगरीब राय रहती है।

न कथा मानो का एक नया तन्त्र दिया है लेकिन यह भी कि यह तन्त्र अपने सपूर्णत्व म अभी उजगार नहा हो पाया है। यही कारण है कि कहानी-समीक्षा पूरे तौर पर अभी भी कथा मानो के आधार पर उतनी नही हो रही है जितनी कि समीक्षक विशेष द्वारा ग्रहण किए गए व्यक्तिगत प्रभावो के आधार पर। और यह खतरे की बात हो सकती है कि कहानी को लेकर कहीं प्रभाववादी समीक्षा ही न विकसित हो जाय हालांकि कहीं यह भी सही है कि यही भिन्न-भिन्न कारणो से की गई समीक्षाए कुछ निश्चित कथा—मानो का आधार देगी, लेकिन ऐसा भी हुआ है कि नई कहानी पर हुई चर्चा परिचर्चा, परि सवाद और हाशिए पर समीक्षाओं का आलम यह रहा है कि सवादी मित्र समीक्षकों ने नई कहानी के मानों और उपलब्धियों पर विचार करते हुए आपस म शेरो शायरी म सवाल जवाब ही नही किए बाकायदा उसी तरन्नुम म निर्णय भी पढ़े और इसी दिलचस्प अदाकारी से एक दूसरे पर व्यक्तिगत छींटे भी उछाले, इतना और भी कि लगातार हिन्दी नई कहानी' के नाम पर विदेशी समीक्षकों के मतो और विदेशी कहानियों का बहुतायत से उदधृत करते हुए हिन्दी कथा म विदेशी कलम लगाते रहे, बिना इस समझ के कि विदेशी कथा—प्रतिमानो की खोज हिन्दी नई कहानी म किस हद तक माइने रखती है। बावजूद इस के नई कहानी पर हुए (और हो रहे) इम बहस मुबाहिस ने नए कथा मानो को समझने और नयी कथा की दिशा देने म महत्वपूर्ण उजले प्रयत्न दिए है।

एक मित्र समीक्षक ने कथा स्वादन म खण्डित रुचि या खण्डित बोध का प्रश्न उठाया है, वह भी इस आधार पर कि यदि कोई एक ही समय म दो अलग अलग बोधो की रचनाओ को आस्वाद कर पाता है तब उसकी रुचि खण्डित है। दरअसल यह सवाल ही गलत है तब इसका सही उत्तर क्या होगा? और जिस खण्डित रुचि की ये मित्र समीक्षक बात करते हैं उसके लिए पहले रुचि तो बने और जो रुचि बनी ही नहीं वह खण्डित कैसे होगी? दो अलग अलग बोधो की रचनाओं का आस्वाद करने वाली रुचि खण्डित नहीं होती वह व्यापक दृष्टि सामर्थ्य का सबूत होती है पुराने का आस्वाद कर पाना यदि खण्डित रुचि है तब नए का आस्वाद कर पाना कटी हुई रुचि है मित्र समीक्षक के इस गलत सवाल का आधार नए पुराने को आपस म विरोधी मान लेना है जबकि रचने के अर्थ म वे विरोधी नहीं हैं। सकट तब पैदा होता है, जब हम नए पुराने का भेद नहीं कर पाते और सिया राम मय सब जग जानी की स्थिति से गुजरते हुए हर रचना को वाह वाह कहते होते हैं।

और यह नये पुराने का सवाल लेखकों की कम ज्यादा उम्र के निर्णय पर आधारित नहीं है, यह तो उन दृष्टि बोधों का सवाल है जिनके संसार अलग अलग हैं। पुराने लेखक और पुरानी कृतियां नए की आलोचना का विषय तब बनते हैं जब वे नए रचना मानों में पुरानी रूढ़ियों को स्थापित करना चाहते हैं इसलिए नहीं कि उनकी रचनाओं ने वह सब क्यों नहीं दिया, जो आज की रचनाएं दे पा रही हैं, क्योंकि इसमें उनके युग-बोध और दृष्टि की विवश सीमाएं हैं इसलिए जब नए रचनाकार उन पर नयी उपलब्धियों न दे पाने का आरोप लगाते हैं तो अपनी सही बात को गलत तरह से पेश करते हैं।

नयी कहानी' दायरों की कहानी है लेकिन ये दायरे बृहत्तर दायरे के लिए ही बनते खुलते हैं जहां ये आड़ी तिरछी रेखाएं एक दूसरे की विरोधी बनकर नहीं, सहयोगी होकर काटती हैं, यह परिभाषा नहीं है और नयी कहानी की इतनी भर परिभाषा हो भी नहीं सकती फिर परिभाषा देने का चलन इधर समीक्षकों में रहा भी नहीं है बात को परिभाषाओं से समझने-समझाने का मिजाज रिवाज और रिवाज पिछले सब के समीक्षकों में (विद्यार्थियों की सुविधा के लिए) रहा है और व्यतीत बोध पीडित समीक्षकों में आज भी है गोकि सही यह भी है कि इधर समीक्षकों ने भ्रम वश, परिभाषा न देने का अर्थ कामि न करना मान लिया है जो कुल मे कम खतरनाक बात नहीं है और कहा नहीं जा सकता कि यह खतरा उन्होंने जानबूझ कर उठाया है या इसमें उनकी अपनी असामर्थ्य निहित है। नई कहानी के सिलसिले में पिछले दिनों एक समीक्षक मित्र ने (हालांकि उन्हें अब तक भी समीक्षक नहीं माना गया है और मैं भी उन्हें खास—खास मौकों पर समीक्षक मानने से इंकार कर जाता हूँ, क्योंकि वे समीक्षक कम मित्र अधिक हैं और समीक्षा में भी मित्रता का निवाह करते हैं कहा इस आपकी नई कहानी समझना चाहते हैं मने कहा शौक से लेकिन नई कहानी' समझ कर आप हमारे ऊपर कोई अहसान नहीं करेंगे इसमें तो आपका ही गौरव बढ़ेगा गोकि आपकी समझ में आ जाय तब।' बाकी कठिनाई नई कहानी' के कुछ संतुलित मानों (उन्होंने मान दण्ड शब्द का प्रयोग किया था) उभर कर न आने की है। दरअसल संतुलित कथा मानों की मांग महज इन्हीं मित्र की नहीं है बल्कि उन सबकी भी है, जो कथा के लिए नहीं बल्कि अपनी कथा समझ के लिए संतुलित कथा—मानों की सुविधा चाहते हैं लेकिन अपनी समझ से नहीं और क्या वे इन जैसे भिन्न नहीं हैं?

नयी भी और अच्छी भी कथा की—मांग करने वाले समीक्षक पाठक, नयी

अथ म उस कथा की माँग करत है जा शिल्प की दृष्टि से नई हा (या दिखे भर) लकिन ससार उसका वही हो जिसक वे अभ्यस्त हैं, क्योकि कहानी 'नई' हो तो उसके लिए आवश्यक बिल्कुल नही कि अच्छी भी हो (अच्छेपन का सम्बन्ध हमारी बनी हुई रुचि से है विकसित मानो और बनती हुई रुचि से नही) बल्कि जो कहानी नई है वह अच्छी' इसलिए भी नही हो सकती कि वह हमारे सार वस्तु और शिल्पगत सस्कारो को चुनौती ही नही देती, उन्हे तोडकर ही समझ के दायर म आ पाती है (अपन सस्कारो का टूटना हम अच्छा नही लगता और इसी वजह से कहानी भी) जब नई कहानी' अच्छी भी लगने लगती है तब समझना चाहिए कि वह अपने नएपन मे चुकती हुई सस्कारा की उसी जड प्रक्रिया स गुजरती होगी है जो व्यतीत कथा की आगे चलकर मृत्यु रेख बनी थी यही कारण है कि जो आन्दोलन साहित्य म प्रतिष्ठित होते हैं वे वही स अपदस्थ भी होने लगते हैं। कहानी का 'नया' होना—जितना जरूरी है उतना अच्छा होना नही, क्योकि वह हमारे सम्पूर्ण मान—विचारो को ध्वस्त कर, हमारी कथा समझ को एक नए बिन्दु से शुरू कर उस नए कोण से जोडती है। बिल्कुल जरूरी नही कि हर नए लखक की सारी कहानिया 'नयी हो ही बल्कि यह जरूरी है कि उसके सम्पूर्ण कृतित्व म कुछेक कहानियाँ ही नई हों या अपन किन्ही अ शो मे नई होकर नए मानो को प्रतिष्ठित करने म सहयोग करें।

आइडिया' कहानी भी इसी तरह नई नही होती क्योकि नई कहानी बनाई नही जाती वह लखकमे घटित होती है। लेखक उसे पूरे तौर पर झेलता हुआ उस लिखन की विवश क्रिया से जुड जाता है। आइडिया कहानी म कोई एक विचार होता है, लखक उसके लिए पात्र और परिवेश का जुटा लेता है जनेद्र की अधिकाश कहानियाँ ऐसी ही हैं।

आज की कहानी अधिक सश्लिष्ट हो गई है और सृजन स्तर पर कही अधिक महीन, पुराने कथा तत्व (पुराने अर्थ म) उसम नही मिलेंगे और उन्हे जिस-तिस तरह खोज निकाला भी जाय तो पता चलगा कि जो कहानी है वह तो पकड म आई ही नहीं बल्कि वही छूट गई है और जो छूट जान योग्य था या हो सकता था, उसे हमने कथाके नाम पर खोज निकाला है और तब कहानी नहा, हमारी पकड म उसकी निहायत सतही जमीन होती है। कथा-तत्व हमको सतही जानकारी तो द सकते हैं बल्कि आज उनस हमारी पुरानी कथा समझ को भी खतरा पैदा हो गया है, आप जिसे चरित्र समझते आरहे हैं वह यहाँ चरित्र है ही नहीं प्रश्न करते हुए— मिजाज म वह चरित्र का प्रतीक भर है बल्कि उसका भी निमित्त मात्र। यहाँ तक

होता है कि कभी–कभी कहानी का समूचा आदश एक उखडे हुए केन्द्र च्युत वाक्य म स्थित होता है और कथा का शेप सारा आयोजन निरथक बनकर रह जाता है लेकिन जब हम इस एक वाक्य प्रकाशमे मुडकर कहानी का-जायजा लेत होते हैं, तब कहानी क सारे–खडित प्रतीक और अथहीन सा लगती स्थितियाँ एक वृहत्तर प्रतीक के उपाग और जुडी हुई साथक विस्तृतिया के आशय म बदल जाते हैं, आप खुद को ऐस बोध म समोन लगत है जा इसस पहले कथा पढत समय आपके गिद अनुभव–घायरे म नही खुल पाया था। आप जसे–जस और जितनी बार कहानी का पढते हैं। उसक सही अथ क समीप पहु चते जात हैं। इसी लिए नए कथा मानो म कहानी की पाठ प्रक्रिया भी खास अहमियत रखती है। जरूरत इस बात की है कि–कहानी की पाठ–विधि को गम्भीर और खास अभ्यास दिया जाय और उसे सही सदर्भों म पकड पान क लिए नाकदर हष्टि और आग्रह मुक्त समीक्षा बुद्धि का आधार दिया जाय।

'नई कहानी' म पिछली नतिकता और धार्मिक लगाव को बाघ स्तर पर ही बहिष्कृत नही किया गया है, बल्कि अभिव्यक्ति के स्तर पर भी उस नकार दिया गया है सम्बन्धा की औपचारिकता क स्थान पर उस मे खुलापन है। नया कथा कार ससरहीन बाध और भाषा को लेकर कही अधिक साहस के साथ ठास जमीन पकडे हुए है। जीवन की अथहीन लगन वाली छोटी–छोटी स्थितियाको उसन साथक सन्दर्भों म खोजा है और उन्ह साथक पाया है। उपक्षित वस्तु को उसका दाय सापा है। उसके चित्रण म लिजलिजपन और भावुक रोमान के स्थान पर तल्खी है यह तल्खी जीवन विसगतिया का आक्रोश परिणाम भी है।

चू कि नई कहानी' न जीवन क नए और सही यथाथ का सन्सरहीन कोण से उठाया है इसलिए अपरिचय, अजनबीपन, अनिणय नकार आसन्न मृत्यु का बाध, मोह भग, आत्म त्रास, आक्राश और ऊब व इन्ही जसी और–और सस्थितिया क उसन निमम चित्र उकेरे हैं। आज के आदमी के इस अभिशाप और विडम्बना को हर नई कहानी म किसी न किसी स्तर पर प्रकाशन मिला है या इस तरह भी कि आदमी की अभिशप्त और विडम्बित नियति अभिव्यक्ति क नए–नए आयामा म खुल रही है जा घणित भी है, रोमाचक भी है और इस टूट भरे जगत से शायद–उबर सकने क लिए सक्त माध्यम भी। और बस।

अर्थ म उस कथा की माँग करत हैं, जो शिल्प की दृष्टि से 'नइ हा (या दिन मर) लेकिन ससार उसका वही हो जिसके व अभ्यस्त हैं , क्योकि कहानी 'नई' हो तो उसके लिए आवश्यक बिल्कुल नहीं कि अच्छी भी हो (अच्छेपन का सम्बन्ध हमारी बनी हुई रुचि से है विकसित माना और बनती हुई रुचि से नहीं) बल्कि जो कहानी नई है वह 'अच्छी' इसलिए भी नहीं हो सकती कि वह हमारे सारे वस्तु और शिल्पगत सस्कारो को चुनौती ही नहीं देती उन्हे तोडकर ही समझ के दायरे म आ पाती है (अपन सस्कारो का टूटना हम अच्छा नहीं लगता और इसी वजह से कहानी भी) जब नई कहानी अच्छी भी लगने लगती है तब समझना चाहिए कि वह अपने नएपन' मे चुकता हुई सस्कारो की उसी जड प्रक्रिया स गुजरती होती है जो व्यतीत कथा की आग चलकर मृत्यु रेख बनी था यही कारण है कि जो आन्दोलन साहित्य म प्रतिष्ठित होते हैं, वे वही स अपदस्थ भी होने लगते हैं। कहानी का नया' होना—जितना जरूरी है उतना अच्छा होना नहीं, क्योकि वह हमारे सम्पूर्ण मान—विचारो को ध्वस्त कर, हमारी कथा समझ का एक नए बिन्दु स शुरू कर उसे नए कोण से जोडती है। बिल्कुल जरूरी नहीं कि हर नए लेखक की सारी कहानिया 'नयी हो ही बल्कि यह जरूरी है कि उसके सम्पूर्ण कृतित्व म कुछेक' कहानियाँ ही 'नई' हों या अपन किन्ही अ शो मे नई होकर नए मानो को प्रतिष्ठित करने म सहयोग करें।

आइडिया' कहानी भी इसी तरह नई नहीं होती , क्योकि नई कहानी बनाई नहीं जाती वह लेखक्म घटित होती है। लेखक उस पूरे तौर पर झलता हुआ उसे लिखने की विवश क्रिया से जुड जाता है । आइडिया कहानी मे कोई एक विचार होता है, लेखक उसके लिए पात्र और परिवेश का जुटा लेता है, जनेद्र की अधिकाश कहानियाँ ऐसी ही हैं।

आज की कहानी अधिक सश्लिष्ट हो गई है और सृजन स्तर पर वही अधिक महीन, पुरान कथा तत्व (पुराने अर्थ म) उसम नहीं मिलगे और उन्ह जिस-तिस तरह खोज निकाला भी जाय तो पता चलगा कि जो कहानी है वह तो पकड म आई ही नहीं बल्कि वही छूट गई है और जो छूट जाने योग्य था या हो सकता था उस हमने कथा के नाम पर खोज निकाला है और तब कहानी नहीं, हमारी पकड म उसकी निहायत सतही जमीन होती है। कथा-तत्व हमको सतही जानकारी तो द सकते हैं बल्कि आज उनसे हमारी पुरानी कथा समझ को भी खतरा पदा हो गया है , आप जिस चरित्र समझने आरहे हैं वह यहाँ चरित्र है ही नहीं , अपने बदलते हुए-मिजाज म वह परिवेश का प्रतीक भर है बल्कि उसका भी निमित्त मात्र। यहाँ तक

ा है कि कभी–कभी कहानी का समूचा प्रादेश एक उखडे हुए केन्द्र च्युत वाक्य स्थित होता है और कथा का शेष सारा आयोजन निरर्थक बनकर रह जाता है, केन जब हम इस एक वाक्य प्रकाश में मुडकर कहानी का-जायजा लेते होते हैं, तब ानी के सार–खंडित प्रतीक और अर्थहीन सी लगती स्थितियाँ एक वृहत्तर ीक के उपांग और चुनी हुई सार्थक विस्तृतियों के आशय में बदल जाते हैं, आर ः को ऐसे बोध में समोन लगते हैं जो इससे पहले कथा पढ़ते समय आरके दि नुभव–दायरे में नही खुल पाया था। आप जसे–जसे और जितनी बार कहानी का ते हैं। उसके सही अर्थ के समीप पहुंचते जाते हैं। इसी लिए नए कथा मार्ग में ानी की पाठ प्रक्रिया भी खास अहमियत रखती है। जरूरत इस बात की है –कहानी की पाठ–विधि को गम्भीर और खास अभ्यास दिया जाय और इस ही संदर्भों में पकड पाने के लिए नाकदर दृष्टि और आग्रह मुक्त समीक्षा बुद्धि का ाधार दिया जाय।

'नई कहानी' में पिछली नैतिकता और धार्मिक लगाव का बाह्य स्तर पर हिष्कृत नही किया गया है, बल्कि अभिव्यक्ति के स्तर पर भी उस नकार किया ाया है सम्बन्धो की औपचारिकता के स्थान पर उस में खुलापन है। ... ार ससरहीन बोध और भाषा को लेकर कहीं अधिक आदमी के साथ उन्हें ाकडे हुए है। जीवन की अर्थहीन लगन वाली छोटी–छोटी स्थितियों को उनके ादर्भों में खोजा है और उन्हें सार्थक पाया है। उपेक्षित वस्तु का ... है। उसके चित्रण में लिजलिजपन और भावुक रोमान के स्थान पर ... तल्खी जीवन विसंगतियों का आक्रोश परिणाम भी है।

नई कहानी और उसका रूपबंध

सुरेन्द्र

नई कहानी के रूपबंध पर अलग से चर्चा करना, दरअसल परम्परागत आलोचना के उसी अंदाज में बात करना है जिसमें बाकायदा कथ्य और शिल्प को पूरे तौर पर सिद्धान्ततः विभाजित माना जाकर, उनका जायजा लेना होता है।

जबकि इस सत्य को यहां रखने की गुंजाइश नहीं कि यह विभाजन आयोजित ही नहीं है, बल्कि अर्थहीन भी है, और समीक्षा बुद्धि का खासा मनोरंजक उदाहरण भी। शिल्प और कथ्य को अलग अलग खतियाने का अर्थ दूध और पानी को अलग अलग करके (इस पुराने दृष्टांत के लिए क्षमा किया जाऊं) उनका जायजा लेना है हालांकि उन हंसों की उपस्थिति और उनकी सूक्ष्मग्राही चोंचों के बारे में मुझे पूरा पूरा शक है जिनके लिये कहा जाता रहा है कि वे ऐसा कर पाते थे। लेकिन यह एक अलग बात है और इस पर यहां क्या बहस?

रूपबंध को लेकर इसलिए भी अलग से बात नहीं चलाई जा सकती कि वह वस्तु बोध के आंतरिक रचाव का अनिवार्य प्रतिफलन ही नहीं है उसका मूर्त आकार भी है जब अपने आंतरिक रचाव का तनाव झेलती हुई कथा (या कोई भी रचना) एक खास मिजाज पकड़ लेती है या पकड़नी होती है तब यह मिजाज उसकी नितांत अपनी अनिवार्य मांग होता है लेकिन उससे (कथा अनुभव केंद्र से) पूरे तौर पर एक नहीं होता और अलग इसलिए नहीं होता कि वह वही नहीं है यानी उसका महज शिल्प होने से अर्थ नहीं बूझा जा सकता। चित्र की केन्द्रस्थ एकान्विति से च्युत मार्कलन चित्र को कार्टून वत भी पेश कर सकता है (कार्टून को कार्टून के तौर पर नहीं क्योंकि वह तब कला होगी) लेकिन उसमें निहित या सम्भावित पहलुओं को नहीं उभार सकता। इसलिए केन्द्रस्थ अनुभव के वास्तव से हटकर शिल्प-स्तर पर चर्चा उठाना गलत बात को और गलत तरह प्रस्तुत करना है इसी लिए हो सकता है कि यह चर्चा आपके लिए बेमानी हो (और मेरे लिए भी) लेकिन मैं अपने उन मित्रों के प्रति प्रतिबद्ध हूं (गोकि यह हर एक के लिए जरूरी नहीं है) जो अपनी कथा समझ के लिए सुविधा चाहते हैं हालांकि सुविधा वाले रास्ते के अपने खतरे होते हैं जिन्हें जानते हुए भी लोग आखिर खतरा उठाते तो हैं ही। बहरहाल

शुरू शुरूम छायावाद को शिल्पगत आन्दोलन या उपलब्धि मानने वाले ऋषि आचार्योंकी तरह भी कुछ कथा-समीक्षकाक यहा नई कहानी' क निए भी यहा निणय पढकर सुनाया गया । ऐस समीक्षक शिल्प के लिहाज स तो इस नया मानत ही हैं लकिन जब इसकी वस्तु पर अलग स विचार करत है (शिल्प और वस्तु को अलग-अलग खानो म बाट कर आदतन वे एसा करत है) ता उस भी जहा तहा नया बतात है और जब दाना पर एक साथ विचार करत हैं (गोकि एसा व मजबूरा म ही करत हैं) तब बहुमत स वही ऋषि आचार्यों वाला निणय दुहरा त हैं । 'नइ कहानी' के सदभ म परम्परागत समीक्षा बुद्धि की यह रोचक मिसाल ह साथ ही शिल्प और वस्तु को अलग-अलग मानकर उन पर विचार करन म जो खतर ह उह यहा समझा जा सकता है ।

पिछले कथाकारा क यहा किस्सागाइ शिल्प का विकसिततम कथा-मान था । उनकी कहानी इमी स शुरू होती था और खत्म भी यही हाती थी लेकिन कहानी यहा खत्म होती नही है—क्योकि तब वह आग लिखा ही नहीं जाती खत्म होते हैं कहन क खास-खास ढग और उनकी जगह कहन के और या और और ढग आ जात हैं । यह "कहने के ढगा की यात्रा प्रमचन्द क यहा शुरू हुइ थी और तब स अब तक लगातार बदलता रही है (गाकि शुरू इस दादी नानी की कहानिया व आदिम जमान म कहन की इच्छा से माना जा सकता है लकिन तब इसकी क्रमिक इतिहास क तौर पर विविक्षा करनी होगी और उसके लिए न ता यहा गु जाइश है और न ही आवश्यक्ता) इस दिशा का बदलाव कथा क शिल्प इतिहास की अनिवाय शत है लकिन इसम काल-खण्ड क लिहाज म कोई अनुपात हो यह जरूरी नहा ।

व्यतीत कहानी म वस्तु और शिल्प दानो म रोचकता और उत्सुकता बनाए रखना जरूरी था गाकि यह जरूरत आज भी बनी हुइ है, लकिन एक अलग माइन म । व्यतीत कथा म या ता किस्सागाइ हाती थी या अतिरिक्त नाटकीयता नइ कहानी' म शायद अब किस्सागाइ के विराध म भी आवाज उठ, क्योकि यह अब धारणा पारम्परिक वस्तु क समानान्तर ता उपयोगी हा सकती थी लकिन नए वस्तु बोध के लिए इसका अथ गुजर चुका है पिछल कथाकार भटकेदार अत दकर चौंक पाठक को दखत थ और मुस्करा कर फिर एक भटकदार अत लिखन म जुट जाते थे । शिल्प बाध का यह ढग आज के पाठक को एकदम बचकाना लगता है वह कहानी से गहर और अन्दर तक टोहन वाल बाध का माग करता है । हालाकि अब भी कुछ कथाकारा की चमत्कार वाली दृष्टि पाठक को चौंकन और शावस दन म तुष्टि पाती है लकिन समझदार कथाकारा क यहा यह शौक खत्म हा रहा है वे

कहानी' मे कुछ ही 'स्ट्रोक्स' मे अपनी बात कह जाते हैं, शिल्प स्तर पर वे इस तरह के अतिरिक्त आयोजन की आवश्यक्ता महसूस ही नही करते।

व्यतीत कहानी की शुरूआत बतौर सजावट के प्रकृति चित्रण म होती थी या विवरण वणन से या फिर सामाय परिचयात्मक ढग मे। नई कहानी' म शिल्प की इन शुरूआतो को छो" दिया गया है। वह अपनी शुरूआत मा स्थितिया बिम्बो प्रतीको या सकेतो स करती है। कही-कही भाषा की ध्वनि और चित्रा के अर्थों स उसे सार्थक किया जाता है। लेकिन इन या इन जपे और शिप कला का प्रयोग किसी विडम्बना या परिवेश गत विराध को सामने लाने के लिय ही होता है, अर्थहीन होकर या परिभाषाके अनुसार होकर नही और न ही अलकरणके तौर पर।

कहानी की सही जमीन उसका कहानीपन ही है शिल्प की सार्थक्ता इमी कहानीपन को उभारन म है हालाकि यह नामुमकिन है कि सही शिल्प के अभाव म कहानीपन' सार्थक हो पाए और वह भी नई कहानी म। यदि शिल्प कथा का कोई आयाम नही दे पाता, तब निश्चय ही वह कहानी को कमजोर बनाता है।

शिल्प गत कथा समीक्षा म पिछले दिनो तक कथानक का गठन नाटकीयता, वातावरण का सुष्ठु सयोजन सवादो की सक्षिप्तता व इन्ही जसी और और मतही बातो का चलन था जिनस कथा के औसत शिल्प को समझ पाना भी कठिन था। यह समीक्षा विभाजक बुद्धि से जुडी होन के कारण अपने प्रारम्भ म ही खण्डित थी।

नइ कहानी म नए शिल्प का प्रयाग चष्टित होकर उतना नही है जितना वस्तु की आन्तरिक विवशता का परिणाम होकर। नए शिल्प म कथाकार की वस्तु दृष्टि का लगातार योग रहता है तो वस्तु चयन म लेखक का शिल्प कोण बराबर काम करता रहता है।

शिल्पगत सपाटपन (फ्लटनस) कोई खास बात नही है लकिन इस कहानी म खास बना पाना या कहानी को इसके माध्यम स खास बनाना जरूर बडी कथा कारिता का सबूत है। इस शिल्प बोध के अन्तगत वस्तु, बोध होकर शिल्प स्तर पर जितनी सपाट होती है रूप भी वसा ही अनुकूल पकडती है यहा जीवन का कोइ नुक्ता, प्रश्न या कोई स्थिति, बोध स्तर पर कथा म उभरती है, अत्यन्त साधारण होकर कहानी शुरू होती है (और अन्त भी साधारण तौर पर ही होता है) यह कि बातो का एक सिलसिला होता है जिसम हर मोड और हर कोण पर आदमी को विडम्बना आकार पाती चलती है और अत म कहानी किसी विडम्बना को पूर

परिदृश्य म आकार देकर लौट जाती है। इस रग की सबसे अधिक कहानियाँ भीष्म साहनी क यहा हैं। प्रमचन्द की परम्परा का जब सवाल उठाया जाता है तो इस परम्परा म आ लिखी गई कहानियाँ भीष्म साहनी की ही ठहरती हैं। कमोबेश एसी ही सहजता श्राम प्रकाश निमल के यहा भी है, लकिन इसीलिए यह स्वीकार कर लिय जाने का कोई कारण नही कि सपाट' शिल्प वस्तु वाली कहानी ही जोरदार होती है। दरअसल हर लखक का कहानी का अपना मिजाज होता है और यही मिजाज जितना उभरता है कहानी उतनी हो मजबूत है और लखक की अपनी स्थिति भी।

पिछली पीढी के कथा समीक्षकों न वातावरण के आधार पर भी नई कहानी की समीक्षा की है। जबकि उनकी अध्यापकीय कथा समीक्षा की आलोचना का क द्र दूसरे तत्वों क साथ वातावरण भी रहा ह। मार्मिक और सजीव वातावरण क लिहाज स निमल वर्मा की कहानियो को याद किया गया ह और उ ह इस कारण स सर्वाधिक प्रभावशाली भी माना गया ह। मार्मिक और सजीव वातावरण चित्रण के नाम पर निमल वर्मा की कहानियो को सजीव ठहराना नई कथा क समीक्षालय म महज रोमन की वकालत करना ही नही है अपनी रोमटिक रुचि का इजहार करना भी है। विदशी वातावरण चित्रण की बात तो समझन लायक है लेकिन हर दशी वातावरण की विदशीयता का आखिर क्या अथ है? निमल वमा के यहा यह सब उपलब्ध है।

स्पष्टत्व' क सन्दभ म सहो वास्तव का सवाल स्यात विभाजक समीक्षा बुद्धि का पसन्द न हो (गो कि उनकी कोई पसद भी है? इस पर पूरी बहस क लिए अलग स गु जाइश है) लकिन इस पूर सवाल का नई कहानी' के शिल्प बोध स गहरा सम्बध है क्योकि सही वास्तव का सवाल उस यथाथ का सवाल नहा है जो निम्न स्तर पर फोटोग्राफी और वस्तुबोध क नाम पर मात्र विवरण' होता है। सही यथाथ का सवाल इस बात स एकमएक है कि हमारे जस तम म (कुछ कहानीकारो न मान उस ही चित्र दिया है, हालांकि इस चित्र दना कोइ गजबाब बात नहा है इस चित्रण का कारण सतही यथाबोध और यथाथ का गलत समझना भी है) जो अनदखा रह गया है या निमक अनदखा रह जान की सम्भावना है (क्योकि इसके बिना यथाथ का तस्वीर पूरी नही होती हो सकता है कि हम फिर भी पूरे अनदखे को चित्र न दे सकें लेकिन जितना भर द सकें वही फोटोग्राफी वाल शिल्प और विवरण वाल वस्तुबोध स महत्तर होगा) उस कथा म तस्वीर दें, क्योकि हमारे यथाथ की पूरी तस्वीर व तस्वीर को पूरे के करीब करीब प्रत्यक्ष करान क

लिए इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है, और चूंकि इसे रूपाकार करने में मुहावरा हुई भाषा और प्रपण के प्रचलन प्रकार अपर्याप्त होंगे इसीलिए यहीं से उसे महीन वस्तुबोध के साथ प्रपण के लिए नए शिल्प और आयामों में खुलती भाषा की नई तलाश प्राप्ति भी करनी होगी। इसीलिए 'नई कहानी' अपने सही अर्थ में वस्तुबोध के नए' के साथ साथ भाषाबोध व प्रपण के लिए लगातार शिल्प के नव-नूतन की तलाश भी है और इस अर्थ में वह एक समूची प्रक्रिया भी है जो आगे चलकर चाहे एक अलग नाम की मांग करे लेकिन अपने प्रक्रियार्थ में यहीं से शुरू मानी जायगी। हर 'नई कहानी (यदि वह वाकई नई है तब) कथाकार के वस्तुबोध व शिल्पबोध के लिए हर बार एक नई चुनौती होती है और हर चुनौती (अगर उसकी कथा क्षमता उसे स्वीकार कर पाती है) कथाकार से नए का योग कराती है, यह अलग बात है कि 'नई कहानी ने चाहे न सही लेकिन नए कथाकार ने अक्सर इस शर्त को पूरा निभाया नहीं है पर उसकी नियति इसी को निभाने से जुडी हुई है। यह बात जुदा नहीं है, इसे वह चाहकर भी नकार नहीं सकता। आधुनिकता को कथा स्तर पर प्रत्यक्ष कराने का सवाल भी यथार्थ की इसी शर्त से जुड़ा हुआ है। महानगरों में बहती या ठहरती प्रत्यक्ष आधुनिकता को रूपायित करना बडी कलात्मक कोशिश नहीं है, बडी कोशिश है इससे इतर आधुनिकता बुनते हुए असलक्ष्य क्रम-सूत्रों को सश्लिष्ट अभिव्यक्ति दे पाना। स्पष्ट है कि असलक्ष्य क्रम सूत्रों का प्रत्यक्ष करने वाला रूप प्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कराने वाले रूपाकारों से भिन्न कथा दृष्टि के मौलिक रचाव का आतरिक विवश प्रतिफलन होगा किसी भी तरह ओढ़ा हुआ नहीं और इसी कारण अधिक प्रत्ययपूर्ण भी।

'नई कहानी की सांकेतिकता का स्पष्ट अतर व्यतीत कथा की सांकेतिकता से है इस माइने में कि व्यतीत कथा में संकेत का उपयोग कथा के प्रसाधन में हुआ करता था नई कहानी में वह उसकी—सश्लिष्ट परिवेश और व्यस्त सकुल जीवन के कारण—नितान्त स्वाभाविक और अनिवार्य स्वीकृति है बल्कि किसी स्तर पर वह संकेत का उपयोग न कर स्वयं संकेत होती है। नई कहानी' में संकेत का सविशय होना इस कारण से भी चालित है कि नए कथाकार को 'आदेश देने, लेखक की हैसियत से सीधे बात' करने कथा में अतिरिक्त 'नाटकीयता का आयोजन करने आदि जैसी सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। पुराने कथाकार को यह सुविधाएं प्राप्त थीं। अस्ल में इन सुविधाओं का उपयोग नया कहानीकार' कथा में करना भी नहीं चाहता इसलिए कि वह इनसे कथा शिल्पबोध के समानान्तर नहीं पाता और इसलिए भी कि आधुनिक वस्तुबोध व सम्प्रेषण माध्यम के रूप में यह अपना अर्थ खो चुकी है। नई कहानी' पूरे तौर पर तो संकेत होती ही है, अलग अलग स्तरों पर भी वह संकेत होती है हालांकि ये संकेत स्वयं में अलग से महत्वपूर्ण होने और

स्वत त्र स्थिति रखने पर भी, होते कहानी के प्रभाव की पूरी अन्विति वाले वृहत्तर सकेत के लिए ही है।

नई कहानी' म सकेत प्रतीक सयोजन जहा कहानी के 'रूपबध' की एक हद कायम करते हैं वहा इनके अपने प्रयोगगत जबरदस्त खतर भी हैं और य खतरे महज हवाई न होकर कहानीकारो के यहा देखे भी जा सकते हैं। सिद्धहस्त और सयमी कथाकारा क यहा भी य जरा सी चूक से आकार लेने लगते हैं। दरअसल सकेत प्रतीको का प्रयोग तब अर्थहीन हो जाता है जब इन्ह स्वय म तथ्य मान लिया जाता है यह जानते हुए भी कि प्रतीक की अलग से अपनी कोई स्वतन्त्र नियति नही है स्वतन्त्र होते हुए भी अन्तत वह कथा की अन्विति के साथ जुड़ी हुई है इसी को उभारे, बस प्रतीक की इतनी सी ही सार्थकता है। हान का ता युग की अश्लीलतम औपन्यासिक कृति लेडी चैटरलाज लवर युग की महानतम् प्रतीक-कृति हो सकती है लकिन सवाल यह है कि क्या ये प्रतीक कथा-स्तर पर रिवील हो सक हैं? प्रतीको की वस्तु बोध की अनस्य आन्तरिक रचना स सगति न बठने क कारण कहानी एकदम हवाई भी हो सकती है यहा तक कि समीक्षक समझ मे तो वह ऊपर हो ही जाय लेखक की समझ भी उस कोई अर्थ न दे सके, इसालिए यह बात हम याद रखन की जरूरत है कि प्रतीक सयोजन कहानी क लिए है कहानी रचना प्रतीको क लिए नही। कहानी स्वय प्रतीक हो सकता है, होती भी है (मैं कह चुका हू) लेकिन एक एसा प्रतीक जो कहानी के लिए उपलब्ध किया गया हो और तब कहानी क होत हुए यह प्रतीक या प्रतीक क होते हुए यह कहानी हमारे जीवन की किसी क्रूर विडम्बना या किसी छोटी घटना को अर्थ देती हुई जीवन का अनदेखा सन्दर्भ खोजती है या उसके दिशा खोजी सकेत दती है या फिर इसक द्वारा एक ही प्रतीक जीवन को (जीवन खण्ड को) उसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता म अर्थकोणों म बदकर (प्रापरेट कर) स्तर-स्तर उजालता है।

नई कविता' म विम्ब आयोजन को शिल्प स्तर पर जितना बडप्पन मिला है, उतना नई कहानी' के शिल्प म नही बल्कि कविता म तो विम्ब का सम्प्रेषण माध्यम की विकसिततम हद भी मान लिया गया है। यदि विम्ब प्रयोगा का नई कविता" तक ही सीमित न मान लिया जाय (गोकि कुछ समीक्षका का निजी तौर पर कथा के शिल्प स्तर पर विम्ब प्रयोगों से खासा परहेज है) तो नई कहानी स हम इसके उपयोग म गम्भीर मदद मिल सकती है। और कुछ प्रबुद्ध कथाकारा न वस्तु अर्थ को बारीकी से खानने क लिए उनम मदद ली भी है विम्ब प्रयाग नई कहानी म प्रेषण क्षमता का नई शक्ति दत ता हैं लेकिन इनक अपने खतरे

भी हैं (इसीलिए रूपबध की किसी भी हद को आयाम दन क लिए धार पर चलने वाली पनी सजक नजर जरूरी है) क्योंकि कहानी क बिम्ब वही नही होग, जो कविता क होगे। कविता क बिम्ब कहानी क गद्य की ठेठ सामर्थ्य के प्रति पाठक का विश्वास गिराते हैं इस से कहानी मे यथाथ की पकड जहाँ कमजोर पडती है (भाषा म अतिरिक्त छन्द बद्धता या कवित्समयता के कारण) वहा तत्कीय बौद्धिक निस्सगता भी छूटती है। टठ कहानी क सदभ म यह खतरा अपने समस्त नएपन क बावजूद निमलवर्मा के यहा ज्यादा है। परिन्दे मे घास के नीचे सोयी हुई भुरी मिट्टी पर तितली का नन्हा सा दिल धडकता है मिट्टी और घास के बीच हवा का घोसला कापता है कापता है। आए हुए य बिम्ब या इन्ही जस दूसरी कहानियों म प्रयोग पाए हुए बिम्ब कविता क बिम्ब हैं। शिल्पवादी प्रवृत्तियो के विरोधी शिल्प चमत्कार के कारण ही परिन्दे को नई कहानी (शायद पहली भी) मान बठे हैं जब कि वह बीते हुए क मोह और छायावादी कल्पना की विकृति (अवसाद का फलाव) से जुडी हुई कथा है और रोमान के विरोध म उसी रोमान को कहे जाने की विवशता से सम्बद्ध है यह अलग बात है कि इन स्थितियो स उबरने क उसम बराबर सकेत मिलते हैं।

पता नही क्या समीक्षको को नई कहानी' म कविता पत्तियो क स्तेमाल से गुरज क्यो पदा हो गया है (लगता है इसका कारण कविता कहानी का एक दूसर के विरोध म खडा करने का विद्वेष है और एक स दूसरी विधा को श्रेष्ठ समझने का भ्रम) कविता पत्तिया स सहायता ल लना शिकायत की बात नही है शिकायत तो कहानी की भाषा को कविता की भाषा बना दन स है क्योकि इसस नई कहानी' की भाषा न तो गद्य को रूप और प्रयगत सजावट दी है उसकी शक्ति और गति मरता है। कहानी की भाषा मात्र शिल्प स्तर पर सम्प्रेषण का एक माध्यम ही नहा है, उसका वस्तु बोध न गहरा और भीतरी सम्बन्ध है। भाषा का बदलाव युग-बोध-बदलाव को सूचित करता है (मात्र भाषा स ही किसी भी कृतिकार क वस्तुगत ससार और दृष्टिबोध का विश्लेषित किया जा सकता है) इसीलिए कवित कामल भाषा प्रसाद' क युग बोध की भाषा तो हो सकती है सम्प्रति युग बोध का सक्षम उसस न होगा और इसीलिए ज्यादा अच्छा है कि कहानी की भाषा म काव्य प्रभाव उत्पन्न कराने की अपेक्षा कविता पक्तिया का ही उपयोग कर लिया जाय और जबकि काव्य भाषा गद्य भाषा क समीप आ रही है तब कहानी की भाषा को काव्य भाषा क समीप ले जाना सही प्रश्न का गलत दिशा दना है। जीवन समीप भाषा ही समीप जीवन बोध का सही प्रयोग द सकती है नई कहानी' की भाषा इसी दिशा की यात्रा है।

'नई कहानी' म भाषा प्रयाग वस्तु क समानान्तर ही हुए है, भाषा म नाट-कीय लहजो, सस्कृत निष्ठ रूपा, अधिक से अधिक विशेषणधर्मा वाक्या का युग पीछे छूट गया है। वस्तु के समानान्तर गाव, कस्बा व शहरी भाषा का स्वभाव अपन नितान्त लहजा क साथ उस म वहिचक और प्रभूत प्रयोग पा रहा है। इस स्वभाव म आरोपित कमनीयता, कृत्रिमता और क्लासिक भाषा का बहिष्कार है। यह वस्तु के युग बाध गत स्वभाव का नतीजा है। जिन कथाकारा के यहा ऐसा नही है, वहा कहानी वस्तु और भाषा दोना से पिछडी हुई है। 'नइ कहानी' म भाषा का सजाव नहा है, यहा सपाट और विशेषणहीन सहज भाषा ही अभिप्रेत है इसी के चलते 'नई कहानी' म भर्ती की बातो का कम हात जाना, वस्तु और भाषा क बढत हुए आयामो का सकत है। 'नई कहानी' म कम से कम शब्दा म अभिप्राय को कह डालने म गद्य रूप का सस्कार ता हाता ही है, लेखकीय सामर्थ्य का आश्वासन भी उस माना जा सकता है। निमल वर्मा की भाषा की तारीफ काफी की गई है, बोध की सूक्ष्म प्रक्रिया और प्रतिक्रियाओ का गह पान म उमकी तारीफ की भी जानी चाहिए लेकिन विशेषणहीन सनाए' और 'उपमा रहित पदो' को उनकी भाषा की तारीफ का आधार बनाना या तो तथ्य को न समझ पाना है या फिर बूझ कर किन्ही विवश ताओ, के चलते, उन्ह झुठलाना है फ्राक क भीतर स ऊपर उठनी हुई कच्ची सी गोलाइया म मीठी मीठी सी चुभती हुई सुइया । (मैं नही जानता कि कच्ची सी गोलाइयो की यह मीठी मीठी सी चुभन किस इन्द्रिय बोध स चखकर अलगाई गइ है?) यह भाषा या इसी जसी उनकी कहानिया म अन्यत्र बरती गई भाषा 'नई कहानी की भाषा की किसी विकसित हद का नही छूती, बल्कि छायावादी भाषाबोध जगाती है। भाषा क नए-नए रुखा और रगा को गद्य की मजावट म राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, कमलश्वर, अमरकान्त, शिवप्रसादसिंह और इधर श्री कात वर्मा, रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरजन, दूधनाथसिंह आदिके यहा देखा जा सकता है।

निरन्ध स्वभाव की कहानिया, इधर कुछ नए कथाकारा क यहा लखी जा रहा है उनको चाहे आन्तरिक प्रकृति निबन्धा जसी, नही भी हो, लकिन अवयव सगतता और भाषाबोध निबन्धो जसा ही होता है अमूत्त का प्रयाग भी, इधर कथा म हुआ है, श्रीकान्त वमा आदि के यहा इसक रूपाकारा का समझा जा सकता है। य अमूत्त प्रयोग प्रतीक और सकता का माध्यम तो पात ही है, किसी किसी स्तर पर अमूत्त चित्रो का ममीप भी इनम होता है और इसी वजह स वस्तु आयोजन म पेच भी आत हैं और जिनके प्रासगा म जिया गया काल विरोधा म बटा हुआ भी लग सकता है लेकिन

सतही तौर पर, गहरे उतरन पर नही ।

नय कथाकारो ने बावजूद अपनी कमियो के शिल्प के सतुलन और सयम का आश्चयजनक सबूत दिया है अलकृति और बुनावट कुछेक कथाकारो को शिल्प स्तर पर अभी भी पकडे हुए हैं लकिन बहुता के यहा इनकी रगारग पखे बिखर चुकी हैं ।

कहानी म शिल्पहीन शिल्प का रचाव उतना ही दुष्कर है, जितना कि 'सपाटपा का कहानी म खास बना पाना लेकिन इधर शिल्पहीन शिल्प वाली कुछ कहानियाँ लिखी गइ हैं, कमलेश्वर की 'मास का दरिया' ऐसे ही शिल्प की कहानी है ।

कथाकारो ने पुराने अप्रचलित शिल्प प्रयोगा– सिहासन बत्तीसी 'किस्सा तोता मना'–का भी नयी कथा म अपनान की कोशिश की है । इन रूपबधो के तहत बनावट पाई हुई कहानिया या तो महत्वहीन होकर रह गई हैं या फिर साधारण सा व्यग्य होकर । इसका कारण चाहे तो युग-बोध रहा हो चाहे फिर लेखको की अपनी निज की कथा क्षमता । दूसरे कथानक और लोक कथा क रूपबध का नए वस्तु शिल्पबोध के समानान्तर उपयोग नई कहानी' म हुआ है लकिन इस मिजाज की चर्चा करने योग्य कहानी अपन पूरे महत्व म कमलेश्वर ही दे पाए हैं राजा निरबसिया' उनकी ऐसी ही कहानी है ।

नई कहानी' म वस्तु सत्य म जहाँ एक स्तर पर एकरसता आई है, वहा उसका शिल्प इससे बचा हुआ है । हर लेखक क यहा प्रेषण क अलग अलग ढ ग हैं चाहे फिर व काफी हाउस सक्स सिनीमा होटल कफ यात्राए जसे एक रसता पदा करने वाल (करीबकरीब हर लेखक क यहाँ यही कुछ है) वस्तु सत्या को ही क्या न लें । एकरस स्थितिया क चित्रण म आज के जीवन का ज्यादा इनमे जुडा हुआ होना भी एक कारण है ।

नए कथाकारा के यहा असामान्य (एबनामल) व्यक्तित्व और असामान्य स्थितिया का चित्रण हो रहा है, लेकिन यह असामान्य व्यक्तित्व प्रसाद' आदि के यहाँ का असाधारण व्यक्तित्व नहीं है जिसक कारण पुराने कथाकारो की वस्तु का सीमित हो जाना अनिवाय था, बल्कि य घटना और ये व्यक्तित्व जीवन की यान्त्रिकता और यान्त्रिक वनानिक युग के आदमी को बौना बना देन वाली भयानक स्थितिया छायामया अथहीन होते हुए रिश्ता मौत और अकेलेपन का जन्य है । जाहिर है कि ऐसी वस्तु वाली कहानिया की शिल्प सरचना भिन्न और अलग स्तर की या सतह से दमन पर असम्बद्ध और विरोधी सूत्रा वाली

होगी। इन क समानान्तर ठड (श्रीकान्तवर्मा) जसी कहानियां—जिनम ग्रति परिचित वस्तु ग्रौर व्यापार म ग्रक्सर ग्राख की पकड स ग्रनदखे ही छूट जाने वाल जीवन के विडम्बना चित्र हात हैं—का सादा ग्रौर सहज शिल्प ग्रपनी हर स्थिति ग्रौर हर मोड म सामान्य हात हुए भी सहज सकेत ग्रौर प्रतीक हो उठता है।

नई कहानी' को कहानी के ग्रब तक क प्रचलित ग्रथ ग्रौर परिभाषा की धारणा म साफ साफ कहानी नहीं कहा जा सकता, यह ग्रन्तर वस्तु की समानान्तरता की ग्रपेक्षा शिल्प ग्रौर दृष्टि के बदलने के कारण ग्राया है इन्हीं के चलते नई कहानी' एक स्तर पर वैचारिक निबन्ध जसी होती है तो एक ग्रौर स्तर पर महज बातों का एक दिलचस्प सिलसिला या फिर वह कुछ सकता ग्रौर प्रतीको म ही शुरू ग्रौर ग्राखीर हो सकती है। कहीं वह 'फ्लश बक' के जरिए ग्रपना निविड ग्रौर चाहा हुग्रा ग्रथ उजागर करती है तो कहीं वह फन्टेसी हाकर कहानी हाती है। कहीं वह पत्रों का छोटा ग्रौर लम्बा सिलसिला हो सकती है तो कहीं डायरी के लम्ब-लम्ब पृष्ठ उसके लिए हाते हैं। गोकि इनम से कुछ शिल्प कायदा की परीक्षा पुराने कथाकार भी कर चुके हैं ग्रौर नयी कहानी म भी य शिल्प कायदे कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं दे सके है।

फामू लाबद्ध शिल्प नई कहानी म समाहृत नहीं हुग्रा, इसलिए निश्चित् ग्रादि ग्रत चरम सीमा व इन्हा जस दूसरे नुक्तो का प्रयाग नए कथाकारो ने ग्रपन यहा नहीं किया जब कि इन नुक्ता न व्यतीत कहानी के शिल्प का दूर तक निर्देश दिय थ। युग की विडम्बना को सम्प्रपण दन क लिए तल्खी ग्रौर व्यग का नई कहानी म इतना सफल ग्रौर प्रभूत प्रयोग हुग्रा है कि जिसके चलते उनम व्यग्य भाषा का रूप एक खास कोण स उभर सका है।

शिल्प गत सारी जागरूकता के बावजूद खास किस्म का मैनरिज्म इधर 'नई कहानी के शिल्प म विकसित हुग्रा है। इस खतरे स नए कहानीकारा को परिचित होना जरूरी है गोकि कुछेक इनम इससे परिचित भी हैं, क्योंकि कुछ नए उम्र कथाकारों ने इस लायर का तोडने की काशिश की है। लेकिन इसे दुर्भाग्य पूर्ण ही कहा जायगा कि हिन्दी का नया कथाकार चन्द कहानियो क बाद ही टाइप होना शुरू हो जाता है। उसकी वस्तु क पाश्व-परिदृश्यो का सीमित होना उसके शिल्प का भी कुछ ग्राजमाई हुई रेखाग्रो तक ही सीमित कर देता है। इसका कारण उनका चुकता हुग्रा जीवनानुभव जहा है, वहीं लायरो म जाना ग्रौर ग्रतिरिक्त खतरा मोल न लेने की साहसहीनता भी है। उनकी खुली ग्राँख की दाद दी जा सकती है, लकिन एक ही जगह या हर जगह म एक ही नुक्ते को तलाशने वाली उनका खुली ग्राख कब त क

प्रशसा पाती रहेगी ? खतरा उनको ग्राख के खुलेपन से नहा है (क्योंकि वह तो 'नई कहानी' की पहली शत है या शर्नोम कोइ भी ज्ञम उमे भ्राप दें) खुलेपन के बध जान से है। जबकि नई-कहानी के लेखक क लिए जरूरी है कि वह लगातार वस्तु और शिल्प के बने बनाए दायरा और ग्रायामो को तोडता हुआ, उनस ग्रागे लिखे क्योंकि 'नई कहानी' किसी सन् विशय का सिक्का नहीं है वह लगातार प्रक्रिया म ढलता हुआ सिक्का है। मनरिज्म' के चक्कर म कुछ ऐसा होता है कि एक स्तर पर वस्तु से शिल्प *का ताल मेल टूट जाता है, वस्तु का विकसित नोकें मर जाती हैं और वह जीवन की* पकड म पीछे छूट जाती हैं तब कहानी महज सनही होकर रह जाती है या फिर कहने का ढब मात्र होकर और यह ढब भी पहल हा कहा जा चुका होता है। इस ढब की चुनौती को जब तक नया कथाकार खुली ग्राख स्वीकार नही करता तब तक उसकी नियति ग्रपने पिताग्रा स किसी तरह बेहतर नही हो सकती।

शिल्प–ढब की इस चुनौती को उसके तमाम खतरो म और और नामा क साथ राजेद्र यादव और रमा बक्षी न स्वीकारा है। राजे द्र यादव कथा शिल्प प्रयोगा को लेकर प्रसिद्ध है तो इस लिए बदनाम भी हैं (कभी कभी हम किसी की ग्रालोचना इसीलिए करते हैं कि वह प्रसिद्ध क्या है? और जिन बातो के लिए हम उसकी प्रशसा कर सकते हैं उन्ही बातो को उसके विरोध म इस्तेमाल कर लत हैं। उपलब्धि को ग्रारोप के तौर पर प्रस्तुत करने की इस समीक्षा बुद्धि के पीछे कितने व्यक्तिगत कारणा और ठहरी हुई रुचि का हाना है इस पर ग्रलग से बहस करने की जरूरत नही) बस इतना ही कहना है कि राजेद्र यादव ने ग्रभी तक वस्तु बोध की नब्ज से ग्रपनी उगली फिसलन नही दी है और यह भी कि शिल्प का नए नए ग्रायामो म ढालने का खतरो भरा उत्साह ग्रभी उनम चुका नही है।

बिचली पीढ़ीके कथा समीक्षक उनके शिल्प और फिर उलभी हुई वस्तु (शिकायत ग्रम काबिले गौर है) की शिकायत करते हुए पाए गए हैं लेकिन ग्रसल बात का शिकायत व नहीं करते (या तो वहा तक उनकी पहुच नही है या फिर जानकर वहा वे 'ग्रपहुचा' रहना चाहते हैं यानी ग्राज क व्यस्त सकुल जीवन म शिकायत की बात उलभी हुई जिन्दगी स हो सकती है जिसका ग्रावश्यक परिणाम उलभी हुई वस्तु और इसी क चलत उलभा हुग्रा शिल्प है वे इन ग्रावश्यक परिणामा से कतरात हुए इन तथ्या को उनके वस्तु शिल्प क नाम पर नकराते हैं और सपाटपा की (पलटनम) महमियत को कहानी म बन्द दना चाहत हैं। कहीं एमा तो नहा है कि चक्करदार वस्तु–शिल्प स भयभीत उनकी 'सपाट समीक्षा' बुद्धि ग्रपने तई सपाटपा की सुविधा चाहती हा? जा भी हो, (या जो न भी हो) एसा जरूर हो सकता है कि चक्कर

दार वस्तु–शिल्प आयोजन म लेखक से चूक हो जाय पर उसके खतरे उठान वाल साहस और उपलब्धियो के प्रति अनजान बनत हुए महज उसकी चूक की आलोचना करना या तो सतुलित समीक्षा–बुद्धि क अभाव का वायस हो सकती है या फिर कुछ निजी और सतही कारणो का नतीजा और इसीलिए इस समीक्षा स्तर पर गम्भीरता स नही लिया जा सकता ।

दुनिया के साहित्य म महत्वपूर्ण कृतिया केवल सपाट वस्तु–शिल्प का परिणाम ही नही हैं और फिर आज जिस वस्तु शिल्प को चक्करदार समझा जा रहा है वह आन वाली पीढियो के यहा भी एसा ही समझा जायगा, इसके लिए साहित्य इतिहास से हम कोई विश्वसनीय निर्णय प्राप्त नही है । चक्करदार वस्तु शिल्प की आलोचना तो की जा सकती है लकिन उसकी साहित्यिकता को सदिग्ध नही ठहराया जा सकता, बल्कि कथा के बढत वस्तु–शिल्प आयामो के लिए एक स्तर पर चक्करदार वस्तु शिल्प आयोजन महत्वपूर्ण भी हो सकता है । बहरहाल ।

नई कहानी उसका यथार्थ और पाठक

डॉ० राजेन्द्र शर्मा

इधर 'नई कहानी' के संकलन प्रवाह की तीव्रता इतनी बढ़ गई है—सच तो यह है कि उसके पर करीब-करीब उखड़ गए हैं।

पाठक हर संकलन को कहानी की भूख के साथ हाथ में लेता है और उसे उसमें नीरसता की धूल का अम्बार ही मिलता है, उसे लगता है जैसे हाथ पर आंख-नाक मुंह में धूल ही धूल भर गई है।

अब वह धीरे-धीरे इतना तो शायद समझने लगा है कि कहानी से भिन्न यह नई कहानी क्या है? कहानी अपने आप में एक पुरानापन है ऐसा पुरानापन जिसका सम्बन्ध जिद्दी लोग वेदों से जोड़ते हैं। हद हो गई इस कदर पुरानी चीज का स्वागत सत्कार कौन नासमझ करेगा। नए कहानीकार को कहानी का यह सुदीर्घ अतीत अन्धकार का एक अनन्त इतिहास प्रतीत होता है उन्हें लगता है कि *किसी राक्षस ने कहानी की आत्मा का कथा के पाश में बन्दी बना रखा था।* उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि वे राजकुमार की भांति इस राजकुमारी का राक्षस के हाथों से उद्धार करेंगे और उद्धार उन्होंने शायद किया भी है, लेकिन राजकुमारी का शरीर ही उनके हाथ लगा है आत्मा उसका साथ पहले ही छोड़कर चली गई है। इन नवयुवक कहानीकारों की यह सफलता, जायसी की इन पंक्तियों का सहसा ही स्मरण करा देती है जो उन्होंने अलाउद्दीन के चित्तौड़ दुर्ग प्रवेश के संदर्भ में लिखी है। अलाउद्दीन की उपलब्धि और नए कहानीकारों की उपलब्धि में तात्विक अन्तर नजर नहीं आता।

'लीन उठाइ छार एक मूठी
दीन उड़ाइ पिरथमी झूठी।'

अन्तर इतना ही था अलाउद्दीन अपनी इस उपलब्धि पर लज्जित था नया कहानीकार इस उपलब्धि पर गर्वोन्नत है।

नया कहानीकार जीवन का सभी संदर्भों से काटकर, केवल वर्तमान के निकष पर परखना चाहता है—वर्तमान शब्द भी बड़ा है—केवल क्षण के निकष पर। आश्चर्य तो यह है कि उन्होंने अभी यह घोषणा नहीं की है कि आज के जीवित मनुष्य का अतीत के मनुष्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह गर्व के साथ अपने को वैज्ञानिक

को सत्ता से अभिभूत करता है और जीवन के अंग-प्रत्यंग को काटकर अलग अलग उनकी परीक्षा करना चाहता है। इस परीक्षण प्रेम मे वह यह भी भूल जाता है कि वह मृत्युत्तर शव परीक्षा कर रहा है या जीवित मनुष्य के अंग-भंग करने में लगा है।

उसे अपने अतीत वर्तमान और भविष्य सभी से एक अजीब विरक्ति और चिढ है। उसके हृदय में सबके प्रति प्रतिशोध की एक भयंकर ज्वाला अकारण प्रज्वलित है। वह अनजान में एक आत्मघाती सृजन का जनक बन रहा है उसकी सृष्टि अपने पिता के लिए ही सबसे भारी पड रही है। जोश में वह 'एक दुनिया समानान्तर' के सृजन का दम्भ धारण करके चल रहा है और उसकी विवशता है कि वह विश्वामित्र को भी नही भूल पाता।

संस्कृति शब्द से उसे चिढ है और भारतीय शब्द से एलर्जी (जुगुप्सा) लेकिन उसके गृहीत आधे प्रतीक पौराणिक है। अपने देश की हजारों वर्षों की संस्कृति का वह मूल्य नही समझा घर की मुर्गी दाल बराबर जो है। मेरे एक अमरीकन प्रोफेसर मित्र एक बार आमेर का दुर्ग देखने आए। लगभग चौथी शताब्दी के एक सपाट पूप ने उनकी चेतना को सहसा अपनी ओर केन्द्रित कर लिया। मैंने चकित होकर पूछा '*इतनी तल्लीनता के साथ आप इसमें क्या देख रहे हैं?* वे बोले '*देखिए हमारे देश में २५० वर्ष पहले का कुछ भी नही है, इसलिए जो भी चीज ५० वर्ष पहले की है वह हमारे लिए महती आश्चर्यमयी है। प्रोफेसर का पुत्र और उनकी पत्नी उस किले के मध्यकालीन भीमकाय गौरव से इतने अभिभूत थे कि अगर वश चलता तो वे पूरे दुर्ग को उठाकर अमेरिका ले जाते।

एक देवी अमरिका से यहां अंग्रेजी पढाने आई थी। अमरिका के समाज संघटन और पारिवारिक जीवन पर बात चली मुझे लगा कि भारतीय परिवार के गठन, यहा के पति पत्नी के सुदृढ सम्बन्धों के आगे वह देश अभी बौना है। उन्होंने माना कि अमरीका के सबसे धनाढ्य परिवारों में *आज भी संयुक्त परिवार प्रथा है* और इन परिवारों में लडकी लडका के विवाह सूत्र का सभी भार उनके वयोवृद्ध लोगों पर ही है।

ये सारी बातें अप्रासंगिक नहीं हैं इसलिए कि हमारा नया कहानीकार (या नया नया कहानीकार) अपने' के भार बन्धन से मुक्त होकर पराए के पक्ष (अक्र में नही) गिरना स्पृहणीय मानता है परधर्मोभयावह की बात अब उसे कोई अर्थ नही देती।

नयी कहानी' का यथार्थ, कुछ नए कहानीकारों का कहना है कि वह अनास्था के प्रति सर्वांगीण विद्रोह है। एक दुनिया समानान्तर' के सम्पादक ने संयुक्त परि

वार के विरोध म प्रमचन्द का आश्रय लिया है और उनका हृदय यह जानकर गव स भर गया है कि प्रमचन्द म भी कुछ प्रगतिशील तत्व अवश्य थ। (व प्रमचन्द के राजनीतिक आर्थिक दृष्टिकोण को प्रगति तत्व के अन्तगत नहा लना चाहते) सयुक्त परिवार प्रथा का विरोध प्रमचन्द न प्रारम्भ नहा किया था इसका विरोध ता बहुत पहल ही आरम्भ हो गया था। सन् १८८६ जुलाई के हिन्दी प्रदीप' म भट्टजी ने इस सदभ म जा कुछ लिखा था सूचनाथ निवदित ह— आज हम सबम बडा और एक प्रचड कारण हिन्दुओ की हीनता का दरसात हैं और वह यही एकान्न भोजन की कुप्रथा है। पहली बात महा हानिकारक यह है कि एकान्न म रह कर लडको की तालीम म बडी बाधा पहुचती है। हम कहते हैं प्रेम कमा जसी फूट और जसा जल्द घर का सत्यानाश इस एक चूल्हे की बदौलत होता है वसा किसी दूसरी तरह स कभी हो होगा नहीं। थोडे ही दिन तक रहन क उपरान्त इन एकान्न भाजिया म एसा वमनस्य फलता है कि आपस म एक का दूसरे का मुह देखना भी रवा नहा होता और अन्त म हिस्सा बाट क कारण एक एक इच जमीन के लिए लडकर वकील मुख्तार और अदालत की खातिर खाह पट मरत है।'

सयुक्त परिवारा का विघटन क्या हो रहा है इसके मूल की ओर भी भट्टजी इगित करत है— दश की प्रचलित रीति क अनुसार हम अपनी स्त्रियो का एक ता य ही सब तरह पर दीन हीन दासी बनाए हुए हैं दूसर यह एकान्न की प्रथा उनक लिए और भी दुखदाई हा रही ह सोचन की बात है कि एक स्त्री जा दरजन और कोडियो मनुष्या की रसोई अलग पकाएगी उसकी क्या गति होगी।

आज भी हमारे देश म परिवार की स्थिति योरुप और अमरीका की तुलना मे अच्छी है। विगत सहस्रा वर्षा क विकास क्रम म परिवार का सबस महत्व पूण स्थान रहा है। सयुक्त परिवार प्रथा म कठिनाइया उत्पन्न हा गद हैं। उनका हल ढूढना आवश्यक है उसका यह तो कोइ हल हा नहीं है कि परिवार प्रथा हा समाप्त करदी जाय।

नए कथाकारो को पारिवारिक विपन्नताओ का खुली आंख स अध्ययन करना चाहिए था। अशिक्षा आर्थिक विपन्नता, उ मुक्त और अबाध प्रम की वाछा तथा नारी की भाशा आकाक्षाए परिवार क ढाच म परिवतन लान वाली प्रमुख धाराए हैं। इनक सुनियाजन और सुव्यवस्था म परिवार सस्था फिर सुदृढ़ और समाज की सबस उपयोगी इकाई बन सकती है।

नए कहानीकारा का समा ने कमीज की मरम्मत कराते देखा होगा पन्ट और कोट का नवीनीकरण कराते देखा होगा, पन की निब बदलवाते देखा होगा घर म

दरवाजे और नई खिडकियां बनवाते भी देखा होगा । वे इनमे सुधार पसन्द करते हैं तो समाज मे सुधार की कामना न कर उसके सर्वांगीण विध्वस की कामना क्या सचमुच वाछनीय है ?

मेरे साथ एक डाक्टर बस मे सफर कर रहे थे एक बस के अड्डे पर सहसा उनकी आखें तरल शुभ्र हो गई' बोले 'यहा मेरी छोटी बहिन रहती है । मैंने देखा उनकी बेचैनी छिपाए नही छिप रही थी । हृदय की यह भावुकता ही वह सहज चुम्बक है जिससे व्यक्ति व्यक्ति से जुडा है, इस आत्मीयता और भावुकता के अभाव मे वसी ही सामाजिक प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जायगा जैसा आकर्षण शक्ति के अभाव मे प्रकृति के आमूलचूल विघटन से ।

नए कहानीकारो का दावा है कि वे केवल दृष्टि रखते हैं 'दृष्टिकोण नही । कोई भी समझदार आदमी इस कथन की अगम्भीरता से मर्माहत हुए बिना नही रहेगा । सच तो यह है कि दृष्टिकोण रहित दृष्टि दृष्टि है ही नही । वह जो कुछ देखती है उसे कोण ही सार्थकता देता है । कई बार फटी आख भी कुछ नही देख पाती कई बार देखकर भी अनदेखा कर दिया जाता है ।

नयी कहानी मे यथार्थ के नाम पर पति-पत्नी के सम्बन्धो को जिस रूप मे लिया जा रहा है वह अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व है । पश्चिमी दृष्टिकोण ने लेखको के सम्मुख एक ऐसा कुहासा सघन कर दिया है कि उसके पार वे झाक ही नहीं पाते ।

बडी विचित्र बात यह है कि नया कहानीकार अपनी सम्पूर्ण शक्ति से चीख चीख कर एक ही बात कहना चाहता है, देखो हर आदमी कितना सक्षुब्ध व्यथित अनाश्वस्त, अविश्वस्त, अविश्वसनीय और आस्थाहीन है । वह अपने को सबसे अलग काटकर एक ऐसी इकाई के रूप मे देखता है, जिसका दूसरी इकाई से कोई सम्बन्ध नही । उसकी दृष्टि मे एक-एक ग्यारह होना तो दूर एक और एक दो भी नहीं होते । पति और पत्नी भी अलग-अलग एक सम्पूर्ण इकाई के रूप मे पडे रहते हैं । उसकी दृष्टि वासना से परे प्रेम की सीमा तक जा ही नही पाती । पश्चिम मे प्रेम का जो विनापित रूप है वही इन्हे ग्राह्य है और किसी भी दूसरे प्रकार के प्रेम को वे कोरा आदर्श और भावुकता कह कर, उसे ससार की सबसे अवाछनीय वस्तु के रूप मे चित्रित करते हैं । नया कहानीकार ऐसे आदमी से सबसे अधिक घबराता है जो कहे मैं बडा सुखी सतुष्ट हू, कोई मानसिक तनाव मेरे व्यक्तित्व को विरोधी दिशाओ मे नही खीचता, मेरे मन मे कोई कुठा और कटुता नही है । ऐसे स्वस्थ आदमी को नया कथाकार सबसे पहले अस्पताल भेजने की जिद करेगा । वह सोचेगा कि इससे बडी गडबड और क्या हो सकती है कि इस आदमी के साथ कुछ गडबड ही नही है ।

सच तो यह है कि जीवन को जो उसके वास्तविक अर्थ में भोगते हैं वे लेखक नहीं हैं और जो लेखक है (नए कथाकार विशेषत) वे जीवन का स्वस्थ रूप में भोग नहीं पाते रात के दो बजे तक उपन्यास–कहानी और पत्रिकाएं पढ़ते-पढ़ते दिन के १० ११ बजे सोकर उठने से सारा संसार उन्हें शीर्षासन करता दिखाई देता है। वे यथार्थ की जमीन पर पैर रखने से इतने कतराते घबराते हैं कि या तो रेस्त्रां में भागेंगे या सीधे पहाड़ पर।

पहाड़ी सैरगाहों और रेस्त्राओं को यदि नई कहानियों में से निकाल दिया जाय तो फिर उनमें क्या बचेगा?

किसी को इस बात पर आपत्ति नहीं हो सकती कि आप रेस्त्राओं पहाड़ी सैरगाहों और वहां एकत्र मानव सृष्टि का अध्ययन कर चित्रण करें, इसमें भी किसी को आपत्ति नहीं है कि आप अपने कथा-साहित्य को दिल्ली कलकत्ता कानपुर या लखनऊ की कारा में बन्द करें। आपत्ति केवल इस बात पर ही है कि आप इन स्थानों के अतिरिक्त सभी जगह जीवन को नकारते चलें।

एक नए कहानीकार ने शिवप्रसाद सिंह की कर्मनाशा की हार में प्रसाद प्रेमचन्द काल का रोमांस देखा है उसकी इसलिए अवहेलना की है कि वह एक कहानी है और उसमें लेखक का एक सामाजिक दृष्टि कोण है उन्हें उस कहानी में पंचतन्त्र और हितोपदेश की गंध आती है ऐसे लोगों का शायद मेज पर टिकी कोहनियां पसन्द आए या जीवन का प्रकाश उन्हें जलती भाड़ी में दिखाई दे।

नई कहानी शब्द से एक विचित्र रोचक घटना मुझे याद हो आती है मेरे एक घनिष्ठ मित्र थे (अब भी हैं) छोटेलाल, स्नेहवश उन्हें छोटे ही कहता था, जब भी अपने बच्चों के सामने मैं उन्हें छोटे कहता, वे कहते बाबू ये तो इतने बड़े है आप इन्हें छोटे कहते हैं? नई कहानी की दशा भी कुछ ऐसी ही है। कुछ ऐसे मुहूर्त में उसका नामकरण संस्कार हुआ है कि पचास वर्ष बाद भी वह नई कहानी ही रहेगी।

हर कहानी में अपनी नवीनता होती है और पंचतन्त्र और हितोपदेश की कहानियां भी इसका अपवाद नहीं हैं, लेकिन नवीनता हीन कहानियों के लिए एक नया नाम नई कहानी ठीक ही गढ़ा गया है।

सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आदर्श शब्द से ही इन अत्यन्त नवीनों को आन्तरिक घृणा है। आदर्श यथार्थ से भिन्न क्या वस्तु है? आध्यात्मिकता की बात मैं नहीं करता, एकांत भौतिक स्तर पर ही आदर्श सबसे अधिक वांछनीय है। यदि आदर्शों के प्रति तनिक लगाव भी हमारे मन में नहीं होता तो आज जो राजनीतिक पराधीनता का परिच्छद अपने ऊपर से उतार कर हम फेंक सके हैं, नहीं फेंक पाते।

न्वात-योत्तर ग्रादश भी हमारे है किस दश म नही है। उसकी प्राप्ति का सरल ग्रौर ग्रबाव माग हम प्रशस्त करना है (नया कहानीकार उसम सहायता को घोर ग्रसाहित्यिक काय मानता है।) ग्राज उसकी दशा उस तपस्वी जसी हो गई है जो समाज स दूर पवत की खोह म एकात जीवन व्यतीत करता है, किसी क सुख-दुख स उसे कुछ लना-देना नही।

छोटी उमर क नए कहानीकार जीवन के सारे रहस्या को पलक झपकते ही समझ लते हैं उनकी दाशनिक पनी दृष्टि इस ग्रसीम प्रपच को वेध कर सीधे ही तत्व के तल को स्पश करने लगती है। इतनी कम ग्रायु म तत्व ज्ञान के बाद सारी ग्रायु ग्रब ये लोग क्या करग, य ही जान ?

ग्राज भी हम मित्र की ग्रावश्यकता होती है जीवन म ग्रपार विश्वास के घरातल पर हम ग्रपने पर रखना चाहत हैं त्रिशकु की भाति वायु म कब तक लटका रहा जा सकता है नए कहानीकार से यह सब ग्राशा करना शायद उसक साथ ग्रन्याय है कि वह मनुष्य का वाछनीय रूप चित्रित करने म ग्रपनी मेघा का उपयोग कर।

नई कहानिया म चित्रित लोग ग्रधिकतर बीमार व कुठाग्रस्त, सक्षुब्ध ग्रौर उनिद्र मिलेंगे। बिना दवाई की गोली लिए व 'नए ग्रादमी' की सत्ता प्राप्त नही कर सकग, चाहे उन गोलियो स उनकी सारी सत्ता ही विलुप्त हो जाय।

सारे दिन कठिन परिश्रम कर ईट का सिरहाना बनाकर सो जाने वाले निर्द्वद लोग, इनकी दृष्टि म पशु हैं, जीवन का स्वस्थ सौंदय किसी परिवार म दख कर वे शायद चौकेंगे। नए कहानीकार एस परिवारो को शायद समाज स हटा दना पसद कर जा उनकी कहानिया की कुत्सा का समथन ग्रपने जीवन स नही करत। समाज म व्याप्त ग्रशिव का चित्रण न किया जाय एसा कौन कहेगा ? लकिन शिव को उपेक्षा की मट्टी म क्या झाका जाय ? ग्रौर ग्रशिव का चित्रण भी प्रकारातर स शिव का सदश बन जाता है। नए कथाकार उपदशपरकता के ज्वर स बचना चाहत है, इसलिए ग्रशिव क नाम पर व ग्रशिव का ही चित्रण करत है।

नए कथाकार यथाथ क नाम पर साहित्यिक वमन कर रहे है। व जगत ग्रौर जीवन को बिना समझ बिना पचाए उस केवल छपास के लोभ म उगल रह हैं, उससे सबस ग्रधिक कल्याण उन्ही का होता है।

ग्राज का कहानीकार पाठक क लिए नही दूसरे कहानीकारो के लिए लिख रहा है ग्रौर जीवन के प्रागण से हटकर, ग्रलग एक रगमच बनाकर वहां एक दूसर की वाहवाही कर रहा है।

कहानी को शहर और गाँव के वर्गों म विभाजित करन से उसे सख्त परहेज है क्या कि शहर की सुख सुविधाओं से दूर, गाव के जीवित जन समाज का देखने स वह घबराता है। रस्त्राओं क अड्डा स दूर उसकी प्रेरणा जवाब दे जाती है। वियर और काफी के सहारे मानसिक अस्वस्थता की दशा मे, वह जो कुछ लिखता है उसकी सृष्टि भी अस्वास्थ्य के सारे कीटाणुओं से सम्पन्न और समृद्ध रहती है।

यथाथ के नाम पर जसी अकल्पनीय और अश्रुतपूव घटनाओं की ये लोग आयोजना करते हैं, उनकी तुलना म सिंहासन बत्तीसी' और 'किस्सा हातिमताई' कम असामा य लगेंगे। गव के साथ वे एक अश्लील कहानी लिखने और झरोखे से घटा नग्न नारी का सर्वांग दशन करना चाहगे। यथाथ का प्रश्न जो है इसलिए स्वप्न लोप की व्यजना भी उन्ह बहुत आवश्यक और अपरिहाय लगेगी। नारी को वे जन समूह म निवस्त्र करान म अपनी कला की साथकता समझग (और तुरा य कि वे जनेन्द्र यशपाल और अनय से बहुत आग निकल गए है बिल्कुल नवीन हैं।'

राजनीतिक विचारधारा से अनभिज्ञ य समझदार लखक कवल लिखना चाहते हैं उसके पीछे उद्देश्य कुछ नही है। जब और दूसरे दश अपने दश की सभी सीमाए पुष्ट करने म लगे हैं हम अपने देश पर अन्दर से प्रहार कर रहे है। प्रहार इसलिए कि हम किसी भी आदश और उद्देश्य के लिए साहित्य सजना की असाहित्यिकता क पातक का फतवा दे रहे हैं। यह प्रवृत्ति व्यक्ति को परिवार को समाज और देश को सभी को कमजोर बनाती है। कमजोरी समझ कर उस उद्धृत करना एक बात है और उस पकड कर अलग जा बठना 'और न मैं ठीक करूगा न करने दूगा' की हठ दूसरी बात।

आज की तथाकथित नई कहानी' म नया इतना ही है कि वह कहानी नहीं है और तब नए से उसका क्या सम्बन्ध ? यथाथ से वह उतनी ही दूर है जितना नया कहानी लखक जीवन स।